UNIVERSAL
LIBRARY
OU_182811
UNIVERSAL
LIBRARY

Osmania University Library

Call No H81.09 N33H Accession No. H3117

Author

Title

This book should be returned on or before the date last marked below.

प्रस्तावना

कई वर्षों से भक्त-कवियो की कृतियो के अध्ययन-मनन मे मेरा मन रमा हुआ था पाच वर्ष तक घरबार तक छोडकर साधुओ की सगति मे अपना समय बिताता रहा, परन्तु बल माया के प्रभाव से मुझे फिर सासारिक बन्धनो मे फसना पडा। मेरे मन मे ज क्ति-भावना सुप्तावस्था मे पहले से विद्यमान थी वह कुछ समय के बाद धीरे-धीरे पुन गरित होने लगी। फलत भारत के विविध प्रान्तो मे भक्त-जनो के उपदेश तथा उनकी त्वपूर्ण रचनाओ का अध्ययन मैने किया। उसीके परिणाम-स्वरूप हिन्दी तथा यालम के प्रमुख कृष्णभक्त कवियो की प्रधान कविताओ का प्रथम तुलनात्मक अध्ययन ुत कर रहा हू।

सबसे पहले मुझे लखनऊ विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष तथा प्रोफेसर दीनदयालु जी गुप्त से इस विषय को चुनने की प्रेरणा मिली। इस ग्रथ के विषय-भाजन और विविध प्रसगो के शीर्षको का चुनाव भी उन्हीके प्रसिद्ध ग्रथ अष्टछाप और लभ-सम्प्रदाय के अनुसार ही किया गया है। हिन्दी-भाषा के भक्तकवियो के विषय मे रामचन्द्र शुक्ल, डा० धीरेन्द्र वर्मा, श्री परशुराम चतुर्वेदी, प० हजारीप्रसाद द्विवेदी, मुशीराम शर्मा, डा० रामकुमार वर्मा, डा० ब्रजेश्वर वर्मा आदि अनेक विद्वानो ने ल्य ग्रन्थ तथा खोजपूर्ण लेख लिखे है, परन्तु मलयालम भाषा के कृष्ण-भक्तो के विषय ोई भी महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ अभी तक नही लिखा गया है। इसमे सन्देह नही कि हिन्दी के ान मलयालम मे भी कृष्ण-भक्तो की बहुत-सी रचनाए है—मुक्तक तथा प्रबन्ध के रूप हुत-कुछ लिखा गया है। अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि सन् १६६२ से १७२८ हिन्दी मे अधिकतर कृष्ण-भक्ति-सम्बन्धी मुक्तक काव्य की रचना हुई। इतने ही समय लयालम मे भी मुक्तक के अतिरिक्त दस से अधिक प्रबन्ध-काव्य और खण्ड-काव्य ा गए।

मलयालम के कृष्ण-भक्त और राम-भक्त कवियो के बीच मे आदर्श की भिन्नता है। राम का वर्णन करते समय जिन विशेषताओ का प्रयोग किया गया है उन्हीका ग कृष्ण-भक्त कवियो ने भगवान् की स्तुति करने मे किया है। दूसरी विशेषता है कि इस प्रान्त के भक्तो मे 'शैव' और 'वैष्णव' जैसा साम्प्रदायिक भेद नही है। ा भक्त भस्म भी लगाते है और चन्दन भी। उपास्यदेव के सम्बन्ध मे भिन्न-भिन्न मत हीं है। कृष्ण-भक्ति से सम्बन्धित रचनाओ मे सबसे श्रेष्ठ प्राचीन ग्रन्थ भगवद्गीता

है। इसका रूपान्तर सबसे पहले मलयालम भाषा मे किया गया।[1] कृष्ण-भक्ति सम्बन्धी कविताओ का मलयालम भाषा मे बाहुल्य है, जिसके पर्याप्त प्रमाण इस ग्रन्थ मे दिए गए है। हिन्दी मे कृष्ण-साहित्य का प्रमुख स्थान है ही। अत पी-एच० डी० उपाधि के लिए ग्रन्थ के रूप मे दोनो भाषाओ के कृष्ण-भक्त कवियो के साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रथम प्रयास मैने किया है। इसके पहले दक्षिण तथा उत्तर की भाषाओ की कृतियो का तुलनात्मक अध्ययन उपर्युक्त उपाधि के लिए किसीने भी नही प्रस्तुत किया।

प्रस्तुत कृति मे दोनो भाषाओ के कवियो की कृतियो मे परिलक्षित समानता और असमानता का दिग्दर्शन कराया गया है। यद्यपि दोनो भाषाओ की रचनाए कई बातो मे एक-सी है, तो भी भगवान् कृष्ण के रूप का चित्रण करने मे प्रत्येक भाषा के कवियो के अपने-अपने दृष्टिकोण अलग है। यदि हिन्दी मे सूरदास ने कृष्ण का बाल-रूप चित्रित करने मे अपनी श्रेष्ठता प्रमाणित की है तो श्री एजुत्तच्छन ने श्री कृष्ण की गम्भीर प्रकृति, उदार भाव, भक्त-वात्सल्य आदि के चित्रण मे कमाल दिखाया है। श्री एजुत्तच्छन, श्री चेरुश्शेरी नपूतिरि, श्री कुचन नप्यार आदि ने श्री कृष्ण को आततायियो के सहारक, प्रजा-परिपालक, तरुणियो के प्रेमी, गोपालको के सखा, नन्द के नन्दन, ज्ञानियो के तत्त्वस्वरूप कर्ममार्गियो के विराट् स्वरूप, और देहियो के आत्मा के रूप मे चित्रित किया है। कृष्ण के चरित्र को लेकर इन लोगो ने मानव-जीवन के सारे पहलुओ पर प्रकाश डाला है और यह सिद्ध किया है कि कृष्ण का अवतार ही पूर्णावतार है। इन कवियो के समकालीन सूरदास और परमानन्ददास आदि हिन्दी-कवियो की रचनाए श्री कृष्ण की बाल तथा किशोरावस्था की घटनाओ के वर्णनो तक ही सीमित है। सूरदास ने कृष्ण और राधा के रूप, सौन्दर्य, उनकी चेष्टाए, यमुना-तट, वशी-वट, निकुज, गोचारण, वन-विहार, चोरी, नटखटी, प्रेम-प्रसग आदि को अपनी रचनाओ का विषय बनाया है। इन्होने जीवन की गभीर समस्याओ पर, मलयालम के कवियो के समान प्रकाश नही डाला। तो भी जिन अवस्थाओ के विषय मे इन्होने लिखा है उनकी बराबरी कोई कवि नही कर सकता। बकासुर, अघासुर, कस आदि के वध और इन्द्र-दर्प-हरण आदि प्रसगो का वर्णन करने मे मलयालम के कवियो की चित्त-वृत्ति अधिक रमी है। उन्होने कस आदि को लोक-शत्रु या लोक-पीडक के रूप मे चित्रित किया है, किन्तु सूरदास आदि हिन्दी-कवि उनको प्रधानत कृष्ण के शत्रुओ के रूप मे चित्रित करने मे ही सन्तुष्ट रहे है। मलयालम के कवियो की भाँ हिन्दी-कवियो ने मानव-जीवन की विभिन्न दशाओ और बहुमुखी चित्तवृत्तियो का विश्लेष नही किया है। कृष्ण के जीवन की समस्त घटनाओ का वर्णन करके मलयालम के कवि ने कई आदर्श हमारे सामने प्रस्तुत किए है, किन्तु हिन्दी कवियो ने केवल दो-एक क चुनकर उन्हीमे अपनी काव्यकला का चमत्कार प्रदर्शित किया है।

काव्य-कला की कसौटी पर कसने पर दोनो भाषाओ की रचनाए खरी ठह

---

१ गीता का अनुवाद 'निरणम' कवियों में श्री माधव पणिक्कर ने किया। केरल-भाषा-साहित्य-चरित्र भाग १, पृष्ठ २८१, लेखक पणिक्कर।

चौ

है । शृगार तथा वात्सल्य-रस-प्रधान कविताए लिखने मे सूरदास तथा चेरुश्शेरी नपूतिरि बेजोड है। भक्तिरसमयी कविताओ मे सूर, एजुत्तच्छन और पून्तानम नपूतिरि की कविताए उत्तमोत्तम है। हिन्दी के कवियो की भाषा ब्रज है। मलयालम कवियो की रचनाए भी शुद्ध तथा [illegible] मे लिखी गई है। उपमा, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास आदि अलकारो की प्रचुरता हम इन सभी कृतियो मे पाते है।

उपासना-क्षेत्र मे दोनो भाषाओ के कवियो मे हम साम्य देखते है। सूरदास, राम परत्तु वारियर आदि कवियो ने कृष्ण का भजन सख्य-भाव से किया है। पून्तानम नपूतिरि तुलसीदास के समान सेव्य-सेवक-भाव से कृतिया रची है। श्री एजुत्तच्छन ने सामीप्य आदि मुक्ति की चार अवस्थाओ का वर्णन करके अन्त मे कहा है कि मुझमे और भगवान् मे कोई अन्तर नही।

मलयालम और हिन्दी के कृष्ण-भक्त कवियो का 'तुलनात्मक अध्ययन' प्रस्तुत करना ही इस कृति का मुख्य उद्देश्य है, परन्तु साथ मे उनकी उन रचनाओ का भी, जिनमे कृष्ण की महिमा और भक्तवत्सलता वर्णित है, रसास्वादन कराने की चेष्टा की गई है।

इस अध्ययन मे जिन महान् व्यक्तियो से प्रेरणा तथा स्फूर्ति मिली है उनमे सर्वप्रथम गुरुदेव डा० दीनदयालु जी गुप्त और मित्र श्री प्रेमनारायण जी टडन है। मलयालम भाषा के कवि तिलक वटक्क कूर राजराज वर्मा से भी बडी सहायता मिली है। इन [illegible] के प्रति लेखक अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता है।

जिन अगणित आचार्यो, सहृदय लोगो तथा सच्चे मित्रो के आशीर्वाद से यह ग्रन्थ पूरा हो सका, जो ज्योतिर्मयी शक्ति सर्वथा प्रेरणा देती रही उन सबका स्मरण करते हुए यह कृति सज्जनो के सामने लेखक प्रस्तुत करता है।

—लेखक

विषय-सूची

मलयालम भाषा के पद्य साहित्य की रूपरेखा पृ० ९–२०

पहला परिच्छेद २१–३६

विषय-प्रवेश—वैष्णव-धर्म तथा कृष्ण-भक्ति का विकास, दक्षिण-भारत, उत्तरभारत, आडवार भक्त, विष्णुस्वामी, निम्बार्क, माध्व, वल्लभ, चैतन्य-प्रदाय, शैव सप्रदाय, वारकरी सप्रदाय, राधावल्लभीय, तथा हरिदासी अथवा सखी सप्रदाय।

दूसरा परिच्छेद ३७–७३

कृष्णभक्त कवि और उनकी रचनाओ का सक्षिप्त परिचय, हिन्दी के कवि सूरदास, परमानन्ददास, नन्ददास, मीराबाई, नरोत्तमदास, हितहरिवश, स्वामी हरिदास, आनन्दघन, रसखान, ध्रुवदास। मलयालम के कवि निरणम कवि, माधव पणिक्कर, शकर पणिक्कर, राम पणिक्कर, चेरुश्शेरी नपुतिरि, एजुत्तच्छन, काव्य-ग्रन्थ भारत आदि। पून्तानम नपूतिरि कृतिया सन्तान-गोपालम्, श्रीकृष्णकर्णामृतम्, ज्ञानप्पाना, घनसघ, पार्थसारथीस्तव नट्टे ट्टु-हरि, आनन्द-नृत्तम्, कृष्णलीला। कुचन नप्यार जीवन की घटनाए, रचनाए, श्रीकुमारलयस्तोत्र, चाणक्यसूत्र, पतिन्नालुवृत्तम्, इरुपत्तिनालुवृत्तम्, श्रीकृष्ण-चरितमणिप्रवालम् भगवद्दूत आदि। रामपुरत्तु वारियर कुचेलवृत्त।

तीसरा परिच्छेद ७४–१०८

दार्शनिक विचार—सामान्य तत्त्व, ब्रह्म-सम्बन्धी विचार, सूर, परमानन्द, नन्ददास, मीराबाई, मलयालम के कवि एजुत्तच्छन, पून्तानम् चेरुश्शेरी। भाव मे साम्यता, जीव-सम्बन्धी विचार, शकराचार्य, बल्लभाचार्य, सूरदास, परमानन्ददास, नन्ददास, मलयालम के कवि एजुत्तच्छन का विभिन्न मत। माया-सबधी विचार, बल्लभमत—सूरदास, परमानन्द, नन्ददास, मलयालम के कवि एजुत्तच्छन, माया के सम्बन्ध मे हिन्दी और मलयालम के कवियो का विभिन्न मत। मोक्ष-सम्बन्धी विचार, सूरदास, सालोक्यादि मुक्ति के सम्बन्ध मे सूर का मत, परमानन्ददास, नन्ददास, मीरा, मलयालम के कवि एजुत्तच्छन, मुक्ति के सम्बन्ध मे एजुत्तच्छन का भिन्न मत, पून्तानम नपुतिरि, चेरुश्शेरी, तुलना। रास-सम्बन्धी विचार, सामान्य सिद्धान्त, सूर, नन्ददास, गोपियो की रासक्रीडा, सूरदास, चेरुश्शेरी, रासक्रीडा पर लोगो की निन्दा। कवियो का खण्डन, गोपियो के जन्म के बारे मे कवियो के मत, एजुत्तच्छन, रासक्रीड़ा।

चौथा परिच्छेद १०६–१६०

भक्ति—भक्ति का लक्षण, भक्ति के विविध भाव, भक्ति की महिमा, सूर, परमानन्द, नन्ददास, मीरा, मलयालम के कवि एजुत्तच्छन, पून्तानम। सगुण ब्रह्म, निर्गुण ब्रह्म और भक्ति, सगुण ब्रह्म के सम्बन्ध मे सूर, परमानन्द, मीरा और नन्ददास के मत, ईश्वर के गुण, नरोत्तमदास, कुचन नप्यार, पून्तानम। भक्ति के नौ साधन, श्रवणभक्ति की महिमा का गान, सूर, परमानन्द, नन्ददास और मलयालम के कवि एजुत्तच्छन चेरुश्शेरी, पून्तानम और कुचन नप्यार के मत। कीर्तन की महिमा का गान, सूर, मीरा, परमानन्द, नन्ददास, एजुत्तच्छन, पून्तानम, नप्यार। स्मरणभक्ति की महिमा के गान, सूर, परमानन्द। अर्चन, कीर्तन स्मरण आदि की महिमा, एजुत्तच्छन, अज्ञात कवि। नाम-महिमा का वर्णन, सूर, परमानन्द, नन्ददास, मीरा, एजुत्तच्छन, पून्तानम। पाद-सेवन, लक्षण, भागवतकार का मत, सूर, परमानन्द, नन्ददास, मीरा, चेरुश्शेरी एजुत्तच्छन। अर्चन, लक्षण, महिमा, सूर, परमानन्द, नन्ददास, एजुत्तच्छन, पून्तानम। वन्दन की महिमा, सूर, परमानन्द, नन्ददास, मीरा, मलयालम के अज्ञात कवि, चेरुश्शेरी, पून्तानम, नप्यार। भक्ति के विविध अग। दास्य भक्ति, वल्लभ का मत, सूर, परमानन्द, नन्ददास, मीरा, मलयालम के अज्ञात कवि चेरुश्शेरी, एजुत्तच्छन, पून्तानम नप्यार, तुलना। सख्य भक्ति, सूर, वारियर, परमानन्द, नन्ददास, चेरुश्शेरी एजुत्तच्छन, नप्यार। वात्सल्य भक्ति, सामान्य तत्त्व, सूर, परमानन्द, नन्ददास, चेरुश्शेरी, अज्ञात कवि, वियोगावस्था का वर्णन, चेरुश्शेरी, एजुत्तच्छन का बाललीला-वर्णन, पून्तानम, नप्यार।

मधुर भक्ति, मधुर रस के विभिन्न भाव, गोपियो की मधुर भक्ति, स्वकीया और परकीया, नन्ददास का चित्रण, सूर, परमानन्द, मलयालम के अज्ञात कवि चेरुश्शेरी, एजुत्तच्छन। शान्ता भक्ति, सूरदास, परमानन्ददास, नन्ददास, निरणम कवि, चेरुश्शेरी, एजुत्तच्छन, पून्तानम, नप्यार, निष्कर्ष।

पाचवा परिच्छेद १६१–२४०

काव्य-कला—तुलनात्मक अध्ययन, सामान्य तत्त्व, तुलना, अवतार के सम्बन्ध मे, कृष्ण का जन्म, कारण, चेरुश्शेरी, सूर, कृष्णजन्म, पूतना का वध। विशेषता, शकटासुर की मृत्यु, बालक्रीडाए, कृष्ण की विनोदप्रियता, चचलता, पून्तानम की कृतिया, नटखटिया, शरारते, चोरी-प्रसग, उत्पात, गो-दोहन, परमानन्द, चेरुश्शेरी, उलूखलबन्धन, वत्सहरणलीला, चेरुश्शेरी की मौलिकता, राधा-कृष्ण का मिलन, सूर की मौलिकता, कालिय-दमन, मुरली का भाव, पनघट-प्रस्ताव, यज्ञपत्नीलीला, गोवर्धनलीला, नन्द का समुद्रगमन रासलीला, सूर और चेरुश्शेरी की तुलना, गोपियो की विरहव्यथा, प्रार्थना, कृष्ण का प्रत्यक्ष होना, रासक्रीडा देखने के लिए देवस्त्रियो का गमन, दान-

लीला, कृष्ण और गोपियो की बातचीत, दधिदान, झूला झूलने का प्रसग, अक्रूरगमन, कृष्ण का सन्देश, मथुरागमन, भ्रमरगीत, नन्ददास का भ्रमर-गीत, रुक्मिणी की कथा पर दोनो भाषाओ की कविताए, रुक्मिणी-स्वयवर पर चपू ग्रथ, शबरवध, स्यमन्तक की कथा, चपू ग्रथ और कथकलि के रूप मे भौमासुरवध, वाणयुद्ध, कथकलि के रूप मे युद्धवर्णन, नृग का उद्धार, नप्यार की कविता, बलराम का आगमन, पौड्रकवध, काव्य और कथकलि के रूप मे नारद का सशय, सुदामाचरित पर सूर, चेरुश्शेरी, सुदामा का भ्रम, वारियर कविता, तुलना, द्वारिकागमन, सुदामा का सत्कार, [illegible], सुदामाचरित पर नप्यार और अज्ञात कवि की कविताए, कथकलि के रूप मे सुभद्रा की कथा पर चेरुश्शेरी, नप्यार की कविताए, वृकासुर की कथा, चेरुश्शेरी, व्रजवासियो मे कृष्ण की बातचीत, [illegible]नगोपालम् की कथा, कृष्णार्जुन-युद्ध पर नप्यार की कविताए, कथकलि के रूप मे कृष्ण से यशोदा की भेट, कृष्ण का वश-नाश, कृष्ण की समाधि, देवकी का दु ख, धर्मराज की स्वर्गयात्रा।

छठा परिच्छेद २४१–२८७

रस—सामान्य तत्त्व, वात्सल्य रस, सयोग, सूर। शृगार रस, सामान्य तत्त्व, सभोग शृगार, सूर परमानन्द, मीरा, नन्ददास, चेरुश्शेरी, कार्तिक नक्षत्रज राजा, विप्रलभ शृगार, उदाहरण चेरुश्शेरी, नप्यार, सूर, परमानन्द, नन्ददास, मीरा। हास्य रस सामान्य तत्त्व, उदा० सूर, चेरुश्शेरी। करुण रस, सामान्य तत्त्व, उदा० सूर, एजुत्तच्छन। रौद्र रस सामान्य तत्त्व, उदा० सूर, अज्ञात कवि। वीररस सामान्य तत्त्व, उदा०सूर, नप्यार। भयानक रस सामान्य तत्त्व, उदा० सूर, चेरुश्शेरी, एजुत्तच्छन नप्यार। अद्भुत रस सामान्य तत्त्व, उदा० सूर, एजुत्तच्छन। शान्त रस सामान्य तत्त्व, उदा० सूर, अज्ञात कवि।

अलकार विधान—हिन्दी के कवि, सामान्य अध्ययन, अनुप्रास के उदाहरण, यमकालकार, छेकानुप्रास, वृत्यनुप्रास, श्रुत्यनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, रूपकातिशयोक्ति, व्यतिरेक, प्रतीप, स्मरण, स्वभावोक्ति, विभावना, अर्थान्तरन्यास, उन्मीलित, दृष्टान्त, अप्रस्तुतप्रशसा। मलयालम के कवि, कुचन नप्यार की कविताओ का द्वितीयाक्षर-प्रास, अनुप्रास, स्वभावोक्ति, अप्रस्तुतप्रशसा, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति।

सातवा परिच्छेद २८८–२९

सामाजिक प्रभाव—हिन्दी, मलयालम की कविताओ मे प्रकाशित।

आठवा परिच्छेद २९७–३०

नप्यार की हास्य-प्रधान कविता, उनका प्रभाव, सामाजिक अवस्था।

परिशिष्ट ३०८–३·

मलयालम के कृष्ण-कवियो के चुने हुए छन्द, सहायकग्रन्थो की सूची।

मलयालम भाषा के पद्य-साहित्य की रूपरेखा

(प्राचीन काल से लेकर श्री कुञ्चन नंप्यार तक)

१७२८ ई० तक

दक्षिण भारत के सुदूरवर्ती दक्षिण-पश्चिमी प्रदेश मे स्थित केरल प्रान्त प्रकृति देवी का क्रीडा-स्थल है। उसका पूर्व भाग मे सह्य पर्वत एक प्रहरी के समान खडा है। पश्चिम मे अरब सागर है और उसका दक्षिण भाग सुप्रसिद्ध 'कन्याकुमारी'-अरबसागर, हिन्द महासागर, बगाल की खाडी—इन तीनो का सगम-स्थल है। हजारो-लाखो यात्री यहा आकर सागर-स्नान करते हैं और स्थानीय मन्दिर की मनोमोहिनी तथा उज्ज्वल मूर्ति को देख चकित रह जाते हैं। केरल प्रदेश दर्शको के लिए एक वाटिका के समान प्रतीत होता है। यहा का नारियल कल्पवृक्ष ही है। कालीमिर्च, रबड, चाय और कहवा आदि केरल प्रान्त मे बहुत अधिक पैदा होते हैं। यहा की नदियो, सरोवरो और झीलो को देखकर प्रकृति-प्रेमी लोग आनन्द-सागर मे डूब जाते हैं। केरल दक्षिण का कश्मीर है।

इस प्रदेश के लोग सुशिक्षित तथा सभ्य होते हैं। इस देश की मातृभाषा मलयालम है, जो द्राविड भाषाओ मे प्रमुख है। करीब सवा करोड लोग यह भाषा बोलते हैं। इसका साहित्य सम्पन्न है। पडितो के मत के अनुसार मलयालम भाषा-साहित्य दो कालो मे बाटा जा सकता है।[1]

१ *प्राचीन काल* (एजुतच्छन से पूर्व)
२ *आधुनिक काल* (एजुतच्छन से लेकर अब तक)

प्राचीन काल

प्राचीन काल मे बहुत से धार्मिक तथा ग्रामीण गीत द्राविड वृत्त मे लिखे गए हैं। वे गीत बहुत ही लोकप्रिय हैं और प्रायः साधारण जनता उन्हे कठस्थ कर लेती है। जब नपूतिरि[2] लोग यहा आकर रहने लगे तो धीरे-धीरे उनका प्रभुत्व स्थानीय आदिवासियो ने स्वीकार कर लिया। उन्होने सस्कृत भाषा को अपनाकर गरीब झोपडी से राजमहल तक उसका प्रचार किया। फलस्वरूप उसका बडा प्रभाव मलयालम पर पडा। मलयालम

---

१ केरल-भाषा-साहित्य-चरितम्, भाग १—ले० श्री उत्तूर एस० परमेश्वर अय्यर, पृष्ठ ७६।

२ मलयालम प्रान्त के ब्राह्मण-जाति-विशेष को 'नपूतिरि' कहकर पुकारते है। ये बडे भावुक, सज्जन, उदार तथा कलाप्रिय होते है। समाज मे उनका ऊचा स्थान है। भाषा की उन्नति मे उनका प्रयत्न प्रशसनीय है।

मे सस्कृत की कई पुस्तको के अनुवाद निकले। मलयालम-प्रदेश के कई प्रतिभासपन्न लोगो ने सस्कृत मे भी कई ग्रथ रचे। अनूदित ग्रथो मे निरणम् कवियो की 'रामचरितम्', 'भगवद्-गीता' 'कृष्णगाथा', 'अध्यात्मरामायणम्' आदि प्रधान माने जाते हैं। सस्कृत-ग्रथो के आधार पर द्राविड वृत्तो मे भी ये पुस्तके लिखी गई हैं।

समय के साथ-साथ भाषा के स्वरूप मे अनेक परिवर्तन हो गए। मलयालम भाषा की विभक्तिया लगाकर सस्कृत के बहुत से शब्दो का प्रयोग होने लगा। मलयालम तथा सस्कृत की इस मिश्र शैली को 'मणिप्रवालम्' कहते है। इस शैली को अपनाने वाले कवियो ने आर्या, वसन्ततिलका, मदाक्राता जैसे सस्कृत वृत्तो मे कविताए रचना आरभ कर दिया।

'कण्ण-रामायणम्' आदि ग्रथ मलयालम भाषा की प्राचीन कृतियो मे उत्तम हैं। यद्यपि वाल्मीकि-रामायण का यथेष्ट प्रभाव 'रामचरित' मे परिलक्षित होता है तो भी कवि ने कई स्थलो पर अपनी मौलिक कल्पना-शक्ति का परिचय दिया है, यथा 'राम-चरित' का रावण पचवटी मे भिक्षु के वेष मे सीताजी के सामने आता है और सीताजी को श्री रामचद्रजी के पास पहुचाने का वचन देता है। उसी समय शूर्पणखा एक भयकर रूप धारण करके वहा आती है और सीताजी को धमकी देती है। भय के मारे सीताजी थर-थर कापने लगती हैं। तब रावण कहता है—हे देवी! डरिए मत, मेरे रथ मे बैठ जाइए। असमजस मे पडकर सीताजी बैठ जाती हैं। उपयुक्त अवसर पाकर रावण सीताजी को लका ले भागता है। इस प्रकार की घटना मूल ग्रथ मे नही है। स्पष्ट है कि कथा मे यह परिवर्तन कवि ने अपनी ओर से किया है। इसकी भाषा सुदर और सुबोध है। इसके लेखक का पता अभी तक नही लग पाया है। इस पुस्तक की आकर्षक शैली देखकर विद्वानो ने इसके कवि को 'मलयालम भाषा का चौसर' (Chaucer अग्रेजी के आदिकवि) कहा है।

निरणम कवियो मे सबसे बडे कवि माधव पणिक्कर हैं। उन्होने सबसे पहले गीता का अनुवाद प्रातीय भाषा मे सुदर शैली मे किया है। उनके भाई शकर पणिक्कर ने 'श्रीकृष्णविजयम्' और 'भारतमाला' नामक दो पुस्तके लिखी। तीसरे कवि राम पणिक्कर उन दोनो कवियो के भानजे माने जाते हैं। 'रामायणम्', 'भागवतम्', 'शिवरात्रि-माहात्म्य' 'भारतम्', 'ब्रह्माडपुराणम्' आदि सुदर काव्य उन्होने रचे हे।

इन पुस्तको के अलावा गीत-काव्य के रूप मे कई पुस्तके मलयालम मे लिखी ग हैं। उनके लेखको के बारे मे लोग अब भी अनभिज्ञ हैं।

मणिप्रवाल शैली मे लिखी पुस्तको मे 'उण्णीनीलि-सदेशम्' एक उत्तम कृति है सदेश-काव्यो मे प्रथम तथा प्रधान काव्य भी यह है। इस काव्य का विषय इस प्रकार है — 'कटुत्तुरुत्ति' नामक एक गाव मे एक रात को नायिका अपने पतिदेव के साथ सोर्त है। आधी रात के समय एक यक्षिणी आकर नायक को लेकर दक्षिण की तरफ चल देती है। 'तिरुवनतपुरम्' पहुचने पर नायक जाग पडता है और नरसिह मत्र जपने लगता है।

उसी समय यक्षिणी उसको वही छोडकर अप्रत्यक्ष हो जाती है। उस समय सवेरा होने वाला होता है। भाटो के स्तुति-गीत से वह समझ जाता है कि पास ही श्री पद्मनाथ का मदिर है। मन्दिर मे जाकर देखता है कि उसका मित्र कोल्लम देश का राजा वहा खडा है। वह मित्र को सारी कहानी सुना देता है और उससे प्रार्थना करता है कि आप मेरा सन्देश मेरी स्त्री के पास जाकर सना दे। मैं तो रोग-पीडित हू इसलिए स्वय जा नही सकता। इतना कहकर वह अपनी प्रिया के घर जाने का रास्ता नायक को बता देता है। राजकुमार सन्देशवाहक बनकर जाता है। यही सक्षेप मे कथा है। प्रकृति का वर्णन करने मे कवि ने अनुपम शक्ति का परिचय दिया है। शृगार के साथ भक्ति का समन्वय करके कवि ने एक नई परिपाटी ही चला दी है। नायिका के विरह का मार्मिक वर्णन हुआ है। विरह-व्यथा का चित्रण तथा सन्देश की युक्तिया अत्यत प्रभावोत्पादक हैं। सक्षेप मे कहा जाए तो यह कृति आदि से अन्त तक मधुरिमामय है।

'उण्णिनीलि-सन्देश' के समान 'कोक-सन्देश' नामक एक सुन्दर कृति भी किसी अज्ञातनामा कवि ने लिखी है। 'अनन्तपुरम्' का सरस वर्णन हम और एक काव्य मे पढ सकते हैं। इसके कवि भी अज्ञात हैं। 'चेरियच्ची-वर्णनम्' मे नायिका चेरियच्ची की विरह-दशा का हृदयहारी वर्णन है।

चपू-ग्रन्थो का प्रणयन—

केरल का सबसे पहला चपू-ग्रथ 'अमोघराघव' है। तेरहवी शताब्दी से ही चपू का आविर्भाव होने लगा था। कुछ मुख्य ग्रथो का सक्षिप्त परिचय हम नीचे दे रहे हैं

उण्णियच्चि-चरितम्—इस चपू-ग्रथ की नायिका उण्णियच्ची नामक एक युवती बालिका है जिसपर एक गन्धर्व अनुरक्त हो जाता है। यही इसकी कथावस्तु है। भाषा सुन्दर है। वर्णन करने मे कवि ने अपनी विशिष्ट योग्यता का परिचय दिया है। कवि का नाम अज्ञात है।

उण्णियाटि-चरितम्—इसके रचयिता कवि 'दामोदर' चाक्यार-वशज हैं। काय-कुलम् नामक एक छोटी रियासत के राजा की पुत्री है जो इस काव्य की नायिका है। नायिका का गान सुनकर इन्द्र और उसके साथी प्रभावित होते हैं और उसकी खोज मे निकल पडते हैं। मार्ग मे वे मनोहर दृश्य देखते हैं। काव्य मे इन सबका हृदयग्राही वर्णन किया गया है।

इसी काल मे 'श्रीकृष्ण-स्तव' नामक एक स्तोत्र-ग्रथ भी लिखा गया है। भगवान् श्री कृष्ण की स्तुति के रूप मे अठानवे सुन्दर पद्य इस पुस्तक मे लिखे गए हैं। हाल ही मे त्रावनकोर विश्वविद्यालय ने इसे प्रकाशित किया है।

दूसरे कई फुटकर कविता-सग्रहो के अलावा '[illegible]' नामक एक काव्यकशास्त्र-विषयक ग्रन्थ मणिप्रवाल शैली मे लिखा गया है। इसके कवि आलत्तूर नामक स्थान के रहने वाले थे। उन्हे 'नपि' कहकर पुकारते हैं। कवित्व की दृष्टि से यह उच्च

कीर्ति को कौन्य नहीं कहा जा सकता। किन्तु अन्य दृष्टियों से यह महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। कहा जाता है कि इसका निर्माण चौदहवीं शताब्दी में हुआ है।

अब तक रीति-ग्रंथों की उत्पत्ति नहीं हुई थी। उस अभाव को किसी महान् कवि ने 'लीलातिलकम्' नामक रीति-ग्रंथ लिखकर पूरा किया। उसके लेखक के बारे में लोग अब भी अनभिज्ञ हैं। 'लीलातिलकम्' संस्कृत में लिखा गया है, किन्तु उदाहरण मणि-प्रवाल शैली में व्याख्या के साथ कवि ने दिए हैं। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि इस पुस्तक के लेखक प्रतिभावान् अवश्य हैं। साथ ही वे कई भाषाओं के ज्ञाता मालूम होते हैं।

इसके अलावा 'अलंकार-संक्षेपम्' नामक एक मणिप्रवाल शास्त्र-ग्रंथ भी पाया जाता है। 'लीलातिलकम्' की शैली के आधार पर ही यह ग्रंथ लिखा गया है। इसके कवि का पता अब तक किसीको नहीं लग पाया है।

कोलत्तुनाट राजा—

उत्तर केरल में 'कोलत्तुनाट' नामक एक छोटा देशी राज्य था। सन् १८०० ई० से उस राज्य के राजाओं ने भाषा की उन्नति के लिए महत्त्वपूर्ण काम किए थे। संस्कृत भाषा को उन्होंने बड़ा प्रोत्साहन दिया था। पन्द्रहवीं शताब्दी में वहाँ केरल वर्मा नामक राजा राज्य करते थे। राम वर्मा उनका भानजा था। ये दोनों भाषाप्रेमी तथा कवि थे। राम वर्मा ने 'भारतसंग्रहम्' नामक एक महाकाव्य लिखा है। उनके दरबारी कवियों में राघव वार्यर और शंकर वार्यर का स्थान प्रमुख था। राघव वार्यर ने 'युधिष्ठिर-विजय' पर 'पदार्थ-चिन्तनम्' नामक एक भाष्य-ग्रंथ लिखा। 'श्रीकृष्णविजयम्' काव्य के रचियता हैं शंकर वार्यर।

शंकर वार्यर के गुरुदेव श्रीकंठ वार्यर ने संस्कृत भाषा में 'रघुदय' नामक एक यमक काव्य लिखा। उसके अतिरिक्त भागवत के दशम स्कंध के आधार पर प्राकृत में 'शौरी-चरितम्' पुस्तक लिखी गई है।

शंकर कवि का काव्य 'श्रीकृष्णविजयम्' संस्कृत भाषा की अमूल्य रचना है। इसकी कोमल-कांत पदावली का श्रवण करके ही श्रोता लोग आनंद से उन्मत्त हो जाते हैं। यह कृति अलंकार, रस आदि की खान है। कवि के शिष्यों में एक ने 'कृष्णाभ्युदयम्' लिखकर अमर कीर्ति पाई है। कवि के नाम-धाम आदि के बारे में लोग अनभिज्ञ हैं।

'काट्टुमाटुस्स्' नामक एक विख्यात कुटुम्ब कोलत्तुनाट राज्य में था। कहा जाता है कि उस परिवार के लोगों पर भगवान् परशुराम जी की निरंतर कृपा बनी रहती थी। उसी परिवार में 'पूर्ण सरस्वती' नाम से प्रसिद्ध एक महान् कवि का आविर्भाव हुआ। उनका असली नाम आज तक कोई जान नहीं सका है। उनका जीवनकाल चौदहवीं शताब्दी के मध्य में माना जाता है। वे महान् कवि, प्रकाण्ड पण्डित, सहृदय समालोचक और भाष्यकार थे। उन्होंने विविध विषयों पर लगभग बारह ग्रंथ रचे हैं। उनमें 'विद्युल्लता' एक काव्य, 'कमलिनीराजहंसम्' एक नाटक और 'हंस-संदेशम्' प्रसिद्ध हैं। 'हंस-

सदेशम्' में १०२ पद्य हैं। काचीपुरम् की एक सुन्दरी युवती श्री कृष्ण से अत्यधिक प्रेम करती है। उनसे मिलने के लिए उसका मन तरस रहा है। अपना दुःख श्री कृष्ण तक पहुचाने मे वह असमर्थ होती है। एक हस के द्वारा वह अपना सदेश वृन्दावन-निवासी श्री कृष्ण के पास पहुचाना चाहती है और सदेशवाहक बनकर जाने के लिए वह उससे प्रार्थना करती है। यही काव्य का विषय है।

कोलत्तुनाट राज्य के राजा की तरह कोज्जिकोट (Calicut) के राजा सामूतिरी भी बडे साहित्य-प्रेमी थे। कोज्जिकोट के राजाओ को सामूतिरी कहकर पुकारा करते हैं। वर्तमान कोज्जिकोट नगरी तथा आसपास के प्रदेश उस राज्य के अतर्गत माने जाते थे। सन् १२०० ई० के लगभग उस राज्य की कीर्ति चारो तरफ फैलने लगी थी।

मानविक्रम नामक एक राजा कोज्जिकोट में सन् १४६७ में राज्य करते थे। वे बडे प्रतिभासपन्न, रसिक तथा सहृदय थे। 'अनर्घराघव' नाटक पर एक भाष्य-ग्रथ उन्होने लिखा, जिसका नाम 'विक्रमीय' है। उनके दरबार में 'साढे अठारह' कवि विराजमान थे। उनमें 'पुनम् नपूतिरि' भाषा के कवि थे। इसलिए सस्कृत-कवियो के सामने वे अर्धकवि माने जाते थे। कवि लोग सख्या में उन्नीस थे। भाषा का स्थान हीन होने से 'साढे अठारह' कवि कहकर लोग उन्हे पुकारते थे। इन महान् कवियों ने सस्कृत में कई ग्रथ रचे हैं। उन्होने काव्य-ग्रथो के अतिरिक्त ज्योतिष-शास्त्र पर भी अनेक पुस्तकें लिखी हैं।

पन्द्रहवी शताब्दी मे 'चेरुशेरी नपूतिरि' ने 'कृष्णगाथा' रचकर मलयालम को समृद्ध बनाया। कहा जाता है कि सन् १४४६ और १४७८ ई० के बीच मे यह ग्रथ रचा गया है। इसके रचयिता के सबध में विद्वानो के मत भिन्न-भिन्न हैं। अधिकाश विद्वानो की राय है कि कवि के वश का नाम है 'चेरुशेरी' और कवि का नाम शकर। वश का नाम जोडकर पुकारने की रीति उस समय प्रचलित थी। अत कृष्ण-गाथाकार को 'चेरुशेरी नपूतिरि' कहकर लोग पुकारते हैं।

'कृष्णगाथा' का कोई भी भाग आप पढिए। समझ में आएगा कि कवि असाधारणप्रतिभासपन्न व्यक्ति था। सरस्वती देवी उनपर सर्वदा प्रसन्न रहती थीं। अलकार, रस आदि काव्यागो के प्रयोग मे उनकी सामर्थ्य गजब की है। शृगार तथा हास्य उनके प्रधान रस हैं। उस पुस्तक के पूर्वभाग में श्री कृष्ण की बाललीलाओ का वर्णन है। कृष्ण के स्वर्गारोहण तक की कथा का वर्णन इस पुस्तक में किया गया है।

'कृष्णगाथा' एक ऐसी उत्कृष्ट कृति है, केवल जिसके कारण ही केरल की भाषा दूसरी भाषाओ के समक्ष आने की क्षमता पा सकी है। कालिदास जैसे महान् कवियों की श्रेणी में कृष्ण-गाथाकार का नाम लिया जाता है।

'कृष्णगाथा' के समान 'भारतगाथा' नामक एक काव्य भी प्राप्त हुआ है। 'कृष्णगाथा' की शैली में यह काव्य भी लिखा गया है। कवि अज्ञातनामा है। यह कहा जा सकता है कि इन दोनों पुस्तकों के रचयिता समकालिक हैं। कवित्व की दृष्टि से

भारतगाथा' 'कृष्णगाथा' से घटकर है। फिर भी इसमे अनेक सुदर स्थल हैं। यद्यपि महाभारत के आधार पर 'भारतगाथा' लिखी गई है तो भी बहुत सी ऐसी कथाए उसमे हैं जो मूल में नही हैं।

भागवतम् पाट्टु (गीत)—यह कृति भागवत के आधार पर लिखे गए प्राचीन गीतो से पूर्ण है। इसके कवि का पता नही चल सका है।

'दारुकवधम् पाट्टु' (गीत)—यह भी इसी तरह का एक गीत-ग्रथ है। इसके कवि भी अज्ञात हैं।

गुरुदक्षिण पाट्टु—श्री कृष्ण की गुरुदक्षिणा का प्रसग इस ग्रथ का विषय है।

सेतुबन्धनम् पाट्टु—

इन कृतियो के कवियो के सबध मे लोग कुछ नही जानते।

उपर्युक्त पुस्तको के अतिरिक्त भाषा मे कई फुटकर गीत भी पाए जाते हैं। वे सभी काव्य की दृष्टि से चमत्कारपूर्ण हैं।

चम्पू-ग्रंथ—

लिखा जा चुका है कि कोजिकोट सामूतिरि के यहा एक कविमडली थी, जिसमे साढे अठारह कविश्रेष्ठ वर्तमान थे। भाषाकवि पुनम् उनमे एक थे। (फिर भी वे अर्धकवि माने गए थे।) उन्होने सस्कृत के चम्पू ग्रथो के समान मलयालम मे 'रामायण-चम्पू' लिखा। मलयालम तथा सस्कृत के सुदर शब्दो का समन्वय इसमे पाया जाता है। सब प्रकार के लोग इसे पढकर आनद उठा सकते हैं। 'रामायण-चम्पू' के समान 'भारत-चम्पू' भी लिखा गया है। लेकिन उसके कवि अज्ञात हैं। और भी कई चम्पू-ग्रथो की रचना पन्द्रहवी शताब्दी मे हुई है जिनमें 'रावणविजयम् चम्पू', 'रुक्मिणीस्वयवरम् चम्पू', 'कामदहनम् चम्पू', 'उमातपस्स-पार्वतीस्वयवरम् चम्पू', 'पारिजातहरणम् चम्पू' आदि मुख्य हैं।

मणिप्रवाल साहित्य—

पन्द्रहवी सदी मे मणिप्रवाल शैली मे कई सुन्दर कृतिया रची गई हैं। 'चन्द्रोत्सवम्' उनमे एक मुख्य कृति है।

चन्द्रोत्सवम्—प्रस्तुत ग्रथ मणिप्रवाल साहित्य की उत्तम रचना है। इसे 'चन्द्रिकामहोत्सवम्' और 'मेदिनीचन्द्रिकोत्सवम्' भी कहते हैं। इसकी भाषा सुन्दर तथा मजी हुई है। यह शृगाररस-प्रधान काव्य उत्कृष्ट भावो से परिपूर्ण है। इसकी प्रसादगुणमयी शैली पाठक को हठात् आकर्षित कर लेती है।

मरतक पर्वत की तराई मे एक गन्धर्व-सुन्दरी अपने प्रियतम के साथ टहल रही थी। मलय पर्वत की शीतल सुगन्धित वायु बहने लगी। उस सुन्दरी को ऐसा मालूम हुआ कि उस वायु में एक अपूर्व सुगन्धि भरी हुई है। जिस पुष्प के कारण वह हवा सौरभयुक्त हो गई थी उसे ला देने की प्रार्थना उसने अपने पति से की। गन्धर्व पुष्प की खोज

करते-करते केरल प्रदेश के मध्य स्थित 'त्रिशिवपेरूर' नामक स्थान मे पहुचा। वहा उसने देखा कि एक मन्दिर मे एक वेश्या चन्द्रोत्सव मनाने जा रही है। उसके हाथ मे सुन्दर कुसुमो का गुच्छा भी था। उसे देखकर गन्धर्व ने समझ लिया कि जिस सुगन्धि का अनुभव उसे तथा उसकी प्रियतमा को हुआ था, उसका उद्गमस्थान यही कुसुमगुच्छ है। गन्धर्व वहा करीब छह दिन रहा और वापस चला गया। उसने सब समाचार अपनी प्रियतमा को कह सुनाया। यही सक्षेप मे चन्द्रोत्सव की कथा है। केरल के प्रताप, वैभव आदि का सुन्दर वर्णन कवि ने इसमे किया है।

कवि की कवन-कला-चातुरी के कई उदाहरण इसमे पाए जाते हैं। स्वभावोक्ति, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलकारो का उत्तम प्रयोग इसमे हुआ है। इस उत्तम कृति के सार्वभौम कवि का नाम अब तक जाना नही जा सका है। वे जाति के नपूतिरि ब्राह्मण थे।

'कामाक्षी-स्तुति', 'लक्ष्मी-स्तुति' जैसे बहुत से स्तोत्र-ग्रथ भी इस काल मे लिखे गए हैं। महाकाव्यो के अतिरिक्त मलयालम मे मणिप्रवाल शैली मे कई मुक्तक काव्य भी रचे गए हैं। अधिकाश कृतिया शृगाररस-प्रधान हैं। कन्याकुमारी से लेकर गोकर्ण तक रहने वाले राजाओ, मन्दिरो के देवो और सुन्दरियो के आधार पर मुक्तक काव्य रचे गए हैं। पन्द्रहवी सदी मे पद्य के साथ-साथ गद्य-ग्रन्थो का भी अच्छी सख्या मे निर्माण हुआ है परन्तु अप्रासगिक होने के कारण गद्य-ग्रथो की चर्चा यहा करना अनुचित होगा।

सन् १६०० ई० मे केरल के कई महान् लेखको ने सस्कृत मे कई पुस्तके लिखी हैं। उसी समय मणिप्रवाल शैली मे कई रचनाए रची गई हैं। मजमगलम् नारायण नपूतिरी ने सस्कृत तथा मलयालम के पदो को मिलाकर मिश्रित शैली मे करीब बारह पुस्तके लिखी हैं। उनमे 'नैषध चम्पू', 'राजरत्नावलीयम्', 'बाणयुद्धम्' आदि ग्रन्थ उत्कृष्ट माने जाते हैं। 'कोटियविरहम्' शृगारप्रधान काव्य है। उसे सर्वोत्कृष्ट काव्य कहे तो तनिक भी अत्युक्ति न होगी। पडितो का मत है कि इस प्रकार का एक भी शृगार-काव्य अन्य भाषाओ मे नही मिलता। इस समय तक पौराणिक कथाओ के आधार पर ही चम्पू ग्रथ लिखे गए थे परन्तु 'कोटियविरहम्' और 'राजरत्नावलीयम्' दोनो अपवाद हैं। अत इनके रचयिता विशेष रूप से आदर के पात्र हैं।

ब्राह्मणि पाट्ट (ब्राह्मणियों का गीत)—

ब्राह्मणिया मन्दिरो मे काम करने वाली एक जाति-विशेष की स्त्रिया हैं। देवी की पूजा के अवसर पर और 'नायर' जाति के लोगो के विवाह के समय एक प्रकार का गीत ये स्त्रिया गाया करती हैं। इन्ही गीतो को ब्राह्मणि पाट्ट (गीत) कहते हैं। वेदोच्चारण के समान ही इस गीत को गाया जाता है। सोलहवी सदी मे इसका बडा प्रचार था। 'विष्णुमायाचरितम्', 'सती-परिणयम्', 'नृगमोक्षम्' आदि प्रस्तुत गीतो के सुन्दर समाहार हैं। रासक्रीडा पर ब्राह्मणि-गीत लिखे गए हैं, जो अत्यन्त सुन्दर माने जाते हैं। कोच्चिन

राज्य के राजा राम वर्मा जी ने एक पुस्तक लिखी है जिसमें ऐसे उत्कृष्ट गीत सगृहीत हैं। यह रचना आद्यन्त सुन्दर है।

कोच्चिन राज्य के दरबारी कवियो मे प्रमुख नीलकठ नपूतिरी ने 'नेल्लरनाथोदयम्', 'नारायणीयम्' और 'तैन्मलनाथोदयम्' लिखकर मलयालम भाषा की बडी सेवा की है। उनकी कविताए ओजगुण-प्रधान हैं। चम्पू-ग्रन्थो मे प्रस्तुत 'नारायणीयम्' सबसे सुन्दर है।

इसी काल मे गजेन्द्रमोक्षम्, प्रह्लादचरितम्, कृष्णावतारम्, पूतनामोक्षम्, कुचेलवृत्तम् आदि अठारह चम्पू-ग्रन्थ और भी लिखे गए हैं। इनमे कसवधम्, रामार्जुनीयम्, दक्षयागम्, त्रिपुरदहनम्, गौरीचरितम्, स्यमन्तकम् और श्रीमती-स्वयवरम् चम्पू उत्तम हैं।

पून्तानम् नंपूतिरी—भाषा-कवियो मे इनका प्रमुख स्थान माना जाता है। ये कृष्ण के अनन्य भक्त थे। भक्ति-सम्बन्धी रचनाए इन्होने की हैं। इनके विषय मे विशद विवरण आगे दिया गया है। इनके समय में ज्योतिष-शास्त्र-सम्बन्धी कई ग्रन्थ लिखे गए हैं।

आधुनिक काल

तुंचत्तु एजुतच्छन—आधुनिक मलयालम के जनक तुचत्तु एजुतच्छन का नाम केरल के सभी लोग जानते हैं। उन्होने सतत प्रयत्न करके अपनी मातृभाषा की श्रीवृद्धि की और उसे सब प्रकार से समृद्ध बनाया। उनके सम्बन्ध मे विशद विवरण आगे दिया गया है।

एजुतच्छन पक्के ज्ञानी तथा परम भक्त थे। अपने शिष्ट व्यवहार के कारण वे पूज्य माने गए। उनकी कविता की भाषा शुद्ध तथा परिमार्जित है। अपनी कविताओ द्वारा उन्होने लोगो की भौतिक तथा आध्यात्मिक उन्नति की है। सभी दृष्टियो से उनकी रचनाए सर्वोत्तम हैं। अपने शान्त तथा हृदयहारी विचारो के द्वारा उन्होने लोगो के जीवन मे बडा परिवर्तन कर डाला। मलयालम भाषा-योषा के सुपुत्रो मे प्रथम स्थान अलकृत करने वाले महाकवि तुचत्तु एजुतच्छन ही हैं।

एजुतच्छन के शिष्यो ने भी भाषा की महत्त्वपूर्ण सेवा की है। 'शिवरात्रि माहात्म्यम्' नामक काव्य उनके किसी एक शिष्य ने लिखा है। एजुतच्छन के वशज 'देवगुरु' ने 'वेदान्तसारम्' और 'विज्ञानरत्नम्' लिखकर अमर कीर्ति पाई। 'वेदान्तसारम् किलिप्पाट्टु' नामक एक और काव्य देवगुरु का लिखा हुआ माना जाता है।

परापर गुरु—कहा जाता है कि इनके नाम पर 'आत्मबोध' काव्य लिखा गया है जो शंकराचार्य के 'वेदान्तसार' का अनुवाद है। 'किलिप्पाट्टु' शैली पर यह काव्य लिखा गया है।

स्कन्दपुराणम् किलिप्पाट्टु—यह स्कन्दपुराण का अनुवाद कहा जाता है। इसकी कविता सुन्दर नही मानी जाती।

नागानन्दम् किलिप्पाट्टु—इसका कवि अज्ञात है। कविता के क्षेत्र मे इसका कोई महत्त्वपूर्ण स्थान नही है।

कृष्णलीला पाट्टु—रासक्रीडा पर यह कृति रची गई है। इसकी कविता मे स्वाभाविकता और कोमलता सर्वत्र दृष्टिगत होती है।

रामाश्वमेधम्—यह एक सुन्दर काव्य है। इसका कवि कौन है, इसके बारे मे पता नही चल सका है।

भारत-सक्षेप—इसके कवि एक भक्त हैं। इसका रचनाकाल सन् १६१७ ई० माना जाता है। भारत के पौलोमम् सर्ग से भीष्म के राजधर्म पर उपदेश तक की कथा इसमे वर्णित है। पूरा ग्रन्थ पढने पर मालूम होगा कि कवि वेदान्ती है।

श्रीरामस्वर्गारोहणम् किलिप्पाट्टु और **भारतम् किलिप्पाट्टु** दोनो एक ही शैली पर लिखे गए हैं। अत अनुमान किया जा सकता है कि दोनो का रचयिता एक ही व्यक्ति है।

एकादशी-माहात्म्यम्, नासाच्छेदम्, पुत्रकामेष्टि, रामायणम्, नासिकेषु पुराणम्, मार्कण्ड पुराणम्, चित्रगुप्तचरितम् आदि सुन्दर रचनाए किलिप्पाट्टु शैली पर लिखी गई है।

पाडवशंकरम्—यह प्राचीन कीर्तनग्रथो मे उत्तम माना जाता है। यह शिव को प्रसन्न करने के लिए रचे गीतो का सग्रह है।

'पार्वतीपाणिग्रहण आरु वृत्तम्' नामक कीर्तन-ग्रथ मे सस्कृत विभक्तियो का प्रयोग बहुत अधिक किया गया है। पार्वती की कथा ही इसमे वर्णित है। कई स्थलो पर कवि की मार्मिकता और भावुकता का परिचय मिलता है।

'कुचेलवृत्तम् नालुवृत्तम्' मे कुचेल की कथा कीर्तन के रूप मे एक अज्ञातनामा नपूतिरि ब्राह्मण ने लिखी है।

इन पुस्तको के अतिरिक्त मलयालम भाषा मे कई कीर्तन-ग्रथ पाए जाते हैं। जिनमे भक्ति की महिमा सुन्दर तथा आकर्षक शैली मे अनेक भक्तकवियो ने लिखी है। विरक्त होने के कारण उन लोगो ने अपना नाम प्रकाशित नही किया है। उन कीर्तन-गीतो को पढकर साधारण जनता भक्तिरससिंधु में डूब जाती है, श्री कृष्ण की बाललीला और रास-क्रीडा उपर्युक्त कवियो के प्रिय विषय हैं। कवित्व की दृष्टि से ये ग्रथ उत्तम हैं। प्रसादात्मकता इन कीर्तनो का प्रधान गुण है।

कथकलि साहित्य—

यह पद्य-साहित्य का एक प्रमुख भाग है। 'कथकलि' साहित्य के कारण सोलहवी शताब्दी मलयालम भाषा-साहित्य का स्वर्ण-युग है। द्वीप-द्वीपान्तरो में कथकलि के कारण

ही केरल की कीर्ति फैलने लगी थी। प्राचीन काल मे लोग मनोरजन के लिए गीत आदि का सहारा लेते थे। युद्धोत्साही जनता नकली युद्धो मे भाग लेती थी। नकली युद्ध दिखाने वाले नटो को कई नामो से पुकारा जाने लगा। 'चाक्यार' जाति के लोग पौराणिक कथा-कथन मे सामयिक घटनाओ को बडी चतुराई से मिलाकर लोगो का मन बहलाते थे। वे समाज की कुरीतियो पर तीखा व्यग्य करते और उन्हे दूर करने की प्रेरणा देते थे। चाक्यार सभा मे जब किसीकी हसी उडाते तब उसका विरोध करना मना था। ऐसी सभाओ मे न तो कोई बात कर सकता था और न हस सकता था। ऐसी पद्धति को 'चाक्यार कूत्तु' कहते हैं। 'कूत्तु' और 'पाठकम्' आदि सहृदय लोगो के मनोरजन के विषय हैं।

यही लोग जयदेव का 'गीतगोविन्द' मधुर ढग से सुनाकर लोगो को प्रसन्न करते थे। इस प्रकार की प्रथा अब भी प्रचलित है। धीरे-धीरे परिवर्तन होने लगे। कूत्तु, पाठ-कम्, गीतगोविन्द का गान आदि ध्यान मे रखकर कोजिकोट के राजा मानविक्रम ने सन् १७८४ के लगभग एक नई पद्धति निकाली, जिसका नाम 'कृष्णनाट्टम्' रखा। 'कृष्ण-नाट्टम्' मे श्री कृष्ण की कथा का अभिनय सगीत के साथ होता था। उसे कुछ और सुधार कर केरलीय जनता की रुचि के अनुसार राम की कथाओ का अभिनय होने लगा। यह उत्तर भारत की रामलीला के समान है।

'रामनाट्टम्' का परिष्कृत रूप ही कथकलि है। कथकलि की कथा प्रचलित होती थी। शास्त्रविधि के अनुसार नृत्त, गीत, वादन और अभिनय के द्वारा दर्शको मे रस का सचार किया जाता था। इस प्रकार कथकलि काफी लोकप्रिय बन गई। शुरू मे कथकलि मे कई बातो की कमिया खटकती थी। धीरे-धीरे वे सब दोष दूर कर दिए गए। रामायण की कथा के आधार पर 'कोट्टारक्कर तपुरान' ने आठ दिनो के अभिनय द्वारा समाप्त होने वाली कथकलि लिखी। दृश्य कलाओ मे कथकलि का महत्त्व दिन दूना रात चौगुना बढ़ने लगा।

वेट्टत्तु देश के एक राजा तथा कोच्चिन देश के पडितो ने कथकलि को नवीन काल के अनुकूल सुधारने का परिश्रम किया, जिसमे वे सफल भी हुए। कथकलि का अपूर्व प्रचार देखकर हम समझ सकते है कि लोग अब अधिक सख्या मे उसका आस्वादन करने लगे हैं। देश-भेद या जाति-भेद इसके आस्वादन के मार्ग मे बाधा नही डालता।

कथकलि की कृतियो मे 'कोट्टयत्तु तपुरान' की रचनाए उच्चकोटि की मानी जाती हैं। 'बकवधम्', 'किरम्मीर-वधम्', 'निवातकवच', 'कालकेयवधम्' और 'कल्याण-सौगन्धिकम्', कोट्टयत्तु तपुरान की प्रमुख रचनाए हैं। मलयालम भाषा-साहित्य मे इनका उच्च स्थान है।

उण्णायि वार्यर—'कथकलि' लिखने वाले कवियो में वार्यर का स्थान सबसे ऊंचा है। पात्र-निर्माण, दृश्य-विधान और कथा-कथन आदि में उन्होने कमाल किया है। उनके जीवन-काल के सबध मे मतभेद हैं। अधिकाश पडितो का मत है कि अठारहवी सदी

मे उनका जन्म हुआ। उनका लिखा हुआ 'नलचरितम्' सर्वोत्तम ग्रथ माना जाता है। उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा, प्रकाड पाडित्य और कवित्व-शक्ति आदि का पूरा-पूरा परिचय प्रस्तुत रचना से मिलता है। कहा जाता है कि ऐसी लक्षणयुक्त रचना सस्कृत-साहित्य में भी मिलना कठिन है। कविता का अकृत्रिम सौन्दर्य उसमे आद्यन्त पाया जाता है। कवि ने जीवन के विविध पहलुओ का चित्र बडी सूक्ष्मता से खीचा है। व्यास और हर्ष जैसे प्रतिभासपन्न कवियो ने नल-चरित पर काव्य-रचना की है, पर वार्यर की कृति एतद्-विषयक अन्य तमाम कृतियो को मात करती है। मूल कथा को वार्यर ने अपनी कला-चातुरी से एक कोमल कथावस्तु का रूप दे दिया। बिहारी के समान वार्यर ने अपनी कृति के द्वारा गागर मे सागर भर दिया है। जीवन की गभीर समस्याओ को सुलझाने मे उन्होने जिस सामर्थ्य का परिचय दिया है वह निस्सन्देह प्रशसनीय है। कई प्रसगो मे विपत्ति-काल मे दार्शनिक की भाति तटस्थ भाव से कठिनाइयो का सामना करने की सलाह कवि देता है। कभी-कभी कवि कहता है कि मायाजनित कार्यों मे लिप्त रहकर मोक्ष पाना बहुत कठिन है। ससार मे विचरण करते हुए योगी ही विजय पा सकते हैं। कोई योगी बने और मारा-मारा फिरे, यह कवि को बिल्कुल पसन्द नही है। कहने का तात्पर्य यह है कि जीवन की कठिनाइयो को देखकर, डरे बिना आगे बढे और लक्ष्य तक पहुच जाए, यही कवि का अपना आदर्श था। जब तक मलयालम भाषा और साहित्य का आदर रहेगा तब तक वार्यर की उक्त कृति उज्ज्वल नक्षत्र की भाति साहित्य के आकाश में चमकती रहेगी।

और भी कई उत्कृष्ट रचनाए कथकलि साहित्य मे पाई जाती हैं। उनकी कविताए बहुत सुन्दर हैं। केरल के सहृदय लोग कथकलि के पद बडे चाव से पढते हैं। यहा तक कि अशिक्षित लोग भी इसे कठस्थ कर लेते हैं। ऐसे लोग बहुत कम हैं जो एक-दो पद राह चलते-चलते या घर बैठे-बैठे न गुनगुनाते हो। कथकलि साहित्य के साथ-साथ श्री नप्यार ने तुल्लल्-पद्धति निकाली। इसका विवरण आगे दिया गया है।

पहला परिच्छेद

वैष्णव-धर्म

आदिम मनुष्य का मन प्रकृति की विविध लीलाओ को देखकर चकित होता था। बिजली की कडक, बादल का गर्जन, भयकर आधी आदि उनके मन मे भय उत्पन्न करते थे। बालसूर्य की लाल किरणे, चादनी रात, हरे-भरे वृक्ष-समूह आदि को देखकर कभी-कभी उसका मन आनन्द-सागर मे डुबकिया लगाने लगता था। धीरे-धीरे प्रकृति की शक्तियो के बारे मे वह सोचने लगा। सबसे पहले उसने सोचा कि सूर्य, चन्द्र आदि उसके अस्तित्व के लिए बहुत आवश्यक हैं, अत उनके प्रति उसके मन मे एक प्रकार का श्रद्धा-भाव उत्पन्न होने लगा। ज्यो-ज्यो वह चिन्तन करता गया, त्यो-त्यो उसका मस्तिष्क विकसित होता गया। अन्त मे उसको यह ज्ञान हुआ कि इस सारे प्रपच का सचालन करने वाली कोई अद्‌भुत शक्ति है। अब वह उसकी खोज मे प्रवृत्त हुआ और उसके प्रति उसके मन मे बडी श्रद्धा जागरित हुई। इसीसे मनुष्य के मन मे भक्ति का भाव उदय हुआ। जब कभी उसपर आपत्ति आती तो वह बडे दीनभाव से उस शक्ति की प्रार्थना करने लगता। उसने पूर्णरूप से यह समझ लिया कि सम्पूर्ण जगत् का सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता तथा सहारकर्ता भी वही शक्ति है। अतएव उसने अपना सर्वस्व उसके आगे अर्पित किया। अनुभवो से भी उसको मालूम होने लगा कि उस शक्ति की प्रार्थना करने से उसका सुख-समृद्धि का अभीष्ट सिद्ध होता है। ऐसी भक्ति की भावना जब मनुष्य के मन मे पैदा हुई तब से भक्ति-मार्ग के सच्चे इतिहास का श्रीगणेश होता है।[1] भक्ति तथा देव-सम्बन्धी प्राचीनतम उल्लेख वेदो मे मिलता है। डा० राधाकृष्णन का मत है कि इसका रचनाकाल ३००० ई० पूर्व है।[2] वेद मे भिन्न-भिन्न प्राकृतिक शक्तियो को भिन्न-भिन्न नाम देकर उनमे देवत्व की कल्पना की गई है। यह भी निश्चित कर लिया गया है कि इन देवो व शक्तियो का मूल एक है। वेदो के निर्माताओ ने वरुण, इन्द्र, रुद्र, विष्णु आदि नामो से देवताओ को सम्बोधित किया है। कालान्तर मे जिन-जिन देवो पर सृष्टि, स्थिति, लय का दायित्व कल्पित किया गया, उनकी महिमा बढ़ने लगी।

---

१ तुलसीदर्शन—ले० डा० बलदेवप्रसाद मिश्र, पृष्ठ ४२

२ दर्शनशास्त्र का इतिहास—ले० डा० देवराज, पृष्ठ ३६

विष्णु का अर्थ है—व्याप्त होने वाला। विष्णु की महत्ता का वर्णन ऋग्वेद और परवर्ती साहित्य मे मिलता है।[1] अवतारो में वामनावतार के बारे में इस प्रकार लिखा है विष्णु ने वामन का अवतार लिया और प्रदक्षिणा करके तीन प्रकार से अपने पद रखे। उनके पैर धूल से भरे थे।[2] उनके पैरो से जगत् छिप गया। विष्णु के तीन पगो के बारे में डा० हेमचन्द्रराय लिखते हैं कि ये तीन पग या तो अग्नि, विद्युत् और सूर्य के प्रतीक हैं अथवा सूर्य के आकाश-मार्ग की तीन स्थितिया--उदय, उत्कर्ष और अस्त हैं।[3] शतपथब्राह्मण मे विष्णु के बारे मे लिखा है कि वे यज्ञ-रूप होकर सारी भूमि असुर से स्वीकार करते हैं।[4] ऐतरेयब्राह्मण मे विष्णु को सबसे उच्च स्थान दिया गया है।[5] और यह भी कहा गया है कि देवताओ के लिए विष्णु ने ही पृथ्वी प्राप्त की थी।

अग्नि, इन्द्र और सूर्य—इन तीन देवताओ का उल्लेख और इन्द्र के साथ विष्णु का पूजित होना आदि बाते यास्क के निरुक्त मे लिखी गई हैं। मनु ने अपने ग्रथ में विष्णु को दूसरे देवो की अपेक्षा कोई बडा स्थान नही दिया है। रामायण के कवि ने विष्णु की महत्ता का वर्णन बढा-चढाकर नही किया है। महाभारत मे विष्णु को ब्रह्मा और शिव के मध्य स्थान दिया गया है।

विष्णुपुराण, ब्राह्मवैवर्तपुराण और श्रीमद्भागवतपुराण मे विष्णु को सबसे उच्च स्थान देकर उनके गुणो और उनकी महिमा के सबध मे बहुत विस्तार से लिखा गया है। उनके वर्णन का साराश है कि "विष्णु सरक्षक हैं, सहस्रनाम वाले हैं, उनके नामो का जप भक्त लोग हमेशा करते हैं। उनकी स्त्री लक्ष्मी, स्थान वैकुठ और वाहन गरुड हैं। वे सुन्दर, कोमल, श्यामवर्ण, चतुर्भुज हैं, हाथो मे पाचजन्य, सुदर्शन, गदा, पद्म हैं, वक्ष पर कौस्तुभ मणि है, कभी लक्ष्मी के साथ कमल पर, कभी सर्पशय्या पर, कभी गरुड पर आसीन दिखाई देते हैं।" वे त्रिदेवो से भी परे परब्रह्म के प्रतीक हैं।[6] ऐसे विष्णु के नाम पर जो धर्म चला है उसे वैष्णव-धर्म कहते हैं। इसका जन्म ईसा के लगभग

---

१ ऋग्वेद—प्रथम मडल, २२वा सूक्त, १६, २१वा मत्र

२ इद विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। समूढमस्य पासुरे॥
—ऋग्वेद प्रथम मडल से। सूत्र स० १२४

३ Materials for the Study of the Early History of the Vaishnava Sect Hemachandra Ray M A Ph D Page 11–12

४ ते यज्ञमेव विष्णु पुरस्कृत्य ईयु।
--'शतपथ ब्राह्मण' से लेख। वैष्णवभक्ति का इतिहास—ले० प्रो० शिवनन्दनप्रसाद

५ विष्णु परमम्—ऐतरेय ब्राह्मण ६, १२

६ वैष्णव भक्ति का विकास--ले० प्रो० शिवनन्दनप्रसाद, एम० ए० 'अवन्तिका' के वार्षिक अक से

पांच सौ वर्ष पूर्व हो चुका था।[1] बौद्ध तथा जैन धर्मों के समान पहले-पहल यह भी एक प्रकार का सुधारात्मक आन्दोलन था। इन दोनो धर्मों के विपरीत इसका मूल आधार ईश्वरवाद है। इसे प्राचीनकाल मे 'एकान्तिक' धर्म के नाम से पुकारते थे। इसमे साम्प्रदायिकता आ गई और लोग इसे पाच रात अथवा भागवत धर्म के नाम से पुकारने लगे। सात्वत नाम के क्षत्रियो का धर्म यही था। शनै-शनै यह नारायण-धर्म और विष्णु-धर्म मे मिलकर एक हो गया। भगवद्गीताकार ने उपनिषदो तथा साख्ययोग से बहुत सी बाते लेकर वैष्णव-धर्म मे उनका समावेश किया और उसके दार्शनिक आधार को दृढ किया। ईसा से कुछ काल पश्चात् आभीरो ने धर्म मे एक नवीन आदर्श की प्रतिष्ठा की। उन्होने कृष्ण के गोपाल-रूप की आराधना आरम्भ की, और भागवत-धर्म मे गोपालन-धर्म का सूत्रपात किया। आठवी सदी तक भागवत-धर्म का इसी रूप मे प्रचार होता रहा।[2] इन्ही दिनो मे शकराचार्य ने अद्वैतवाद तथा मायावाद का इस धर्म मे समन्वय किया। कहा जाता है कि शकराचार्य का जीवनकाल सन् ७८८ और ८२२ के बीच मे है।[3] शकर के सिद्धान्तो से समाज सन्तुष्ट न हुआ। उनके सिद्धान्तो मे जगत् और जीव की व्यावहारिक सत्ता थी, वास्तविक सत्ता न थी। उसके फलस्वरूप शकर के मत का लोगो ने विरोध किया और अन्त मे ११वी शताब्दी मे रामानुजाचार्य ने तथा बाद मे अन्य वैष्णव आचार्यों ने मायावाद का खडन करके फिर से जगत् और जीव की वास्तविक सत्ता स्थापित की और सगुण भक्ति का प्रसार किया।[4]

दक्षिण के आचार्य और कवि

रामानुजाचार्य आदि वैष्णव-धर्म के प्रवर्तको के सिद्धान्तो पर प्रकाश डालने से पहले [illegible] के आचार्यों और कवियो का इतिहास पढना आवश्यक है।

पाचवी शताब्दी के लगभग दक्षिण मे भक्ति-प्रधान वैष्णव-मत विकसित हो रहा

---

१ Vaishnavism, Shaivism and minor religious systems By R. B Bhandarkar Page 3

२ Vaishnava faith and movement Page 2

--ले० डा० एस० के० डे०

३ श्री शकराचार्य—ले० वटकम कूरराजराज वर्मा, पृष्ठ १२

४ साथ-साथ यह भी ध्यान रखना चाहिए कि शकर के सामने उस समय दो महान् कार्य थे। उनमें पहला और मुख्य था—वेद-विरोधी बौद्ध और जन मत का पूर्ण खडन। इस कार्य को पूरा करने के लिए अद्वैतवाद की नितान्त आवश्यकता थी। उनका दूसरा कार्य था साधारण लोगों को ऐकान्तिक अध्ययन से परावर्त कर ईश्वर-चिन्तन और भजन मे लगाना। शकर यदि भक्ति-वाद के विरोधी होते तो व्याकरण सरीखे सूखे विषयों का गहरा अध्ययन करने वाले लोगो को 'भज गोविद भज गोविद, गोविद भज मूढमते! सप्राप्ते सन्निहिते काले, नहि नहि रक्षति डुकृञ्करणे।' ऐसा उपदेश कभी न देते। साथ ही शकर ने देवताओं पर जितने सुन्दर स्तोत्र रचे उतने काव्यमय और मधुर स्तोत्र अन्य तत्त्वज्ञानी आचार्यों ने आज तक नहीं रचे हैं।

था। वहा आडवारो ने इसके विकास में विशेष योग दिया। आड़धार भक्तकवि थे और तमिल प्रात के निवासी भी। भागवत-धर्म पर वे गीतो की रचना करते थे और उन्हे गाते थे।[1] आडवार भक्त सख्या में बारह थे। यद्यपि उनका कोई सप्रदाय नही था, तो भी वे भगवान् की भक्ति मे मग्न होकर उनकी महिमा का गान करते तथा लोक-कल्याण की भावना का प्रचार करते थे। उनके रचे हुए जो भी गीत हैं उनका नाम है 'प्रबन्धम्'। 'प्रबन्धम्' के सारे गीत लोग बडे चाव तथा भक्ति से गाते हैं। दक्षिण मे यह ग्रथ वेदो के समान श्रद्धा का पात्र माना जाता है। बारहवो आडवार भक्त समकालीन नही थे। अपितु, उनके आविर्भाव का काल लगभग दूसरी शताब्दी से लेकर दसवी तक माना जाता है। अत उनमे से प्रथम चार को प्राचीन, उनके बाद के वाले क्रमश पाच को मध्यकालीन एव शेष को अन्तिम कहने की परिपाटी चली आती है। उनका वर्गीकरण निम्नाकित है

(क) *प्राचीन*—१ पोयकै आडवार २. भूतत्ताडवार
३ पेय आडवार ४ तिरुमडिरशे आडवार

(ख) *मध्यकालीन*—१ शटकोप या नम्म आडवार २ मधुर कवि आडवार
३ कुलशेखर आडवार ४ पेरिय आडवार
५ आडाल

(ग) *अन्तिम* —१ तोडरटिप्पोटि आडवार २ तिरुप्पाण आडवार
तथा ३ तिरुमके आडवार

इनमे सर्वप्रसिद्ध नम्म या शटकोप ने एक शूद्र-परिवार मे जन्म लिया था। उन्होने देश भर मे भ्रमण करके बहुत से गीत रचे थे।

पाचवी शताब्दी से दसवी तक इनके गीतो का एक बडा साहित्य एकत्रित हो गया है। इनकी कविताओ मे कही भगवान् के विरह मे व्याकुल भक्त-हृदय की वेदना है तो कही गभीर दार्शनिक विचार हैं, कही सूफी कवियो के प्रेम-गीतो से मिलते-जुलते गीत भी पाए जाते हैं। वे अपना सर्वस्व भगवान् पर अर्पण करके घूमते-फिरते रहते थे। उनकी यह प्रबल धारणा थी कि भगवान् की सेवा करना और भगवद्भक्तो की सेवा करना समान है। भगवान् विष्णु को वे अनन्त, अखड तथा अविनाशी मानते थे। राम और कृष्ण को वे विष्णु का अवतार मानकर दोनो के भक्तो का समान भाव से आदर करते थे तथा उनके प्रति वे सच्चे प्रेम से व्यवहार करते थे।

चडाल, ब्राह्मण, शूद्र, क्षत्रिय आदि जाति की भेद-भावना का त्याग करके आडवार के भक्त बनते थे और उनको गुरु मानकर अपने आराध्य देव विष्णु की पूजा करते थे।[2] आडवार भक्तो ने दास्य, वात्सल्य तथा माधुर्य प्रधान-भक्ति पर अनेक पद लिखे हैं

---

१ Early History of Vaishnavism in South India, Page 13

२ Cultural Heritage of India Series, भाग २ के तथा The Historical Evolution of Shri Vaishnavism in South India, by V Ramacharaya M A के लेख का साराश।

जिनका गायन करने में अब भी भक्तगण अपने जीवन को सफल मानते हैं।

इनमें कुलशेखर आडवार, मलयालम-भाषाभाषी जनता के प्रमुख राज्य तिरुविताकूर के नरेश थे। उन्होने 'मुकुन्दमाल' नामक पुस्तक लिखी। उनका जन्मकाल ई० बारहवी सदी का पूर्वार्ध भाग है। बचपन से वे विष्णु भगवान् के पक्के भक्त थे। वे सदा 'रामायण' बडे चाव से सुना करते थे। एक दिन रामायण पढी जा रही थी। खर-वध का प्रसग था। रामचन्द्र अकेले खर तथा उसकी असख्य सेना का सामना करने के लिए निकले थे। भक्तप्रवर कुलशेखर ने भक्ति मे सराबोर होकर तुरन्त आज्ञा दी कि हमारे दोनो भाई तथा सारी सेनाए रामचन्द्रजी की सहायता करने के लिए कूच करें। फिर युद्ध का फल जानने के लिए वे उत्कठित हुए। जब पढ़ने वालो ने सुनाया कि रामचन्द्र-जी विजयी होकर लौटे तब कही उनका चित्त शान्त हुआ।[1]

आडवार भक्तो के अलावा दक्षिण में नाथमुनि जैसे आचार्य वैष्णव-धर्म के प्रवर्तक हो गए हैं। कहा जाता है कि उनका जीवनकाल सन् ८२४ ई० से सन् ९२४ ई० के बीच मे है।[2] उनके बाद आचार्य पुडरीकाक्ष यमुनाचार्य आदि महान् व्यक्तियो ने वैष्णव-धर्म का खूब प्रचार किया और रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत-मत की पुष्टि के लिए क्षेत्र तैयार किया। रामानुजाचार्य ने शकर के मायावाद का खण्डन करके उत्तर भारत मे विष्णुभक्ति का पुनरुत्थान किया।[3]

रामानुजाचार्य—

इन्होने मद्रास से इक्कीस मील दूर परमवट्टूर नामक स्थान मे जन्म लिया। इनका जीवन-काल सन् १०३७ ई० और ११३७ ई० के बीच में माना जाता है। इन्होने देखा कि धर्म की बडी शोचनीय अवस्था है। अतएव इन्होने नये सिरे से वैष्णव-धर्म को सुधारने का बीडा उठाया। शकर के मायावाद का खडन करने के लिए इन्होने खूब मेहनत की। शकर ने ज्ञान का आश्रय लेकर बौद्ध शून्यवाद का खडन किया था। अत इनका मत अधिक लोकप्रिय न हो सका। रामानुज का नया धर्म साधारण जनता के लिए न था। इसलिए अपनी उपासना-पद्धति मे इन्होने भक्ति को स्थान दे दिया। ये पदार्थत्रय मे विश्वास करते थे। पदार्थत्रय परब्रह्म (विष्णु) चित् (जीव) और अचित् (जड या हृदय) हैं। तीनो अविनाशी हैं परन्तु केवल ब्रह्म स्वतत्र है। शेष दो परब्रह्म से निर्मित और उसीपर निर्भर हैं। प्रलय मे भी तीनो मे अभिन्नता नही होती। मूर्ति, अशावतार, पूर्णावतार, सूक्ष्म और अन्तर्यामी—ये पाच प्रकार की अभिव्यक्तिया परब्रह्म की हैं, ऐसा ये कहते हैं। साधक को मूर्ति से आरम्भ कर क्रमश अन्तर्यामी की प्राप्ति होती है और वह वैकुठ या साकेत को प्राप्त कर, परब्रह्म से मिलकर दिव्यानद का अनुभव करता है।

---

१ Early History of Vaishnavism in India, page 15

२ अष्टछाप और वल्लभ-सप्रदाय—ले० डा० दीनदयालु गुप्त, पृष्ठ ३९।

३ अष्टछाप और वल्लभ-सप्रदाय—ले० डा० दीनदयालु गुप्त, पृष्ठ ४०।

रामानुजाचार्य ज्ञानियों को मुक्ति-प्राप्ति के लिए ज्ञानोपदेश देते थे और साधारण लोगो को भक्ति-मार्ग का उपदेश। ये अपने शिष्यो से कहा करते थे कि भयकर भव-सागर से मुक्ति पाने के लिए भगवान् को सब-कुछ अर्पण कर देना चाहिए। इसी आत्म-समर्पण को 'प्रपत्ति' कहते हैं। साधारणत गुरु के उपदेशो के अनुसार आचरण करने मे सब लोग सफल नही होते। उनके लिए सरल तथा सुगम मार्ग ही भगवान् का शरणागत होना है।

"रामानुज का मुख्य सिद्धान्त यह है कि आत्मा के बिना शरीर किसी भी अवस्था मे अवस्थित नही रह सकता, अत मुक्तावस्था मे आत्मा को शरीर प्राप्त होता है। परन्तु शुद्ध तत्त्व का बना हुआ वह शरीर अप्राकृत होता है और भगवान् की सेवा करने के निमित्त ही उसे धारण किया जाता है। इसी शुद्ध तत्त्व से वैकुण्ठ आदि लोक निर्मित होते हैं। यह वैकुण्ठ नारायण के ही योग्य विविध विचित्र और अनन्त भोग्य पदार्थो तथा भोग्य स्थानो से सम्बद्ध, अनन्त आश्चर्यमय, महावैभवविस्तारयुक्त, नित्यनिर्मल, क्षय-रहित परमव्योम है। यहा मुक्त आत्मा नारायण के समान ही आनन्द का अनुभव करती है। रामानुज का मत है कि इस स्थान की प्राप्ति करना परम पुरुषार्थ है।"[1]

रामानन्द—

चौदहवी शताब्दी के प्रारम्भ मे रामानन्द ने रामानुजाचार्य के सम्प्रदाय को बहुत ही व्यापक और लोकप्रिय रूप दे दिया।[2] इनके गुरु राघवानन्द थे।[3] रामानन्द ने सारे भारत का पर्यटन करके जाति-भेद का बहिष्कार किया एव सस्कृत के स्थान पर लोकभाषा मे अपने मत का प्रचार करके उसे बहुत लोकप्रिय बना दिया। कर्म के क्षेत्र मे शास्त्रमर्यादा इन्हे मान्य थी, पर उपासना के क्षेत्र मे किसी प्रकार का प्रतिबन्ध ये नही मानते थे। सब जातियो के लोगो को एकत्र कर ये राम-भक्ति का उपदेश करने लगे और राम-नाम की महिमा सुनाने लगे। इनके रचे हुए 'वैष्णवमताब्जभास्कर' और 'श्रीरामार्चनपद्धति' दो ग्रथ मिलते हैं। कबीरदास, सेननाई, पीपा, रैदास आदि इनके प्रमुख शिष्य माने जाते हैं।

रामानुज ने अपने ब्रह्म को नारायण कहा है, उसीका नाम विष्णु है और वही इस सम्प्रदाय के आराध्य देव हैं। नारायणरूप विष्णु का दर्शन सम्भव है और यह दर्शन केवल समाधियुक्त भक्ति से ही प्राप्त हो सकता है। दूसरी ओर शकर के मत मे ब्रह्म चिर-रूप है, उसमे व्यक्तित्व नही, कोई सज्ञा नही दी जा सकती। वह एकान्तत शुद्ध तथा निर्गुण है। रामानुज का ब्रह्म व्यक्ति-रूप है और गुणो का निधान है। उसे निर्गुण बनाना रूपक मात्र है। शकर के ब्रह्म मे लिंग आदि का कोई भेद नही, परन्तु

१. महाकवि सूरदास—ले० आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, पृष्ठ ४१।
२. हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ ४३।
३. हिन्दी-साहित्य का इतिहास—ले० रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ ११७।

रामानुज के नारायण लक्ष्मी के प्रेमी तथा पति हैं।[1]

लक्ष्मण और सीता-सहित राम को उपास्य रूप में ग्रहण करना रामानन्द-सम्प्रदाय की प्रमुख विशेषता है। ऐसा कोई भी श्लोक रामानन्द ने नही लिखा है जहा केवल सीताराम हो। यम-नियम आदि अष्टाग के योग के अनुसार कपट-भाव छोडकर जो अनन्य भाव से भगवान् की भक्ति करता है वही रामानन्द के मत मे परम भक्त है। वही इस ससार-सागर से मोक्ष पाने का अधिकारी है।

मध्वाचार्य—

मध्व या आनन्दतीर्थ के जन्म के बारे मे मतभेद है। डा० रामकुमार वर्मा ने लिखा है कि इनका जन्म सन् १२३७ ई० मे मगलौर से साठ मील उत्तर उडिप्पि मे, और मृत्यु सन् १३३३ ई० मे हुई।[2] डा० दीनदयालु गुप्त का मत है कि मध्वाचार्य ने सन् १२७६ ई० में अपना शरीर छोडा।[3] जन्म-स्थान के सम्बन्ध मे दोनो का मत समान है।

मध्वाचार्य ने शकर के मायावाद तथा अद्वैतवाद का खडन, विष्णु की प्रधानता का प्रचार तथा द्वैत-सिद्धान्त की स्थापना के लिए बडा प्रयत्न किया। इस सप्रदाय के लोग विश्वास करते हैं कि विष्णु अनन्त गुणो के सागर हैं, शक्तियुक्त हैं और नित्य हैं। अनन्य भक्ति से ही विष्णु की प्राप्ति हो सकती है। भागवत मे लिखा है कि श्री कृष्ण का अवतार ही पूर्ण है, शेष सभी अशावतार हैं। मध्व ने भगवान् के सभी अवतारो को पूर्ण कहा है। ये जनता को यह उपदेश देने लगे कि भगवान् के किसी भी अवतार को उपास्य मानकर यदि कोई भक्ति करे तो भगवत्पद प्राप्त हो सकता है।[4]

मध्वाचार्य ने राधा और कृष्ण के प्रेम-प्रसग को मान्यता नही दी है। ये श्री कृष्ण के बाल-रूप की उपासना पर जोर देते थे। अपने सप्रदाय मे मध्व वायु के अवतार माने जाते हैं। इनके दो प्रधान ग्रथ हैं।

विष्णुस्वामी—

कुछ विद्वानो के मतानुसार विष्णुस्वामी-संप्रदाय के प्रवर्तक श्री विष्णुस्वामी श्री शकर से भी पूर्व हुए थे, किन्तु शकरमत से तात्त्विक मतभेद होने के कारण इनकी गणना भी शकर-विरोधी प्रमुख वैष्णवाचार्यों में की जाती है।

विष्णुस्वामी का जन्म कब हुआ, इस विषय पर बडा मतभेद है। विष्णुस्वामी किसी द्राविड देश के क्षत्रिय राजा के ब्राह्मण मन्त्री के पुत्र थे। अनुमान किया जाता है कि ये रामानुज और निम्बार्क के पश्चात् और मध्वाचार्य के पूर्व जीवित थे।[5] ये प्रतिभा-

---

१ जर्नल आफ रायल एशियाटिक सोसायटी, १९२२ में सर जार्ज ए० ग्रियर्सन तथा महाशय सीताराम।

२ हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—ले० डा० रामकुमार वर्मा, पृष्ठ २१६।

३. अष्टछाप और वल्लभ-सप्रदाय—ले० डा० दीनदयालु गुप्त, पृष्ठ ४१।

४ सूरदास—ले० आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, पृष्ठ ४३।

५. अष्टछाप—ले० प्रभुदयाल मित्तल, पृष्ठ ४१।

शाली विद्वान् थे और इन्हें शास्त्रों का पूर्ण ज्ञान था। कहते हैं, इन्होंने कठिन तपस्या द्वारा भगवान् का साक्षात् दर्शन किया था।[1] ये ब्रह्म को अद्वैत किन्तु साकार मानते थे और श्री कृष्ण के रूप मे उसकी उपासना करते थे।

विष्णुस्वामी-सम्प्रदाय को रुद्र-सम्प्रदाय भी कहा जाता है। कहते हैं कि भगवान् शकर ने शुद्धाद्वैत का सर्वप्रथम उपदेश बालखिल्य ऋषियो को दिया था। यही ज्ञान कालान्तर मे विष्णुस्वामी को प्राप्त हुआ और इन्होने लोक मे सर्वप्रथम शुद्धाद्वैत सिद्धात की प्रतिष्ठा की। इन्होने इस सिद्धान्त के प्रतिपादन के लिए बादरायण कृत ब्रह्मसूत्र का भाष्य किया। यह भाष्य 'सर्वसूक्त' के नाम से प्रसिद्ध है। विक्रम की नवी शताब्दी मे शकर के अद्वैत-मत के अनुयायी किसी विद्वान् पडित ने विष्णुस्वामी की गद्दी पर आसीन तत्कालीन आचार्य को इस सम्प्रदाय के 'परमात्मा साकार है' वाले सिद्धान्त का शास्त्रार्थ द्वारा खडन करके परास्त किया था, तब से लोक मे विष्णुस्वामी के मत की प्रतिष्ठा भग हो गई थी। श्री वल्लभाचार्य के समय मे यह मत केवल नाम-मात्र के लिए शेष था और इस उच्छिन्न मठ के अधिकारी कोई बिल्वमगल नामक आचार्य थे। विद्यानगर के सुप्रसिद्ध शास्त्रार्थ मे विजयी होने पर श्री वल्लभ को शुद्धाद्वैत के प्राचीन सिद्धान्त की पुन प्रतिष्ठा करने का अधिकार दिया गया और उनको विष्णुस्वामी-सम्प्रदाय का आचार्य घोषित किया गया। इस प्रकार यह सिद्ध है कि यद्यपि शुद्धाद्वैत के प्रवर्तक विष्णुस्वामी हैं तथापि इस मत की वास्तविक उन्नति का श्रेय वल्लभाचार्यजी को ही है। यह भी कहा जाता है कि महाराष्ट्रसन्त श्री ज्ञानदेव, नामदेव, केशव, त्रिलोचन, हीरालाल और श्रीराम विष्णुस्वामी-मतावलबी थे। महाराष्ट्र मे प्रचार पाने वाला भागवत-धर्म, जो पीछे वारकरी नाम से प्रसिद्ध हुआ और जिसके अनुयायी ज्ञानदेव तथा नामदेव आदि उच्च भक्त थे, विष्णुस्वामी-मत का ही रूपान्तर है।[2]

निम्बार्काचार्य—

निम्बार्क के जन्मकाल के बारे मे विद्वानो का मत भिन्न-भिन्न है। डा० भडारकर ने इनका समय सन् १२६२ ई० बताया है।[3] डॉ० रामकुमार वर्मा ने लिखा है निम्बार्क बारहवी शताब्दी मे पैदा हुए। ये तेलुगू प्रदेश से आकर वृन्दावन मे बस गए थे। प्रसिद्ध गीतगोविन्द के रचयिता जयदेव इनके शिष्य थे। ये सूर्य के अवतार माने जाते हैं। कहा जाता है कि इ.होने सूर्य की गति को रोककर उसे आकाश से हटाकर नीम वृक्ष के पीछे कुछ काल तक के लिए छिपा दिया था, क्योकि सूर्यास्त से पूर्व इन्हे किसी सन्त को भोजन देना था। सूर्यास्त के बाद भोजन करना निम्बार्क की दैनिक चर्या के विरुद्ध था। ये राधा-कृष्ण के उपासक और द्वैताद्वैत के प्रवर्तक कहे जाते हैं। ये रामानुज से विशेष प्रभावित

---

१ अष्टछाप और वल्लभ-सप्रदाय—ले० डा० दीनदयालु गुप्त, पृष्ठ ४१।

२ अष्टछाप और वल्लभ-सप्रदाय—ले० डा० दीनदयालु गुप्त, पृष्ठ ४२।

३ Vaishnavism and Shaivism by Dr Bhandarkar, Page 63.

हुए थे।[1] ये बडे सिद्ध थे। इनकी अतुलनीय शक्ति का लोगो पर बडा प्रभाव पडा। इनके चलाए हुए सम्प्रदाय का नाम है निम्बार्क-सम्प्रदाय। 'वेदान्त-पारिजात-सौरभ' तथा 'दश-श्लोकी' यह दो इनके प्रसिद्ध ग्रथ हैं। 'वेदान्त-पारिजात-सौरभ' ब्रह्मसूत्रो पर भाष्य-ग्रथ है तथा 'दशश्लोकी' मे सक्षिप्त रीति से ज्ञेय पचविधि का निरूपण है। 'सविशेष निर्विशेष श्रीकृष्ण-स्तवराज' नामक पच्चीस श्लोक वाला स्तोत्र भी इन्होने लिखा है। निम्बार्क-सम्प्रदाय को 'सनक-सम्प्रदाय' अथवा 'हस-सम्प्रदाय' भी कहते हैं। इस सप्रदाय के अनुयायियो का विश्वास है कि सनक-सनन्दन आदि ऋषि इस सप्रदाय के आदिम आचार्य हैं। इस सप्रदाय का प्रचार आजकल बहुत कम हो गया है। उत्तर भारत मे यत्र-तत्र इस सम्प्रदाय के भक्त पाए जाते हैं। इसकी एक शाखा राधावल्लभ-सम्प्रदाय है, जिसके प्रवर्तक हिन्दी के प्रसिद्ध कवि गोस्वामी हितहरिवश थे।[2] इस सम्प्रदाय के सिद्धान्तो का सार यह है कि ब्रह्म से भिन्न होते हुए भी जीव उसमे अपने अस्तित्व को विलीन कर सकता है। ब्रह्म से एकाकार होने पर उसकी अपनी स्वतन्त्र सत्ता नही रह जाती। जीव को इस ब्रह्म-मिलन की साधना भक्ति द्वारा करनी चाहिए। कृष्ण के साथ राधा सब स्वर्गों से परे गोलोक मे निवास करती हैं। कृष्ण परब्रह्म हैं। उन्हीसे राधा और गोपिकाओ का आविर्भाव हुआ है। इस प्रकार राधा और कृष्ण की उपासना ही प्रधान है। निम्बार्क स्मार्त नही हैं। इसलिए ये राधाकृष्ण के अतिरिक्त किसी देवी-देवता को नहीं मानते।

चैतन्य—

श्री चैतन्य महाप्रभु ने सन् १४८२ ई० मे बगाल मे जन्म लिया।[3] छोटी सी उम्र मे इन्होने शिक्षा पाई। एक दिन ईश्वरपुरी नामक एक वैष्णव भक्त से इनकी भेट हुई। उनके उपदेश सुनकर चैतन्य बहुत प्रभावित हुए और घर-बार छोडकर सन्यासी हो गए। श्री कृष्ण के नाम-कीर्तन मे ये सब-कुछ भूल जाते थे। इनकी भक्ति देखकर लोग चकित होने लगे। कुछ समय के बाद ये आसेतु-हिमाचल भ्रमण करके कृष्ण-भक्ति का सन्देश देश के कोने-कोने मे पहुचाने के कार्य मे अपना सारा समय व्यतीत करने लगे। अपने शिष्यो के साथ ये वृन्दावन मे आए और वहा रहने का निश्चय कर लिया। तब से वह स्थान मुख्य तीर्थ-स्थान बन गया। श्री चैतन्य अपने अनुयायियो के साथ वृन्दावन मे रहकर राधा-कृष्ण की उपासना करते थे। इनकी प्रशसा मे भक्तकवि नाभादास ने सुन्दर कविता रची है।[4]

---

१ हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—ले० डा० रामकुमार वर्मा, पृष्ठ २९४।

२ अष्टछाप और वल्लभ-सप्रदाय—ले० डा० दीनदयालु गुप्त, पृष्ठ ४३।

३ Cultural Haritage of India-Series : Part II, Page 13

४ श्री रूप सनातन भक्ति जल (श्री) जीव गुसाईं सर गम्भीर।
बेला भजन सुपक्व कवायन कबहूँ लागी। वृन्दावन दृढ़ वास जुगल चरननि अनुरागी।
पोथी लेखन पान अधर अच्चर चित दीनी। सद्ग्रन्थन कौं सार सबै हस्तामल कीनी।
सन्देह ग्रन्थ छेदन समर्थ, रस रास उपासक परम धीर।
श्री रूप सनातन भक्ति जल (श्री) जीव गुसाईं सर गभीर।
—भक्तमाल, भक्तिसुधास्वादतिलक, रूपमाला, छन्द ६३, पृ० ६१३।

चैतन्यदेव ने कोई सिद्धान्त तथा साधना-सम्बन्धी ग्रन्थ नही लिखा। ये ग्रन्थ वैष्णवाचार्यों के समान दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने वाले व्याख्यान द्वारा अपने भक्तो के बीच में कर देते थे। इनके देहावसान के बाद ही इनके सम्प्रदाय का विशेष प्रचार हुआ। उसके प्रवर्तक श्री रूपगोस्वामी थे। 'हरिभक्त-रसामृत-सिन्धु', 'उज्ज्वल नील-मणि' तथा 'लघुभागवतामृत' नामक तीन पुस्तके लिखकर उन्होने अमर कीर्ति पाई। इनमे प्रथम दो ग्रन्थो मे भक्ति और उसके स्वरूप का बहुत ही विशद वर्णन है। काव्य-रस-शास्त्र की पद्धति पर भक्ति-रस के भावो का सविस्तार वर्णन करने वाले कदाचित् ये ही दो प्रथम ग्रन्थ हैं।[1]

चैतन्य-सम्प्रदाय मे भक्ति के चारो भावो को प्रधान मानते हुए भी माधुर्य-भाव पर विशेष ज़ोर दिया गया है। इस सम्प्रदाय के अनुसार परम तत्त्व एक है। वह तत्त्व सच्चिदानन्द-स्वरूप अनन्त शक्ति से सम्पन्न तथा अनादि है। जैसे रूप-रसादि गुणो का मूल स्रोत एक पदार्थ दुग्ध है और पृथक्-पृथक् इन्द्रियो द्वारा पृथक्-पृथक् रूप मे दिखाई देता है, उसी प्रकार एक ही परम तत्त्व उपासना-भेद से अलग-अलग प्रकार से अनुभूत होता है।[2] यह परम तत्त्व 'श्री कृष्ण' ही है।

श्री चैतन्य ने राधा-भाव (दाम्पत्य-भाव) से कृष्ण की उपासना की। उन्होने राधा-कृष्ण के अनन्य प्रेम से सारे बगाल को ओत-प्रोत कर दिया। उनका जीवन तन्मयता-सक्ति का उत्कृष्ट उदाहरण है।

श्री चैतन्यदेव ने अचिन्त्य भेदाभेद-सिद्धान्त के आधार पर अपनी रागानुगा भक्ति का प्रचार किया। श्री रामानुजाचार्य के श्रीसम्प्रदाय के प्रवर्तको जैसे निम्बार्काचार्य, मध्वाचार्य आदि महापुरुषो के समान इन्होने भी अपना सम्प्रदाय चलाया जिससे भक्ति-साधना के महत्त्व की धाक क्रमश सारे देश मे जम गई और दक्षिण भारत से लेकर वृन्दा-वन तक के भूखड मे भक्ति विशेषत कृष्ण-भक्ति का एकछत्र राज्य स्थापित हो गया।

ज्ञानदेव—

वारकरी-सम्प्रदाय के प्रवर्तक ज्ञानेश्वर का जन्म स० १३३२ में हुआ और कहा जाता है कि इनका गोलोकवास स० १३५३ मे हुआ।[3] इनका जन्म-स्थान दक्षिण भारत के पढरपुर नामक स्थान के आसपास आलदी नामक एक गाव है। इन्होने दो उत्तम ग्रथ रचे। पहला 'ज्ञानेश्वरी' दूसरा 'अमृतानुभव'। इन दोनो पुस्तको के द्वारा इन्होने वारकरी-

---

१ अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय—ले० डा० दीनदयालु गुप्त, पृष्ठ २२।

२. तत्तत् श्री भगवत्येव स्वरूप भूरि विद्यते।
उपासनानुसारेण भाति तत्तदुपासके ॥
यथा रूपरसादीना गुणानामाश्रय सदा।
श्रीरादिरेक एकार्थो जायते बहुधेन्द्रिय ॥
—लघुकथामृत, पृ० १२६।

३. उत्तर भारत की संत-परम्परा—ले० परशुराम चतुर्वेदी, पृष्ठ ८८।

सम्प्रदाय के दार्शनिक सिद्धान्तो का प्रतिपादन करते हुए भक्ति-साधना का सामान्य जनता मे प्रचार किया। इनके 'अमृतानुभव' नामक ग्रन्थ के एक पद से जान पडता है कि कश्मीरी शैव-सम्प्रदाय के मूलाधार शिव-सूत्रो का इनपर प्रत्यक्ष प्रभाव पडा था और कदाचित् इसी कारण इन्होने शकराद्वैत के मायावाद का खडन भी किया था।[1]

यह भी कहा जाता है कि पढरपुर मे स्थापित विट्ठल नामक विष्णु की कृष्णमूर्ति के सिर पर शिव की मूर्ति बनी हुई है और वारकरी-सम्प्रदाय के अनुयायी शिव एव विष्णु मे कोई भेद-भाव नही मानते, वरन् एकादशीव्रत के साथ-साथ सोमवार के दिन भी उपवास करते हैं।

इस सम्प्रदाय के लोग योग-साधना को एक महत्त्वपूर्ण स्थान देते हैं। ज्ञानेश्वर की सर्वप्रसिद्ध रचना 'ज्ञानेश्वरी' श्रीमद्भगवद्गीता पर एक सुन्दर भाष्य है, जो उनके सम्प्रदाय के सिद्धान्तो के अनुसार मराठी भाषा मे लिखा गया है। यह निर्गुण-निराकार परमात्मा की भक्ति का अद्वैतवादी ढग से प्रतिपादन करता है। इसकी शैली बडी प्रभावोत्पादक है। ज्ञानेश्वर ने अपने केवल इक्कीस वर्ष के अल्पजीवन-काल मे ग्रन्थ-रचना के अतिरिक्त तीर्थ-यात्रा भी की थी, जिसका रोचक वर्णन इनके सहयोगी मित्र और सम्भवतः शिष्य नामदेव ने अपनी रचना 'तीर्थावली' मे किया है। ज्ञानेश्वर व नामदेव के अतिरिक्त उक्त सम्प्रदाय मे आगे चलकर एकनाथ (स० १५९०–१६५६) व तुकाराम (स० १६६६–१७०७) जैसे अन्य सन्त भी हुए, जिन्होने इनके उपदेशो का प्रचार किया।

इस सम्प्रदाय के अन्तर्गत चार शाखाए थी। उन शाखाओ के प्रवर्तको ने अपने सिद्धान्तो को जनता के मध्य मे प्रचार करने के लिए जीतोड प्रयत्न किया। उनकी अधिकाश रचनाए मराठी भाषा मे थी। गुजरात, बरार, कर्नाटक आदि देशो मे उन सम्प्रदायो के अनुयायी अब भी मिलते हैं।

वारकरी-सम्प्रदायो मे पाच देवो की पूजा का विधान है। उसमे सर्वप्रधान इष्टदेव विट्ठल भगवान् हैं। वे परमात्मा को निर्गुण ब्रह्म बतलाते हैं और अद्वैतवाद का समर्थन करते हैं। उनका सिद्धान्त है कि सच्ची भक्ति से हम मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। उनकी भक्ति अद्वैत-भक्ति व अभेद-भक्ति है, जिसका केवल अनुभव किया जा सकता है, वर्णन नही हो सकता।

ज्ञानेश्वर एक स्थान पर कहते हैं कि जिस प्रकार एक ही पहाड के भीतर, देवालय, देवता एव भक्त-परिवार का निर्माण किया जा सकता है, उसी प्रकार भक्ति का व्यवहार एकत्र रहते हुए भी सर्वथा सभव है, इसमे सन्देह नही है।[2] तभी तो अन्त मे

---

१ आणि ज्ञान बन्धु ऐसे। शिव सूत्रा चे निमिषे
ह्रणि तले असे। सदा शिवे।
—३, १६। डा० रानाडे कृत।

२ देव देअल परिवारु। कीजै कोइनि डोंगरु।
तैसा भक्ति चा वेवहारू। कांन हवावा।
—४१, अमृतानु भ० प्रकरण (श्री ज्ञानेश्वरचरित ९)

जाकर देव देवत्व मे घनीभूत हो जाता है, भक्त भक्ति मे विलीन हो जाता है, और दोनो का अन्त हो जाने पर अभेद का स्वरूप अनन्त होकर प्रकट हो जाता है। जिस प्रकार गगा जब तक समुद्र से भिन्न रहती है तब तक दोनो एकाकार नही हो सकते, वैसे ही परमात्मा के साथ तद्रूप हुए बिना भक्ति का होना कभी सम्भव नही। निर्गुण की इस अद्वैत-भक्ति के लिए ये लोग ब्रह्म के सगुण रूप को भी एक साधन मानते है और उसके साथ तादात्म्य का भाव प्राप्त करने के लिए उसके नाम का निरन्तर स्मरण तथा उसके अलौकिक गुणो का सदा कीर्तन किया करते है। इनके यहा इस प्रकार भक्ति और ज्ञान का एक सुन्दर, सामञ्जस्य लक्षित होता है, जिसे साधना के रूप मे स्वीकार कर किसी भी जाति या श्रेणी का मनुष्य कल्याण का भागी बन सकता है।

वारकरी-सम्प्रदाय का नाम दो शब्दो अर्थात् 'वारी' एव 'करी' के सयोग से बना था, जिसका अर्थ 'परिक्रमा करने वाला' था। किन्तु इस परिक्रमा का अर्थ पढरपुर के मन्दिर मे स्थापित विट्ठल भगवान् की प्रतिमास की दोनो एकादशियो मे की जाने वाली तीर्थ-यात्रा तक सीमित था और इस सम्प्रदाय के प्रत्येक अनुयायी का यह कर्तव्य था कि वह कम से कम आषाढ या कार्तिक मे इसे अवश्य कर ले। इन अवसरो पर यात्री बहुधा सयमित जीवन बिताते थे। ये लोग अपने आराध्य देवता के सामने खडे होकर भजन व कीर्तन करते थे और भावावेश मे नाचने भी लगते थे। इससे मालूम होता है कि सगुण भक्तो मे और इनमे किसी तरह का भेद नही है। फिर भी वर्णाश्रम के नियमो से मुक्त रहकर एक अकृतिम जीवन बिताना, सामाजिक व्यवस्था की उपेक्षा करना, प्रकृति-मार्ग को स्वीकार करना तथा साम्प्रदायिक रूढियो को अधिक महत्त्व न देना आदि बाते इन्हे साधारण भक्तो की श्रेणी से पृथक् कर देती थी। वारकरी-सम्प्रदाय के इन भक्तो को इसी कारण सन्त कहने की भी परिपाटी चल निकली और इन सन्तो के लिए 'वारकरी' शब्द का प्रयोग करने की परम्परा बन गई।

उत्तर भारत के सम्प्रदाय

कश्मीरी शैव सम्प्रदाय—

दक्षिण भारत के अन्तिम वैष्णव आडवार भक्तो के समय मे उत्तर भारत के कश्मीर प्रदेश मे कतिपय शैव भक्तो का भी आविर्भाव होने लगा था, जिनकी परम्परा मे अनेक महापुरुष उत्पन्न हुए। उन्होने कश्मीरी शैव-सम्प्रदाय का प्रचार किया। इसके मूल प्रवर्तक वसुगुप्त माने जाते है जो विक्रम की नवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे उत्पन्न हुए थे।[1] इनके 'शिवसूत्र' प्रसिद्ध है। इन्होने भी वैष्णवाचार्यो के समान दार्शनिक सिद्धान्तो का प्रचार किया। इनके दो प्रसिद्ध शिष्य थे जो कल्लट और सोमानन्द नाम से

१ उत्तर भारत की 'सत-परम्परा'—ले० परशुराम चतुर्वेदी, पृष्ठ ८६।

प्रसिद्ध थे। इन दोनो का दार्शनिक मत 'ईश्वराद्वैतवाद' नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह शकराचार्य के ब्रह्माद्वैतवाद से कई बातो मे भिन्न था। ईश्वराद्वैतवाद के समर्थको का कहना था कि ईश्वर ब्रह्म की भाति निष्क्रिय नही, किन्तु स्वतन्त्र कर्ता है और माया उसकी स्वातन्त्र्य-शक्ति व परिगृहीत रूप मात्र है। वह अपनी इच्छा के अनुसार मनुष्य के रूप मे अपनी लीला दिखाने के लिए माया को करता है और इसके द्वारा स्फुरण किया करता है। उनका कहना है कि मोक्ष न तो केवल ज्ञान से सम्भव है और न कोरी भक्ति से ही। इसके लिए दोनो का सामञ्जस्य होना परमावश्यक है। शुद्ध भक्ति की साधना मे द्वैत भाव अपेक्षित होता है जो अज्ञान का परिचायक है और जिसके कारण किसी समय मोह का उत्पन्न होना सम्भव है। इसलिए भक्ति के साथ ज्ञान का योग होना ही चाहिए क्योकि ज्ञान-प्राप्ति के पश्चात् भक्ति द्वारा उत्पन्न द्वैतमूलक भावना नष्ट हो जाती है। यही ज्ञान-समन्वित भक्ति ही नित्य है।

राधावल्लभीय सम्प्रदाय—

इस सम्प्रदाय को श्री स्वामी हितहरिवश जी ने चलाया।[1] पहले ये माध्व सम्प्रदाय के अनुयायी थे परन्तु बाद को निम्बार्कस्वामी की श्रीकृष्ण-भक्ति पद्धति का अनुसरण करने लगे। हितहरिवश ने राधावल्लभीय सम्प्रदाय की स्थापना मे वृन्दावन मे की थी। उनके अनुयायी कृष्ण की अपेक्षा राधा को अधिक महत्त्व देते है और राधा की ही पूजा करते है।

हितहरिवश के दो ग्रन्थ—(१) 'राधासुधानिधि' (सस्कृत मे) और (२) 'चौरासी पद' (व्रजभाषा मे) प्रसिद्ध हैं। इन पुस्तको मे रासलीला का नग्न वर्णन है और शृगार की पराकाष्ठा है। धार्मिक भावना के अतिरिक्त हितजी के पद कवित्व की दृष्टि से भी उच्च कोटि के माने जाते हे।[2]

हितजी के शिष्यो मे प्रमुख व्यासदेव ने बयालीस ग्रन्थो की रचना करके राधा-वल्लभीय सम्प्रदाय के सिद्धान्तो का प्रचार किया। दामोदरदास जैसे दूसरे कवियो ने भी प्रेम, भक्ति और काव्य के भावो की रस-धारा प्रवाहित की है, परन्तु इस सम्प्रदाय के कवियो की रचनाओ मे भाव की वह प्रभावात्मकता नही है जो अष्टछाप-काव्य मे है।[3]

हरिदासी अथवा सखी-सम्प्रदाय—

हरिदासी-सम्प्रदाय के प्रथम प्रवर्तक अलीगढ-निवासी आसधीर थे। उनके देहान्त के बाद इस सम्प्रदाय को हरिदासपुरनिवासी श्री हरिदास ने एक स्वतन्त्र रूप दे दिया और इसके सिद्धान्तो का खूब प्रचार किया। श्री बिहारिनीदास, श्री भागवतरसिक

१ अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय—ले० डा० दीनदयालु गुप्त, पृ० ६४।
२ हिन्दी-साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास—ले० सूर्यकान्त एम० ए०, पृ० ३८४।
३ अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय—ले० डा० दीनदयालु गुप्त, पृ० ६७।

तथा श्री ललितकिशोरजी इस सम्प्रदाय के स्तम्भ समझे जाते हैं। इन्होने अपनी रचनाए व्रजभाषा मे की।

यह सम्प्रदाय भी भक्ति का एक साधन मार्ग है, और अपने आरम्भिक काल मे वेदान्त के किसी 'वाद' अथवा किसी अन्य दार्शनिक सिद्धान्त पर यह मत आधारित नही था। स्वामी हरिदासजी ने राधाकृष्ण की युगल-उपासना केवल सखी-भाव से करने पर जोर दिया।[1]

स्वामी हरिदासजी की प्रशसा करते हुए नाभादासजी ने लिखा है कि वे 'रसिक' नाम की छाप से प्रसिद्ध हुए। वे नित्य ही राधाकृष्ण की पूजा करते थे और उनका नाम जपते थे, सखी-भाव से युक्त होकर श्याम और श्यामा की प्रणय-लीला का आनन्द लेते थे। गान-कला मे उनकी सामर्थ्य अद्‌भुत थी। वे अपने सुमधुर गीतो से राधाकृष्ण को प्रसन्न किया करते थे। राजा लोग भी इन प्रसिद्ध सगीतज्ञ महात्मा के दर्शन करने के लिए लालायित रहते थे।[2]

श्री वल्लभाचार्यजी का सम्प्रदाय—

श्री वल्लभाचार्य का जन्म तेलुगु देश मे स० १५३५ वि० मे हुआ था। उनके पिता विष्णुस्वामी-सम्प्रदाय के अनुयायी थे। वल्लभ और चैतन्य समकालीन थे। बाल्यावस्था मे ही श्री वल्लभ ने सारे शास्त्रो का अध्ययन कर लिया। उनकी प्रखर प्रतिभा को देख-कर सब को बडा आश्चर्य हुआ। जब इनके पिताजी का देहान्त हुआ तब उन्होने अपनी स्नेहमयी माता को अपने मामा के घर मे पहुचा दिया और आसेतुहिमाचल भ्रमण किया। उसी यात्रा मे विजयनगर के राजा से उनकी भेट हुई और वे पडितो के साथ वाद-विवाद करते उस राज्य के दरबार मे रहने लगे।

एक दिन विविध सम्प्रदायो के पडितो मे वाद-विवाद हुआ। अन्त मे वैष्णव-पक्ष की हार होने वाली थी कि श्री वल्लभ ने आकर अपनी अकाट्य युक्तियो और प्रकाड पाडित्य द्वारा वैष्णव-पक्ष के विद्वानो को पराजित होने से बचाया। राजा अत्यधिक प्रसन्न हुए और आचार्य की पदवी देकर विष्णुस्वामी-सम्प्रदाय के सिंहासन पर उन्हे बिठाकर उनका बडा आदर किया।[3]

---

१ अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय—ले० डा० दीनदयालु गुप्त, पृ० ६७।

२ आसधीर उद्योत कर, रसिक छाप हरिदास की।
जुगल नाम सो नेम जपत नित कुञ्ज बिहारी।
अवलोकत रहे केलि सखी सुख को अधिकारी।
गानकला गन्धर्व स्याम स्यामा को तोषै।
उत्तम भोग लगाय मोर मरकट तिमि पोषै।
नृपति द्वार ठाडे रहै दर्शन आसा जास की।
आसधीर उद्योत कर, रसिक छाप हरिदास की।

—भक्तमाल, भक्तिसुधास्वाद, पृ० ६०७।

३ वल्लभ-दिग्विजय, पृ० १६।

वल्लभ ने अपने को अग्नि का अवतार कहा है। उन्होने यद्यपि विष्णुस्वामी के सिद्धान्तो का पालन किया तथापि चैतन्य के समान निम्बार्क के मत का भी अवलम्बन किया। कृष्ण को उन्होने ब्रह्म माना है। राधा को उनकी स्त्री और उनके क्रीडा-स्थल को वैकुण्ठ बताया है। दार्शनिक दृष्टिकोण से उनका सिद्धान्त शुद्धाद्वैत का है। शकर का अद्वैत जैसे शुद्ध बना दिया गया हो। शकर की माया के लिए इसमे कोई स्थान नही है। इस प्रकार माया से रहित अद्वैत ही शुद्धाद्वैत है। शकर के अद्वैत मे भक्ति के लिए कोई स्थान नही था। इस शुद्धाद्वैत मे माया के बहिष्कार के साथ भक्ति के लिए विशेष विधान है। भक्ति ज्ञान से श्रेष्ठ है। ज्ञान से ब्रह्म केवल जाना जा सकता है। भक्ति से ब्रह्म की अनुभूति होती है। इस प्रकार भक्ति का स्थान सर्वोच्च है।[1]

प्रेम-साधना के लिए वल्लभ ने लोक-मर्यादा और वेद-मर्यादा दोनो का त्याग उचित ठहराया। इस प्रेमलक्षणा भक्ति की ओर जीव की प्रवृत्ति तभी होती है जब भगवान् का अनुग्रह होता है, जिसे पोषण या पुष्टि कहते हैं। इसीसे वल्लभाचार्य ने अपने मार्ग का नाम 'पुष्टिमार्ग' रखा है। उन्होने जीव तीन प्रकार के माने हैं—(१) पुष्टि-जीव, जो भगवान् के अनुग्रह का ही भरोसा रखते है और नित्य लीला मे प्रवेश पाते हैं, (२) मर्यादा-जीव, जो वेद की विधियो का अनुसरण करते हैं और स्वर्ग आदि लोक प्राप्त करते हैं और (३) प्रवाह-जीव, जो ससार के प्रवाह मे पडे सासारिक सुखो की प्राप्ति मे ही लगे रहते हैं।[2]

चैतन्य तथा वल्लभ-सम्प्रदाय के सिद्धान्तो मे बहुत-कुछ समानता है। दोनो मे माधुर्य-भाव-प्रधान भक्ति का विशेष स्थान है। दोनो मे राधा-कृष्ण की भक्ति को समान महत्त्व दिया गया है। अन्तर केवल इतना है कि चैतन्य-सम्प्रदाय मे भावुकता को अधिक स्थान मिला है। रासलीला के अनुसरण मे चैतन्य-सम्प्रदाय के अनुयायी गान, वाद्य, नृत्य और कीर्तन को विशेष स्थान देते हैं।

वल्लभ-सम्प्रदाय की भक्ति अधिक सयत है। उसमे पूजाविधि का महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'वार्ता' से पता चलता है कि वल्लभाचार्य ने कीर्तन का प्रबन्ध श्री नाथजी की स्थापना के कई वर्ष बाद किया। सम्भव है कि इसका कारण चैतन्य-सम्प्रदाय का प्रभाव हो, क्योकि चैतन्य ने स्वय व्रज की यात्रा की थी और उनके कई अनुयायी व्रज मे बहुत दिन तक रहे थे। श्री नाथजी के मन्दिर का प्रबन्ध भी लगभग बीस वर्ष तक बगालियो के हाथ मे रहा। इस प्रकार चैतन्य-सम्प्रदाय की भावुकता और रसिकता वल्लभ-सम्प्रदाय को बहुत समय तक प्रभावित करती रही।

महाप्रभु वल्लभाचार्य बाल गोपाल के उपासक थे। बालरूप की उपासना करने पर भक्त मुक्ति पा सकता है। यह उनका विश्वास और सिद्धान्त था। अपने उपास्य से

१ हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डा० रामकुमार वर्मा, पृष्ठ ३०२।
२ हिन्दी-साहित्य का इतिहास—ले० रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ १२६।

सम्बन्ध रखने वाले स्थान और वस्तुए, जमुना, गोकुल, निकुञ्ज सब के सब उन्हे प्रिय थे। 'व्यापी वैकुण्ठवासी' अपने इन इष्टदेव के प्रेममय स्वरूप को उन्होने जनता के सामने रखा और लोगो को हठात् अपनी ओर आकृष्ट किया। बालक का बाल-चापल्य, उसका हसना, रूठना, हठ करना, मचल जाना, ठुमुक-ठुमुककर चलना आदि बाते किसको प्रिय नही होती ? यदि देखा जाए तो परमात्मा का रूप सरल, सुन्दर बालक मे ही पूर्ण रूप से प्रस्फुटित होकर विद्यमान रहता है। उनके शिष्यो पर भी इन बातो का प्रभाव पडा। उनको भक्ति का नया आधार प्राप्त हुआ। वे आनन्द से नाच उठे और अपने प्रभु के रूप का, उनके प्रत्येक कृत्य का उन्होने ऐसा सुन्दर और मनोमोहक दृश्य उपस्थित किया कि भक्त-जनो का रोम-रोम खिल उठा। उनकी आत्मा और हृदय आनन्द मे डूब गए। तल्लीनता की उस अवस्था मे उन्होने जो कुछ लिख डाला, वह हमारे साहित्य की अनुपम सम्पत्ति है। बडे आनन्द की बात तो यह है कि भाव, भाषा और शैली (गीतिकाव्य) बहुत-कुछ एक होने पर भी उनके पढने मे हर बार नूतनता दिखाई पडती है। महाभारत और रामायण के पढने मे ठीक यही आनन्द प्राप्त होता है। सक्षेप मे वल्लभ के पुष्टिमार्ग तथा अष्टछाप के कवियो द्वारा लिखित काव्य ने मध्ययुगीन मानव-जीवन को सरस और सौन्दर्यप्रिय बनाया। जीवन से उदासीन हिन्दू साहित्य, सगीत और कला मे एक बार फिर रुचि लेने लग गए। इन कवियो ने मानव-सस्कृति के उन अगो का स्पर्श किया जिनकी ओर उस समय तक भारतीय धर्म-व्यवस्थापको, साहित्यिको की और कलाकारो की दृष्टि तक नही पहुची थी।

वल्लभाचार्य के मुख्य ग्रथ है—(१) पूर्वमीमासा-भाष्य, (२) उत्तर-मीमासा या ब्रह्मसूत्रभाष्य जो अणुभाष्य के नाम से प्रसिद्ध है और उनके शुद्धाद्वैत का प्रतिपादन-प्रधान दार्शनिक ग्रथ है, (३) श्रीमद्भागवत की सूक्ष्म टीका तथा सुबोधिनी टीका, (४) तत्त्व दीन निबन्ध, तथा (५) सोलह छोटे-छोटे प्रकरण-ग्रथ। इनमे से पूर्वमीमासा-भाष्य का बहुत थोडा अश मिलता है। अणुभाष्य आचार्यजी पूरा न कर सके थे। अत अन्त के डेढ अध्याय उनके पुत्र गोसाई विट्ठलनाथ ने लिखकर उक्त ग्रथ को पूरा किया।[१]

१ हिन्दी-साहित्य का इतिहास—लेखक रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ १५६।

दूसरा परिच्छेद

कृष्णभक्त कवि

हिन्दी के कवि

सूरदास

जीवनवृत्त—

हिन्दी-साहित्य-नभोमण्डल के जाज्वल्यमान मार्तण्ड सूरदास का जन्म कब हुआ और उनका बाल्यकाल कहा बीता, आदि विषयो के बारे मे पडितो के विभिन्न मत हैं। डा० गुप्तजी ने सिद्ध किया है कि सूरदास का जन्म दिल्ली के निकट गुडगाव जिले के एक सीही नामक ग्राम मे हुआ।[1] श्री हरिरायजी कृत भावप्रकाश वाली 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' नामक पुस्तक मे लिखा है कि अपने जन्म स्थान सीही गाव से चार कोस दूर एक तालाब के किनारे अपने शिष्यो के साथ सूरदास रहते थे।[2] वही रहकर उन्होने गान-विद्या मे प्रवीणता प्राप्त कर ली और उनका यश बिजली की गति से चारो ओर फैलने लगा।

कुछ समय के बाद उनको सासारिक विषयो से विरक्ति हो गई और अपने थोडे से शिष्यो के साथ वे पुण्य-स्थानो के दर्शन करने निकल पडे। फिर गऊघाट पर आकर भगवान् के गुणो का कीर्तन करने और उनके भजन मे समय बिताने लगे।[3]

जाति—'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' मे लिखा गया है कि सूरदास सारस्वत ब्राह्मण थे।[4] सच्चे भक्त होने के कारण अपनी जाति व कुल के सम्बन्ध मे उन्होने कुछ नही लिखा है। सूरदास के समकालिक विट्ठलनाथ जैसे भक्तजनो ने उनको ब्राह्मण कहकर पुकारा था, ऐसा वर्णन 'श्री वल्लभ दिग्विजय' मे हम पाते हैं।[5] जनश्रुति भी उसी प्रकार है।

---

१ अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय—ले० डा० गुप्त, पृ० १६६।

२ अष्टछाप, काकरौली पृ० ६।

३ अष्टछाप, काकरौली पृ० ६।

४ अब श्री आचार्यजी महाप्रभुन के सेवक, सूरदास सारस्वत ब्राह्मण, तिनकी वार्ता—हरिराय कृत भावप्रकाश, अष्टछाप, काकरौली पृ० १।

५ ततो व्रजसमागमने (वल्लभदिग्विजय, पृ० २०)।

माता-पिता तथा कुटुम्ब—सूर के मा-बाप बडे निर्धन थे। सूरदास जी की अन्धता के कारण वे उनके पालन-पोषण मे अधिक ध्यान नही लगाते थे। 'वार्ता' मे कहा गया है कि सूर के तीन भाई थे।[1] बचपन से ही घरबार छोडकर सूर भगवान् के गुणगान मे तल्लीन रहते थे। बचपन से ही ससार के प्रति विरक्ति तथा प्रबल माया से सावधान रहने की प्रवृत्ति आदि का उल्लेख उनके पदो मे है। उससे हम समझ सकते हैं कि वे परिवार-सम्बन्धी बातो मे बडी दिलचस्पी न लेते थे और सम्भवत उन्होने विवाह नही किया था।

सूरदास की अन्धता—सूरदास जन्म से अन्धे थे या पीछे अन्धे हो गए, इस सम्बन्ध मे अब भी विद्वान् लोगो मे मतभेद है कि सूरसागर के कई सुन्दर पदो को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि जो कवि अन्धा हो वह इतनी सुन्दरता तथा तन्मयता से इस प्रकार के सुन्दर पद नही लिख सकता। 'रामरसिकावली' मे लिखा है कि सूरदास जन्म से ही अन्धे थे परन्तु भगवान् के प्रसाद से उन्होने दिव्य दृष्टि पाई।[2] डा० गुप्त का मत है कि सूरदास अन्धे थे और जिस समय उन्होने पद-रचना की उस समय भी वे अन्धे ही थे।[3]

शिक्षा-दीक्षा- सूर की शिक्षा के सम्बन्ध मे कही कुछ नही लिखा गया है। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' मे लिखा गया है कि वे गऊघाट पर रहकर गान-कला का अभ्यास करते थे। हरिरायजी कृत 'भावप्रकाश' के आधार पर आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने लिखा है कि सूर १८ वर्ष तक एक वृक्ष के नीचे रहते थे। लोग उन्हे 'स्वामी' कहकर पुकारने लगे और वहा रहकर उन्होने गान-विद्या सीखी।[4]

वल्लभ-सम्प्रदाय के अनुयायी हो जाने के बाद वल्लभाचार्य से उन्होने दीक्षा ग्रहण की। आचार्य ने उनको भागवत सुनाकर उसका तत्त्व समझाया और सूरदास ने भागवत के तत्त्व और वल्लभ-सम्प्रदाय के सिद्धान्तो को हृदयगम करके ही सहस्रो पदो की रचना की।

'सूरसागर' पढने पर मालूम होता है कि सूरदास बडे ही प्रतिभाशाली, कुशल और महाभक्त कवि हैं। उनकी यह कृति ज्ञान और भक्ति का अगाध सागर है। सूर की अपार विद्वत्ता की छाप उसपर है।

साम्प्रदायिक जीवन—श्री वल्लभाचार्य एक दिन व्रज की ओर जाते समय गऊघाट पर ठहरे, जहा सूरदासजी रहते थे। यही उन दिनो महापुरुषो का मिलन हुआ। सूर को देखकर वल्लभ ने कोई गीत गाने को कहा तो सूर ने बडे सकोच से विनय का पद

१ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय—ले० डा० गुप्त, पृ० २०३।

२ जन्महि ते ह्वै नैनविहीना, दिव्य दृष्टि देखहि सुख मीना।
—रामरसिकावली। महाराज रघुराजसिंहजी कृत मे सूरदास।

३ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय—ले० डा० गुप्त, पृ० २०३।

४ सूरदास—ले० आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ० ७३।

सुनाया। महाप्रभु वल्लभाचार्य जी बडे प्रभावित हुए और अत मे उन्होने अपने सप्रदाय के तत्त्व समझाकर सूरदास को अपना शिष्य बना लिया। उन्होने भगवान् कृष्ण की लीलाओ पर पद रचकर गाने का उपदेश भी दिया। उसी दिन से सूर भगवान् की लीला के गान गाने लगे। गुरु और शिष्य दोनो साथ-साथ रहते थे। शिष्य को श्रीनाथजी की कीर्तन-सेवा करने का भार सौपा गया।[१]

कहा जाता है कि अकबर बादशाह भी उनके कीर्तन सुनकर प्रभावित हो गए और उनको दरबार मे मुख्य स्थान देने के लिए तैयार हो गए, किन्तु वैरागी भक्तवर सूर ने स्वीकार करने से साफ इकार कर दिया।[२]

स्वभाव और चरित्र—सूरदास सदा भगवान् की पूजा मे लगे रहते थे और लौकिक विषयो की ओर से सर्वदा उदासीन रहते थे। उनके दीनता भरे पदो से हम समझ सकते हैं कि वे नम्रता की मूर्ति थे। गोस्वामी विट्ठलनाथ ने सूर के सम्बन्ध मे इस प्रकार कहा है 'पुष्टि मारग को जहाज जात है सो जाको कछू लेनो होय सो लेउ।'[३]

गोलोकवास– कहा जाता है कि सूरदास को मृत्यु का समय मालूम था और उन्होने पासौली नामक स्थान पर जाकर राधा-कृष्ण का ध्यान लगाते हुए अपने शरीर का त्याग किया।[४]

सूर की जन्मतिथि और उनके गोलोकवास की तिथि आदि विषयो के बारे मे निश्चित रूप से अभी तक कोई निर्णय नही हो सका। विद्वानो के मत भिन्न-भिन्न हैं। कई पडितो के मतो के आधार पर आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने लिखा है कि सूर का जन्म सवत् १५३० मे हुआ।[५] फिर उन्होने सिद्ध किया है कि स० १६४० तक सूर जीवित रहे थे।[६]

डा० गुप्त का मत है कि सूरदास का जन्म स० १५३५ मे हुआ[७] और वे स० १६३६ तक जीवित थे।[८]

रचनाए—

वर्तमान काल मे गवेषको ने अब तक सूरदास की चौतीस पुस्तके खोज निकाली

१ अष्टछाप और वल्लभ-सप्रदाय—ले० डा० गुप्त, पृ'ठ २०७।
२ अष्टछाप और वल्लभ सप्रदाय—ले० डा० गुप्त, पृष्ठ २०७।
३ अष्टछाप, काकरौली, पृष्ठ २०।
४ अष्टछाप और वल्लभ-सप्रदाय, पृष्ठ २००।
५ सूरदास—ले० नन्ददुलारे वाजपेयी, पृष्ठ ६३।
६ सूरदास—ले० नददुलारे वाजपेयी, पृष्ठ ७२।
७ अष्टछाप और वल्लभ-सप्रदाय—ले० डा० गुप्त, पृष्ठ २१२।
८ अ टछाप और वल्लभ-सप्रदाय—ले० डा० गुप्त, पृ'ठ २१८।

हैं। उनमे मुख्य और प्रामाणिक रचनाए सूरसागर, साहित्यलहरी और सूरसारावली हैं।[1]

सूरसागर—

कृष्ण-भक्ति के काव्यो मे सूरसागर का स्थान अद्वितीय है। यह सचमुच रत्नाकर है। जो जितनी गहरी डुबकी लगाता है वह उतने ही अधिक आनन्दरूपी रत्न पाता है। कवि ने एक स्थान पर स्वय लिखा है कि ब्रह्मा ने चार श्लोक रचकर नारद को दिए थे। नारद ने उन्हे व्यास मुनि को समझाया और मुनि ने उनके आधार पर भागवत की रचना करके अपने पुत्र को सुना दिया। उसके तत्त्वो तथा कथाओ को मन मे रखकर सूर ने सूर-सागर लिखा।[2]

विश्वास, विचार, भावनाए आदि—

उनका समस्त व्यक्तित्व इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ मे समाविष्ट है। विनय के पदो मे कवि के आत्मकथन का भास हमे मिलता है, यथा मैंने विषय-वासना मे अपना सारा समय बिता दिया। जिन लोगो को मैंने अपना समझा वे ही मुझे त्याग कर चले गए। मुझमे सब प्रकार की दुर्बलता आ गई है, तो भी माया-मोह नही छूटता।[3] विनय के पद ऐसे ही भावो से ओतप्रोत हैं। उनमे हृदय-दौर्बल्य के प्रति पश्चात्ताप, दैन्य तथा असमर्थता के भावो का प्राधान्य है। प्रत्येक पद मे कवि ने भगवान् की कृपा प्राप्त करने के लिए बडी आतुरता और व्यग्रता से प्रार्थना की है। सूरसागर के प्रथम स्कन्धो मे ऐसे अनेक पद पाए जाते हैं।

भक्ति-माहात्म्य, नाम-महिमा, भक्तिसाधन आदि पर द्वितीय स्कन्ध मे गीत लिखे गए है। सूरसागर के बारह स्कन्धो मे भागवत के विविध लीला-अवतारो की कथाओ का सरस वर्णन सुन्दर शैली मे किया गया है। दशम स्कन्ध मे कृष्ण की लीलाओ का विशद वर्णन है। भागवत की कथाओ और तत्त्वो को सूर ने यहा अपनी भावना के अनुसार ही लिखा है। ऐसे अनेक स्थल हैं जहा कवि की प्रतिभा तथा मौलिकता परिलक्षित होती है। शेष सभी अश भागवत के अनुसार हैं।

भागवत मे वर्णित विभिन्न कृष्ण-लीलाओ का वर्णन सूरदास ने प्रबधात्मक ढग

१ अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय—ले० डा० गुप्त, पृष्ठ २९८।

२ श्री मुख चारि श्लोक दिए ब्रह्मा को समुझाई।
ब्रह्मा नारद सो कहे, नारद व्यास सुनाइ॥
व्यास कहे शुकदेव सो द्वादश कन्ध बनाइ।
सूरदास सोई कहे पदभाषा करि गाइ॥—१९३। प्रथम स्कध, सूरसागर।

३ राग कान्हरो
दीन नाथ अब बारि तुम्हारी।
पतितउधारन बिरद जानि कै, बिगरी लेहु सवारी।
सूरदास प्रभु करुना सागर, तुमतै होइ सो होई॥
—सूरसागर प्रथम स्कध, पद स० ११८, स० सूर समिति।

से भी किया है। 'श्रीराधा-कृष्णमिलन', 'मानभङ्गप्रस्ताव', 'दान-लीला' आदि कथाए सूर की मौलिक रचनाए हैं। कृष्ण की विविध अवस्थाओ के चित्रण मे काव्यात्मक शैली का उपयोग कवि ने किया है। प्रेम और भक्ति का क्रमिक विकास अकित करने मे सूर ने अपने हृदय की गहरी तल्लीनता और तन्मयता का परिचय दिया है। प्रेम और भक्ति की अभिव्यक्ति के लिए राधा को आलबन मानकर कवि ने सूरसागर को एक स्वतन्त्र मौलिक रचना का रूप प्रदान कर दिया है, कारण भागवत मे राधा का इस प्रकार कही भी उल्लेख नही है।

सूरसारावली—

भागवत और सूरसागर की कथाओ का साराश इसमे दिया गया है। डा० दीनदयालु गुप्त ने सिद्ध किया है कि यह कृति सूरदास की ही रचना है।[1] कई पडित लोग इसे सूरदास की रचना नही मानते। हाल ही मे डा० ब्रजेश्वर वर्मा ने कई युक्तियो द्वारा यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि कथावस्तु, भाव, भाषा, शैली के दृष्टिकोण के विचार से सूरसारावली सूरदास की प्रामाणिक रचना नही है।[2] परन्तु उनके तर्क डा० गुप्त के कथनो से कट जाते हैं।

साहित्यलहरी—

सूरदास के दृष्टकूटपदो का समूह साहित्यलहरी है। डा० गुप्त का कथन है[3] कि इसका सकलन सूर के ही समय मे हुआ होगा। यद्यपि इसके कई पद सूरसागर के कई पदो से मिलते-जुलते हैं तो भी ऐसे बहुत से पद इसमे सगृहीत हैं जो सूरसागर के पदो से नही मिलते। अत यह एक स्वतन्त्र रचना के रूप म माना जाता है।

सूरदास का काव्य गीतबद्ध है। उन गीतो मे कृष्ण की कथाओ और उनके जीवन की मार्मिक घटनाओ का वर्णन सुन्दर शैली मे उन्होने लिखा है। कृष्ण की बाल-लीलाओ पर मुग्ध होकर उनका चित्र बडी कुशलता से उन्होने पाठको के सामने उपस्थित किया है।

सूर ने अपनी कविताओ द्वारा निर्गुणोपासना की नीरसता और अग्राह्यता दिखाकर सगुण भक्ति का मार्ग प्रशस्त किया। रामचन्द्रजी शुक्ल ने लिखा है कि सूर ने मनुष्यता के सौन्दर्यपूर्ण और माधुर्यपूर्ण पक्ष को दिखाकर जीवन के प्रति अनुराग जगाया, या कम से कम जीने की चाह बनी रहने दी।[4]

---

१ केरल भाषा सहित्य चरित्रम् भाग २ पृ० ४०।

२ श्री कृष्ण कर्णामृतम् पृ० १।

३ गरुवायूर एक छोटे शहर का नाम है जो दक्षिण मलावार में बसा है।

—भाग २, के तथा के लेख का साराश। में भन्डारकर।

४ त्रिवेणी—ले० रामचद्र शुक्ल, पृष्ठ ८८, ८९।

परमानन्ददास

जीवनवृत्त—

सूरसागर के रचयिता सूरदास के समान ही परमानन्ददास भी उच्चकोटि के कवि माने जाते हैं। उनके जीवनवृत्त पर प्रकाश डालने वाले ग्रन्थ बहुत कम हैं। डा० दीनदयालु गुप्त जी की गहन गवेषणा के फलस्वरूप कुछ बाते प्रकाश मे आई हैं। 'चौरासी वैष्णवो की वार्ता' मे लिखा है कि परमानन्ददास का जन्म स० १५५० मे हुआ।[1] इनका जन्म-स्थान कन्नौज है। ये जाति के कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे।

शिक्षा-दीक्षा—इनकी शिक्षा-दीक्षा आदि के बारे मे निश्चित रूप से कुछ भी विदित नही है। कहा जाता है कि बचपन से ही इनमे कविता करने की उत्कट इच्छा वर्तमान थी और हरि-कीर्तन के लिए पद रचने और गाने मे ये बडे दक्ष थे। ससार के प्रति इनका वैराग्य देखकर लोग इन्हे स्वामी कहकर पुकारने लगे।[2] धीरे-धीरे इनका यश चारो ओर फैलने लगा। एक दिन श्री वल्लभाचार्य से इनकी भेट हुई। परमानन्ददास की निर्मल भक्ति देखकर आचार्य को बडा आश्चर्य हुआ। एक दिन परमानन्ददास के मुह से कुछ पद सुनकर आचार्यजी समाधिस्थ हो गए, तीन दिन तक उनकी समाधि टूटी नही।

श्री वल्लभाचार्य ने परमानन्ददास को अपना शिष्य बनाया और मन्दिर मे कीर्तन गाने का काम भी उनको सौप दिया। परमानन्ददासजी का मन धन, कीर्ति आदि से सर्वदा विरक्त रहता था। सदा कृष्ण भगवान् के गुणगान मे वे तल्लीन रहते थे। सच्चे भक्तो के समान वे विनम्र व्यक्ति थे, और अपने को भगवान् का तुच्छ दास समझते थे। भक्तो की सेवा-शुश्रूषा मे वे बहुत प्रसन्न रहते थे।

श्री कृष्ण की बाल और किशोर लीलाओ पर जिन पदो की रचना उन्होने की वे बहुत ही सुन्दर हैं। श्री विट्ठलनाथ और श्री गोकुलनाथ जैसे प्रकाण्ड पण्डितो ने उनके बनाये हुए पदो की बडी प्रशसा की है।

परमानन्ददास ने बाल-भाव[3], दाम्पत्य-भाव और दास-भाव[4] से कृष्ण की

१ अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय—ले० डा० गुप्त, पृष्ठ २२६।

२ अष्टछाप काकरौली, पृष्ठ ५६।

३ या प्रकार सहस्रावधि कीर्तन परमानन्ददास ने किये, तासों परमानन्ददास के पद में बाल-लीला भाव, और रहस्यूह झलकत है। सो जा लीला को अनुभव परमानन्ददास को भयो, ताही लीला के पद परमानन्ददास गाये।'—अष्टछाप, काकरौली, पृ० ८६।

४ या भाति परमानन्ददास ने बहुत कीर्तन किए। सो श्री गोकुल के दशन करि के परमानन्ददास को श्री गोकुल में बहुत आसक्ति भई। तब आचार्य जी के आगे ऐसे प्रार्थना के पद गाए जो मोको श्री गोकुल मे आपके चरणारबिन्द के पास राखो सो ऐसे कीर्तन परमानन्ददास ने प्रार्थना के गाए।

उपासना की है, ऐसा 'वार्ता' से ज्ञात होता है। सखी और सख्यभाव-प्रधान अनेक पद भी उन्होने गाए हैं। कहते हैं कि राधा-कृष्ण का गुणगान करते-करते कवि ने अपना शरीर छोडा, मृत्यु का समय ठीक से अभी तक कोई निश्चित नही कर सका है। किन्तु डा० गुप्त का मत है कि परमानन्ददास की मृत्यु सूरदास और कुम्भनदास की मृत्यु के बाद लगभग सवत् १६४० वि० मे हुई होगी।[1]

रचनाए—

इस बात का पता लग गया है कि परमानन्ददासजी ने निम्नलिखित पुस्तके लिखी हैं—(१) दानलीला (२) ध्रुवचरित्र (३) परमानन्ददास के पद (४) वल्लभ-सम्प्रदायी कीर्तन-सग्रहो के पद और (५) हस्तलिखित परमानन्दसागर और परमानन्द-दासजी के पदकीर्तन-सग्रह।[2]

डा० गुप्त कहते हैं कि हस्तलिखित पद-सग्रह के अध्ययन से निम्नलिखित बाते ज्ञात होती हैं—

(१) सब प्रतियो मे एक से पद नही हैं। बहुत से पद जो एक सग्रह मे हैं, दूसरे मे नही हैं। इससे अनुमान होता है कि यदि सब पदो का मिलान कर उन्हे एकत्र किया जाए तो परमानन्द-सागर मे लगभग दो हजार पद निकलेगे।

(२) सब प्रतियो मे पदो का क्रम विषय के अनुसार है, रागो के अनुसार नही है, जैसा कि कृष्णदास अथवा अन्य अष्टछाप कवियो के अनेक पद-सग्रहो मे मिलता है।

(३) परमानन्ददास के पदो मे सूरसागर की तरह भागवत की सम्पूर्ण कथा का वर्णन नही है। उसके पदो मे दशम स्कन्ध का पूर्वार्ध कृष्ण के मथुरा-गमन और भँवर-गीत तक के प्रसगो का मुख्यत वर्णन हे। सूरदासजी ने तो स्वय कई स्थलो पर कहा है कि वे भागवत के आधार पर पद लिख रहे हे।[3] परमानन्ददास के पदो मे से ऐसे उद्देश्य का कहीं भी उल्लेख नही मिलता। उन्होने कुछ स्फुट पद, अक्षयतृतीया, दीपमालिका रामजन्म, नृसिंह, वामन अवतारो की प्रशसा आदि विषयो पर भी लिखे हैं जो बहुधा वल्लभ-सम्प्रदायी वर्षोत्सव कीर्तनसग्रहो मे मिलते हैं।

(४) परमानन्ददासजी के सब से अधिक सख्या के पद कृष्णजी की बाललीला, कृष्ण के प्रति गोपियो की आसक्ति-अवस्था, गोपी-विरह तथा भ्रमरगीत पर लिखे हैं। मान, खण्डिता, युगललीला, रास आदि के पद थोडी सख्या मे हैं।

(५) परमानन्ददासजी ने इन पदो मे कृष्ण की भावात्मक शृगार-प्रधान लीलाओ का ही वर्णन किया है और कृष्णावतार की व्यूहात्मक लीला और कथाओ का

१ अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय—ले० डा० गुप्त, पृ० २२६।
२ अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय—ले० डा० गुप्त, पृ० २६६।
३ सूरसागरपद, पृ० ४७, चतुर्थ स्कन्ध, वे प्रे स० १९६४ सस्करण।

वर्णन नही किया। सूर ने इन कथाओ का भी वर्णन किया है।

(६) सूरसागर मे जैसे श्री कृष्ण की लीलाओ को सूरदास ने पद और छन्द दोनो शैलियो मे लिखा है, उसी प्रकार परमानन्दसागर मे, भवरगीत तथा एक-दो अन्य प्रसगो को छोडकर और कोई प्रसग छन्द-शैली मे लिखे नही मिलते। उक्त सग्रहो मे केवल पद ही मिलते हैं।[1]

डा० दीनदयालु गुप्त का निष्कर्ष है कि परमानन्ददास की प्रामाणिक रचना केवल एक परमानन्दसागर है। उसीके पद पृथक्-पृथक् रूप से कीर्तन-सग्रहो मे मिलते हैं। दान-लीला तथा ध्रुव-चरित्र उनकी सन्दिग्ध रचनाए है।[2]

नन्ददास

जीवनवृत्त—

सूरदास और परमानन्ददास के बाद अष्टछाप के कवियो मे प्रमुख स्थान नन्ददास अलकृत करते हैं। उनके जीवनवृत्त के सम्बन्ध मे विद्वानो मे मतभेद है। श्यामसुन्दरदास ने नन्ददास का जन्म सवत् १५९० के लगभग माना है।[3] डा० गुप्तजी का मत है कि नन्ददास का जन्म स० १५९० मे हुआ।[4] नाभादासकृत भक्तमाल के अनुसार उनका निवासस्थान रामपुर गाव बतलाया जाता है।

'२५२ वैष्णवन की वार्ता' मे लिखा है कि तुलसीदास और नन्ददास भाई-भाई हैं। डा० धीरेन्द्र वर्मा द्वारा सपादित अष्टछाप-वार्ता से ज्ञात होता है कि नन्ददासजी गोस्वामी विट्ठलनाथजी के समकालीन और उनके शिष्य थे। वे कृष्ण के अनन्य भक्त थे। वल्लभ-सम्प्रदाय मे आने से पहले वे रामभक्त थे। उसके बाद वे गोकुल मे रहने लगे।

ध्रुवदासकृत 'नामावली' मे नन्ददास की कविता-शक्ति की प्रशसा, उनके काव्य के गुणो का वर्णन और उनके मन की रसिक वृत्ति का ही परिचय दिया गया है। नन्ददास ने जो कुछ भी कहा है वह सब 'राग-रग' अथवा अनुराग रग मे रगा हुआ है। उनकी रचना सरस शब्द-चयन ही उनकी रसिकता का परिचायक है। उनके कवित्त सुन्दर रूप मे ढले हुए होते हैं। कृष्ण रस मे मस्त वे मानो पागल हो। नन्ददास की ख्याति उनके जीवनकाल मे ही इतनी फैल चुकी थी कि ध्रुवदास ने, जो उनके समकालीन भक्त थे,

१ अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय—ले० डा० गुप्त, पृ० ३१०, ३११।

२ अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय—ले० डा० गुप्त, पृ० ३१२।

३ हिन्दी-साहित्य—ले० श्यामसुन्दरदास, पृ० १९२।

४ प्राचीन वार्ता रहस्य (काकरौली) द्वितीय भाग, अष्टछाप का ऐतिहासिक विवरण पृ० १८।

इनकी मार्मिक शब्दो मे प्रशसा की ।[1]

नन्ददास सूरदास की अपेक्षा अधिक तार्किक थे। उनकी भाषा स्पष्ट और परिमार्जित है। भ्रमरगीत मे उद्धव और गोपियो के सवाद मे उन्होने बडी मार्मिकता के साथ निर्गुणवाद के विरुद्ध सगुणवाद का पक्ष सिद्ध किया है।

रचनाए—

रासपचाध्यायी, नाममजरी, अनेकवर्गमजरी, रुक्मिणी-मगल, भवरगीत, सुदामाचरित्र, विरहमजरी, प्रबोधचन्द्रोदय नाटक आदि तीस ग्रथ उनके रचे हुए कहे जाते हैं।[2] परन्तु डा० गुप्त ने सिद्ध किया है कि नन्ददास के निम्नलिखित ग्रथ प्रामाणिक हैं— (१) रसमजरी, (२) अनेकार्थमजरी (३) भानमजरी (४) दशमस्कन्ध (५) श्यामसगाई (६) गोवर्धनलीला (७) सुदामाचरित्र (८) विरहमजरी (९) रूपमजरी (१०) रुक्मिणीमगल (११) [illegible] (१२) भवरगीत (१३) सिद्धान्तपचाध्यायी।

नन्ददास की रचनाओ मे भ्रमरगीत और रासपचाध्यायी ये दोनो ग्रन्थ सब से उत्तम माने जाते है। भ्रमरगीत मे निर्गुण पर सगुण की विजय दिखलाई गई है तथा गोरखनाथ जैसे योगियो के पथ और कबीर आदि सतो के ज्ञान-मार्ग की अपेक्षा वल्लभाचार्यजी की प्रेम-भक्ति का महत्त्व सिद्ध किया गया है। भ्रमरगीत की समस्त रचनाओ मे ऐसा अद्भुत आकर्षण और प्रवाह है कि पाठक बलात् उसकी ओर आकृष्ट हो जाता है। इसकी रचना भी रोला-दोहा के मिश्रण से बने छन्दो मे की गई है जो सुनने मे बहुत मधुर है।

रासपचाध्यायी के पाच अध्याय श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध के अध्याय २९ ३३ पर आधारित हैं।[3] इसकी भाषा बहुत सुन्दर है। कोमल-कान्त पदावली और श्रुतिमधुर भाषा-शैली के कारण यह हिन्दी का 'गीतगोविन्द' कहा जा सकता है। शृगार-रसप्रधान कविताए रचने मे नन्ददासजी प्रवीण हैं। श्री कृष्ण के विरह से गोपिया तडप-तडपकर व्याकुल होती हैं। पुनर्मिलन के समय जिस प्रेमोल्लास के साथ गोपिया उनसे

---

१ नददास जो कुछ कह्यो राग रग सो पागि।
अच्छर सरस सनेहमय सुनत सबन उठ जागि।
रसिक दशा अद्भुत हुती का कवित्त सुढार।
बात प्रेम की सुनत ही छुटत नैन जलधार।
बावरो सो रस मे फिरै खोजत नेह की बात।
आच्छे रस के बचन सुनि वेगि बिबस है जात॥
—भक्त-नामावली के दोहे न० ७७, ७९ में नन्ददासजी का उल्लेख है।

२ नन्ददास—ले० उमाशकर शुक्ल, पृ० १८२।

३ नन्ददास—ले० उमाशकर शुक्ल, पृ० ९८।

मिलती हैं उसकी झलक हम इसमे पा सकते हैं।[1]

नन्ददास की काव्य-कला मे साम्प्रदायिकता की छाप सब से अधिक है। वे वल्लभ-सम्प्रदाय के प्रतिनिधि कवि माने जाते हैं। वल्लभ-सम्प्रदाय के रहस्यो को उनके समान किसी और कवि ने प्रकट नही किया है। साहित्य-शास्त्र के भी वे प्रकाण्ड पडित थे। उनकी रचनाए शब्दालकार तथा अर्थालकार-प्रधान, सगीत-सुधामयी और हृदयस्पर्शी हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो समस्त वाङ्मय अनुचर की भाति उनकी काव्य-कला की सेवा मे सदैव तत्पर रहता था।

मीराबाई

कृष्ण भगवान् को अपना आराध्य देव मानकर काव्य-रचना करने वाले भक्तो मे मीरा का उच्च स्थान है। उनके जीवन-वृत्त के बारे मे विद्वानो मे बहुत मतभेद है। कइयो का मत है कि मीरा राव दूदाजी की पौत्री और राव रत्नसिहजी की पुत्री थी।[2]

मुशी देवीप्रसाद के मतानुसार मीराबाई का जन्म सवत् १६१० वि० मे हुआ। दूसरे कई प्रमाणो द्वारा श्रीमती पद्मावती 'शबनम' ने सिद्ध किया है कि मीरा का जीवन-काल सवत् १५५५ से १६५० के बीच मे था।[3]

मीराबाई की माता का नाम कुसुमकुवर था। वे रागनी की राजपूतनी थी। उनके निवास-स्थान का पता अब तक नही चला है। मीराबाई के नाना केलनसिहजी थे। मीरा की तीन वर्ष की अवस्था मे उनके पिताजी का तथा दस वर्ष की अवस्था मे उनकी माताजी का देहान्त हो गया।[4] अधिकाश विद्वानो की राय है कि मीरा अपने माता-पिता की इकलौती सन्तान थी और उनका बचपन उनके दादा के यहा, बीरमदेव के एकमात्र पुत्र प्रसिद्ध भक्त जयमाल के साथ बीता था। जयमाल पक्के कृष्ण-भक्त थे, अत उनके सग मे सदा रहने के कारण मीरा के हृदय मे श्री कृष्ण के प्रति भक्ति उत्पन्न होने लगी।

पितामह के साथ रहकर मीरा पर्याप्त शिक्षा प्राप्त कर सकी। सगीतकला मे उनकी रुचि विशेष थी। भगवान् के कीर्तन जब वे गाने लगती तो समस्त श्रोता मन्त्र-मुग्ध हो जाते थे। उनकी सगीतकला से आकृष्ट होकर लोग बडी सख्या मे उनके पास

---

१ पियहि निरखि तिय कूद उठी अब इकाई बरे यो।
घट आये ज्यो प्रान, बहुरि अशकल इन्हीं ज्यों
महा छुधित कौ ज्यो भोजन सौ प्रीति सुनी है
ताहु तै सतगुनी, सहस कियो सौरि गुनी है
दौरि लपटि गई ललित लाल मुख कहत न आवे
मीन मछलि सर पुलिन परै पुनि पानी पावे॥

—रासपचाध्यायी पाचवां (३६७ ४०४)

२ मीराबाई का जीवनचरित्र—ले० मुन्शी देवीप्रसाद।

३ मीरा एक अध्ययन—ले० 'शबनम', पृ० १५।

४ मीरा-स्मृति-ग्रन्थ—ले० विद्यानन्द, पृ० ५१।

आते थे और वे भी बिना ऊच-नीच का भेद-भाव समझे सब का स्वागत करती थी। मीरा का ब्याह कब और किसके साथ हुआ, इस विषय मे भी विद्वानो के मत भिन्न भिन्न हैं। प्रसिद्ध लेखक श्री रामप्रसाद त्रिपाठी और इतिहासकार श्री झा का मत है कि मीरा का ब्याह मेवाड के प्रसिद्ध राणा सागा के किसी राजकुमार से हुआ। बचपन से ही मीरा श्री कृष्ण को अपना पतिदेव मानकर पूजा करती रही थी। कहा जाता है कि मीरा की तेईस वर्ष की अवस्था के भीतर उनके मा-बाप, पितामह, पति और ससुर की मृत्यु हो गई।[1] उन घटनाओ के बाद मीरा के हृदय मे बडी विरक्ति छा गई और भगवान् कृष्ण के प्रति उनका प्रेम सौगुना बढ गया।

पति के जीवनकाल मे ही मीरा शृगारिक वस्तुओ का उपयोग नही करती थी। भक्त मीरा सासारिक वस्तुओ का मोह छोडकर सदा ईश्वर-भजन मे लीन रहती थी। उनके वैराग्यपूर्ण काव्य से यह बात स्पष्ट होती है।[2]

ऊच-नीच भाव छोडकर अन्य भक्तो के साथ भगवान् के कीर्तन गाती हुई मीरा अपना समय बिताने लगी। यह देखकर राजघराने के लोग आपे से बाहर हो गए और उन्होने तरह-तरह की यन्त्रणाए मीरा को दी जिनका उल्लेख उन्होने अपने पदो मे यत्र-तत्र किया है।[3]

एक सच्चे भक्त की भाति मीरा भी अपनी अनन्य भक्ति मे अटल रही। इस कष्ट-सहन के उपरान्त उन्हे ब्रह्मानन्द का रसास्वादन करने का सौभाग्य प्राप्त हो सका।

जब ससुराल के लोगो ने मीरा को भक्ति-मार्ग से विमुख करने की अधिकाधिक चेष्टा की तो मीरा उस स्थान को छोडकर अपने चाचा वीरमदेव के यहा जाकर रहने लगी। दुर्भाग्य से वीरमदेव पर विपत्तियो के पहाड टूट पडे। तब मीरा वृन्दावन मे जाकर अपने उपास्यदेव की भक्ति और सेवा मे तन-मन से जुट गई। वहा से मीरा द्वारिका पहुची और रणछोडजी के मन्दिर मे भगवान् की प्रार्थना करते हुए समय बिताने लगी। उस समय वीरमदेव के लोगो ने मीरा को घर लौटाने का बडा प्रयत्न किया, किन्तु मीरा अन्त तक द्वारिका मे ही रही। उपलब्ध ऐतिहासिक और काव्यगत प्रमाणो के आधार पर यह

---

१ मीरा की पदावली—स० सदानन्द भारती, पृ० ६।

२ झूठा सोहाग जगत का री सजनी, होय होय मिट जासी।
मै तो एक अविनाश करू गी जाहे काल नहीं खासी। (मीरा-माधुरी पृ० ३७)

३ मै गोविन्द गुण गाणा। टेक।
राजा रूठे नगरी राखे, हरि रूठया कह जाणा।
राणा भेज्या जहर पिलाया, इमरित करि पी जाणा।
डिबिया में भेज्या जु भुजगम, सालिगराम करि जाणा।
मीरा तो अब प्रेम दिवाणी, सावलिया वर पाणा। ४३।
—मीराबाई की पदावली, स० परशुराम चतुर्वेदी, पृ० १८।

कहा जा सकता है कि मीरा ने अपनी जीवन-लीला सम्वत् १६३० के लगभग समाप्त की होगी।[1]

कहा जाता है कि मीरा की सात[2] रचनाओ मे 'नरसीजी का मायरा' या 'नरसीजी माहेरो', 'गीत गोविन्द की टीका', 'राग सोरठ', 'पद-सग्रह' और 'फुटकर पद' मुख्य है।[3]

नरोत्तमदास

नरोत्तमदास केवल एक छोटी सी रचना के बल पर अमर कवियो की पक्ति मे स्थान पाने वाले अद्वितीय कृष्णभक्त थे। इन्होने भी अपने बारे मे कुछ नही लिखा, अतएव इनके जन्म, जाति, शिक्षा-दीक्षा आदि के बारे मे अब भी लोग कुछ नही जानते। आधुनिक गवेषणा के फलस्वरूप बहुत से विद्वान् यह मानते है कि इनका जन्म सम्वत् १६०२ के लगभग हुआ था। जन्म-स्थान सीतापुर जिले के अन्तर्गत बाडी नामक कस्बे मे है।[4] इनकी रचना 'सुदामा-चरित्र' की भाषा प्रवाहमयी, सरल और आकर्षक है। इसके अतिरिक्त 'ध्रुव-चरित्र' नामक एक खण्ड-काव्य भी इन्होने लिखा, जो अप्राप्त है।

हितहरिवंश

राधावल्लभी सम्प्रदाय के प्रसिद्ध कवि हितहरिवश सम्वत् १५५९ मे मथुरा के आसपास के एक गाव मे पैदा हुए।[5] डा० रामकुमार वर्मा का कथन है कि इनका जन्म सम्वत् १५९९ मे हुआ।[6]

हितहरिवश सस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे। ब्रजभाषा के भी ये बडे विद्वान् थे। 'हित-चौरासी' नामक ग्रथ मे इनकी कविताओ का सग्रह पाया जाता है। इनकी सरस-कोमल-कान्त पदावलिया पढकर लोग मुग्ध हो जाते थे और उन कविताओ की सरसता तथा मधुरता के कारण श्री कृष्ण की वशी के अवतार से वे प्रसिद्ध हुए। 'राधा-सुधा-निधि' भी उनकी लिखी मानी जाती है।

स्वामी हरिदास

निम्बार्क-सम्प्रदाय के अन्तर्गत टट्टी सम्प्रदाय के प्रवर्तको मे प्रमुख थे स्वामी हरिदास। अकबर के जीवन-काल मे ये बडे गायक और भक्त के रूप मे प्रसिद्ध हुए।[7]

---

१ मीरा एक अध्ययन—ले० 'शबनम', पृ० ९०।
२ मीराबाई की पदावली, द्वितीय भाग—स० परशुराम चतुर्वेदी, पृ० १४।
३ मीराबाई—ले० डा० श्रीकृष्णलाल, पृ० ७९।
४ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ८४४।
५ हिन्दी-साहित्य का इतिहास—ले० प० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० २१८।
६ हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—ले० डा० रामकुमार वर्मा, पृ० ८४६।
७ हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—ले० डा० रामकुमार वर्मा, पृ० ८४५।

गाने मे उनकी प्रवीणता देखकर अकबर और सुख्यात गायक तानसेन दग रह जाते थे। राग-रागनियो मे गाने लायक कई पद उनके रचे मिले हैं।

रसखान

ये मुसलमान कवि थे। इनके जन्म के समय के सम्बन्ध मे लोग अब भी भिन्न-भिन्न मत रखते हैं। डा० रामकुमार वर्मा की राय है कि इनका कविता-काल सम्वत् १६७१ के लगभग है।[1] गोसाईं विट्ठलदासजी से इन्होने दीक्षा ली और श्री कृष्ण के पक्के भक्त बन गए। इनकी लिखी हुई 'प्रेमवाटिका' और 'सुजान रसखान' बहुत प्रसिद्ध हैं। इनकी सरम भक्तिमयी और भावमयी कविताए वास्तव मे ही रस की खान हैं। कृष्ण के प्रति इनकी रचनाए कृष्ण-भक्ति की कविताओ मे उत्तम मानी जाती हैं। हिन्दी-साहित्य मे इनका उच्च स्थान है।

ध्रुवदास

वृन्दावननिवासी ध्रुवदास हितहरिवश के शिष्य माने जाते हैं। जन्म और मृत्यु के सबध मे विश्वास करने के लायक प्रमाण नही मिले हैं। दोहे, चौपाई, कवित्त जैसे कई छन्दो मे प्रेमतत्त्व का वर्णन इन्होने बडी सुन्दरता से लिखा है। कहा जाता है कि ध्रुवदास ने करीब चालीस तक पुस्तके लिखी हैं।[2]

आनन्दघन

सरस गायक कविरत्न आनन्दघन का जन्म सवत् १७४६ के करीब हुआ।[3] उनका असली नाम घनानन्द था। बादशाह का आदर न करने के कारण उनको कई यातनाए झेलनी पडी। अन्त मे जब उनकी प्रेयसी वेश्या सुजान ने भी उनका साथ छोड दिया तो उनका मन ससार से विरक्त हो गया और वे वृन्दावन जाकर निम्बाक-सप्रदाय के प्रवर्तक बन गए। वे सारा समय मुरलीधर के विषय मे सुन्दर कविताए रचने और गाने मे बिताने लगे। उनकी पुस्तको मे सुजान-सागर सर्वोत्तम है। इसका एक-एक पद पढकर लोग मुग्ध हो जाते हैं। 'कृष्णकाण्ड निबन्ध', 'रसकेलिबल्ली', 'बानी' ये तीन ग्रथ भी इन्होने रचे हैं।[4]

मलयालम के कवि

निरणम कवि

मलयालम भाषा के कृष्णभक्त कवियो मे मुख्य हैं निरणम कवि। इनका जन्म तिरूविताकूर राज्य के मध्य मे स्थित निरणम नामक गाव मे हुआ था। इनके जन्मकाल

१ हिंदी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—लेखक डा० रामकुमार वर्मा, पृष्ठ ८५२।
२ हिन्दी-साहित्य का इतिहास—ले० प० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० २३४।
३ ब्रज-माधुरी-सार—स० वियोगीहरि, पृ० २५६।
४ ब्रज-माधुरी-सार—ले० वियोगीहरि, पृ० २५६।

का ठीक निर्णय करना कठिन है। अधिकाश विद्वानो की राय है कि ये सारे कवि ई० सन् १३७५ और १४७५ के बीच मे उत्पन्न हुए।[1]

निरणम गाव मे रहने के कारण ये लोग निरणम कवि कहलाए। इन कवियो मे सब से बडे माधव पणिक्कर थे। प्रान्तीय भाषा मे सब से पहले गीता का अनुवाद करने का श्रेय इनको ही है। जहा-जहा मूल काव्य के आशय के स्पष्टीकरण करने की आवश्यकता प्रतीत हुई, वहा-वहा इन्होने विषय का भली भाति विश्लेषण भी किया। इनकी भाषा सरल, कोमल तथा सदर्भ के अनुसार रसानुकूल है। दूसरे कवि शकर पणिक्कर थे जिन्होने 'श्रीकृष्णविजय' और 'भारतमाला' नामक दो उत्तम ग्रथ रचे। माधव और शकर पणिक्कर भाई-भाई थे। तीसरे निरणम कवि राम पणिक्कर थे जो इन दोनो के भाजे लगते थे। निरणम कवियो मे ही नही, अपितु केरल के प्राचीन कवियो मे भी इनका उच्च स्थान है। आपने 'रामायण', 'भारत', 'ब्रह्माण्डपुराण', 'शिवरात्रि-माहात्म्य', 'भागवत का दशम स्कन्ध' आदि कई सुन्दर काव्य कहे हैं। 'भाषा-भारतम्' नामक अपने ग्रथ के अन्त मे कवि ने लिखा है कि अपने पापो को दूर करने के लिए पहले श्री रामचन्द्र की कथा सुनाई, अब श्री कृष्ण की कथा सुनाने को प्रस्तुत हू।[2]

चेरुश्शेरी नम्पूतिरि

इनके जन्मकाल के बारे मे पडितो मे मतभेद हैं। डा० चेलनाट अच्युत मेनोन, श्री पि गोविन्द पिल्लै आदि पडितो का मत है कि कवि का जन्म ई० सन् १४७५ और १५७५ के बीच मे हुआ।[3] इनके घर का नाम चेरुश्शेरी था, इसलिए कवि चेरुश्शेरी नम्पूतिरि के नाम से प्रसिद्ध हैं। युवावस्था मे ये उत्तर केरल मे कोलत्तुनाट राज्य के दरबारी कवि बने। वही रहकर इन्होने कृष्णगाथा काव्य की रचना की। यह कृति मलयालम भाषा के कृष्ण-भक्ति-साहित्य मे सब से अधिक सुन्दर मानी जाती है। यद्यपि यह श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के आधार पर ही लिखी गई है तथापि यह कवि की मौलिक रचना है। केवल नाम मात्र के लिए इन्होने दशम स्कन्ध का आश्रय लिया, वस्तुत यह गाथा कवि की मौलिक प्रतिभा की ही देन है। एक ही कृति से इन्होने महाकवि का पद प्राप्त किया। गाथा के अलावा 'भारतम्' की कथा भी गाथा की शैली मे कवि ने लिखी है। उसका नाम है 'चेरुश्शेरी भारतम्' कवि की भाषा पीयूष के समान मधुर और सरिता के समान प्रवाहमयी है। इनकी कृतियो को हम किसी भी राग मे गा सकते हैं। इस काल मे मलायलम भाषा को आधुनिक रूप प्राप्त हो चुका था। इसलिए पाच सौ वर्ष का

---

१ केरल भाषा-साहित्य-चरित्रम्, भाग १—ले० आर० नारायण पणिक्कर, पृ० २८१।

२ कलवान् पापम मुन्ने रामकथा ओटूटाय प्रकारम चोन्ने—निलायते श्रीकृष्णकथा या मिनियोरुपटि चोल्क तुनिञ्ञेन श्री कणश्श भारतम्, पृ० ३, स० एल ए रविवर्मा।

३ भाषा साहित्य चरित्रम्, पृ० १४६।

पुराना उनका काव्य आज भी नवीन-सा प्रतीत होता है। साधारण जनता इसे आसानी से समझ सकती है। कवि की वर्णनात्मक शैली बहुत ही मोहक है और सुन्दर है। श्री कृष्ण के अनन्य भक्त होने के कारण भक्ति मे सराबोर होकर कवि ने सरस-कोमल कान्त पदावली मे अपने अनूठे काव्य 'कृष्ण-गाथा' की रचना की है।

कुछ लोग कहते है कि कृष्ण-गाथा के रचयिता पुन नपूतिरि हैं। किन्तु श्री पि० के० नारायण पिल्लै जैसे पडितो ने सिद्ध किया है कि 'कृष्ण-गाथा' चेरुश्शेरी की ही रचना है।

काव्य लिखने की प्रेरणा इन्हे कैसे प्राप्त हुई, इसकी कथा भी मनोरजक है। कवि के समय मे शतरज खेलना राजाओ के लिए मनोरजन का प्रमुख साधन था। एक दिन राजा अपने आश्रित चेरुश्शेरी के साथ शतरज खेल रहे थे। पास ही मे रानी अपने नन्हे बच्चे को पालने मे लिटाकर अपने कलकठ से लोरी सुना रही थी। रानी भी शतरज खेलना खूब जानती थी और ध्यान से खेल देख रही थी। जब उसने जान लिया कि अपने पतिदेव हारने वाले हैं तब सुरीले तान मे एक गाना गाकर राजा को सुझाया कि प्यादे को आगे बढाओ। राजा ने तुरन्त वैसा ही किया और बाजी मार ली। रानी का वह गाना राजा के कान मे गूजता रहा। उस तान ने उनके मन को मोह लिया था। उसी राग मे एक सुन्दर काव्य रचा जाए तो कितना अच्छा हो, विचार आते ही राजा ने अपने आश्रित तथा प्रतिभासम्पन्न कवि चेरुश्शेरी से अनुरोध किया कि आज रानी ने जिस राग मे गाना गाया उसी राग मे भागवत के दशम स्कन्ध के आधार पर श्रीकृष्णचरित गान के रूप मे लिखिए।[1] राजा की आज्ञा पाकर कवि ने 'कृष्णगाथा' लिखी जिसकी कीर्ति की धवलिमा अब तक चारो दिशाओ मे व्याप्त है।

तुन्चत्तु रामानुजन एजुत्तच्छन

जीवन-वृत्त—

मलयालम भाषा को समुन्नत तथा समृद्ध बनाने का श्रेय जिन महानुभाव को प्राप्त है उनका पावन नाम है—तुन्चत्तु रामानुजन एजुत्तुच्छन। मलबार जिले के दक्षिण मे 'तृक्कणिटथूर' नामक एक गाव है। उस गाव के शिव-मन्दिर के पास 'तुन्चत्तु' नामक घर मे इन सार्वभौम कवि का जन्म हुआ।[2]

एजुत्तच्छन शब्द का सकेतार्थ है 'गुरु'। उसका वाच्यार्थ है—एजुत्त=लेख, अच्छन=पिता, अर्थात् विद्या देने वाला पिता या गुरु। जहा एजुत्तच्छन का जन्म हुआ उस स्थान से लोग अब भी रेत ले जाते हैं और उसीपर अपने बच्चो को अक्षराभ्यास कराते हैं। लोगो का विश्वास है कि वहा की रेत पर अक्षराभ्यास करने वाले पडित निकलते हैं।

१ भाषा-साहित्य-चरित्रम्—भाग १, पृ० १४६।
२ केरल-भाषा-साहित्य-चरित्रम्—ले० उल्लूर, पृ० ४८१।

भक्त कवि एजुत्तच्छन' या तुन्चत्तु आचार्य के वास्तविक नाम के सम्बन्ध मे अब भी वाद-विवाद जारी है। श्री आर० नारायण पणिक्कर कहते हैं कि उनका नाम रामानुज होगा।[1] पि० के० नारायण पिल्लै का सन्देहात्मक कथन है कि कवि का नाम 'करुणाकर' है और एक स्थान पर उन्होने लिखा है कि कवि 'अज्ञातनामा' थे।[2] डाक्टर चेलनाट अच्युत मेनोन लिखते हैं—नाम के झगडे मे पडकर वाद-विवाद करना अच्छा नही। जिस महात्मा ने 'भारत', 'रामायण' जैसे दो महत्त्वपूर्ण ग्रन्थो का निर्माण किया उसे लोगो ने कृतज्ञतापूर्वक ही एजुत्तच्छन की पदवी दी होगी। चाहे जो हो, केरल प्रान्त के लोग कैरली के पिता को तुन्चत्तु एजुत्तच्छन नाम से पुकारकर बडी भक्ति से उनका स्मरण करते हैं।[3]

तुन्चत्तु एजुत्तच्छन के जन्म के काल के बारे मे भी मतभेद है। अधिकाश विद्वानो का मत है कि उनका जन्म ई० सन् १५२६ और १७२६ के बीच मे हुआ।[4] कवि के वैयक्तिक जीवन की घटनाओ से लोग अब भी अपरिचित हैं। भगवान् की पूजा करना, ग्रन्थो का निर्माण करना, मन्दिरो और तीर्थस्थानो के दर्शन करना आदि इनके मुख्य कार्य थे, इतना ही कहा जा सकता है।

अपनी ज्ञान-पिपासा को बुझाने के लिए एजुत्तच्छन ने कई साधुओ का सत्सग किया। उनकी अध्यात्मरामायण से पता चलता है कि वे किसी विशिष्टाद्वैताचार्य के शिष्य रह चुके थे।[5] तमिल, तेलुगु आदि भाषाए वे जानते थे। कहा जाता है कि उनकी अनूदित कृति अध्यात्मरामायण का मूल का ग्रन्थ तेलुगु लिपि मे है। 'हरिनामकीर्तन' नामक उनकी कृति मे यो लिखा है - मेरे मन मे श्री नीलकण्ठ गुरु वास करे। हे भगवान्! विष्णो, मैं आपसे प्रार्थना करता हू कि हमेशा मेरी रसना को प्रसगानुरूप उचित शब्दो का प्रयोग करने की शक्ति मिले।[6] इस पद से समझा जा सकता है कि उनके गुरु श्री-नीलकण्ठ नामक एक महान् व्यक्ति थे। कुछ विद्वानो की राय है कि उनके गुरु श्री नील-कण्ठ नही थे, किन्तु अधिकाश विद्वान् लोग मानते हैं कि श्री नीलकण्ठ ही थे उनके गुरुवर्य।

कवि गम्भीर प्रकृति के मनुष्य थे, तथापि उनकी कृतियो मे हास्य का सुन्दर पुट है। श्रोताओ के हृदय पर इसका बडा गहरा प्रभाव पडता है। 'भारत' नामक उनकी

---

१ प्रदिक्षणम से पृ० ६७, लेखक डा० अच्युत मेनोन।
२ तु चत्तु एजुत्तच्छन—ले० पि के नारायण पिल्ला, पृ० ६।
३ एजुत्तच्छन और उनका समय—डा० अच्युत मैनोन, पृ० ५७।
४ केरल भाषा-साहित्य-चरित्रम्, भाग २,—ले० आर० नारायण पणिक्कर, पृ० ७।
५ एजुत्तच्छन—लेखक पि के नारायण पिल्ला, पृ० २४
६ अनूपेणमेन्मनसि, श्री नीलकठ गुरु।
अम्भोरुहाक्षमिति वाडत्तन्तु आनुमिह हरिनामकीर्तन—पृ०, ले० एजुत्तच्छन।

पुस्तक के निम्नलिखित अवतरण से इस कथन की पुष्टि होती है—सजय धृतराष्ट्र का सन्देश लेकर धर्मपुत्र के पास जाते हैं। सजय को दूर से देखते ही धर्मपुत्र ने सारी बाते ताड ली। उन्होने पूछा—"क्यो सजय, दादाजी की क्या आज्ञा है ?"

सजय ने कहा, "महाराज की यही इच्छा है कि पुत्रो के बीच मे किसी प्रकार का झगडा न हो।"

तब धर्मपुत्र ने कहा, "अपने पिताजी को सुख पहुचाने का दायित्व मेरे ऊपर है। ऐसा न करने के कारण वे अशान्त बैठे हैं। यदि हम सन्यास ले ले तो उनको सुख होगा यह बात मैने जान ली है। राजसूय, यज्ञ करने के कारण मैं अग्नि मे कूदकर आत्म-त्याग नही कर सकता। सन्यास मैं ले लेता, पर मेरे अकेले के सन्यासी होने से काम नही चलेगा। भीम को भी तो वन जाना होगा, किन्तु पेटुओ मे सर्वप्रथम पेटू भीम कैसे सन्यास ले सकेगा ?[1]"

सजय फिर भी कहते हैं, "पितामह भीष्म, द्रोण जैसे गुरुजनो का वध कर आप कौन सा सुख पाना चाहते हैं ? इस तुच्छ ससारिक सुख के लिए भयकर सग्राम करना क्या अच्छा है ?"

इस प्रश्न का धर्मपुत्र ने जो उत्तर दिया है उससे कवि की गभीरता का पता चलता है। उत्तर का सार यह है—तुमने जो कुछ कहा उसका मर्म मैने समझ लिया, किन्तु याद रखो कि सबल भीष्म, द्रोण जैसे लोग रणक्षेत्र मे युद्ध करके मरेगे ही।[2]

एजुत्तच्छन का दूसरा यह गुण था कि वे कृष्ण के उदार भक्त थे। उनके लिए राम, कृष्ण, शिव, ब्रह्मा सब बराबर थे। अत उनकी कविताए पढकर हम यह निर्णय नही कर सकते कि वे रामभक्त कवि थे या कृष्ण-भक्त। मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र-जी की स्तुति वे जिन शब्दो मे करते थे उन्ही शब्दो मे वे श्री कृष्ण की भी स्तुति करते थे। वे अपने को राम और कृष्ण का किकर समझते थे। शत्रुओ द्वारा श्री राम और कृष्ण को आतकित दिखाने मे कवि को बडा सकोच होता है। कालियनाग कृष्ण को डसने लगता है ऐसा कहते और लिखते हुए हमारे कवि को बडा सताप होता है और

---

१ स्वैरमेन जनकनु ञान तन्ने वरुत्तेणम
स्वैरक्केडुणिटड्डतिनेत्तायूक निमित्तमाय

एन्नतिनष्टग्रामि सन्यासि भीम सेनन
इन्तुल्लजनड्डलिलेत्रयु बहुभोक्ता
—भागवतम् उद्योगपर्व—पृ० १९८, एजुत्तच्छन।

२ वेल्लयिल परञ्जोरु निर्मलवाक्कुतन्टे-
युल्लिल नी सग्रहिच्चोरर्थमोटरिञ्ञु ञान।
केल्क्क सजयायकि। लूक्कुल्ल भीष्मादिकल
पोर्फ्कलम तन्निल वीणुमरिक्कुम मटियाते।
—वही, पृ० १९९।

क्रोध आता है। वे लिखते हैं

"लक्ष्मी देवी अपने कोमल करकमलो से बडे आनन्द के साथ कृष्ण भगवान् के जिन सुन्दर पैरो को हलके-हलके दबाती हैं उन्हीको दुष्ट कालियसर्प डस रहा है।"[1] किन्तु उससे किसी प्रकार की हानि नहीं हुई। यह देखकर वह नीच फिर नन्दनन्दन के मर्मस्थलो पर डसने लगा। (कवि आपे से बाहर होकर कहते हैं, "नन्द के प्यारे तथा निरीह पुत्र को कौन इस प्रकार सता सकता है ? बेशक वह दुष्ट ही है," और अन्त मे कहते हैं, "हे मेरे प्यारे भगवान् ! आप और कही न जाए। मेरे मन रूपी सरोज मे वास करें।"[2]

भक्त-कवि तुलसीदास, सूरदास आदि के समान ही एजुत्तच्छन भी नाम या यश या धन किसीकी आकाक्षा नही रखते थे। कुछ विद्वानो का मत है कि इनका स्वर्गवास ई० सन् १५५६ मे हुआ।[3]

काव्यग्रन्थ—

यद्यपि एजुत्तच्छन ने कई कविताए रची हैं पर 'अध्यात्मरामायण' और 'भारतम्' ये दोनो ही उनकी सर्वश्रेष्ठ कृतिया हैं। सभी विद्वान् एक कण्ठ से घोषित करते हैं कि एजुत्तच्छन के लिखे 'रामायण' और 'भारतम्' कैरली साहित्य-नभोमण्डल मे सूर्य और चन्द्र के समान चमकने वाले ग्रन्थ हैं। इनके अतिरिक्त 'श्रीमद्भागवतम्' 'चिन्ता-सतानम्', 'हरिनामकीर्तनम्', 'ब्रह्माण्डपुराणम्', 'देवीमाहात्म्यम्' आदि पुस्तके भी एजुत्तच्छन की लिखी हुई मानी जाती हैं। 'अध्यात्म-रामायणम्' तथा 'उत्तर-रामायणम्' मे राम की कथा है। उनकी कृति 'भारतम्' कृष्णभक्ति से ओतप्रोत है, अत उसका परिचय हम पहले देंगे।

'भारतम्' एजुत्तच्छन के प्रतिभापूर्ण काव्य का उत्कृष्ट उदाहरण है। यह सस्कृत महाभारतम् का स्वैर अनुवाद है।[4] डा० अच्युतमेनोन लिखते हैं कि जिस भक्ति का बीज एजुत्तच्छन ने बोया था, उसका सुगन्धित फूल है 'रामायणम्', और उसका सरस फल है 'भारतम्'[5] अनुवाद मे मूल ग्रन्थ का बहुत सा भाग यत्र-तत्र छोड दिया गया है। उदाहरणार्थ, गीता का भाग बहुत ही सक्षेप मे देते हुए उन्होने कहा है, "हे अर्जुन ! तुम दीनता और चपलता छोडो, यदि क्षत्रिय होकर अपना कर्तव्य छोड दोगे तो अन्य राजागण तुम्हारा उपहास करेंगे। इसलिए हे पार्थ, भय छोडकर युद्ध करो, मत उदासीन होओ। तुम जो देखते हो वह मैं हू। इस प्रकार के दार्शनिक विचार उपनिषदो

१ श्री महाभागवतम्, पृ० २७१, प्रकाशक सुब्बय्या रेड्डयार
२ श्री महाभागवतम्, पृष्ठ २७१, प्रकाशक सब्बाय्या रेड्डयार।
३ एजुत्तच्छन और उनका समय—ले० डा० अच्युत मेनोन, पृष्ठ ६३।
४ एजुत्तच्छन और उनका काल—ले० डा० अच्युत मेनोन, पृष्ठ १२८।
५ एजुत्तच्छन और उनका काल—ले० डा० अच्युत मेनोन, पृष्ठ १२७।
६ भारतम्—ले० एजुत्तच्छन, पृष्ठ २१६।

में पाए जाते हैं इसलिए ज्ञानी लोग इसे गीता कहते हैं।[1]

इसके अतिरिक्त 'सम्भव' और 'अरण्य' पर्व के बहुत अश छोड दिए गए हैं। एजुत्तच्छन की 'भारतम्' कृति के मूल ग्रन्थ का आदिपर्व नही है, उसके स्थान पर पौलोमम और आस्तिकम नामक दो सर्ग हैं, जिनमे पुस्तक की भूमिका-सम्बन्धी बाते लिखी गई हैं। पहले पर्व मे जनमेजय का सर्पत्याग और सभव पर्व से स्वर्गारोहण तक जो घटनाए हुई उनका सक्षिप्त वर्णन, उदक की कथा और सर्पयज्ञ करने के लिए जनमेजय को उपदेश आदि प्रसग दिए गए हैं। दूसरे पर्व 'आस्तिकम्' मे राजा का आत्मत्याग, आस्तिक का आगमन और उनके आग्रह से यज्ञ की समाप्ति वर्णित है। तीसरा सभव पर्व है, जहां से भारत की कथा का आरम्भ होता है। एजुत्तच्छन की राय मे वही से भारत की कथा आरम्भ होती है। सम्भव पर्व में कथा की पुनरावृत्ति हुई है और सस्कृत महाभारत के सग्रहकर्ता श्री व्यास की कथा भी इस पर्व मे कही गई है। ययाति और शकुन्तला का आख्यान कहकर कवि ने कौरव-पाण्डवो की कथा का श्रीगणेश किया है। खाण्डव बन-दाह के साथ सम्भव पर्व समाप्त हो जाता है। इसी समय यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि कृष्ण पाण्डवो की सहायता करने के लिए पूर्ण रूप से तैयार हैं। 'भारतम्' मे 'अरण्यम्' और ऐषिकम् दो छोटे पर्व हैं। शेष पर्व सस्कृत मे महाभारत के पर्वों के समान ही हैं। केवल अन्तर यह है कि गीता, अनुगीता और कई उपाख्यान छोड़ दिए गए हैं। अरण्यम् पर्व मे नल तथा रामायण की कथाओ का समावेश है। अन्य बहुत सी कथाए भी हैं जिनका यहा उल्लेख करना अनावश्यक है। रामायण की सारी प्रमुख घटनाओ का वर्णन बडे सुन्दर ढग से किया गया है। उनमे कुपित होकर लक्ष्मण का किष्किन्धा-गमन, लक्ष्मण के आने का समाचार सुनकर वानरो का थर-थर कापना और घबराना, हनुमान् जी के उपदेश के अनुसार लक्ष्मण का स्वागत करने के लिए तारा को भेजना, सुचतुरा रमणी के रूप मे तारा को चित्रित करना, लक्ष्मण को शान्त करने के लिए तारा का यत्न और उसमे उसका सफल होना आदि बाते अत्यन्त सरस शैली मे एजुत्तच्छन ने लिखी हैं।

कवि की दूसरी कृति 'महाभारतम्' के अधिक भाग मे पाण्डवो की कथा है तथापि कथा का सूत्र कृष्ण के ही हाथ मे है। समस्त घटनाओ के बीच मे उनका अलौकिक व्यक्तित्व चमकता रहता है। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने कृष्णचरित को अकित करने के लिए ही महाभारत का आख्यान साधन के रूप में चुना है।

द्रौपदी के विवाह के समय से पाण्डवो और श्री कृष्ण की घनिष्ठता बराबर बढ़ती जाती है। यहा तक कि कृष्ण अपनी बहन सुभद्रा का हरण करने की अनुमति अर्जुन को दे देते हैं और बलराम को समझा-बुझाकर राजी कर लेते हैं। राजसूय यज्ञ में पाण्डव कृष्ण को अपना कुलदेव मानकर उन्हीका पूजन करते हैं। भरी सभा में जब दु शासन सती द्रौपदी का वस्त्र हरण करने के लिए सन्नद्ध हो जाता है और द्रौपदी कातर स्वरो

---

१ भारतम्' '—लेखक एजुत्तच्छन, पृष्ठ २१६।

मे आत्मरक्षा के लिए प्रार्थना करती है, तो कृष्ण उसे बचाते हैं। इस प्रकार की घटनाओ को प्रमुखता देकर कवि का उद्देश्य यह सिद्ध करना है कि श्री कृष्ण अपने भक्तो की सहायता करने के लिए प्रत्येक क्षण तत्पर रहते हैं। कभी-कभी तो वे अपने भक्तो की मान-रक्षा के लिए अपनी ही प्रतिज्ञा तोड देते हैं। साम, दाम, भेद, दड हर प्रकार से वे अपने भक्तो की रक्षा शत्रुओ से करते हैं।

कवि ने सर्वत्र कृष्ण को त्राता और रक्षक के रूप मे चित्रित किया है। अपने दूसरे ग्रन्थ भागवत मे उसने कृष्ण की बाललीलाओ को प्रधान मानकर उनका मधुर वर्णन किया है। उसने 'भारतम्' मे ही कृष्णचरित्र का अलौकिक महत्त्व प्रदर्शित करने के लिए, कृष्ण के युवाकाल के कार्यकलापो का भी वर्णन कर दिया है। ग्रन्थ मे सर्वत्र उनकी महिमा गाई गई है, इसलिए कृष्णभक्तो की रचनाओ मे 'भारतम्' का प्रमुख स्थान है। केरल प्रान्त के लोग ईश्वराराधना के रूप मे शाम के समय बडी भक्ति से उसका गायन करते हैं और विश्वास करते है कि उसके श्रवण मात्र से ही उनके पाप नष्ट हो जाएगे।

पून्तानम नंपूतिरि

जीवनवृत्त—

कैरली साहित्य के भक्त कवियो मे पून्तानम नपूतिरि का प्रमुख स्थान है। जिस प्रकार तुलसीदास 'सियराममय सब जग जानि। करौ प्रणाम जोरि जुग पानि।' मे विश्वास करते थे, वैसे ही पून्तानम सारे जगत् को गोपालकृष्णमय जानकर सदैव उनकी स्तुति करते थे। उन्होने भी कृष्ण के पादारविदो मे काव्य-ग्रन्थो की पुष्पमाला गूथकर अर्पित की।

जन्मकाल और स्थान—मलाबार जिले के वल्लुवनाडु तहसील के एक गाव मे सन् १५५५ ई० मे इनका जन्म हुआ।[1] उनके घर का नाम था 'पून्तानम'। अत उन्हे पून्तानम कहकर लोग पुकारते हैं। नपूतिरि जाति के पून्तानम थे। उनके गुरु श्री नीलकठ कवि थे जिन्होने 'तैकलनाथोदयम्' नामक एक उत्तम काव्य की रचना की है। अपने गुरु पर बडी श्रद्धाभक्ति प्रकट करते हुए, पून्तानम ने अपनी प्रसिद्ध रचना 'श्रीकृष्ण-कर्णामृतम्' मे लिखा है, "श्री नीलकण्ठ गुरु के चरणारविन्द की रज के प्रसाद से श्रीकृष्ण की लीलाओ का वर्णन मै कर सका।"[2]

भक्तिभावना—कवि जन्म से ही ईश्वरभक्त थे, धार्मिक कार्यों मे बडी निष्ठा से मन लगाते थे और सच्चे गृहस्थ की भाति जीवन बिताते थे। दक्षिण भारत के प्रसिद्ध गुरुवायूर[3] के श्री कृष्णमन्दिर मे जाकर वे सदा श्री कृष्ण की पूजा करते थे।

---

१ केरल भाषा-साहित्य-चरित्रम्—भाग २, पृष्ठ ४०।

२ श्रीकृष्णकर्णामृतम्, पृष्ठ १।

३ गुरुवायूर एक छोटे शहर का नाम है जो दक्षिण मालाबार मे बसा है।

भागवत का पारायण करना उनका दैनिक कार्य था। उनकी भक्ति देखकर लोग दग रह जाते थे।

भक्त कवि पून्तानम के सम्बन्ध मे कई कथाए केरल प्रान्त मे प्रचलित है। एक दिन कवि अपनी एक कविता लेकर अपने पूज्य मित्र 'मेलपत्तूर नारायण भट्टतिरि' के पास गए। 'भट्टतिरि' उस समय के सस्कृत पण्डितो मे सर्वश्रेष्ठ समझे जाते थे। उन्होने पून्तानम से आगमन का कारण पूछा तो पून्तानम ने प्रार्थना की, "मेरी इस तुच्छ कृति को पढकर अशुद्धिया सुधारने की कृपा करे।" भट्टतिरि ने कहा, "यह तो भाषा (मलयालम) मे लिखी गई है, और किसीको दिखाओ।" भट्टतिरि ने सोचा होगा कि मेरे जैसे भारी पण्डितो को मलयालम भाषा की रचना पढकर उसे सुधारना शोभा नही देगा। खैर, भट्टतिरि का उत्तर सुनकर पून्तानम बहुत दु खी हुए और अपने घर लौटे। अपने इच्छित कार्य मे असफल होने के कारण उन्हे रात भर नीद नही आई।

उसी रात भट्टतिरि को वातज रोग से बडी पीडा हुई। कहा जाता है कि पहले एक बार श्री कृष्ण की पूजा से ही उन्हे आराम मिला था। अब की बार भी जब वे असह्य पीडा स तडपने-चिल्लाने लगे तो कातर स्वर से श्री कृष्ण की उन्होने प्रार्थना की। आधी रात बीतने पर उन्होने एक स्वप्न देखा कि श्री कृष्ण स्वय दर्शन देकर कह रहे है—'तुम मेरे भक्त-कवि की कविता पढकर उसका दु ख जल्द दूर करो, तब तुम्हारी बीमारी दूर हो जाएगी।' भट्टतिरि बडे सवेरे ही पून्तानम के पास गए। उन्हे देखते ही कवि की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। भट्टतिरि ने कविता पढी और मुक्त कठ से उसकी प्रशसा की। उस दिन से उनकी मित्रता बहुत घनिष्ठ हो गई।

पून्तानम की निर्भीकता और सच्ची भक्ति प्रकट करने वाली एक दूसरी कथा इस प्रकार है —एक दिन कालिकट के राजा ने पून्तानम को अपने दरबार मे बुलाया। भक्ति के सम्बन्ध मे चर्चा हुई। राजा बहुत प्रसन्न हुए और उन्होने कवि को कई इनाम दिए। कुछ दिन राजधानी मे रहने के बाद पून्तानम घर लौट रहे थे। शाम को रास्ते मे कुछ डाकुओ ने उन्हे घेरकर सब कुछ छीन लिया और कहा कि जान बचाना हो तो तुरन्त भाग जाओ। जवाब मिला कि मै प्राण के मोह से भागने वाला कायर नही हू। डाकू कुपित होकर उनका गला घोटने लगे तो वे श्री कृष्ण की प्रार्थना करने लगे— हे भगवान्, द्रौपदी की रक्षा करने, गजेन्द्र को नक्र की दाढ से छुडाने के लिए आप जिस वेग से दौडे, मेरी रक्षा करने के समय आपकी वह टेक कहा गई? कवि मूर्च्छित हो गए। होश आने पर आखे खोली तो देखा राज्य के सेनापति तथा मन्त्री करुणाकर मेनोन वहा खडे थे। डाकू पकडे गए और कडी सजा दी गई। कवि ने प्रसन्न होकर अपनी अगूठी उपहार के रूप मे मन्त्री को दे दी। गुरुवायूर पहुचकर वे श्री कृष्ण के मन्दिर मे दर्शन और प्रार्थना करने लगे। जब वहा के पुजारी ने उनको एक अगूठी देकर कहा कि कल रात स्वप्न मे श्री कृष्ण ने दर्शन देकर यह अगूठी मुझे दी और आज्ञा दी कि आपके आते ही यह आपको दे दी जाए, तब कवि के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। अगूठी वही थी जिसे उन्होने स्वय मन्त्री को उपहार के रूप मे दिया था। नि सन्देह मन्त्री के रूप मे प्रकट होकर श्री कृष्ण

ने ही डाकुओ से उनकी रक्षा की थी। तब से श्री कृष्ण के प्रति पून्तानम की भक्ति सौ गुनी बढ गई।

केरल प्रान्त मे जितने भक्त हुए उनमे पून्तानम अद्वितीय समझे जाते हैं। उन्होने जो भक्ति-स्नेह-पूरित ज्ञान-दीप जलाया वह अब भी जल रहा है। उनकी मृत्यु के बाद भी हजारो भक्तो ने उनके दिखाए मार्ग पर चलकर श्री कृष्ण की पूजा की है, कर रहे है और करेगे। पून्तानम का निवास-स्थान, गुरुवायूर-स्थित श्री कृष्ण-मन्दिर अब कालोचित परिवर्तन के साथ केरल का ही नही, सारे भारत का आराधना-केन्द्र बन गया है। जिसके हृदय मे लवमात्र भी भक्ति है वह गुरुवायूर की श्याममनोहर मूर्ति के दर्शन करके अपने को धन्य समझता है।

रचनाए—

कवि की कई पुस्तके प्रसिद्ध है यथा—सन्तानगोपालम् पाना, श्रीकृष्णकर्णामृतम्, ज्ञानप्पाना, घनसघ-स्तोत्रम, पार्थ-सारथी-स्तवम्, आनन्दनृत्तम, नट्टेट्टुहरि, आनन्दनृत्तम्, कृष्णलीला।

सन्तानगोपालम् पाना—

यह एक छोटी सी सरस रचना है। इसके चार सर्ग या पाद हैं। एक ब्राह्मण था, जिसके बच्चे जन्म लेते ही मर जाते थे। वह ब्राह्मण श्री कृष्ण को अपनी करुणा भरी कहानी सुनाता है और इस विपत्ति से बचाने की प्राथना करता है। श्री कृष्ण उसे सान्त्वना नही देते। उसकी प्रार्थना के समय अर्जुन वहा उपस्थित थे। वे कहते हैं—जब तुम्हारी पत्नी फिर गर्भवती होगी तब मुझे सूचना देना। प्रसव के समय बच्चे को मृत्यु के पजे से छुडाने की व्यवस्था करूगा। यदि सफलता न मिले तो मै आग मे कूदकर आत्महत्या करूगा। यह कठोर प्रतिज्ञा सुनकर ब्राह्मण चला जाता है।

ब्राह्मण की पत्नी गर्भवती होती है। प्रसवकाल समीप आने पर अर्जुन वहा आते ह और प्रसूतिगृह के चारो ओर वे एक शरकूट का निर्माण करते हैं। अचरज की बात है कि इस बार बच्चे के जन्म के समय उसका शरीर भी गायब हो गया। फिर अर्जुन बच्चे की खोज मे निकलते हैं और अपने प्रयत्न मे असफल होकर प्रतिज्ञा के अनुसार आग मे कूदने को तैयार होते हैं। उस समय श्री कृष्ण आकर उन्हे रोकते है और उन्हे अपने साथ लेकर वैकुठ-लोक पहुचते हैं। वैकुण्ठ-यात्रा-वर्णन, वैकुण्ठ-वर्णन, कृष्ण और अर्जुन की विष्णु भगवान् से भेट, उनका सवाद और ब्राह्मण के सारे बच्चो को वैकुण्ठ से लाकर ब्राह्मण को सौपना आदि प्रसग बडी सुन्दरता से लिखे गए हैं।

कहा जाता है कि विष्णुलोक के बारे म लिखने का अवसर आया तो भक्त कवि घबराए। उन्होने विष्णुलोक देखा नही था। वे ध्यान-मग्न हुए। विष्णु ने प्रकट होकर उनको विष्णुलोक दिखाया।

सन्तानगोपालम्—

इसकी कथा कई कवियो ने लिखी है, तथापि पून्तानम का कृति के समान उत्तम, सरस, कोमल, सरल और सुन्दर रचना दूसरी नही है। उसकी प्रवाहमयी भाषा, बोध-

गम्य विचार और तन्मयतापूर्ण भक्ति आदि सभी को हठात् आकर्षित करते है।

श्रीकृष्णकर्णामृतम्—

इसमे भागवत के दशम स्कन्ध के समस्त प्रसगो का वर्णन है परन्तु मनमोहन मुरलीधर की बाललीलाओ का वर्णन विशेष तल्लीनता से किया गया है। यह ग्रन्थ इतना लोकप्रिय है कि इसे अधिकाश पद्यभक्त लोग बडे सवेरे उठकर श्रद्धा और भक्ति के साथ गाते हैं। मधुर शब्दो मे लिखी यह भक्तिरसमयी रचना बहुत सुन्दर है। एक पद का साराश यो है श्री कृष्ण वृन्दावन के लिए अलकार, रिपु समूह के लिए भयदाता, दूध-मक्खन तथा छाछ की चोरी करने वाले, बडे-बडे पापो का नाश करने वाले और वनिताओ के लिए अन्नदाता है। ऐसे आपके नूपुरो की ध्वनि मेरी मति का कलक मिटाने की कृपा करे।[1]

श्री बिल्वमगल[2] नामक एक आचार्य ने भी 'श्रीकृष्णकर्णामृतम्' लिखा है जो भक्ति-रस की एक उत्तम कृति है। श्रीकृष्ण-बाललीला के वर्णन के साथ उसमे रासलीला का वर्णन अच्छी तरह किया गया है। लेकिन पून्तानम ने श्रीकृष्णावतार की सारी लीलाओ का वर्णन कर दिया है। यह उसकी और एक विशेषता है। नाम की महिमा के बारे मे उन्होने लिखा है। भाषा सरल और मजी हुई है। कही-कही व्याकरण की त्रुटिया पण्डितो को आपत्तिजनक अवश्य जान पडती हैं, परन्तु भक्तो के लिए तो उनकी कविताए मुक्ताफल हैं।

ज्ञानप्पाना—

जैसे एजुत्तच्छन ने 'किलिप्पाट्टु' और श्री कुचन नम्बार ने 'तुल्लल' पद्धति निकाली वैसे ही पून्तानम ने 'पाना' पद्धति निकाली है। इस पद्धति मे अन्य केरलीय कवियो ने भी अपनी रचनाए लिखी हैं। किन्तु पून्तानम को ही इसमे सब से अधिक सफलता प्राप्त हुई। मलयालम भाषा म बहुत से विद्वानो ने अमरूल्य ज्ञान ग्रन्थो की रचना की है परन्तु 'ज्ञानप्पाना' के समान सरल सुन्दर गम्भीर ज्ञान-प्रदायिनी कृति दूसरी नही है। इसमे ससार की अनित्यता, मानव-जीवन का उद्देश्य, ससार के प्रति वैराग्य आदि विषयो का निरूपण बडी विद्वत्ता और काव्यात्मक ढग मे किया गया है। एक प्रकार से इसमे सारे उपनिषदो का सार सगृहीत है। एक बार पढने पर ही पाठक ग्रन्थ की सरलता से प्रभावित हो उठेगा। उसकी शैली इतनी सरल और प्रसादात्मक है कि एक अपढ को भी उसकी भाषा और आशय को समझने मे कठिनाई नही पडती।

'घनसघ'—

यह एक उत्तम कीर्तन ग्रन्थ है।

१ श्रीकृष्णकर्णामृतम्, पदसख्या २४।

२ आचार्य श्री बिल्वमगल के बारे मे कई कथाए प्रचलित है। श्री उल्लूर परमेश्वरय्यर ने साबित किया है कि उनका जन्म आन्ध्र या उत्कल देश मे नहीं हुआ, बल्कि केरल देश-वासी है और उन्होने श्री कृष्ण के सम्बन्ध मे बहुत सी सुन्दर रचनाए रची है।
—केरलभाषा साहित्य-चरित्रम्—भाग १, पृष्ठ १५१।

नूट्टेट्टुहरि—

इसमे एक सौ आठ हरिकीर्तन हैं। यह कीर्तन लोगो के हृदय मे भक्ति पैदा करने का उत्तम साधन है। भक्ति-मार्ग पर चलने वालो के लिए ये कीर्तन पाथेय का काम देते हैं।

पार्थसारथीस्तवम्—

यह एक खण्डकाव्य है।

आनन्दनृत्तम्—

इस रचना के सम्बन्ध मे एक किंवदती प्रचलित है। एक दिन कवि ने भगवान् कृष्ण के चरणोदक से ही अपने मित्रो को प्रीतिभोज देकर सतुष्ट करने का निश्चय किया। समस्त आमन्त्रित मित्र पून्तानम की इस मूर्खता पर हसने लगे। हसी उडाने के उद्देश्य से सभी निमन्त्रित लोग उपस्थित हुए। कुछ समय के बाद वे पूछने लगे, "अरे पून्तानम ! कृष्ण कहाँ हैं ? अभी तक आए नही। उनको जल्दी बुलाओ। समय बहुत हो गया है।" इतने मे श्री कृष्ण के पाञ्चजन्य शख की ध्वनि सुनाई देने लगी। फिर नूपुर ध्वनि भी सुनाई पडी। मित्रगण अपने चर्म-चक्षुओ से भगवान् का दर्शन करने मे असमर्थ थे, किन्तु भक्तशिरोमणि कवि पून्तानम श्री कृष्ण को सिर से पैर तक देख सके और उन्होने जी भरकर श्री कृष्ण की स्तुति की। कहा जाता है कि श्री कृष्ण के उस स्वरूप को प्रत्यक्ष देखकर ही 'आनन्द-नृत्तम्' नामक कविता की रचना उन्होने की। अन्त मे ब्राह्मण लोग लज्जित होकर अपने-अपने घर चले गए।

कृष्णलीला—

अकारादि अक्षरो से प्रत्येक पक्ति को आरम्भ करते हुए यह रचना लिखी गई है।

कुंचन नंप्यार

जीवनवृत्त—

श्री कुचन नप्यार का जन्म 'किल्लिक्कुरिशि' नामक एक गाव मे हुआ था। यह गाव दक्षिणी रेलवे के 'लकडी' स्टेशन के पास स्थित है। घर का नाम था 'कलक्कत्तु'। इनका जन्म सन् १७०५ ई० माना गया है।[1]

कवि ने एक मन्दिर का निर्माण कराया था। इसके एक पत्थर पर खुदे हुए श्लोक से पता चला है कि उनका असली नाम राम था। उनके पिता 'किटङ्ङूर'[2] निवासी एक ब्राह्मण थे और स्थानीय मन्दिर मे काम करते थे। मलयालम भाषा के महाकवि और प्रकाण्ड पण्डित श्री उल्लूर एस० परमेश्वरय्यर का कथन है कि कुचन नप्यार के गुरु श्री नारायण भट्टतिरि थे।[3] उनका कुटुम्ब 'तृक्कार्यमन इल्लम' नामक से प्रसिद्ध था।

बचपन मे ही कवि ने सस्कृत भाषा का गम्भीर अध्ययन किया था। शिक्षा समाप्त

१ कुचन नप्यार नामक पुस्तक मे—ले० प्रो० बालकृष्ण वारियर, पृ० ३।

२ एक गाव का नाम है जो केरल में मीनच्चिल नामक तहसील में बसा है।

३ कुचन नप्यार—ले० प्रो० वारियर, पृ० १४।

करके वे उत्तर केरल मे राजाओ और रईसो के यहा रहकर सुन्दर कविताए करते रहे। उस समय प्रतिभासपन्न कविश्रेष्ठो को भी राजा-रईसो के आश्रित बनकर रहने के अतिरिक्त अपनी जीविका के लिए कोई उपाय नही दिखाई पडता था। यह प्रसन्नता की बात है कि उस समय के बहुत से राजा और रईस पण्डितो का तन मन धन से आदर करते थे। इसके अपवाद भी थे, यह हम नप्यार के कथन से जान सकते हैं। सस्कृत भाषा भली भाति अध्ययन करने के बाद नप्यार 'कोलत्तुनाट' नामक राज्य मे पहुचे, किन्तु किसीने उनका स्वागत नही किया। इस सम्बन्ध मे वे कहते हैं—"कोल राजा की नगरी मे दिन भर घूमने से भी अन्न नही मिलता, मानो यहा प्रतिदिन हरिवासर (एकादशी का उपवास) हो, और मच्छरो तथा खटमलो की कृपा से रात भर जागरण ही करना पडता है मानो यहा हर रात शिवरात्रि होती है।[1]

इस प्रकार कष्ट उठाते घूमते हुए कवि अन्त मे वेट्टत्तुनाट नामक एक छोटी रियासत मे पहुचे और वहा कुछ दिन ठहरे। उन्हीके वर्णन से पता चलता है कि वहा राजा की आज्ञा से उन्होने चन्द्रिकावीथि नामक नाटक लिखा जिसका शिवरात्रि के समय अभिनय किया गया।

श्री वीरराय के राज दरबार मे कुछ काल रहने के बाद नप्यार तलप्पल्लि तहसील मे मनक्कोट्टच्छन नामक एक धनवान के यहा जाकर रहे। कुछ वर्ष बाद मनक्कोट्टच्छन स्वर्ग सिधारे। उनके कोई सन्तान नही थी। अत उस घर की सारी सपत्ति कोच्चि राज्य के 'पालियत्तच्छन' नाम के एक नायर प्रधान के अधिकार मे आ गई। कहा जाता है कि आश्रित नप्यार भी अपने नये स्वामी के यहा रहकर कविता लिखने लगे। वही विष्णुविलासम् काव्य की रचना हुई।

पालियत्तच्छन के यहा रहते समय नप्यार कभी-कभी अपने पिता के घर किटङ्ङूर गाव को जाया करते थे। उस गाव के ब्राह्मण की सगति मे रहना कवि को बहुत प्रिय था। जब उनके पिताजी बूढे हो गए तो उन्होने अपने पुत्र नप्यार को अपने पास ही रखा। अपने गाव के निकटस्थ कुटमालूर, कुमार-नेल्लूर आदि स्थानो को, जहा ब्राह्मणो की सख्या अधिक थी, नप्यार प्रात जाया करते थे। इसी समय सयोग से अवलप्पुजा के राजा से उनकी भेट हुई। कवि की विद्वत्ता विनय और नैपुण्य आदि गुणो से राजा बहुत प्रसन्न हुए और उनको अपने राज्य मे आकर रहने का निमत्रण दे दिया।

इसी समय नप्यार के पिताजी का देहान्त हुआ और वे राजा की इच्छा के अनुसार अवलप्पुजा मे आकर रहने लगे। यहा सौभाग्य से कवि को अपनी योग्यता और विद्वत्ता प्रकट करने का एक अपूर्व अवसर मिला। राजा विद्वानो का बडा आदर करते थे। एक दिन पालक्काट से एक शास्त्री आए। उन्हे अपनी विद्वत्ता पर गर्व था। दरबार में उन्होने घोषणा की कि मै किसी भी पडित को शास्त्रार्थ तथा काव्य-सम्बन्धी चर्चा में हरा

१ कोलभूपस्य नगरे वासरा हरिवासरा ।
[illegible] शिवरात्रय ॥
—कुचन नप्यार, ले० प्रो० वारियर, पृ० १२ ।

सकता हू। जो कोई वाद-विवाद करने के लिए तैयार हो वह आगे बढे। ललकार सुनकर नप्यार के गुरुवर्य आगे बढे और वाद-विवाद करने लगे। कई दिनो तक वाद-विवाद चलता रहा। उसका अत होने के कोई लक्षण न दिखाई दिए। राजा को किसी महत्त्वपूर्ण कार्य से दूसरी जगह जाना था। तब उनको एक उपाय सूझ पडा। उन्होने कहा—पडितो! आपका वाद-विवाद मै कई दिनो से सुन रहा हू। आपमे से कौन महापडित है, इसका निर्णय करना टेढी खीर है। अत मैने निश्चय कर लिया है कि जो महाशय एक दिन मे बारह सर्ग का एक उत्कृष्ट काव्य लिख सकेगे वे ही सब से बडे पडित समझे जाएगे।

यह सुनकर शास्त्रीजी दग रह गए। काव्य-रचना उनकी शक्ति के बाहर की बात थी। विजय की आशा जाती रही। कवि के गुरुवर्य भट्टतिरि ने सोचा कि काव्य न लिख सकू तो नाम पर धब्बा लग जाएगा। उस समय नप्यार की अनुपस्थिति गुरुजी को बहुत खटकी। किन्तु आधी रात के समय नप्यार अचानक आ पहुचे तो गुरु की खुशी का ठिकाना न रहा। सारा समाचार जानकर उनके प्रिय शिष्य नप्यार अपने गुरुजी का नाम बनाये रखने के लिए कविता लिखने मे जुट गए। उन्होने अपने ग्यारह अन्य शिष्यो को भी बुला लिया। नप्यार स्वय एक सर्ग लिखते जाते थे और अन्य ग्यारह शिष्यो मे से प्रत्येक को एक-एक सर्ग लिखने के लिए क्रम से श्लोक के बाद श्लोक कहते जाते थे और वे लोग लिखते जाते थे। इस प्रकार लिख-लिखवाकर सूर्योदय के पहिले सपूर्ण काव्य गुरुदेव के कर-कमलो मे अर्पण कर दिया गया। इससे यह बात स्पष्ट है कि वे आशुकवि और सर्वतोमुखी प्रतिभा रखने वाले थे।

उनकी गुरु-भक्ति और विनय का भी यह उत्कृष्ट उदाहरण है। काव्य लिखकर उन्होने गुरुदेव से प्रार्थना की कि उनके आगमन के बारे मे राजा से न कहे।

काव्य श्रीकृष्णचरितम् मणिप्रवालम् दरबार मे राजा के सम्मुख उपस्थित किया गया। शास्त्रीजी का गर्व चूर-चूर हो गया। उन्होने हार मान ली। गुरुनाथ विजय-श्रीमडित हो गए। राजा को बाद मे मालूम हुआ कि विजयी काव्य के रचयिता नप्यार थे। तब से नप्यार के प्रति राजा का आदर बढ गया। नप्यार का यश चारो ओर फैल गया और सभी लोग उनका आदर करने लगे।

इतना होने पर भी नप्यार को गर्व छू भी नही गया था। उनकी गुरुभक्ति प्रशसनीय थी। गुरुदेव की वे सदैव पूजा करते थे। उनका पूर्ण विश्वास था कि गुरु रूठे तो शिष्य को और कही ठौर नही है। गुरुदेव की कृपा-दृष्टि प्राप्त करने के लिए वे सदैव प्रार्थना करते रहते थे और कहा करते थे कि गुरुकृपाहीन शिष्य की दशा कभी नही सुधरेगी। वे लिखते है, जो अपने गुरुजनो के चरण-कमलो का स्मरण करते हैं उन लोगो पर कभी कोई विपत्ति नही आती, यह बात सर्वसम्मत है। गुरुत्व हो तो वाणी सदैव सफल होगी।

कवि-कुल-तिलक कालिदास ने अपने को 'मद कवियश प्रार्थी' बतलाकर विनय का भाव प्रकट किया। एजुत्तच्छन ने अपने को 'अज्ञानिनामाद्य' कहा है। तुलसीदास ने भी यही भाव प्रकट किया है। नप्यार ने कई स्थानो पर अपने-आपको मूर्ख, अपढ आदि

कहा है। वे लिखते हैं—मैं मूर्ख वन्दनीय लोगो की सभा मे कथा सुनाने को तैयार होकर खडा हू। यह मेरे साहस के अतिरिक्त और कुछ नही।[1]

नप्यार केवल कवि ही नही थे। वे नृत्य और अभिनय-कला मे भी अद्वितीय थे। उनके एक नाटक के बारे मे ऊपर कहा जा चुका है। काव्य, नृत्य, अभिनय, वाद्य आदि का एकसाथ उपयोग करने की नई पद्धति कवि ने चलाई। इसे 'तुल्लल' कहते है। इसमे एक आदमी विशेष वेशभूषा म रगमच पर उपस्थित होकर किमी पौराणिक या वीर-रसपूर्ण कथा को काव्य-रूप मे कहता जाता है। साथ ही वह ताल तथा लय के साथ हावभाव दिखाकर अभिनय करता जाता है। वह कभी-कभी उछलता है, कूदता है। उसके साथी वाद्यघोष के साथ कविता-पाठ करते हैं। अभिनय तथा सगीत के द्वारा लोग कथा को अच्छी तरह समझकर आनन्द उठाते हैं।

केरल मन्दिरो मे कई प्रकार की कलाओ का जन्म हुआ है। उनमे एक है 'चाक्यार कूत्त'। चाक्यार एक जाति-विशेष है। समाजसुधार की इच्छा से पौराणिक कथाओ का आश्रय लेकर प्रचलित कुरीतियो का मनोरजक किन्तु तीखी भाषा मे खडन करना इस जाति-विशेष का काम माना जाता है। इसीलिए वे रगमच पर किसीकी मनचाही हसी उडा सकते हैं। उसका उत्तर देना मना है। एक दिन एक चाक्यार अबलप्पुजा के मन्दिर मे कथा सुना रहा था। उस समय कवि नप्यार बाजा बजा रहे थे। बाजा ठीक न बजने के कारण चाक्यार ने भरी सभा मे नप्यार की हसी उडाई। नप्यार बहुत लज्जित हुए। उन्होने चाक्यार को एक पाठ पढाने का सकल्प कर लिया। दूसरे दिन मदिर के एक स्थान पर नप्यार विचित्र वेष-विधान करके सगीत-वाद्य-विशेष के साथ नृत्य करने लगे। इससे और भी आकर्षित होकर जितने लोग चाक्यार के पास कथा सुन रहे थे सब नप्यार के सगीत तथा नृत्य से आकर्षित होकर उनके पास आए। कोई भी चाक्यार के पास न रहा। वह बहुत लज्जित हुआ। 'तुल्लल' पद्धति की लोकप्रियता प्रथम प्रयोग मे ही स्थापित हो गई। तुल्लल पद्धति के अनुसार अनेक कथाए नप्यार ने लिखी हैं। उनका अनुकरण कर कई कवियो ने बाद मे तुल्लल कविताए लिखी। किन्तु सभवत किसीको भी उनमे नप्यार के समान सफलता नही मिल सकी है। अपनी इस पद्धति की कई कथाए सरल कोमल-कात-पदावली मे लिखकर नप्यार ने मलयालम भाषा को समृद्ध करने के साथ-साथ अपनी कीर्ति को भी अमर कर दिया है।

श्री कुचन नप्यार की विद्वत्ता सर्वतोमुखी थी। उनके समय मे ऐसा शायद ही कोई उपलब्ध ग्रन्थ होगा जिसे उन्होने न पढा हो। उन्हे पढने की सुविधा भी उस समय काफी थी। उस समय के शासक, धनी, ज्ञानी लोग ग्रन्थो का मूल्य और उपयोगिता समझते थे। जनता भी पढने मे विशेष रुचि प्रकट करती थी। फलत कन्याकुमारी से लेकर गोकर्ण तक प्रत्येक तीर्थ-स्थान पर एक न एक बडा ग्रन्थालय अवश्य होता था। राजा के साथ तीर्थ-

१ मदनायुल्ल ज्ञान माहात्म्यमेरुन्न वन्दनीयन्मारिक्कि सभान्तरे
वन्नोरु सत्कथा चोल्लुन्नतुएटेन्नु तोन्निप्पुरप्पेट्टतेन्नुटे साहसम्।
—नप्यार, ले० प्रो० वारियर, पृ० ७३।

स्थानो के दर्शन करने के लिए नप्यार जाया करते थे। इसलिए इन ग्रन्थालयो से नप्यार ने पूरा लाभ उठाया होगा, इसमे सन्देह नही। इस अगाध अध्ययन के साथ उनकी स्वय-सिद्ध प्रतिभा भी उत्तरोत्तर बढती गई।

ईश्वर-भक्ति और गुरु-भक्ति के साथ समाज-सुधार की उत्कट इच्छा भी नप्यार की कविताओ से प्रकट होती है। सूरदास जैसे कवियो के समान उन्होने अपने काव्य-कुसम केवल देवार्चन के लिए ही नही सुरक्षित रक्खे। नप्यार कविता के द्वारा समाज की कुरीतियो को दूर करने के प्रशस्त ध्येय पर सदैव अटल रहे।

उनके अनेक महत्त्वपूर्ण गुणो मे प्रधान है उनका अपनी भाषा के प्रति प्रेम। वे मलयालम तथा सस्कृत के प्रकाण्ड पडित थे। फिर भी सर्वसाधारण के लिए विशेष रूप से मलयालम मे ही वे लिखना पसन्द करते थे। वे सदा सरस, सरल मधुर और प्रसादगुण-युक्त शब्दो का प्रयोग करते थे। वे लिखते हैं, "यद्यपि मैं मलयालम और सस्कृत दोनो मे ही अपने आशय अच्छी तरह प्रकट कर सकता हू, तथापि मैं मलयालम मे ही लिखता हू। सिपाही लोगो के लिए सस्कृत कठिन है। मलयालम मे लिखना एक दूषण होगा (लोग मुझे शायद पडित न कहेगे ?) तो भी उसे स्वीकार करते हुए मैं उसीमे लिखता हू।"[१]

मलयालम भाषा पर कवि का अधिकार भी सराहनीय था। अपनी इच्छा और विषय के अनुसार शब्दो का चयन करने मे इनकी बराबरी करने वाला कोई और कवि नही हुआ है। समस्त वाङ्मय दास्यभाव से उनकी सेवा मे सदा उपस्थित रहता था। शब्दो को खोज उन्हे कभी नही करनी पडती थी। सरस्वती उनपर सदा प्रसन्न रहती थी। जैसे क्षीरसागर के वक्ष-स्थल पर तरगे प्रचण्ड वेग से नृत्य करती और थिरकती रहती हैं, वैसे उनकी रसना पर शब्दसमूह नाचते रहते थे।

काव्य-ग्रन्थ—

श्रीकृष्णचरितम् मणिप्रवालम्, भगवद्दूत, भागवतम् [illegible] पतिव्रा-लुवृत्तम्, शीलावति-नल-चरित्र, शिवपुराण, विष्णु-गीता आदि उनके प्रमुख काव्य-ग्रन्थ हैं। इसमे से श्रीकृष्ण-सम्बन्धी प्रमुख रचनाओ का परिचय दिया जाता है।

श्रीकृष्णचरितम् मणिप्रवालम्—

मलयालम के प्रसिद्ध काव्यो मे इसका प्रमुख स्थान है। यह श्री नप्यार की प्रारभिक रचना है। इसमे बारह सर्ग हैं। श्री कृष्ण के अवतार का वर्णन पहले सर्ग मे किया गया है। दूसरे सर्ग मे पूतनामोक्ष की कथा हास्यरस मे लिखी गई है। नलकूबर आदि की कथा का वर्णन तीसरे सर्ग मे है। कृष्ण की बाललीलाओ का मनोमोहक वर्णन

---

१ भाषयाय परवानुमटियनु सस्कृतत्तिलुमोन्नुपोल
दोषहीन पटुत्व मन्यमुदिप्प तुणिटविदुन्नतिन
शेपयिल्ल भटज्जनगल धरिच्चिटा कटु सस्कृतम्
भाषयाय परयामतिल चिल दूषणम् वरुमेंकिलुम
—श्री कचन नप्यार—ले० प्रो० वारियर, पृ० ७२।

भी हम इसमे पाते हैं। वन-वर्णन और कालियनाग के अहकार का दमन आदि चौथे सर्ग मे सुन्दर भाषा मे चित्रित किया गया है। रास-क्रीडा मे इसके बारे मे पचम सर्ग मे लिखा गया है। छठे सर्ग मे इसका विशद वर्णन पाया जाता है। कस की कथा रुक्मणी-परिणय-जाबवान के साथ युद्ध करके विजयी होना, उनकी पुत्री को पत्नी रूप मे स्वीकार करना, बाणासुर का युद्ध, कौरव-पाडवो का युद्ध और सन्तानगोपाल आदि की कथा शेष सर्गों मे कवि ने अपनी मजुल शैली मे लिखी है।

भगवद्दूत—

यह भी कवि के बाल्यकाल की कृति है, तथापि सरसता या गम्भीरता मे यह किसी प्रकार भी कम नही है। यह काव्य चौदह भिन्न-भिन्न वृत्तो मे लिखा गया है। यह खडकाव्य इतना लोकप्रिय है कि इसकी चालीस हजार प्रतिया बिक गई हैं।

विषय—कौरव-पाडवो के बीच युद्ध का होना जब निश्चित-सा प्रतीत हुआ और दोनो पक्षो के प्रतिनिधि, दुर्योधन और अर्जुन युद्ध मे श्री कृष्ण की सहायता मागने की इच्छा सेजा रहे थे, तब श्री कृष्ण विचार करते हैं—अभी दुर्योधन और मेरे प्रिय मित्र अर्जुन दोनो मुझसे मिलकर युद्ध मे सहायता मागने के लिए यहा आएगे। दोनो ने ही ठान लिया है कि मैं कृष्ण को अपने पक्ष मे शामिल कर लूगा।[1] जब दोनो आए तब कपट-निद्रा से कृष्ण के जागने का वर्णन इस प्रकार किया है। 'निद्रा से जागने के बहाने अगडाई ली, हाथ-पैर फैलाए और अर्जुन को देखकर बोले।'[2] इसके बाद दुर्योधन का कृष्ण की सेना को चुन लेना और अर्जुन का निरस्त्र कृष्ण से सन्तुष्ट होना आदि बाते सक्षेप मे लिखी गई हैं।

कृष्ण धर्मपुत्र युधिष्ठिर के पास जाते हैं। यथाशक्ति उनका आदर-सत्कार किया जाता है। उस समय द्रुपद राजा के पुरोहित कौरवो के यहा से आकर सारा समाचार सुना देते हैं। दुर्योधन से सन्धि होना असम्भव है, अत क्यो अपना समय व्यर्थ बिताते हैं युद्ध करना ही अच्छा है।[3]

धृतराष्ट्र को मालूम हुआ कि युद्ध की सारी तैयारी हस्तिनापुर मे हो रही है और वे यह भी जानते थे कि धनजय से भिडने पर अपने दल की बरबादी ही होगी।[4] इसलिए सजय को बुलाकर समझाया कि वे धर्मपुत्र के पास जाकर नीति-सम्बन्धी बाते करे और उन्हे युद्ध से विरत होने का उपदेश दे। सजय धर्मराज के यहाँ आकर अपने स्वामी का सन्देश भली भाति सुना देते हैं। मेरा पुत्र दुर्योधन बडा मूर्ख है, भलाई का विचार भी उसके मन मे नही आता। मेरी बाते तो वह मानता नही। यह सब मेरे दुष्कर्मों का फल है। आप तो उदार हैं। आपसे सच्ची बाते करें तो उसका फल अच्छा ही होगा। कई जन्मो मे सुकृत करने के फलस्वरूप ही अन्त मे मनुष्य-जन्म मिलता है। ऐसे दुर्लभ नर

१ भगवद्दूत, पृ० १, पद स० ४।
२ भगवद्दूत, पृ० १, पद स० ११।
३ भगवद्दूत, दूसरा वृत्त, पृ० ४, पद स० ६।
४ भगवद्दूत, पृ० ४ पद स० ४३।

जन्म पाकर लडाई-झगडे मे उसे खोना निरी मूर्खता है।[1] यह समझाकर राज्यपालन में अधिक क्लेश है। इसकी चर्चा करते हैं। इस प्रकार सन्यास की महिमा आदि का सुन्दर वर्णन करके पाडवो को समझाने की चेष्टा की गई है।

धर्मपुत्र उसका समुचित उत्तर देते है—वैर रूपी तरु मन मे अकुरित हुआ है और बढा है। वह पुष्पित भी हुआ है और उसके फूल बिखर रहे हैं। उसकी जड सब कही फैल गई है। अत शान्ति से बैठना सोहता नही। दूसरो के लिए द्वेष रूपी तरु का पोषण करना अत्यन्त भयावह है। हे राजन्, धमकी देकर आगे काम नही चलेगा। चुगली से क्या प्रयोजन है ? बाकी सब शीघ्र ही अनुभव से विदित होगा।[2]

इतने मे कृष्ण आपे से बाहर होकर सजय से जो बाते करते हैं, वे कितनी नीति-पूर्ण है। वे कहते हैं—हे सजय, तुम जाकर धृतराष्ट्र को धर्मराज का सन्देश इन शब्दो मे सुनाओ, पिताजी ने जो उपदेश दिया वह अच्छा है। धर्मपुत्र आदि वन मे वास करे आदि उपदेश देकर उन्होने अपार कृपा की है। मित्रो की भावना से उसकी भावना निराली है। घमण्डी दुर्योधन गुलछर्रे उडाता रहे और पाँचो पाण्डव भयानक वन मे मारे-मारे फिरे। मेरे रहते यह न चलेगा। तुम जाकर उस बूढे से कहो कि कपट-भाव छोडकर रहना ही अच्छा है। पहले उन्होने बेचारे पाण्डवो के साथ कैसा बर्ताव किया। उन निरीह असहाय लोगो को लाख से बने महल मे जला देने की कोशिश की, भीम को विष दिया, चौपड खेलकर धोखेबाजी से उनका सर्वस्व छीन लिया। उस समय वह बूढा निश्चिन्त और चुप रहा। कौरव लोग क्या करते हैं ? अपने दोस्तो के साथ हँसी-विनोद मे समय बिताते हैं, सुख की सारी सामग्री का उपभोग करते है और मस्त रहते हैं, सुन्दरी, सुरा आदि का सेवन इच्छानुसार करते हैं। मद्य-पान महोत्सव मे निमग्न रहकर बडी धूमधाम से सगीत और नृत्य का आनन्द लेते हैं परन्तु समझ लो और सावधान हो जाओ। उनका अन्तिम काल समीप आ गया है। मृत्यु के आने पर कोई उनकी सहायता करने नही आएगा। निश्चय समझो कि मृत्यु देवता उनके सिर पर मडरा रहे हैं।[3]

१ पतिन्नालुवृत्तम्, ले० नप्यार पृ० ६, पद स० ४०—।

२ पतिन्नालुवृत्तम्, पृ० ६, पद स० ४२।

३ एन्तु सजय ! चोल्लु चोल्लु पितावु तन्नुटे शासनम्
चन्तमोटु वनत्तिल वाजक धर्म्मजादिकलेन्नतो
अन्ध भूपति तन्नुटे कृप नन्नुनन्नितु विस्मयम्
बधुभावमितेत्रयुम तव चिन्तये हर शकर !
मानशालि सुयोधनन निज नाटु वाणु सुखिक्कयुम
दीन भाव मियन्नु पाटवर काटुवाणु नटक्कयुम
जा निरिक्के वरुन्नतलिलतु वृद्धनोटुरचेयूक नी
मानसे कपटम वेटिञ्जु नटक्केटो हर शकर !
लाक्ष कोन्टु चमच्च कोट्टयिलिट्टट चुट्टट पोरिच्चतुम
रूक्षमायि वृकोदरन्न विषम कोट्टत्त वलच्चतुम
अक्ष कैतव हेतुना सकलम पिटिच्चु परिच्चतुम
पक्षपातमितोक्केयुम तव चिन्तये हर शकर !

चतुर्थ वृत्त मे यद्यपि विदुर का उपदेश मूल महाभारत के आधार पर लिखा गया है तो भी नप्यारजी ने कही-कही कुछ परिवर्तन कर डाला है। एक स्थान पर भारत के कवि यो लिखते हैं—सबल लोगो ने जिन दुर्बलो पर दोष लगाया है वे भी हमेशा अशान्त तथा बिना सोए रहते हैं।[1] इस आशय को नप्यार ने इस प्रकार पुष्ट किया है—दूसरो के धन पर अधिकार करने की इच्छा रखने वाले, दूसरे राजाओ से डरने वाले, दूसरो की तरुणियो पर प्रेम रखने वाले, विरही लोग, अपनी स्त्रियो से बिगडने वाले, दुर्बल धनवान् अभिमानी बडो से वैर रखने वाले, बडे लालची आदि लोगो को रात के समय नीद नही आती।[2]

पाचवे वृत्त मे धर्मराज को नीति का वर्णन है। धर्मपुत्र का दृढ मत है कि युद्ध छिडने से सारे राज्य का सत्यानाश होगा। अत अपने सबन्धियो से मेल रखकर जीवन बिताना ही अच्छा है। अत मे कृष्ण ने एक बार सन्धि का प्रस्ताव स्वय ले जाने की इच्छा प्रकट की। सन्धि के लिए भीम को भी अनुकूल देखकर श्री कृष्ण उसकी भीरुता पर व्यग्य कसते हैं—अरे तुम केले के पेड के समान दृढ हट्टे-कट्टे मोटे-ताजे दिखाई पडते हो। वास्तव मे तुम अबला नारी ही हो गए हो। सदा भोजन की चिता लगी रहती है। यहा रहने की अपेक्षा जगल मे जाकर कद-मूल फल खाकर जीवन बिताना अच्छा है।[3] कृष्ण के ये परिहास भरे वचन भीम के मन मे पौरुष की भावना जागरित कर देते हैं। उस अवस्था मे उनके मुह से निकले हुए शब्द रौद्ररस-प्रधान हैं। अपनी वीरता प्रकट करते हुए भीम कहते है—युद्धक्षेत्र मे एक ही बार से पापी दुर्योधन का काम तमाम करने के लिए अकेला भीम काफी है। मेरी गदा के सघट्टन से उत्पन्न होने वाला घर्घर रव शत्रुओ के लिए असह्य है। शत्रुओ के रक्त को नदियो से सागर मे हलचल उठेगी, पर्वत हिलने लगेगा। मस्त हाथी के समान भीमकाय मै चारो ओर दौडकर सब को चकनाचूर कर दूगा।[4] यह छठे वृत्त मे है। सधि की असफलता के बारे मे अर्जुन, नकुल तथा सहदेव पहले से सकेत दे देते हैं। तथापि अत मे एक बार और परीक्षा कर ले, कहकर कृष्ण कौरवो के पास जाते हैं।

मद्यपान [illegible] तुटडड्विन
वाद्यघोषवु अगनाजन नृत्तवु मृदु गानव
गद्यपद्यविनोदवुम पल विद्ययु सुखनिद्रयम
सत्यमेव कुरुध्वमिन्नु कुरुक्कुले हर शकर'
धार्त्तराष्ट्र वशत्तिलुल्लोरु मर्त्यजातिकलोक्कयुम
पार्त्तलम वेटियानदुत्तनुमोर्त्तु कोल्लुविनजसा
मृत्युवन्न ललाट सीमनि नृत्त केलि तुटानंतुम
चित्त तारिलरिञ्ज् कोल्लुविनेपोजुम हर शकर'

—भगवद्दूत पृष्ठ ६–७, पद स० १, २, ३ से १३ तक।

१ कचन नप्यार—ले० पणिक्कर, पृ० १११।
२ भगवद्दूत, पृ० ८।
३ भगवद्दूत, पृ० १३।
४ भगवद्दूत, पृ० १४।

सातवे मे पाचाली दुखी होकर अपनी कष्ट-कथा सुनाती हुई कृष्ण से नम्रता-पूर्वक पूछती है—आप [illegible] के पास सधि का प्रस्ताव ले जाएगे तब मेरी इस खुली हुई वेणी का क्या होगा ? कृपा कर आप इसे न भूले।[1] इन पदो से कवि की भक्ति प्रकट होती है।

आठवे मे श्री कृष्ण की यात्रा का वर्णन है। उनका अपूर्व सौन्दर्य देखकर लोग दग रह जाते हैं। वे सिर के बालो पर मोरपख खोसे हुए हैं, मालती, मल्लिका आदि पुष्पो से बनी माला वक्षस्थल पर शोभित है। लोल नयन हैं। कुण्डलो की शोभा गालो पर पडती है। लाल ओष्ठ हैं। मुख सूर्य के समान जाज्वल्यमान है और मनोज्ञ भी। गला शख के समान है। छाती पर वनमाला और कौस्तुभ मणि शोभित हैं। सुन्दर हाथो मे चमकीले ककण पहने हुए हैं। एक हाथ मे वशी है। शरीर कुकुम-रसादि से अतिरमणीय हो गया है। श्री कृष्ण का पीताम्बर सकुल मणि-काचन-काचि-गुणाचित है। सरोज के समान है पद युगल[2], ऐसे श्री कृष्ण को देखकर देवतागण पुष्पवृष्टि करने लगे और सब लोगो ने उनको नमस्कार किया।

नवम वृत्त मे कौरवो के महल मे श्री कृष्ण का प्रवेश धृतराष्ट्र का अभिवादन और प्रार्थना आदि का वर्णन है। दुर्योधन के सत्कार का तिरस्कार कर श्री कृष्ण भक्तशिरो-मणि विदुर के अतिथि बनते हैं और कुन्ती को सात्वना देते हैं।

दशम वृत्त मे भगवान् श्री कृष्ण का कौरवो की राजसभा मे प्रवेश, उनका अनादर, सुयोधन के गर्व भरे वचन, कृष्ण का वादविवाद आदि चित्रित किए गए हैं। श्री कृष्ण की हसी उडाता हुआ दुर्योधन अपने आसन पर ऐठ कर बैठा था। कृष्ण के आगमन की सूचना पाकर भी वह उठा नही, जमकर बैठा ही रहा। कवि ने श्री कृष्ण का सभा-प्रवेश सुन्दर शैली मे चित्रित किया है, गोपाल-रूप रमाकान्त ने धीरे-धीरे अपना पाचजन्य बजाया और सभा-भवन मे प्रविष्ट हुए। ऐसा मालूम हुआ मानो बाल-सूर्य का उदय हो रहा हो। उनकी प्रभा चारो ओर बिखरने लगी। मुस्कराते हुए सभा-भवन मे प्रवेश किया तो ऐसा लगा मानो पीयूष-वर्षा हो रही हो। पीताम्बरधारी, किरीटी [illegible] उस रूप को शोभा का वर्णन कैसे किया जा सकता है ? वक्षस्थल पर श्रीवत्स और कौस्तुभरत्न शोभित है। दयामयी दृष्टि से मानो अनुग्रहो की वर्षा कर रहे थे। उनकी उस उपस्थिति से दर्शक आनन्द-सागर मे डुबकिया लगाने लगे।[3] दुर्योधन की आज्ञा थी कि जब कृष्ण सभा मे आए तब कोई भी अपने आसन से उठकर उनका अभिवादन न करे। किंतु अचरज की बात है कि दूर से श्री कृष्ण को आते देखकर सारे राजा-महाराजा निस्तेज हो गए, कापने लगे, आसन से उठकर हाथ जोड प्रार्थना करने लगे, यहा तक कि श्री कृष्ण के अन्दर आते-आते स्वय दुर्योधन अपने आसन पर स्थिर न

१ भगवद्दूत, पृ० १५, पद स० १।

२ भगवद्दूत, पृ० १८, पद स० ८, ९ तथा १०।

३ भगवद्दूत, पृ० १८, पद स० ८, ९, १०।

रह सका, लुढककर नीचे आ गया। कर्ण जैसे महारथी भी जमीन पर लुढक गए। यह दृश्य देखकर भला कौन हसी रोक सकता था। कवि भी दुर्योधन की मूर्खता पर हस पडते हैं।[1]

एकादश वृत्त मे धृतराष्ट्र, भीष्म, विदुर आदि गुरुजन दुर्योधन को उपदेश देते हैं, किन्तु उसे ठुकराकर वह अपने दुराग्रह पर दृढ रहता है और कर्ण प्रभृति का कहना मानता है।

द्वादश वृत्त मे कर्ण-दु शासन आदि दुर्योधन को सुझाते हैं कि कृष्ण को कैद किया जाए और वह उसके लिए प्रयत्न करने लगता है। कवि ने इसका सरस वर्णन किया है। सिपाही, हाथी, घोडे आदि सजाकर गोपाल को पकडने व बाधने की तैयारी करते हैं। उन के मन मे भय समाया रहता है, उसी समय कृष्ण के भक्त सात्यकी दुर्योधन की बुरी भर्त्सना करते हैं। त्रयोदश वृत्त मे श्री कृष्ण अपना विश्वरूप दिखाते हैं। लोकाधिनाथ ने अपना भयानक रूप दिखाया। उसका तेज समस्त जगत् मे व्याप्त हो गया। ऐसा प्रतीत हुआ मानो श्री कृष्ण शत सहस्र मुख वाले हो गए हो। उनका शरीर काले बादलो के समान दिखाई पडा। सारे विश्व को कम्पायमान करने वाला अट्टहास उनके मुह से निकला।[2]

भगवान् श्री कृष्ण के विश्वरूप को देखकर दु शासन प्रभृति मूर्च्छित होकर गिर पडे। उसका वर्णन कवि यो करते हैं—"विश्वनाथ का विश्वव्यापी रूप देखकर दु शासन आदि दुष्टबुद्धिजन मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पडे। कुछ लोग जमीन पर लोट-पोट होने लगे। कुछ स्तभित होकर खडे रह गए। काटो तो खून नही। कुछ लोगो के प्राण-पखेरू उड गए। कुछ भयभीत होकर निर्लज्जता से हाय-हाय करने लगे। कुछ अपने धनुष-बाण आदि छोडकर दात दिखाते रह गए। कुछ आखे फाडकर देखते ही रह गए। कवि कहते हैं कि उस दृश्य का समुचित चित्र खीचना मेरी शक्ति के बाहर की बात है।[3]

अतिम वृत्त मे भीष्म आदि की प्रार्थना सुनकर श्री कृष्ण अपना वह भयानक रूप समेट लेते हैं। मोरपख से शोभित पीताम्बरधारी भगवान् अपनी सुपरिचित मुस्कराहट के साथ फिर लोगो से मिले। ऐसे अद्भुत भगवान् को मै बार-बार प्रणाम करता हू। इस प्रकार स्तुति करते हुए कवि अपनी कृति समाप्त करते हैं।

भट्टतिरि के दूतवाक्य तथा महाभारत के आधार पर यद्यपि इस काव्य की रचना की गई है तो भी इसमे नप्यार का व्यक्तित्व तथा उनकी स्वतत्र विचारधारा हम स्पष्ट देख सकते हैं। श्री कृष्ण के प्रति उनकी अपार भक्ति है और विदुर के द्वारा उनका उपदेश आदि सराहनीय है।

भागवतम् इरुपत्तिनालुवृत्तम्—

कवि नप्यारजी ने इस ग्रन्थ मे श्रीमद्भागवत की कथावस्तु चौबीस सर्गो मे

१ भगवद्दूत, पृ० १८, पद स० २१, २२, २३।
२ भगवद्दूत, पृ० ३०, ३१।
३ भगवद्दूत, पृ० ३२।

और विभिन्न वृत्तो मे लिखी है। कुलदेव की प्रार्थना के साथ वे इस ग्रन्थ का प्रारम्भ करते हैं। अम्बुज-विलोचन, श्रीहरि, कृष्ण, शिव, गणपति देवता आदि वृन्द और मेरे गुरुदेव मेरी सहायता करे।[1]

तुलसी ने जिस प्रकार 'स्वान सुखाय' लिखा उसी प्रकार नप्यार ने भी 'विष्णु पद पाने के लिए' श्री कृष्ण का चरित्र लिखा है।[2]

दूसरे सर्ग मे श्री कृष्णावतार के समय का सुन्दर वर्णन किया है। जब चक्रपाणि का जन्म हुआ तो ससार के सभी जीव सन्तुष्ट और सुखी हो गए। पक्षी कलरव करने लगे। सब कही प्रकाश फैल गया। भूमि देवी को बडी सान्त्वना मिली, देविया नाचने और गाने लगी। कृष्ण-जन्म का समाचार सर्वत्र ढोल पीटकर गोपो द्वारा घोषित किया गया।[3]

तीसरे सर्ग मे पूतना-वध, चौथे मे तृणावर्त का आगमन, पाचवे मे वृकासुर का वध, छठे मे सर्पासुर का निधन, सातवे मे कालिय नाग का दर्पहरण, आठवे मे गोपियो को श्री कृष्ण के उपदेश, नवे मे रासलीला-वर्णन, दशम वृत्त मे कस का अपशकुनो को देखना, एकादश मे गुरु-दक्षिणा आदि का वर्णन है। द्वादश वृत्त मे रुक्मिणी का प्रेम-निवेदन है। उनका सन्देश पहुचाने वाला उनकी दशा के सम्बन्ध मे भगवान् से कहता है—हे भगवान्! आपका नाम सुनकर रुक्मिणी को आपसे प्रेम हो गया है और वे सदैव कामाग्नि से सतप्त रहती हैं। चन्दनादि शीतोपचार से भी उनको सताप होता है। मन्द वायु के स्पर्श से भी उनको मूर्च्छा आ जाती है। चन्द्र और अग्नि दोनो ही उनके लिए एक से हैं। कोयल की मजुल वाणी सुनते ही मानो उसके प्राण-पखेरू शरीर को छोडकर उडने के लिए छटपटाते है। फुलवारी मे भी उनको मूर्च्छा आ जाती है।[4]

त्रयोदश वृत्त मे रुक्मिणी का परिणय है। स्वयवर के लिए विभिन्न देशो के राजा लोग आते हैं। राजकुमारी का अपूर्व सौन्दर्य देखकर उपस्थित राजाओ की विचित्र स्थिति का वर्णन कवि इस प्रकार करते हैं—सोने की सी राजकुमारी स्वयवर मण्डप मे आई तो वहा के भूप उन्मादवश तरह-तरह की बाते करने लगे। एक राजा ने पान लेने के लिए नौकर की ओर हाथ बढाया ही था कि राजकुमारी मण्डप मे आई। देखते ही राजा का हाथ ज्यो का त्यो रह गया। दूसरे एक भूप ने पान खाते समय राजकुमारी को देखा। उसने भ्रम मे पडकर चूना ही खा लिया और उसकी जीभ जल गई। तीसरे एक राजा को तो उस अपूर्व सौन्दर्य को देखते ही मूर्च्छा आ गई और वह गिर पडा। तात्पर्य यह है कि सभी राजा लोग रुक्मिणी को देखकर मत्र-विमुग्ध होकर बैठे रहे। इतने मे श्री कृष्ण ने उसे अपने रथ मे बिठाया और सब के देखते-देखते उसे लेकर चल दिए।

---

१ भागवतम् इरुपत्तिनालुवृत्तम्, प्रथम सर्ग—सपादक पणिक्कर, पृ० १२७।
२ भागवतम् इरुपत्तिनालुवृत्तम, प्रथम सर्ग, पद स० १२७।
३ भागवतम् [illegible], दूसरा सर्ग, पद स० २३।
४ भागवतम् [illegible] वृत्तम्, बारहवा सर्ग, पद स० ५६ से ५६।
५ इरुपत्तिनालुवृत्तम, तेरहवा सर्ग, पद स० २३, २४, २५ और २६।

चौदहवे वृत्त मे सत्राजित की बेटी का पाणिग्रहण, और पन्द्रहवे मे पारिजात की कथा आदि हैं। सोलहवे वृत्त मे कवि ने बडी भक्ति से शिवजी के द्वारा विष्णु भगवान् की स्तुति कराई है। हे शरणागतो के शरण, करुणाकर, सूर्यकोटिप्रभ, धरणी-भार-हरण, रमणीरमण, सुन्दरमूर्ति, मृत्यु के समय मेरा दु ख दूर करो।[1]

सत्रहवे अध्याय मे बाणासुर की नगरी पर श्री कृष्ण तथा उनकी सेना का आक्रमण अठराहवे मे असुर विविद की धमकी, उन्नीसवे मे सुदर्शन चक्र का वर्णन, बीसवे मे जरा-सन्ध-वध और इक्कीसवे मे दुर्योधन की स्थल-जल-भ्राति का वर्णन है। बाईसवे मे सुदामा-चरित्र है। तेइसवे मे श्री कृष्ण का अपनी माता देवकी से मिलना और चौबीसवे मे अर्जुन का अग्नि-प्रवेश और श्री कृष्ण का वहा आकर उसे परावृत्त करना आदि कथाए हैं। इसके अतिरिक्त कई अन्य सरस प्रसगो का वर्णन कवि ने बडी सुन्दरता से किया है।

अम्बलप्पुजा मे नप्यार कई साल तक रहे। जब उसे तिरुविताकूर राज्य के राजा मार्तण्ड वर्मा ने जीतकर अपने राज्य मे मिला लिया तब नप्यार भी मार्तण्ड वर्मा के आश्रित होकर तिरुवनतपुरम् नगरी मे रहने लगे। राजा ने उनका बडा आदर-सत्कार किया। जब कवि बूढे हो गए तब वे अम्बलप्पुजा चले गए। एक पागल कुत्ते के काटने से उनकी जीवन-लीला लगभग ई० सन्० १७४८ मे समाप्त हुई।[2]

राम पुरत्तु वारियर

मलयालम के कृष्ण-भक्त कवियो मे वारियर हिन्दी के नरोत्तमदास के समान कुचेलवृत्तम् (सुदामाचरित्र) नामक एक सरस खण्डकाव्य रचकर अमर हो गए हैं। अन्य प्रसिद्ध कवियो के समान उनके जन्म, जीवन अध्ययन आदि के बारे मे निश्चित जानकारी का अभाव है। सर्वश्री ए० आर० कृष्ण पिल्ला नारायण पणिक्कर के लेखो के आधार पर वारियर के जीवन की घटनाओ का वर्णन दिया जाता है।

इतना तो निश्चित है कि जब मार्तण्ड वर्मा तिरुविताकूर राज्य की गद्दी पर थे तब वे उनके दरबारी कवि थे। कहा जाता है कि उनका जन्म-स्थान मीनच्चील तहसील का रामपुरम् गाव है। उस गाव के श्रीकृष्ण-मन्दिर के वारियर निवास मे लगभग ई० सन् १७२४ मे कवि पैदा हुए।[3] जन्म-स्थल के नाम से पुकारे जाने के कारण वे राम-पुरत्तु वारियर कहलाए। यह भी कहा जाता है कि वारियर के पिताजी कोई नपूतिरि (केरल ब्राह्मण) थे।

---

१ शरणागत शरणानत करुणामय हरणा
नरुणारुण किरणौप वदरुणामल चरणा
धरणीभर हरणा बहु रमणीमणिरमणा
करुणाम् कुरु मरणे मम यदुनायक शरणम्
—इरुपत्तिनालुवृत्तम, सर्ग सोलह, पद स० १६।

२ कचन नप्यार—ले० प्रो० बालकृष्ण वारियर, पृ० ६२।

३ केरलभाषा-साहित्यचरित्र—भाग ४, पृ० ६५१।

कवि का बाल्य-जीवन कष्टमय था। कष्टो से छुटकारा पाने के लिए वारियर वैकम के मन्दिर में भजन करने लगे। सयोग से एक दिन राजा श्री मार्तण्ड वर्मा मन्दिर मे पधारे। उनको देखते ही वारियर के मन मे विचार आया कि यदि किसी प्रकार राजा का कृपा-पात्र बन जाऊ तो मेरी गरीबी हमेशा के लिए दूर हो जाएगी, किन्तु एक अकिंचन आदमी राजा के सम्मुख जा कैसे सकता था ? बात असम्भव जान पडी। राजा के लौटने का समय आ गया। वे मन्त्रि-समूह और भृत्य-वृन्द से घिरे थे। कवि देखते ही रह गए।

अन्त मे जब राजा नाव पर चढे तो कवि से न रहा गया। एक उपाय सूझा। पानी में कूदकर, हाथ ऊपर उठाकर वे ताडपत्र दिखाने लगे। राजा की दृष्टि उनपर पडी। राजा ने आज्ञा दी उन ताडपत्रो को यहा लाओ। पत्रो पर लिखे हुए कुछ पद्यो को पढकर राजा बहुत प्रसन्न हुए और वारियर को नाव पर चढ़ाकर अपने साथ ले लिया। नाव चलने लगी और राजा ने वारियर को कुछ गीतो की रचना करने की आज्ञा दी। उसी समय कुचेलवृत्त नामक कविता कवि ने रची।

इस कविता के प्रथम पद मे कवि कहते हैं जिन्होने कपट (श्री कृष्ण का) अवतार लिया है, उनके कृपा-कटाक्ष का पात्र बनने की प्रतीक्षा मे मैं बैठा और मुझे (वचिप्पाट्टु) नौका-गान रचने की आज्ञा मिली।[1]

प्रसग के अनुसार कवि ने एक कथानक चुना, सोचा कि कविता भी रची जाए और राजा को अपनी (कवि की) स्थिति का परिचय भी कराया जाए। एक पथ दो काज। मन मे विश्वास भी उत्पन्न हुआ कि जैसे श्री कृष्ण ने प्रसन्न होकर सुदामा की गरीबी दूर की उसी प्रकार राजा भी कवि की दरिद्रता दूर कर देंगे। आराध्य देवता, गुरुवर्य की वन्दना के बाद कवि ने लिखा—जिस भगवान् ने सुधा देकर अमरो का भी कष्ट दूर किया, वही भगवान् सुदामा के चिथडो मे बधे हुए मुट्ठी भर चावलो से जैसे प्रसन्न हुआ, वैसे ही मेरी इस तुच्छ कृति से वचिपालक (राजा) प्रसन्न हो[2]। इस प्रकार लिखकर उन्होने राजा को भेट के रूप मे अर्पण किया।

कविता पूरी हुई, यात्रा भी समाप्त हुई परन्तु तिरुवनन्तपुरम् पहुचकर राजा ने कवि को ठाठबाट के साथ राजमहल मे नही रखा। कवि निराश से हो गए। उसी समय वारियर को जयदेव की अष्टपदी का मलयालम मे अनुवाद करने की आज्ञा मिली। सरस कोमल-कान्त पदावली में रचित जयदेव के गीतगोविन्द का भाषाकाव्य मे अनुवाद करना मामूली बात न थी। फिर भी कवि ने सुन्दर शैली मे उसका अनुवाद किया और राजा को देकर लौटने की इच्छा प्रकट की। राजा ने भी अनुमति दे दी।

बडी प्रतीक्षा के पश्चात् भी कुछ न पाने के कारण कवि की निराशा भरी मन.-स्थिति की कल्पना सहृदय पाठक सहज ही कर सकते हैं। उन्होने प्रस्थान किया। कुछ दूर जाने पर राजा के कर्मचारियो ने उनका स्वागत किया और मार्ग मे विश्राम आदि की

१. कुचेलवृत्त—पृ० १।

२ कुचेलवृत्त—ले० वारियर, पृ० २१।

पूर्ण सुविधाए दी। रास्ते मे स्थान-स्थान पर उसका सार्वजनिक स्वागत होने लगा। अपने गाव मे पहुचने पर यह देखकर उन्हे बडा आश्चर्य हुआ कि जिस स्थान पर उनकी झोपडी थी वहा एक भव्य भवन बन रहा था। कृष्ण की कृपा का फल देखकर सुदामा ने जो अनुभव किया होगा वही उद्‌गार कवि के हृदय मे उठे होगे। उस समय उनकी आखो से आनन्दाश्रुओ की धारा बहने लगी। राजा की चिरायु की कामना करते हुए कवि बडे आनन्द से दिन काटने लगे।

वचिप्पाट्टु (नौका-गान) अन्य छोटे-मोटे कवियो ने भी लिखे है। किन्तु कुचेल-वृत्तम् के गीत सब से सुन्दर माने जाते है। तिरुविताकुर राज्य के करीब मध्य भाग से पपा नामक एक नदी बहती है। उसके तीर पर मनोरजन के लिए नावो की दौड होती है। आरन्मुला नामक एक तीर्थ-स्थान पपा के किनारे पर स्थित है। वहा के मदिर के देवता को प्रसन्न करने के लिए आसपास के गावो से लोग नावो मे चढकर गाते हुए आते है। इस अवसर पर उनकी स्फूर्ति, सन्तोष, उत्साह आदि देखते ही बनता है। उस अवसर पर बाण-रचित कुचेलवृत्तम् के गीत लोग बडी श्रद्धा-भक्ति से गाते है। इसके अतिरिक्त चप-क्कुलम् नामक स्थान पर भी नावो की दौड होती है। वहा भी ये गीत गाये जाते है। साराश यह है कि मलयालम प्रदेश मे जहा कही नावो की दौड होती है वहा कुचेलवृत्तम् वचिप्पाट्टु गाये जाते है। इतना लोकप्रिय है यह काव्य।

तिरुविताकुर मे वैकम नामक एक क्षेत्र है। पहले वहा के मदिर मे इतने अधिक लोगो को भोजन दिया जाता था कि वह मदिर भोजन के लिए प्रसिद्ध हो गया। वारियर ने भी अपनी कृति मे इस मदिर के देवता की प्रथम स्तुति की है। तदुपरान्त देवतुल्य राजा की स्तुति करके, राजधानी तिरुवनन्तपुरम् का वर्णन किया है। इस नगरी का ऐसा सुन्दर वर्णन और किसीने नही किया है। यहा के श्री पद्मनाभ (पत्मनाभ) मदिर में गर्भगृह के सामने जो मण्डप है वह एक विशाल शिला के ऊपर बना है। इतनी बडी अखण्ड शिला शायद ही कही होगी। उसके बारे मे कवि यो लिखते है—यह शिला अपने स्थान पर यो विराजमान है मानो राजाज्ञा पाते ही दौडकर यहा आ बैठी हो।[1] यहा कवि ने शिला को सजीव माना है। यो भी कह सकते है कि इस वर्णन मे राजा की अद्‌भुत शक्ति का चित्रण है। जड वस्तु भी उनकी आज्ञा मानती थी। सक्षेप मे यह सम्पूर्ण वर्णन व्यजनात्मक है। मदिर के विविध भागो का वर्णन करते हुए कवि कहते है—मैंने जिन वस्तुओ के बारे मे कहा है वे सब भक्तो को दिव्य रत्नमय और अभक्तो को लकडी तथा पत्थर की बनी दिखाई पडेगी।[2] इसमे कवि की सच्ची भक्ति की झलक हम देख सकते है। इसके बाद कवि सिद्ध करते है कि दशावतारो मे सब से मुख्य अवतार श्री कृष्ण का ही है। यह इस बात का प्रमाण है कि कवि कृष्णभक्त थे।

---

१. कुचेलवृत्तम्—ले० वारियर, पृ० २।
२ कुचेलवृत्तम्—ले० वारियर, पृ० २।

तीसरा परिच्छेद
दार्शनिक विचार

हिन्दी तथा मलयालम के कृष्णभक्त कवियो की रचनाओ का अध्ययन करने के पश्चात् यह ज्ञात होता है कि दार्शनिक सिद्धान्तो का प्रतिपादन या विश्लेषण करना उनका उद्देश्य न था। वे लोग प्राय कृष्ण-लीला-सम्बन्धी पद गाते समय आनन्द-सागर मे निमग्न हो-हो जाते थे और अपने को भगवान् का तुच्छ भक्त समझने मे ही परम सतुष्ट रहते थे। तात्त्विक वाद-विवादो से तटस्थ रहने पर भी उनपर तत्कालीन वातावरण का प्रभाव पडना अवश्यभावी था। अत उन्होने दार्शनिक विचारधाराओ के विषय मे अप्रत्यक्ष रूप से अपना अभिमत प्रकट किया है। उदाहरण के लिए उद्धव-गोपी-सवाद मे दार्शनिक तत्त्वो का समावेश हो गया है। सभी कवियो की शैली तथा सिद्धान्त-स्थापन मे बहुत कुछ समानता है। हमे अन्ततोगत्वा इस निष्कर्ष पर पहुचना पडता है कि एक प्रकार के ही आध्यात्मिक वातावरण मे विचरण करने वाले इन भक्तकवियो के आदर्श, भाव एव स्थिति आदि एक समान ही रहे होगे। केवल अतर है तो उनके आत्मप्रकटन के माध्यम मे, कुछ ने हिन्दी मे लिखा है और कुछ ने मलयालम मे।

समस्त कवियो ने एक स्वर से उद्घोषित किया है कि उनके इष्टदेव श्री कृष्ण के निर्गुण और सगुण दोनो ही रूप है। यह समस्त विश्व उन्हीके अश से उत्पन्न है। विष्णु, ब्रह्मा और शिव वे ही है। जब-जब धर्म का ह्रास होता है, वे धर्मरक्षार्थ परिस्थिति के अनुसार ही अवतीर्ण होते है। मलयालम और हिन्दी के कृष्णभक्त कवियो मे अन्तर केवल यह है कि मलयालम के कवियो ने कृष्ण के धर्मरक्षक ऐश्वर्य-रूप पर अधिक बल दिया है और हिन्दी-भक्त-कवियो ने कृष्ण के रस अथवा आनन्द रस पर। सूर ने एक स्थल पर लिखा है कि ब्रह्म, प्रकृति और पुरुष सब कृष्ण के अश से उत्पन्न है। कृष्ण वह रस-रूप अखड, अनादि और अनुपम है।[1]

---

१ सदा एक रस एक अखडित आदि अनादि अनूप।
कोटि कलप बीतत नहि जानत बिहरत युगल स्वरूप॥
सकल तत्त्व ब्रह्माण्ड देव पुनि माया सब विधि काल।
प्रकृतिपुरुष श्रीपति नारायन सब है अश गुपाल॥
—सूरसारावली, सूरसागर, वे प्रे, पृ० ३४।

परब्रह्म कृष्णभक्तो का कष्ट दूर करने के लिए समय-समय पर अवतार लेते है। भक्त प्रह्लाद, द्रौपदी, विदुर आदि सच्चे भक्तो की सेवा मे कृष्ण सदैव तत्पर रहते थे। ऐसे कई उदाहरण दोनो भाषा के कवियो ने अपने पदो मे दिये है।

सूरदास ने लिखा है कि हे भगवन्! आप जब भक्तो की विपत्ति की कथा सुन लेते थे तो तुरन्त उनकी सहायता करने के लिए दौडे हुए जाते थे। गज की आर्त वाणी सुनकर आप दौड पडे। प्रह्लाद, द्रौपदी विदुर और सुदामा आदि भक्तो के पास पहुच उनका सकट तुरन्त ही दूर कर दिया।[1]

एक स्थान पर श्री कृष्ण की सर्वव्यापकता और उनके विराट् ब्रह्म-रूप के बारे मे सूरदास लिखते है कि हम अपने नयनो से कृष्ण की छवि देखे। वे घटघटवासी है। वे अनुपम ज्योतिस्वरूप है। पाताल उनके चरण है, आकाश उनका मस्तक है तथा सूर्य-चन्द्र आदि उनका प्रकाश है। यह कृष्ण-रूप है।[2]

हरि अनन्त, अविनासी और सर्वव्यापी है। जिसे पुराण ब्रह्म कहते है, चतुरानन, शिव आदि जिसका अन्त नही पा सकते है, वही कृष्ण है। जो अगम, वेदो के लिए अप्राप्य है, वही कृष्ण है।[3] इस प्रकार कई पद कृष्ण की व्यापकता के सबध मे सूरदास ने लिखे है।

परमानन्ददास कहते है कि श्री कृष्ण ही परब्रह्म है, अपनी इच्छा के अनुसार वे कई रूप धारण कर लेते है। निगम उन्हे 'नेति' 'नेति' कहकर पुकारते है। परब्रह्म गुणरहित और सगुण दोनो है। अपने भक्तो की रक्षा करने के लिए वे अवतार लेते है।

राग कान्हरौ

१ जैसें तुम गज कौ पाउँ छुडायौ।
अपने जन कौ दुखित जानि कै पाउ पियादे धायौ।
जहँ जहँ गाढ परो भक्तनि कौ, तहँ तहँ आपु जनायौ।
भक्ति हेत प्रह्लाद उबार्‌यौ, द्रौपदि चीर बढायौ।
प्रीति जानि हरि गये बिदुर कै नामदेव घर छायौ।
सूरदास द्विज दीन सुदामा, तिहि दारिद्र नसायौ।
—सूरसागर, विनयपद, स० २०, सभा सस्करण।

२ नैननि निरखि स्याम स्वरूप।
रह्यौ घट-घट व्यापि सोई, ज्योति रूप अनूप।
चरन सप्त पताल जाके, सीस है आकास।
सूर चद्र नछत्र पावक, सर्व तासु प्रकास ॥३७०॥
—सूरसागर, स० सूर-समिति।

३ आदि सनातन, हरि अबिनासी। सदा निरतर घट-घट बासी।
पूरन ब्रह्म, पुरान बखानैं। चतुरानन, शिव, अत न जानैं।
गुन गन अगम, निगम नहि पावै। ताहि जसोदा गोद खिलावै।
—सूरसागर, सभा सस्करण, पद स० ६२१।

४ मोहन नन्द काय कुमार।
प्रकट ब्रह्म निकुज नायक भक्त हेत अवतार।

दूसरे एक स्थान पर परमानन्ददास ने लिखा है कि नन्दकुमार आनन्द के निकेत हैं, वे मनुष्य-जन्म लेकर भक्तो के लिए अनेक प्रकार की लीलाए करते हैं। कृष्ण आनन्द-रूप हैं। वे सर्वदा अपने भक्तो को आनदित करने के लिए ही प्रत्येक काम करते रहते हैं। उनके आनन्दविलास मे सुर, मुनि, सत आदि को बडा आनन्द मिलता है। ऐसे भगवान् श्री कृष्ण के चरण-सरोज का भ्रमर परमानन्ददास बनना चाहता है।[१] फिर भी वे कहते हैं कि ब्रह्मा, विष्णु और शिव उनके भिन्न गुण-रूप हैं और वरदायक हैं। शख-चक्र-गदा-धारी मेरे उपास्यदेव राधिकारमण कृष्ण ही हैं।[२]

सूरदास, परमानन्ददास आदि भक्तकवियो के समान नन्ददास ने भी लिखा है कि नाम, रूप, गुण भेद से जो सब ठौर व्याप्त हैं और जिनके बिना यह समस्त विश्व सारहीन बन जाता है, उसी ब्रह्म का अवतार श्री कृष्ण हैं।[३] आनन्दमूर्ति श्री कृष्ण सारे जगत् के आधार हैं।[४] वे सर्वव्यापी हैं, अखण्डस्वरूप हैं, उदार हैं। प्रेम से ही भक्त उन्हे प्राप्त कर

× × ×

दास परमानन्द स्वामी वेद बोलत नेति।

—अष्टछाप, भाग दो, ले० डा० गुप्त, पृ० ४१०।

१ आनँन्द को निधि नन्दकुमार।
परब्रह्म मेष नराकृत जगमोहन लाला अवतार।
स्रवनन आनँद मन मह आनँद लोचन आनँद आनँद पूरिन।
गोकुल आनँद गोपी आनँद, नन्द जसोदा आनँद कद।
नृतत हँसत कुलाहल आनँद राधापति वृन्दावन चन्द।
सुर मुनि आनद चन्तनि आनँद निज जन आनँद रास विलास।
चरण कमल मकरदपान को अलि आनँन्द परमानँददास॥

—अष्टछाप, भाग दो, ले० डा० गुप्त, पृ० ४११।

२ मोहि भावै देवाधि देवा।
सुन्दर स्याम कमल दल लोचन गोकुल नाथ एक मेवा।
तीन देवता मुख्य देवता ब्रह्म, विष्णु अरु महादेवा।
जे जनिये सकल वरदायक जुन विचित्र कीजिये सेवा।
सख चक्र सारग गदाधर रूप चतुर्भुज आनँद कन्दा।
गोपीनाथ राधिकावल्लभ ताहि उपासत परमानन्दा॥

—अष्टछाप, भाग दो, ले० डा० गुप्त, पृ० ४१३।

३ नाम रूप जुन भेद जे, सोइ प्रकट सब ठौर।
तानिन तत्त्व जु आन कछु कहै सौ अति बडबौर।

—मानसमजरी, पचमजरी, बलदेवदास सरसनदास, पृ० ६९।

४ नमो नगो आनन्दधन सुन्दर नन्दकुमार। रसमय रस कारण रसिक जग जाके आधार।

—मानसमजरी, पचमजरी, बलदेवदास करमनदास छद, न० १।

सकते है, अन्य किसी उपाय से नही।[1] वे अनत और अद्वैत है।[2] भगवान् कृष्ण की स्तुति करते हुए वे एक स्थान पर कहते है—हे भगवन्! सब के मूल मे आप ही है और सृष्टि, स्थिति तथा लय करने का काम आप करते रहते है, आप विश्व-रूप है और अव्यक्त भी। इस प्रपच के सारे प्राणियो के रूप आप ही के रूप का विस्तार है। आप अव्यय और अखिलेश्वर है। सत्त्व, रजस् और तमोगुणधारी प्रकृति, शक्ति सब आप ही है। आपके अतिरिक्त और कोई दूसरा नही है। सब कही आप ही है। मै आपसे प्रार्थना करता हू कि हे करुणाकर! आप मुझे भाव-भक्ति प्रदान कीजिए।[3]

मीराबाई ने श्री कृष्ण को 'अविनासी' की सज्ञा दी है। मीरा ने एक स्थल पर लिखा है कि भगवान् श्री कृष्ण मेरे हृदयेश है, चाहे सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, वायु, जल, आकाश का नाश हो जाय, परन्तु कृष्ण स्थिर ही रहेगे।[4] ऐसे श्री कृष्ण के साथ स्थायी प्रेम हो सकता है। वे ही मेरे पतिदेव है।[5] उन्हीको आसानी से कोई प्राप्त कर सकता है।[6] उस

---

१ सब घट अन्तरजामी स्वामी परम एक रस।
नित्य आत्मानन्द अखट स्वरूप उदारा।
केवल प्रेम सुगम्य अगम्य अवर परकारा॥
—सिद्धान्त-पचाध्यायी, नन्ददास शुक्ल, पृ० १३१।

२ हरि अनन्त और एक।
—अनेकार्थमजरी, पचमजरी, बलदेवदास करसनदास, छद ६, पृ० १४३।

३ परम पुरुष सबहिन के कारन, प्रतिपालन तारन सधारन।
व्यक्त अव्यक्त जु विश्व रूप अनूप, वेद वदन प्रभु तुम्हारौ रूप।
तुम सब भूतनि को विस्तार, देह प्रान इन्द्री अहकार।
काल तुम्हारो लीला श्रीधर, तुम व्यापी तुम अव्यय ईश्वर।
तुम ही प्रकृति सकति सब तुमही, सत रज तम जे ले लै उमही।
तुम हो जीवन तुम ही जोय, सब ठा तुम कोउ अवर न बाय।
× × ×
हे करुनानिधि करुना कीजै, अपनी भाव भगति रति दीजै।
—दशम स्कन्ध, दशम अध्याय, नन्ददास शुक्ल, पृ० २८१।

४ मेरा पिया मेरे हिय बसत है, ना कहुं आती जाती।
चदा जायगा सूरज जायगा, जायगो धरणि अकासी।
पवन पाणी दोनु ही जायेंगे, अटल रहे अविनासी॥
—मीराबाई की पदावली, सपादक परशुराम चतुर्वेदी, पृ० ८।

५ अविनासी सू बाल्हा है, जिन स साची प्रीत।
मीरा क प्रभु मिल्या है, एही भगति की रीति॥
—मीराबाई की पदावली, स० परशुराम चतुर्वेदी, पृ० ११।

६ मीरा के प्रभु गिरिधर नागर, सहज मिले अविनासी रे।
—मीराबाई की पदावली, स० परशुराम चतुर्वेदी, पृ० १६।

'अविनासी' से एक बार मिल जाने पर बिछुडना असह्य है।[१] वे अगम और अतीत है, 'आदि अनादि' साहब है। उनकी सेज गगन-मडल पर बिछी रहा करती है। मीरा उन्ही कृष्ण के प्रेम मे मतवाली बनकर अपनी सुध-बुध भूल गई। उस अविनासी से साक्षात्कार न होने पर उनके रोम-रोम और प्रत्येक अग मे चेतनता आ गई और उन्होने 'अमर रस' का प्याला पी लिया[२] जिससे जन्म मृत्यु के बधन से वे सदा के लिए मुक्त हो गईं।[३] मीरा इसी कारण अपने साहब को 'त्रिकुटी' महल मे बने हुए झरोखे से झाकी लगाकर देखने, 'सुन्न महल' मे सुरत जमाने वा 'सुख की सेज' बिछाने के लिए आतुर जान पडती है।[४] उनका मन 'सुरत' की 'असमानी सैल' मे रम गया है।[५] वे गुरु ज्ञान द्वारा अपने तन का कपडा रगकर तथा मन की मुद्रा पहनकर 'निरजन' कहे जाने वाले के ही ध्यान मे मग्न रहना चाहती है।[६] वे कभी-कभी 'सुरत या निरत' का 'दिवला' सजोने के लिए 'मनसा' की 'बाती' बनाती है और 'प्रेम हटी' से तेल मगवाकर उसके 'दिनराती' जलने की व्यवस्था कर लेती है।[७] दूसरी बार 'तन' को ही 'दिवला' बना उसमे 'मनसा' की बाती डाल देती है और प्रेम का तेल उसमे भरकर 'दिनराती' जलाया करती है तथा 'ज्ञान की पाटी' 'रचकर' वा 'मति' की 'माग' सवारकर बहुरगी सेज पर अपने 'सावरो' का स्वागत करने के लिए 'पथ जोहती' वा प्रतीक्षा किया करती है।[८] उन्हे 'सील वरत' (शीलव्रत) के सामने दूसरा

---

१ मीरा के प्रभु हरि अबिनासी, मिलि बिछुरो मति कोइ री।
—मीराबाई की पदावली, स० परशुराम चतुर्वेदी, पृ० २०।

२ गगन मडल पै सेज पिया की, किस विध मिलना होइ।
दरद की मारी वन वन डोलू, बैद मिलया नहि कोइ।
मीरा की प्रभु पीर मिटेगी, जब बैद सावलिया होई॥
—मीराबाई की पदावली, स० परशुराम चतुर्वेदी, पृ० २७।

३ परम गुरा के सरण में रहस्या परणाम करा लुटकी।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, जनम मरण सू छुटकी॥
—मीराबाई की पदावली, पृ० १०।

४ सुन्न महल में सुरत जमाऊ, सुख की सेज बिछाऊणी।
—मीराबाई की पदावली, पृ० ५।

५ मीरा मन मानी सुरत सैल असमानी॥ टेक॥
—मीराबाई की पदावली, पृ० २२।

६ जा को नाम निरजण कहिये, तो को ध्यान धरू गी।
—मीराबाई की पदावली, पृ० २३।

७ सुरत निरत का दिवला सजोले, मनसा की कर ले बाती।
प्रेम हटी का तेल मगा ले, जगे रह्या दिन ते राती॥
—मीराबाई की पदावली, पृ० ६।

८ श्याम तेरी आरती लागी हो।
गुरु परतापे पाइया, तन दुरमति भागी हो॥ टेक॥
या तन को दियना करो, मनसा करों बाती हो।

कोई भी शृगार पसन्द नही है।[1] अतएव वह ससार की आशा त्यागकर 'हरि हितु' से 'हेत' करने और इस प्रकार 'वैराग-साधन' का उपदेश देती है।[2]

स्वामी हरिदास का कथन है कि हम सब पिजडे मे बद्ध पशु के समान है। भगवान् की कृपा न हो तो कोई भी काम न चलेगा। उनकी इच्छा के अनुसार सब कुछ होगा।[3]

रसखान उपदेश देते है कि व्रज मे स्त्रिया सिर के घडे के ऊपर दो-दो, तीन-तीन घडे रख लेती है और बिना हाथ से पकडे वैसे ही बातचीत करती हुई चली जाती है। यद्यपि देखने मे तो बातचीत करती मालूम पडती है, किन्तु उनका चित्त एक क्षण मे इस बात को नही भूलता कि हमारे सिर पर मटकिया रखी है, नही तो उनके सिर पर की मटकिया गिर जाय, उसी प्रकार गोविन्द का स्मरण करो।[4] निस्सग-भाव से सारा कर्म करने का आशय कवि ने यहा प्रस्तुत किया है।

आनन्दघन प्रार्थना करते है—मनोरथ पूरा करने वाले भगवन्! आप मेरे मन रूपी रथ का भी अबाध गति से सचालन कीजिए।[5]

तेल मरावों प्रेम का, बारो, दिन राती हो।
पाटी पारो ज्ञान की, मति माग सवारो हो।
तेरे कारन सावरे, धन जोवन वारों हो।
या सोजिया बहुरग की, बहु फूल बिछाये हो।
पथ में जोहों स्याम का आज हु नहि आये हो।

—मीराबाई की पदावली, पृ० ४६।

१ मीरा लागो रग हरो औरन रग अटक परी॥ टेक॥
चूड़ो म्हारे तिलक अरु माला, सील बरत सिंगारो।

—मीराबाई की पदावली, पृ० २३।

२ हरि हितु से हेतकर, ससार आसा त्याग।
दास मीरा लाल गिरधर सहज कर वैराग।

—मीराबाई की पदावली, पृ० २६।

३ ज्योही ज्योही तुम राखत हौ, त्योही त्योंही रहियतु है हो हरि।
और अचरचै पाट धरा, स तौ कहो कौन के पैंड भरि।
जदपि हौ, अपनो भायो कियो चाहौ, कैसे करि सकौ जो तुम राखो पकरि।
कहि हरिदास पिजरा के जानवर लौं,
तरफराइ रह्यो उडिबे कों किताउ करि॥ १॥

—कवि स्वामी हरिदास व्रजमाधुरीसार, स० वियोगी हरि, पृ० २५।

४ सुनिये सब का कहिये न कछू रहिये रमि या भवबागर में।
करिये व्रत नेम सचाइ लिये जिनतै तरिये भवसागर में॥
मिलिये सब सों दुरभाव बिना रहिए सतसग उजागर में।
रसखान गुविन्दहि यों भजिये जिमि नागरि को चित गागर में॥

—रसखान-पद, स० १२७, पृ० ८५।

५ जा हित मात को नाम जसोदा सु बस को चन्द कला कुलधारी।
सोभा समूह भई घनआनन्द मूरति रग अनग जिवारी॥

मलयालम भाषा के कवियो ने भी ब्रह्म के सम्बन्ध में लगभग ऐसे ही विचार व्यक्त किये है। भक्तप्रवर ज्ञानी एजुत्तच्छन लिखते है—हे भगवन्, आप नारायण है, नारद आदि महर्षियो के लिए भी अविज्ञेय है, नारियो के लिए मनोमोहन है, निश्चल, निरुपम, निरामय, निराकुल, भक्तप्रिय, भुक्तिमुक्तिप्रदायक, पद्मनाभ, परापर, शक्तियुक्त सकलानन्द-विग्रह, अद्वय, अव्यय, अद्भुत, अध्ययनप्रिय, सारे तत्त्वो का मूलाधार, परब्रह्म, सनातन, अच्युत, एक, आनदपूर्ण अनत, जन्म-जरा-मृत्यु-विहीन, जनार्दन, दयानिधि, विष्णु, निरजन, सदाशिव, न्यूनातिरेकविहीन, गोविन्द, मुकुन्द, हरिदेव, दिनाधिप, चन्द्र, त्रिलोचन, पचभूतात्मक, जीवो के आधार, पूतना के घातक, मेरे प्राण, पन्नगनाथ, भक्तो का दु ख हरने वाले तथा मेरे हृदयेश है।[1] सर्वगुणसम्पन्न भगवान् मेरे हृदय मे स्थित है। भक्त मे और भगवान् मे कोई भिन्नता नही। इसी आशय से युक्त कई कविताए श्री एजुत्तच्छन ने लिखी है।

भक्ताग्रेसर श्री पून्तानम नपूतिरि ने अपनी 'ज्ञानप्पाना' मे कहा है कि ईश्वर ने सारे प्रपच की सृष्टि की। वे ज्योतिस्वरूप है, विषय-रहित है, निस्पृह है, ज्ञान से वे जाने जा सकते है, मूर्खो के लिए अज्ञेय है।[2] कवि ने ईश्वर को प्रेम और भक्ति का विषय भी माना है और ज्ञान का भी। जो ब्रह्मज्ञान से जाना जाता है वह ज्योतिरूप है, ज्ञानस्वरूप है।

जान महा सहजै रिझवार उदार बिलास में रासविहारी।
मेरो मनोरथ हू वहि ए, अरु है मो मनोरथ पूरनकारो॥
—घनानन्द, स० शभुप्रसाद बहुगुना, पृ० ९०।

१ नारायणन परन दामोदरनोशन नारदनादिकल्क्कुम तिरियातवन।
नारोजन मनो मोहनन केशवन नारक नाशनन नाथन नरकारि।
निष्कलन निगुणन निश्चलन निर्म्ममन निष्कलकन निरातकन निरुपमन।
नित्यन निरामयरूपन निराकुलन भक्तप्रियन पुमान भुक्तिमुक्तिप्रदन।
भक्ति मा यन पद्मनाभन परापरन शक्तियुक्तन सकलानन्द विग्रहन।
अद्वयनव्ययन अ भुतन्मानन अध्ययनप्रियनामना गोचरन।
तत्वदुलेद्यानिम मूलमायवन सत्यस्वरूपन सकल जगन्मयन।
सच्चिल पर ब्रह्ममाय सनातनन अच्युतन एकनात्मा परमेश्वरन।
आनन्द पूर्णननन्तन जनिमृति होनन दयानिधि विष्णु निरजनन।
नाना जगत्परिपूर्णन सदाशिवन न्यूनातिरेक विहीनन जनार्दनन।
गोनन्दन इन्द्रानजन मुकुन्दन हरि देवन दिनाधिप चन्द्र विलोचनन।
भूत पचात्मकन भूति भूषार्च्चितन भृतदुलुल्लिले जीवनाकुन्नवन।
पूतना तन्नुटे जीवनमुन्टवन पूतन् पुराण पुमान पुरुषोत्तमन।
पन्नगव्राताशनवजन मगलन पन्नगनाथ शयनन परमात्मा।
एन्नुटे युल्लिल विलडडुन्न तपुरान तन्नुटे भक्तक्क्र् सकट तीर्प्पवन।
—श्री महाभारतम्, सभा पर्व, कवि श्री एजुत्तच्छन, पृ० १५३।

२ मुन्नमिक्कण्टविश्वमशेषवु । ओन्नायुल्लोरु ज्योति स्वरूपमाय।
ओन्न चेन्नडडु तन्नोट्ठ पट्टाते । ओन्निन चेन्नु तानु वलयाते।

महाकवि कुचन नप्यार ने लिखा है कि ब्रह्मा ने ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र जातियो की सृष्टि की। इसके बाद चाण्डाल आदि उपजातियो को पैदा किया। यदि सूक्ष्म रूप से विचार किया जाए तो मालूम होगा कि इन सब का मूलाधार केवल ब्रह्म ही है। सूत्र मे मोती, प्रवाल आदि पिरोकर धनी लोग अपने गले मे मालाए पहनते है, निर्धन गुज फल की माला उसी सूत्र मे पिरोकर धारण करते है। इन दोनो प्रकार की मालाओ का आधार तो डोरी ही है। उसी प्रकार ईश्वर विविध जातियो के विविध प्रकार के लोगो की सृष्टि करते है। चाहे ब्राह्मण हो या चाण्डाल, उसकी आत्मा एक ही है। ज्ञान की स्थिति मे ही भेद होता है। जिसको ब्रह्म का ज्ञान नही, वह चाहे [illegible] मे ही क्यो न पैदा हुआ हो, वह चाण्डाल के समान है।[1]

श्री चेरुश्शेरी नपूतिरि इस प्रकार अपने आराध्यदेव परब्रह्म-स्वरूपी कृष्ण की स्तुति करते है—हे भगवन्, आपकी महिमा का वर्णन कर सकना मेरी शक्ति के बाहर है, आप मोक्ष-स्वरूप है, तिल मे व्याप्त तेल के समान आप इस प्रपच मे स्थित है। आप जैसे सर्वव्यापी को मूर्ख लोग नही देख सकते। सारे प्रपच का कारण आप ही है। चराचर की सृष्टि, स्थिति और लय का कारण आप ही है। इन्द्र, चन्द्र, मन्त्र, तन्त्र, वेद आदि मे आपका ही निवास है।[2]

एक स्थान पर कवि ने लिखा है कि हे भगवन्, अग्नि, वरुण, पृथ्वी, आकाश, अरुण

ओन्नोन्नादि निनटक्कु जनङ्ङुल्क्कु। ओन्नुकोन्टरिवाकुन्न वस्तुवाय।
ओन्नु पोले योन्निल्लाते युल्लति लोन्नायुल्लोरु जीव स्वरूपमाय।
निन्नवन वन तन्ने चमच्चु पोल मुन्नु मोन्निलटडङुन्नु पिन्नेयु।
—पुन्तानम की कृतियों से पृ० ६१, ६२, स० पडित के, वासुदेवन मूसत।

१ विप्रनेन्नु क्षत्रियनेन्नु वैश्यनेन्नु शूद्रनेन्नु।
इप्रपन्चे नालु वर्ण नालुवक्त्रनुलवाक्कि।
तल्प्पुरत्तु बौद्धनेन्नु पाणनेन्नु परयनेन्नु।
कल्पित जातिभेद त्तिन्नतमिल्ल निरूपिच्चाल।
× × ×
एन्नतु [illegible] भेदमिल्ला।
ओन्नु तन्ने चरटुल्लिल भूसुरन्नु परयन्नुम।
ज्ञानमेन्नुल्लतु तन्ने सार मेन्नु धरिक्केणम।
ज्ञानमिल्लात्त विप्रन्नु बौद्धन्नु भेद मिल्लेतुम।
—श्री कुचन नप्यार, स० प्रो० वारियर, पृ० ६७।

२ केवलनायोरु निन्नुटे वैभवमावतल्लेतुमे वाज़्त्तुवानो।
एल्लिल निरञ्ञोरु एएणयेप्पोले पोयुल्लिल निरञ्ञु जगत्तिलेडडुम।
× × ×
मन्त्रमाय निन्नतु तन्त्रमाय निन्नतुम।
चिन्तिच्चु काणुकिल मट्टारुमल्ले।
—कृष्णगाथा, स० राजराज वर्मा, पृ० २१६।

यह सब आपके रूप है। पुष्प की सुगन्धि के समान सब कही आप व्याप्त है। यह सोचकर मुझे बडा भय लगता है कि मृत्यु मुझे ग्रस लेगी। आप अपने चरणारविन्दो की धूलि से हमे ससार-सागर से छुटकारा दीजिए।[1]

ऊपर कही हुई बातो से यह बात स्पष्ट है कि दोनो भाषाओ के भक्त कवियो के दार्शनिक सिद्धान्त समान है। इस सारे ससार का कर्ता-धर्ता परब्रह्म ही है। उसीसे सब की सृष्टि हुई है। भिन्न-भिन्न नामो से उसे पुकारा जाता है। उसकी कृपा से भक्त अपना जन्म सफल कर सकता है। उस शक्ति की सतत आराधना से मोक्ष प्राप्त होता है। वह निर्गुण भी है और सगुण भी। भक्त की भावना के अनुसार वह प्रत्यक्ष होता है। वह आनन्द की मूर्ति है, नित्य है, एक है और करुणामूर्ति है। सक्षेप मे दोनो भाषाओ के कवियो ने ब्रह्म के सम्बन्ध मे एक-से विचार व्यक्त किये है। भिन्नता केवल भाषा की है।

जीव-सम्बन्धी विचार

श्री शकराचार्य ने जीवात्मा और परमात्मा के सम्बन्ध मे लिखा है—जीव वास्तव मे सच्चिदानन्द ब्रह्म ही है। केवल भ्रमवश वह अपने को सच्चिदानन्द से पृथक् समझता है। अपूर्ण प्रकाश रहने पर रस्सी मे जिस प्रकार साप का भ्रम होता है, शुक्ति मे चादी का भ्रम होता है, आख मे अगुली लगाने पर जिस प्रकार दो चन्द्रमाओ का भ्रम होता है, नौका-रूढ होकर चलने पर वृक्षो के दौडने का भ्रम होता है, उसी प्रकार मोहग्रस्त हो जाने पर चैतन्य को अपने जीवत्व का भ्रम होता है। वास्तव मे जीव और ब्रह्म मे कोई भेद नही है। यदि मायावश कोई भेद माना भी गया है तो वह उसी प्रकार का है जैसा समुद्र और लहरो मे हुआ करता है।[2]

सक्षेप मे इस प्रकार कहा जा सकता है कि ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है और जीव मिथ्या है और जीव ब्रह्म से अलग नही।[3] श्री शकर के मायावाद के जीव मे और श्री वल्लभाचार्य के ब्रह्मवाद के जीव मे अन्तर यह है कि मायावाद मे जीव की अनेकता तथा-सत्त भ्रम और अविद्या के कारण प्रतिभासित होती है, वस्तुत न जीव है और न जगत्,

---

१ दहननायतु तपननायतु। पवननायत परने नी।
अवनियायतु गगनमायतु अडकिल वाणेडुम परने ना।
अरुणनायतु वरुणनायतु करुणवकातले परन नीये।
कुसुम तन्नुटे मण पोले निन्नु भुवनडुलेड्डुम निरञ्चुनी।
मरणमुन्टिनि वरुवानेन्नोर्त्त परने माडकुन्नु मनमय्यो।
परने निन्नुट चरण प्पूम्पोटि पलप्पोडुमेडुल तल तन्निल।
मरुवीटेणमे पिरवि युन्टाक्कि मलरमातिन मारवु पुणरवोने।
—कृष्णगाथा, स० राजराज वर्मा, पृ० २१७, २१८।

२ श्री शकराचार्य—ले० राजराज वर्मा, पृ० २६, २७।

३ ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापर।

सब जीव, भ्रम हरने पर, एक ब्रह्म ही है। वल्लभ के ब्रह्मवाद मे जीवो की अनेकता तथा उनकी पृथक् सत्ता सत्य है। अवस्था-विशेष मे पृथक्ता है और दूसरी अवस्था-विशेष मे जीव और ब्रह्म की एकता भी है। परन्तु दोनो अवस्थाए सत्य है। शकरमत मे जीव विभु है और वल्लभमत मे जीव अणु है। शकरमत मे जीवबुद्धि के सम्बन्ध से अनुरूप भासित होता है परन्तु वह विभु (व्यापक) ही है।[1] हिन्दी के अष्टछाप कृष्णभक्त कवियो ने वल्लभ के जीव-सम्बन्धी सिद्धान्तो को स्वीकार किया है।

[हिन्दी कवियो के विचार]

सूरदास—जीव और ईश्वर एक है। यही सूर ने स्वीकार किया है।[2] दूसरे एक स्थान पर सूर ने लिखा है कि देव, माया, प्रकृतिपुरुष वह सब 'गुपाल' के यानी ब्रह्म के अश है।[3] फिर भी उन्होने लिखा है कि पहले एक ही ब्रह्म था, फिर अनेक रूप उससे पैदा हुए और यह सब अन्त मे उसीमे लीन हो जाते है।[4]

जीव माया से आक्रान्त होने पर उसी माया मे अपने ही अनेक प्रतिविम्ब देखता है। वस्तुत वह अपने मे निहित सत्यस्वरूप 'अह ब्रह्मास्मि' को नही पहचानता। यह भ्रम काच के बने मन्दिर मे खडे कुत्ते अथवा स्वप्न मे सोये मनुष्य के भ्रम के समान है। इस अनेकरूपता तथा सम्पूर्ण जगत् के प्रसार को वह केवल मिथ्या कल्पना से देखता है। माया के आवरण को हटाकर यदि वह अपने सच्चे रूप को जान लेता है तो वह ब्रह्म ही हो जाता है। सूर के एक विशिष्ट पद[5] से उक्त अर्थ हम निकाल सकते है। इस पद का सूक्ष्म रूप

---

१ अष्टछाप और वल्लभ-सप्रदाय, भाग दो।—ले० टा० गुप्त।

२ सहसरूप बहु रूप-रूप पुनि एक रूप पुनि दोय।
—सूरसारावली, सूरसागर, वे प्रे, पृ० ३४।

३ सकल तत्त्व ब्रह्माड देव पुनि माया सब विधि काल।
प्रकृतिपुरुष श्री पतिनारायण, सब है अश गुपाल।
—सूरसारावली, सूरसागर, वे प्रे, पृ० ३८।

४ पहले हौ ही हौ तब एक।
अमल अकल अज भेद विवर्जित सुनि विधि विमल विवेक।
सो हों एक अनेक भाति करि शोभित नाना भेष।
ता पाछे इन जुननि गाये ते हों रहि हों अवशेष।
—सरसागर, द्वितीय स्कन्ध, वे प्रे, पृ० ३९।

५ अपुनपौ आपुन ही विसरयो।
जैसे स्वान काच मदिर में भ्रमि भ्रमि भूमि भरयो।
ज्यों सपने में रक भूप भयो तस्कर अरि पकरयो।
ज्यों केहरि प्रतिबिम्ब देखि के आपुन कूप परयो।
जैसे गज लखि फटिक सिला में दसननि जाय अरयो।
मर्कट मूठ छाडि नहि दीनी घर-घर द्वार फिरयो।
सूरदास नलिनी को सुवरा कहि सोने जकरयो।
—सूरसागर, द्वितीय स्कन्ध, वे प्रे, पृ० ३८।

से अध्ययन करने पर ऐसा जान पडता है कि सूरदास शकर के सिद्धान्तो से प्रभावित हुए होगे किन्तु उनमे दूसरे पदो से इसकी तुलना करने पर हमे मालूम होगा कि शकर के सिद्धातो का प्रभाव उनपर नही पडा है।

वल्लभ-सप्रदाय के अनुसार जगत् और ससार दो भिन्न सत्ताए है। जगत् ब्रह्म का अश रूप है और जगत् सत्य भी है। ससार तो अज्ञान से उत्पन्न हुआ है और केवल भ्रम-मात्र है। जीव तो माया के वश मे पडकर अपना असली रूप भूल जाता है। इस अवस्था मे ही वह अनुभव करता है कि मै दु खी हू या सुखी हू। उसके कारण मुझे ऐसा कष्ट झेलना पडा इत्यादि। यही ससार काच का मदिर है और भ्रम का कारण है। इस भावना से प्रेरित होकर एक स्थान पर सूरदास लिखते है कि परमात्मा तो एक है। उसका अश है जीव, और वह सत्य है। शरीर तो अवस्था-भेद के अनुसार कभी स्थूल होता है और कभो दुर्बल होता है। माया मे पडकर शरीर दु ख और सुख का अनुभव करता है। वास्तव मे जीव सग-रहित है। वह पानी मे कमल जैसा है। कर्म के प्रभाव से विविध योनियो मे जीव जन्म लेता है और फल भोगता है आत्मा जन्म-जरा-विहीन है। वह सब से अलिप्त रहता है।[1]

परमानन्ददास—आप भी सूर के समान जीव को ईश्वर का अश मानते है। वे गाते है कि अपने असि कमललोचन को भूलकर लोग ससार मे लगे रहते है और सासारिक सुख का अनुभव करने मे अपना सारा समय बिताते है। योगी योग का अभ्यास करे, ज्ञानी ज्ञान की चिन्ता मे डूब जावे, कर्म निष्ठा मे लगे, लोग कर्म करते रहे किन्तु मै गोपाल का गुणगान करके सुख पाता रहूगा।[2]

---

१ राग बिलावल

तन स्थूल और दूबर होइ, परम आत्मा को एक नहि दोइ।
तनु मिथ्या चेतन भगुर जानो चेतन जीव सदा स्थिर मानो।
जीव को सुख दुख तनु सग होई, जोर विजोर तन के सग सोई।
देह अभिमानी जीवहि जाने, ज्ञानी जीव अलिप्त करि माने॥

× × ×

कबहू सुर कबहू नर होई, कबहू राव रक जिय सोई।
जीव कर्म करि बहु तन पावै, अज्ञाना तिहि देखि भुलावै।
ज्ञानी सदा एक रस जानै, तन के भेद भेद नहि मानै।
आत्म सदा अजन्म अविनासी, ताको देह मोह बड फासी॥

× × ×

ताते ज्ञानी मोह न करै, तनु कुटुम्ब सों हित परिहरै।
जब लग भजै न चरन मुरारी, तब लग होइ न भव जल पारी।

—सूरसागर, षष्ठ स्कन्ध, वे. प्रे. पृ० ५४।

२ राग सारग

माई हौं अपने गोपालहि गाऊ।
माई हौं अपने गोपालहि गाऊ।

नन्ददास—नन्ददास ने लिखा है कि जीवात्मा और परमात्मा अभिन्न हैं। इस प्रपच मे जो कुछ है वह सब परमात्मा ही है। वह व्यक्त और अव्यक्त भी है। जड और चैतन्य सब परमात्मा का अश ही है। सत्त्व, रजस् तथा तमस् तीनो गुणो से युक्त है वह। किबहुना, सारा जगत् और सब कुछ ब्रह्ममय है।[1] एक स्थान पर उन्होने लिखा है ईश्वर काल, देश, कर्म आदि के परे है और जीव मायाजनित प्रलोभनो मे पडकर पाप और पुण्य के काम करता है और उसका फल-भोग करने के लिए ही सुख-दु ख आदि विकारो का अनुभव उसे करना पडता है। इसीलिए वह विविध जन्म भी लेता है।[2] यहा ईश्वर और जीव का अन्तर नन्ददास ने दिखाया है।

ध्रुवदास—ध्रुवदास गाते हैं हरि को भूलकर जीव तुच्छ वस्तुओ मे मन लगाकर अपने जन्म को नष्ट करता है।[3] अपने मूल स्थान को प्राप्त करने का उपदेश वे व्यग्य रूप मे देते हैं।

[मलयालम कवियो के विचार]

मलयालम के सारे भक्तकवि एक स्वर से उद्घोषित करते हैं कि जीवात्मा और परमात्मा मे जरा भी भिन्नता नही है। परन्तु इस एकता को मलयालम के कुछ भक्तो ने अन्य प्रकार से स्थापित किया है जिसमे शकर के मायावाद की झलक है। प्रतिनिधि कवि

सुन्दर स्याम कमल दल लोचन देखि देखि सुख पाऊ।
जो ग्यानी ते ग्यान विचारो, जोगी ते जोग।
कर्मठ होय ते कम वितारो जो भोगी ते भोग।
× × ×
अपने असि की सुरति तजी है, मागि लियो ससार।
परमानँद गोकुल मथुरा में उपज्यो यहै विचार।
—अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय, ले० डा गुप्त, पृ० ४३२।

१ निपट निकट घट में जो अन्तरजामी आही।
विषै विदूसित इन्द्रा पकरि सकै नहिं ताही ॥ ७२ ॥
—रासपचाध्यायो, पचम अध्याय, उदयनारायण तिवारी, पृ० ८८ तथा नन्ददास शुक्ल, पृ० १८२, पाठ भेद से।

२ काल करम माया अधीन ते जीव बखाने, विधि निषेध अरु पाप-पुण्य तिनमें सब साने।
परम धरम परब्रह्म ज्ञान विज्ञान प्रकासी, ते क्यों कहिये जीव सहस श्रुति शिवा निवासी।
—सिद्धपचाध्यायी, नन्ददास शुक्ल, पृ० १८४।

३ चौपाई
जीव दसा कछु इक सुनु भाई, हरिजस अमरत तजि विष खाई।
छिन भगुर यह देह न जानी, उलटी समुझि अमर ही मानी।
घर घरनी के रँग यों राच्यौ, छिन-छिन में नट कपि ज्यों नाच्यौ।
बय गइ बीति जाति नहि जानी, जिमि सावन सरिता को पानी।
—कवि ध्रुवदास, पु० ब्रजमाधुरी-सार, स० वियोगीहरि, पृ० २५०।

श्री एजुत्तच्छन ने लिखा है[1] कि परमात्मा सच्चिन्मय, जन्मरहित, जगत् का आधार और उसकी उत्पत्ति का कारण, सनातन और निर्विकारी है। वही माया से प्रेरित होकर जीवात्मा होता है। उसके अलावा उन दोनो मे कोई अन्तर नही। जीव का अहभाव जब दूर हो जाता है तो वही परमात्मा हो जाता है। परमात्मा तो सुख-दु ख आदि-रहित है। जीव जब दुखी हो तो उसे सोचना चाहिए कि मे सर्वव्यापी परब्रह्म हू। किसी प्रकार के दु ख का प्रभाव मुझ-पर नही पड सकता। विवेक के साथ यदि जीव विचार करे तो उसे परमात्मा का ज्ञान अवश्य प्राप्त होगा।

सूरदास आदि ने लिखा है कि जीव और ईश्वर स्थिर है। मलयालम भाषा के कवियो ने जीव की स्थिरता पर विश्वास नही किया है। वे शकर-मत से प्रभावित है और हिन्दी के कवि बहुधा वल्लभ-मत तथा निम्बार्क-मत से प्रभावित है।

एजुत्तच्छन एक स्थान पर ईश्वर की स्तुति करते हुए लिखते है—हे भगवन्, आप तो एक है किन्तु माया मे पडकर मुझ (जीवात्मा) को यही प्रतीति होती है कि आप मुझसे अलग हो गए है। मै गहरे दु ख मे पड गया हू। आप दया करके मुझे अपने मूल तत्त्व से मिलाइए।[2]

यहा कवि ने स्पष्ट लिखा है कि जीव की उत्पत्ति परब्रह्म से हुई है। माया मे पडने के कारण कवि को बडा दु ख होता है। इसीलिए वे प्रार्थना करते है कि मुझे परब्रह्म से मिलाने की कृपा कीजिए। कवि प्रार्थना करते है कि हे चिन्मय ! अहकार की भावना मेरे मन मे न उत्पन्न होवे, यदि होवे तो 'सारा विश्व मै हू' यह भावना होवे। इसलिए आप कृपा कीजिए।[3]

---

१ निरन्नाटुमात्मा सच्चिन्मयनन्यथन सदा जन्मादि हीनन जगत्कारण परब्रह्मम्।
सर्व साक्षियाय सनातननाय सर्वात्मावाय निर्विकारियायुल्ल परमात्मावु तन्नेवु।
× × ×
जीवात्मावेन्नु परमात्मावेन्नु चोल्वतु केवलमल्लो माया कार्य हेतुक्कलल्लो।
मायोपाधिकलिल मेवीटुपोल चोल्लु जीवनाय ओन्ना आत्मावन्य परमात्मावोन्नेव।
—चिन्ता-सन्तानम्, ले० एजुत्तच्छन, पृ० २८।
तथा आत्माविनु ससार मय दु ख मेत्तुकयिल्ल येटडुमेन्नु बोधमुन्टाम।

२ ओन्नाय निन्नेयिह रन्टन्नु कण्टलविल।
उन्टायोरिन्टल वत मिन्टावल्ल मम।
पन्ट कणक्कुवरुवान निन कृपावलिक—
लुन्डाक एकल दह नारायणाय नम।
—हरिनामकीर्तनम्, पद स० २, ले० एजुत्तच्छन।

३ आनन्द चिन्मय हरे गोपिकारमण।
× × ×
तोन्नुन्नताकिलखिल जानितेन्न वजि।
तोन्नेणमेवरद नारायणाय नम।
—हरिनामकीर्त्तनम्, ले० एजुत्तच्छन।

दूसरे एक पद मे एजुत्तच्छन्न ने लिखा है—जब जीवात्मा को यह अनुभव होगा कि सारे चराचर का अवलम्ब अगोचर तथा बुद्धि से परे परमात्मा मे ही हू तो उस समय उसके आनन्दातिरेक का ठिकाना न रहेगा।[1]

कवि ने सिद्ध करने की चेष्टा की है कि जीव पुन जब परमात्मा मे लीन होता है, तभी उसे यथार्थ मोक्ष प्राप्त होता है।

श्री एजुत्तच्छन ने चिन्तासन्तानम् नामक एक पुस्तक मे लिखा है कि आत्मा, जीवात्मा, परमात्मा ये तीनो पर्यायवाची शब्द हैं। मान लीजिए कि देवदत्त नामक एक मनुष्य है। उसके पुत्र-पौत्र होते हैं। यद्यपि उसके पुत्र और पौत्र विविध नामो से पुकारे जाते हैं तो भी देवदत्त एक ही है। उसी प्रकार है आत्मा। आत्मा कभी मायावश मे पडकर जीवात्मा होता है और स्वय दु ख झेलता है। परमात्मा पर दु ख का प्रभाव नही पड सकता। वह सब से परे है। जीव गुण-विशेषो को अपनाकर समझता है कि देह मैं हू,यह धन मेरा है, यह मेरा शत्रु है, वह मेरा मित्र है। ऐसी मनोवृत्ति मे जब वह फस जाता है और यद्यपि जीव निर्मल है तो भी कर्म के वश मे पडकर वह सब प्रकार के जन्म-क्लेशो को सहन करता है।[2]

जीवात्मा, परमात्मा और आत्मा एक ही हैं, इसे हिन्दी के अधिकाश कृष्णभक्त कवि स्वीकार करते हैं। मलयालम के सारे कृष्णभक्त कवि एजुत्तच्छन के उपर्युक्त विचारो से पूर्णरूप से सहमत हैं।

माया-सम्बन्धी विचार

वल्लभाचार्य ने लिखा है कि माया दो प्रकार की होती है। उसके नाम हैं—विद्या-

---

१ अक्कोनिलादि वेलिवोक्के ग्रहिक्कुमोरु।
कण्णिन्नु कण्णु मनमाकुन्न कण्णतिनु।
कण्णायिरुन्न पोरुल तानेन्नुरक्कुमल—
वानन्द मेन्नु हरि नारायणाय नम।
—हरिनामकीत्तनम्, पद स० ४, ले० एजुत्तच्छन।

२ आत्मा-जीवात्मा परमात्मावेन्नेव पलताय परयुन्नतेल्लो। पर्यायनाममल्लो।
ओरुवन देवदत्तनवनु पुत्रनायिट्टोरुवनवनुटे पुत्रनायोरुवनुम।
रण्टु सन्तति देवदत्तन्कल निन्नुण्टाक कोण्टु देवदत्तनु रण्टु नामङ्ङल चोल्ला।
पुत्रनु जनकनु पौत्रनु पितामहन पुत्र पौत्रन्मारुण्टामेन्नालिङ्ङने चोल्ला।
अच्छनु मुत्तच्छनु मिडङने चोल्लीटुन्नु निश्चय मेंकिलोत्ता लोन्नल्लो देवदत्तन।
एन्नतु पोले परमात्मा वु आत्मावेन्नु पिन्ने जीवात्मावेन्नु मून्नायि च्चोल्लीटुन्न।
देवदत्तने [illegible] कचिल।
हेयमायिरिप्पोरु देहतत्वङ्ङलेल्लाम देहिया आत्माविने [illegible]।
निर्गुणनायिट्टवट्टान मरिच्चरिकयाल अग्गुणङ्ङुले जीवन तनिक्कुल्लोन्नाक्कि।
देह जानेन्नु चिन्तिच्चच्चोरो,कर्म्मङ्ङुले मोहियाय च्चेरो कोण्टुविद्वानाकुन्नु जीवन।
निर्मलनेन्नाकिलु कर्मबन्धन कोन्टु जन्मादि दु खङ्ङलु वन्ननुभविक्कुन्नु।
—चिन्तासन्तानम्, पृ० ६, ७, कवि श्री एजुत्तच्छन।

माया और दूसरी अविद्या-माया।[1] इसी माया ने ही सारे प्रपच का निर्माण किया है। जीव इस माया की अधीनता मे पडकर दुखी होता है। अविद्या-माया से जीव ससार मे लिप्त रहता है और विद्या-माया से ससार-सागर मे जीव मुक्त हो जाता है। अविद्या-माया को आचार्यों ने अज्ञान, भ्रम, स्वप्न आदि कई नाम दिये हैं।

हिन्दी तथा मलयालम के कृष्णभक्त कवियो ने माया को विविध रूप से चित्रित किया है। उन्होने लिखा है, माया जीव को अनेक प्रकार से नचाती है और जीव से भ्रम-पूर्ण ससार की सृष्टि कराकर उसीको दु खजाल मे फसाती रहती है। माया से त्रस्त जीवो की स्थिति के उन लोगो ने मार्मिक चित्र खीचे हैं। माया अपने मोहक एव मायिक रूप द्वारा जीवात्मा को ममत्व-पाश मे जकड देती है। यह वह ग्रन्थि है जो जीव को गृह, धन, पुत्र, कलत्र आदि के प्रेम मे बाधे रहती है।

[हिन्दी के कवि]

सूरदास—सूर ने माया को अनेक बार मोहिनी, भुजगिनी, नटनी आदि के रूप मे चित्रित किया है। लोभ, मोह, काम, क्रोध, छल, कपट, दभ और पाखड आदि इसीके रूप हैं। वे कहते हैं—हे प्रभु, यह नटिनी माया मुझे अनेक नाच नचाती है। मुझे लोभ मे डाल-कर नाना प्रकार का वेष रचाकर घर-घर घुमाती रहती है। हे प्रभु! तुमको भुलवाकर कई प्रकार के घृणित कार्य करने के लिए प्रेरणा देती है। मन को झूठी आशा दिखाकर मुझे भ्रम मे डाल रही है और मुझे कुमार्ग पर उसी प्रकार ले जाती है जैसे कोई दूती सती-साध्वी वधू को बहकाकर पर-पुरुष से मिला देती है। हे भगवन्! आपके सिवा इस वचकी माया से मुझे बचाने वाला कोई दूसरा नही।[2]

सूर एक स्थान पर माया की भयकरता के सम्बन्ध मे आलकारिक भाषा मे लिखते

---

१ विद्याविद्ये हरे शक्ती मायदैव विनिर्मिते।
ते जीवस्यैव नान्यस्य दु खित्व चाप्यनीशता॥ ३४॥
—ता० दी० नि० शास्त्रार्थ-प्रकरण, ज्ञानसागर बम्बई, पृ० ९६, १००।

२ राग केदार
बिनती सुनौ दीन की चित दै कैसे तुव गुन गावै।
माया नटिनि लकुटि कर लीने कोटिक नाच नचावै।
दर दर लोभ लागि लिये टोलति नाना स्वाग बनावै।
तुम से कपट करावति प्रभुजू, मेरी बुधि भरमावै।
मन अभिलाष तरगनि करि करि, मिथ्या निसा जगावै।
सोवत सपने में ज्यों सपति, त्यौ दिखाइ बौरावै।
महा मोहिनी मोहि आतमा, अपमारगहि लगावै।
ज्यों दूती पर बधू भोरि कै, लै पर पुरुष दिखावै।
मेरे तो तुम पति, तुमही गति, तुम समान को पावै?
—सूरसागर, भाग १, पद स० ४२, सभा सस्करण।

है—अरे मन, तू सावधान क्यो नही होता ! माया रूपी भुजगिनी ने तुझे काट लिया है और विष नही उतरा है। जब गुरु कृष्ण, नाम रूपी गारुडी मत्र मेरे श्रवणो मे फूकेगे और कृष्ण के गान सुनाएगे उसी समय ही उसका विष उतरेगा। यह अज्ञान रूपी मूर्च्छा, ज्ञान-रूपी औषध से ही दूर हो सकेगी।[1]

ऐसा कोई भी इस दुनिया मे नही पैदा हुआ जो माया के प्रबल प्रहार से घायल न हुआ हो। कई उदाहरण देकर सूर कहते है कि हे भगवन् ! तेरी माया ने किसको पथ-भ्रष्ट नही किया। इसीके कारण वरुण, नारद, सगर-पुत्र, शिव, दुर्योधन आदि को कई प्रकार की विपत्तिया झेलनी पडी है।[2]

अविद्या माया के प्रभाव से यह जीव क्या-क्या करता है, यह सूर के शब्दो मे सुनिए। आशा की मृगमरीचिका मे पडा हुआ मनुष्य वैकुण्ठनाथ की सेवा छोडकर नीच लोगो के सग सदा घूमता-फिरता है, जिन लोगो से अनिष्ट की सभावना होती है उनकी ही प्रशसा करता रहता है, धन के मद मे चूर होकर अभिमान तथा लोभ मे पडकर श्याममनोहर की स्तुति किए बिना सज्जनो की निन्दा करता है और सुखदायक प्रभु के चरणो की सेवा करने का विचार नही रखता।[3]

---

१ राग गूजरी

अजहू सावधान क्यो न होई।
माया विषम भुजगिनि को विष उतर्‌यौ नाहि न तोई।
कृष्ण सुमत्र जियावन मूरी जिन जग मरत जिवायो।
बारम्बार निकट स्रवननि ह्वै गुरु गारुडी सुनायो।
भौतिक देह जीय अभिमानी देखत ही दुख लायो।
कोउ कोउ उबर्‌यो साधु सगति जिन राम सजीवनि पायो।
जाग्यो मोह मयूर अति छूटै सुजस गीत के गाए।
सूर मिटै अज्ञान मूरछा ज्ञान मूल के खाए।

—सूरसागर, द्वितीय स्कन्ध, वे प्रे, पृ० ३८।

२ राग केदारौ

हरि तुव माया को न बिगोयौ।
सौ जोजन मरजाद सिधु की, पल मै राम बिलोयौ।
नारद मगन भये माया मै, ज्ञान बुद्धि बल खोयौ।
× × ×
सौ भैया दुरजोधन राजा, पल मैं गरद समोयौ।
सूरदास कचन अरु काचहि एकहि धगा पिरोयौ॥

—सूरसागर, पहला खड, पद स० ४३, सभा सस्करण।

३ राग बिलावल

यह आसा पापिनी दहै।
तजि सेवा बैकुण्ठनाथ की, नीच नरनि कै सग रहै।
जिनकौ मुख देखत दुख उपजत, तिनकौ राजा राय कहै।

परमानन्ददास—सूर के समान परमानन्ददास ने माया कितने प्रकार की होती है, उसके प्रभाव से क्या-क्या परिवर्तन होता है, आदि विषयो के बारे मे विशद रूप से नही लिखा है। उन्होने मन को समझाते हुए कहा है कि हे मन, बिना भक्ति किए पुराण-ग्रथो के अध्ययन से क्या प्रयोजन! तूने काम, क्रोध आदि विकारो को नही छोडा और दूसरो की निन्दा मे लगा रहा। उदर-पूरण के लिए परधन छीना और सदा लौकिक सुख लूटने मे समय लगाया, तू साधुओ तथा कमललोचन की सेवा अभी तक न कर सका।[1]

नन्ददास—नन्ददास ने लिखा है कि माया सारे लोको की सृष्टि करती है।[2] परमहस लोगो का कहना है कि माया से ही इन्द्रिया, अहकार त्रिगुण आदि की सृष्टि हुई है।[3] भगवान् की माया असभावित बातो को सभावित करने वाली है तथा चतुर है।[4]

धन मद मूढनि, अभिमानिनि, मिलि लोभ लिये दुबचन सहै।
भई न कृपा स्यामसुन्दर की, अब कहा स्वारथ फिरत बहै।
सूरदास सब सुखदाता प्रभु गुन विचारि नहि चरन गहै॥

—सूरसागर, पहला खट, पद स० ५३, सभा सस्करण।

१ राग धनाश्री

रे मन सुन पुरान कहा कीनो।
अनपावनो भक्ति न उपर्जा भूखे दान न दानो।
काम न बिसरयो क्रोध न बिसरयो लोभ न बिसरयो देवा।
परनिन्दा मुख ते नहि बिसरी निष्फल भई सब सेवा।
बाट परी घर मूसि परायो, पेट भरयो अपराधी।
परलोक जायगो ज्याते मूरख सोई अविद्या साधी।
चरन कमल अनुराग न उपज्यो भूत दया नहि पाली।
परमानन्द साधु सगति बिनु कथा पुनीत न चाली।

—अष्टछाप और वल्लभ-सप्रदाय, ले० और स० टा० गुप्त, पृ० ४६२।

२ लोक सृष्टि सिरजत यह माया, तुम ते दूरि मलमई काया।
हे सरवग्य अग्य जन मेरे जानै नहिन धर्म प्रभु केरे।

—दशम स्कन्ध, भाषा, २८वा अध्याय, नन्ददास शुक्ल, पृ० ३१९।

३ दश इन्द्रिय अरु अहकार महतत्त्व त्रिगुण मन।
यह सब माया कर विकार कहैं परमहस गन।
सो माया जिन के अधीन नित रहत सृगी जस।
विश्व प्रभव, प्रतिपाल प्रलयकारक आयुस बस।

—सिद्धान्तपचाध्यायी, नन्ददास शुक्ल, पृ० १८३।

४ तब लीनी कर कमल जोग माया सो मुरली।
अघटित घटना चतुर बहुरि अधरन रस जुरली।
जाकी धुनि ते अगम निगम प्रगटे बडनागर।
नाद ब्रह्म की जननि मोहिनी, सब सुखसागर।

—रासपचाध्यायी प्रथम अध्याय, उदयनारायण तिवारी, पृ० १५ तथा नन्ददास शुक्ल, पृ० १६०, पाठ भेद से।

उद्धव की युक्तियो का खडन करती हुई गोपिया कहती है कि हे उद्धव ! तुमने कहा कि ईश्वर निर्गुण है, तो हम पूछती है कि जो गुण इस ससार मे दिखाई पडते है वे कहा से आए ? बीज के बिना पेड कैसे निकल सकता है ? वास्तव मे ईश्वर सगुण है और उनके गुणो की छाया उनकी माया के दर्पण मे पड रही है। ईश्वरीय गुण और प्राकृत गुण क्यो भिन्न दीखते है ?—अविद्या माया के ससर्ग से। निर्मल जल के समान शुद्ध ईश्वरीय गुणो को, जो प्रकृति माया के माध्यम द्वारा व्यक्त होते है, अविद्या-माया की कीच ने गदा और मैला बना दिया है और इन्ही कलुषित गुणो को ससारी जन अपनाते है।[1]

हरिदास—स्वामी हरिदास उपदेश देते है—हे मन ! हरि का भजन करो। सब झूठ है। जीवन क्षणभगुर है। विविध प्रकार के माया जाल मे पडकर लोग भगवान् को भूल जाते है।[2]

[मलयालम के कवि]

एजुत्तच्छन—माया के सम्बन्ध मे मलयालम भाषा के कवि एजुत्तच्छन कहते है—जिस प्रकार पुष्प से सुगधि उत्पन्न होती है वैसे ही आत्मा से माया की उत्पत्ति होती है और उसमे लय भी होती है। जल से फेन होता है और उसीमे लीन होता है। जब जीव को परमात्मा का ज्ञान होगा तब माया की बाते समझ मे आ जाएगी, और यह अनुभव हो जाएगा कि ब्रह्म के सिवा और कोई वस्तु सत्य नही। वे आगे कहते है—माया दो प्रकार की है। एक शुद्ध माया, दूसरी मलिन माया। शुद्ध माया मोक्ष-प्राप्ति मे सहायक रहती है। मलिन माया के प्रभाव से जीव को भ्रम होता है, जैसे रज्जु को देखकर सर्प की प्रतीति होती है। जीव विचारता है कि मुझे आनद चाहिए और मेरा नाश न हो। मेरे पुत्र, मित्र, कलत्र पर किसी प्रकार की विपत्ति न आए। इस प्रकार की सकुचित मनोवृत्ति से पीडित वह जीव मरता है, फिर जन्म लेता है और फिर मरता है। इस तरह जन्म-मरण के भवर मे वह पड जाता है। जीवात्मा और परमात्मा मे जब एकता होती है तब माया का नाश होता है और

---

१ जो उनके गुन नाहि और गुन भये कहा ते।
बीज बिना तरु जमै मोहि तुम कहो कहा ते।
वा गुन की परछाह री माया दर्पन बीच।
गुन ते गुन न्यारे भये, अमल बारि मिलि कीच।
—भवरगीत, नन्ददास शुक्ल, पृ० १२८, पाठ भेद से।

२ जौ लौ जीवै तौ लौ हरि भजु रे मन, और बात सब बादि।
दिवस चारि कौ हला भला तू कहा लेइगौ लादि।
माया मद गुन मद जोबन मद, भूल्यो नगर बिबादि।
कहि हरिदास, लोभ चरपट भयो, काहे की लागै फिरादि॥ ९॥
—कवि स्वामी हरिदास वृजमाधुरीसार, स० श्री वियोगीहरि, पृ० १२९।

परमानन्द की प्राप्ति होती है।[1]

पून्तानम—श्री पून्तानम ने अपनी 'ज्ञानप्पाना' नामक पुस्तक मे लिखा है कि माया के वश मे पडकर लोग सारे काम करते हैं और उसमे लिप्त रहते हैं। ब्रह्मा से लेकर चीटी तक सब माया मे फसे रहते है। जीव माया के प्रभाव से कई जन्म लेने के बाद यदि वह शुभ कर्म करता रहे तो देवता बनता है और बुरे काम करने के कारण चाण्डाल के कुल मे पैदा होता है। सुर का असुर जन्म लेना और असुर का सुर जन्म लेना या वृक्ष का जन्म लेना आदि घटनाए सब माया-प्रेरित कर्म करने के कारण होती है। भगवान् की माया के लीला-विलास के सम्बन्ध मे भली भाति स्पष्ट कर सकना असम्भव है।[2]

हिन्दी के कवि सूरदास और परमानन्ददास आदि कवियो ने बताया है कि माया के भिन्न भिन्न रूप, अविद्या-माया और विद्या-माया ब्रह्म की प्रेरणा से सब कुछ करती है। अविद्या-माया जीव को बन्धन मे डालती है और ईश्वरकृपा से ही जीव को मोक्ष मिलता है। किन्तु एजुत्तच्छन आदि मलयालम भाषा के कवियो ने माया का वर्णन करते हुए लिखा है कि विद्या-माया से जीव शुद्ध होकर परमात्मा मे मिल जाता है। उस समय जीव तथा ब्रह्म मे कोई भिन्नता नही होगी। वल्लभ-मत से प्रभावित होकर सूर और नन्ददास ने लिखा है कि अविद्या का नाश होने पर भी जीवत्व और जगत् का नाश नही होता, जीव अलग होकर सत्य-रूप मे स्थित रहता है। अत हम यह कह सकते है कि हिन्दी के कवि

---

१ पेरुक्कु परिमल पुष्पत्तिलुन्डावण्णम परमात्माविन्कलनिन्नुन्डामेन्नरि केटो।
आद्यन्तम ब्रह्मत्तिनु मायटक्कुमिल्ल नून आद्यन तान तन्ने माया रूपियायिरिक्कयाल।
तन्कल निन्नुण्टाकुन्नु लयिक्कुन्नतु तन्कल पन्क मेट्टिने जल तन्कलेन्नतुपोले।
तोयत्तिल निन्नु फेन मुण्टाकुन्नतु पिन्ने तोयत्तिल तन्ने लयिच्चीटुन्नतुपोल।
परमेश्वरन तन्कल निन्नुण्टाम महामाया त परमात्मनि तन्ने लयिक्कुमरिञ्ञु।
परमात्मावे [illegible] परयाकुन्न माया कायवु अरिञ्ञटाम।
परजोवयो रैक्य उण्टाय्वन्नीटुन्नेर परमेश्वरनो जिञ्ञन्य मिल्लोन्नु मेन्नु।
वरुन्ननेर महा मायय तल्क्कार्यवु परमात्मनि लयिच्चानन्द चेपिच्चोटु।
—चिन्तासन्तानम्, ले० श्री एजत्तच्छन, पृ० ५, ६।

२ सुर लोकत्तिल निन्नोरु जीवन पोय।
नर लोके महीसुरनाकुन्नु।
चण्ड कर्मङ्ङ ल चैय्तवन चाकुपोल।
चण्डाल कुलत्तिन्कल पिरक्कुन्नु।
असुरन्मार सुरन्मारायीटुन्नु।
अमरन्मार मरङ्ङ लायीटुन्नु।
अज चत्तु गजमाय पिरक्कुन्नु।
गज चत्तङ्ङजवुमायोटुन्नु।
—पून्तानम की कृतिया, स० प० के वासुदेवन मूस्सत, पृ० ६५।

वल्लभ-मत, निम्बार्क-मत तथा माध्व-मत से और मलयालम के कवि शकर-मत से प्रभावित है।

मोक्ष-सम्बन्धी विचार

मोक्ष की भावना सभी आस्तिक सम्प्रदायो मे पाई जाती है। कभी न कभी मनुष्य एक ऐसी स्थिति की अवश्य इच्छा करने लगता है जिसे प्राप्त करके राग-द्वेष, स्पर्श, सघर्ष तथा उलझन-झझटो से उसे छुटकारा मिल सके। वेद ने इसे परम पद, अमृत तथा तृतीय धाम कहा है। यह स्थिति गीता के शब्दो मे परागति तथा परम धाम है। इस अवस्था को प्राप्त करने के विषय मे दोनो भाषाओ के कवियो ने कई पद लिखे है। सूर, एजुत्तच्छन, पून्तानम जैसे कवियो ने मानसिक प्रबोधन, ससार की अनित्यता प्रबल माया मे पडकर सुख पाने के लिए आतुर होकर मनुष्य का प्रयत्न करना आदि वातो का वर्णन करके मोक्ष प्राप्त करने का उपदेश दिया है। दोनो भाषाओ के कवियो के विचार समान है।

[हिन्दी के कवि]

सूरदास—सूरदास का कथन है कि गोपाल-गुणगान से जो आनन्द मिलता है वह जप-तप करने या अनेक तीर्थों मे जाकर स्नान करने से नही मिलेगा। श्री कृष्ण के चरणारविन्दो की पूजा के समान तीन लोको का सुख क्या चीज है? अन्त मे वे कहते है कि हरि का नाम लेने से भव-सागर से मुक्ति मिलेगी।[1]

जिस समय आत्मज्ञान या मोक्ष प्राप्त हो जाता है उस समय के अनुभव को व्यक्त करने के लिए उपयुक्त शब्द नही मिलते। सूर जैसे भक्तो ने कहा है कि आत्मसुख केवल अनुभव किया जा सकता है। जैसे गूगा मिठाई का स्वाद नही बता सकता, वैसे ही है मोक्ष-सुख की बात।[2] मन को 'चकई' बनाकर सूर कहते है—री चकई, तू उस सरोवर के निकट

---

१ राग सारग

जो सुख होत गुपालहि गाए।
सो सुख नहि जप तप के कीने कोटिक तीरथ न्हाए।
दिये लने नहि चारि पदारथ चरण कमल चित लाए।
तीनि लोक तृण सम करि लेखत नन्द नँदन उर आए।
वशीवट वृन्दावन जमुना तजि वैकुण्ठ को जाए।
सूरदास हरि को सुमिरन करि बहुरि न भव चलि आए।

—सूरसागर, द्वितीय स्कन्ध, वे प्रे, पृ० ३५।

तथा

सहज भजै नदलाल कौ सो सब शुचि पावै।
सूरदास हरिनाम लिये दु ख निकट न आवै।

—सूरसागर, द्वितीय स्कन्ध, वे प्रे, पृ० ३५।

२ आपुन पौ आपुन ही मे पायौ।

× × ×

जाकर रह, जहा प्रेम मे वियोग नही, जहा भ्रम रूपी निशा होती नही और वेद भ्रमर बनकर गुजार नही करते फिरते, जहा किसी प्रकार का भय नही और जहा सदैव अमृत रस का पान किया जा सकता है। वहा भगवान् राधा के साथ विहार करते रहते है। उस सरोवर के सामने विषय रूपी पोखर का क्या स्थान है?[1] यह पद तो सालोक्य भक्ति का सुन्दर उदाहरण है। उसके बारे मे वे फिर कहते है—वह स्थान ऐसा है जहा जाने के बाद इस दु ख-मय ससार मे आने की आवश्यकता नही। वहा सदा आनन्द ही आनन्द होता रहता है।[2]

इस प्रकार श्री कृष्ण के लीलाधाम मे पहुचने की बात कहकर सूर ने सालोक्य-मुक्ति की अवस्था का चित्रण किया है। श्री कृष्ण के निकट रहने से जो अनिर्वचनीय आनन्द की स्थिति होती है उसे समझाकर सूर ने सामीप्य-मुक्ति का परिचय दिया है। फिर ग्वाल के समान कान्ह के पास रहकर उनकी आज्ञा के अनुसार जीवन-यापन करने की बात का वर्णन सूर ने कई पदो मे किया है। सारूप्य-मुक्ति के सबध मे लिखकर सूर ने सायुज्य-मुक्ति का रूप भी हमारे सामने प्रस्तुत किया है।[3]

इसके अतिरिक्त कृष्ण के शरीर का अग और उनके रस, रूप, अक्षय धाम वृन्दावन

सूरदास समुझै की यह गति मन ही मन मुसिकायौ।
कहि न जाय या सुख की महिमा ज्यो गूगो गुर खायो।
—सूरसागर, चतुर्थ स्कन्ध, वे प्रे., पृ० ५१।

१. चकई री, चलि चरन सरोवर, जहा न प्रेम बियोग।
जहँ भ्रम निसा होति नहिं कबहू, सोइ सायर सुख जोग।
जहा सनक सिव हस, मीन मुनि, नख रवि प्रभा प्रकास।
प्रफुलित कमल, निमिष नहि ससि डर गुजत निगम सुबास।
जिहि सर सुभग मुक्ति मुक्ताफल सुकृत अमृत रस पीजै।
सो सर छाड़ि कुबुद्धि बिहगम, इहा कहा रहि कीजै।
लछमी सहित होति नित क्रीडा, सोभित सूरजदास।
अब न सुहात विषय रस छालर, वा समुद्र की आस।
—सूरसागर, सभा सस्करण, पृ० ११२।

२ चलि सखि, तिहि सरोवर जाहि।
× × ×
सूर क्यौ नहिं चलै उडि तहँ, बहुरि उडिबौ नाहि।
—सूरसागर, सभा सस्करण, पृ० ११२।

३ धनि सुक मुनि भागवत बखान्यौ।
गुरु की कृपा भई जब पूरन, तब रसना कहि गान्यौ।
धन्य स्याम बृन्दाबन कौ सुख, सत मया तैं जान्यौ।
जो रस रास रग हरि कीन्यौ, बेद नही ठहरान्यौ।
सुर नर मुनि मोहित भए सबही, सिवहु समाधि भुलान्यौ।
सूरदास तहँ नैन बसाए, और न कहू पत्यान्यौ।
—सूरसागर पहला खड, पद स० १७११, सभा सस्करण।

का अग बन जाने से जीवन सरल हो जाएगा, इस विचार से प्रार्थना करते है कि हे भगवन्, आप मुझे वृन्दावन की धूल बना दीजिए। मै आपसे यह वरदान मागता हू कि वृन्दावन की वृक्ष, लता, गाय, ग्वाल आदि मे से कोई एक बना देने की कृपा कीजिए।[1] भगवान् से तादात्म्य प्राप्त करने की भी प्रार्थना वे अनेक बार करते है और उनको यह अनुभव होता है कि उनके उपास्यदेव उनके रोम-रोम मे व्याप्त है और समस्त जगत् उन्हे ईश्वरमय ही दिखाई पडता है। पानी की लहरो के समान भक्त और भगवान् मे एकीकरण होता है।[2]

एक स्थान पर सूर लिखते है कि गोपिका लोक-लाज, पिता, माता, पति, मानापमान सब कुछ छोड श्री कृष्ण मे तल्लीन रहती है। वे सर्वथा कृष्ण की चिन्ता मे डूबी रहती है। जैसे नदी सागर मे मिल जाती है, उसी प्रकार मन से वे श्री कृष्ण मे लीन रहती है।[3] एक गोपिका गोरस बेचने के लिए निकलती है और श्री कृष्ण की चिन्ता मे इतनी तल्लीन रहती है कि 'दही लेहुरी' कहने के बदले मे 'गोपाल लेहुरी' कहने लगती है।[4] गोपिका की अटूट भक्ति का इससे अधिक सुन्दर चित्रण कहा मिल सकता है? विरह की दशा मे श्री कृष्ण के साथ गोपियो की तल्लीनता का वर्णन सूरदास ने किया है। वे कहती है—"हे आलि, श्री कृष्ण के विरह मे हमे कही अधिक आनन्द प्राप्त होता है।

गीता मे लिखा है, 'हे अर्जुन, जो मुझे जिस प्रकार से प्राप्त होते है, भजते है, मै

---

१ करहु मोहि ब्रज रेणु देहु वृन्दावन वासा।
मागौं यहै प्रसाद और नहि मेरे आसा।
जोई भावै सो करहु लता सलिल द्रुम गेहु।
ग्वाल गाइ को मृतु करौ मनौ सत्य व्रत एहु।
—सूरसागर · दशम स्कन्ध, पूर्वार्द्ध, वे. प्रे., पृ० १५८।

२ आखिन में बसे जियरे में बसै हियरे में बसत निसि दिन प्यारो।
मन में बसै तन में बसै रसना में बसै अग-अग में बसत नन्दवारो।
सुधि में बसै बुधि हू में बसै उरजन में बसत पिय प्रेम दुलारो।
सूर स्याम बनहू में बसत घरहू में बसत मग ज्यों जल तरगन होत न्यारो।
—सूरसागर, दशम स्कन्ध, वे प्रे, पृ० २९९।

३ लोक सकुच कुल कानि तजी।
जैसै नदी सिधु कौ धावै, वैसेहि स्याम भजी।
मातु पिता बहु त्रास दिखायौ, नैकु न डरी, लजी।
हारि मानि बैठे, नहि लागति, बहुतै बुद्धि सजी।
मानति नही लोक मरजादा, हरि कै रग मजी।
सूर स्याम को मिलि, चूनौ हरदी ज्यौं रग रॅजी॥
—सूरसागर, पहला खट, पद स० २२४९, सभा सस्करण।

४ गोरस को निज नाम भुलायो।
लेहु लेहु कोहू गोपालहि गलिन गलिन यह शोर लगायो॥
—सूरसागर, दशम स्कन्ध, वे प्रे, पृ० २५७।

भी उन्हे उसी प्रकार से भजता हू।[1] सूरदास के अनेक पदो मे यही आशय मिलता है। वे कहते है कि श्री कृष्ण ब्रजवनिताओ की इच्छा के अनुसार विविध लीलाए करते है और जिस भाव से वे कृष्ण को भजती है उसी प्रकार का फल भगवान् उनको देते है।[2] सालोक्य और सामीप्य मुक्ति का महत्त्व दिखाकर सूर ने निर्गुण भक्तो की हसी उडाई है। ऐसे प्रसग उद्धव-गोपी-सवाद में मिलते है। गोपिया पूछती है--"तुम्हारे निर्गुण भगवान् कहा के रहने वाले है? श्याममनोहर की सेवा से हमे सालोक्य सामीप्य आदि मुक्तिया मिल गई है। तुम्हारे ज्ञानोपदेशो का कोई भी प्रभाव हमपर नही पड सकता। हमारा मन सदा कान्ह के ध्यान मे स्थिर रहता है और हमे प्रत्येक वस्तु कृष्णमय ही दीख पडती है।

परमानन्ददास--परमानन्ददास की कविताओ से ज्ञात होता है कि उनको सालोक्य आदि मुक्तियो की अवस्थाओ का प्रत्यक्ष अनुभव हुआ है। वे कहते है--हे भाई, मुझे हरि से अनन्य प्रेम है। जब से भगवान् के दर्शन मुझे मिले तब से घरबार की चिन्ताओ से मै मुक्त हो गया हू, लोक-लाज, मानापमान आदि से मेरा मन जरा भी प्रभावित न होगा। सारा भ्रम मिट गया है। जिस प्रकार नदी सागर से मिल जाती है उसी प्रकार मेरा मन भगवान् कृष्ण मे रम गया है।[3] मोक्ष की चरमावस्था का वर्णन कवि ने यहा किया है। दूसरे एक

---

१ ये यथा मा प्रपद्यन्ते तास्तथैव भजाम्यहम्।
—गीता, अध्याय ४, श्लोक ११।

२ ऊधौ सूधै नैकु निहारौ।
हम अबलनि कौ सिखवन आए, सुन्यौ सयान तिहारौ।
निरगुन कहौ कहा कहियत है, तुम निरगुन अति भारी।
सेवत सुलभ स्याम सन्दर कौं, मुक्ति लही हम चारी।
हम सालोक्य, सरूप, सायुज्यौ, रहतिं समीप सदाई।
सो तजि कहत और को औरै, तुम अलि बडे अदाई।
हम मूरख तुम बड़े चतुर हौ, बहुत कहा अब कहिए।
बे ही काज फिरत भटकत कत, अब मारग निज गहिए।
तुम अज्ञान कतहि उपदेसत, ज्ञान रूप हमही।
निसि दिन ध्यान सूर प्रभु कौ अलि, देखत जित तितही।
—सूरसागर, दूसरा खड, पद स० ४५१८, सभा सस्करण।

३ मेरे भाई हरि नागर सों नेह।
× × ×
अग-अग बरयो निपुन यदुनन्दन स्याम वरन तन देह।
जब ते दृष्टि परे नँद नन्दन तब ते बिसर्‌यो गेह।
कोऊ बन्दो कोऊ निन्दो मन को गयो सन्देह।
सरिता सिन्धु मिल परमानन्द भयो एक रस गेह।
—डा० गुप्त जी के परमानन्ददास-पदसग्रह, पद न० ९४, अष्टछाप, ले० डा० गुप्त, पृ० ४७१।

स्थान पर परमानन्ददास गोपी बनकर गाते है। "मै नन्दलाल के बिना नही रह सकती। मन, वाणी, काया से मै सब कुछ उनपर निछावर करती हू। मदनमोहन की सेवा से जो आनन्द मिलता है वह आनन्द और कहा मिलेगा।[1]

नन्ददास——नन्ददास का विश्वास है कि यह शरीर पाप-पुण्य के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ है। अत कर्म, फल अथवा प्रारब्ध का भोग हमे करना ही पडेगा। कमलनैन की भक्ति से प्रारब्ध का प्रभाव नष्ट हो जाएगा। उसके लिए भगवान् की कृपा चाहिए। अत पर-ब्रह्म मूर्ति श्रीकृष्ण के गुण-गान तथा उनकी चिन्ता मे डूबकर मुक्ति पाना ही श्रेयस्कर है। तुरन्त कृष्ण का ध्यान मन मे लगाकर मस्त हो जाओ।[2]

मीराबाई——मीराबाई भी सूर और परमानन्ददास के समान सालोक्य, सामीप्य आदि मुक्तिया पाना चाहती है। वे कहती है कि हे भगवन्! तुम्हारे दर्शन बिना किए एक घडी भी मै नही रह सकती। तुम मेरे जीवन हो। तुम्हारे विरह मे तडप-तडपकर मै छटपटाती हू। तुम्हारे बिना मुझे कुछ अच्छा नही लगता।[3] सद्गुरु की कृपा से मीरा को अक्षय सम्पत्ति मिली। यह अक्षय सम्पत्ति मोक्ष है। उसके सम्बन्ध मे मीरा इस प्रकार कहती है——सद्गुरु की कृपा से सब कुछ खोकर मैने जनम-जनम पूजी पाई और वह ऐसी पूजी है

---

१ हौं नन्दलाल बिना न रहौं।
मनसा वाचा और कर्मना हित की तोसों कहौं।
जो कोऊ कछु कहो सिर ऊपर सो हों सबै सहौं।
सदा समीप रहौं गिरधर के सुन्दर बदन चहौं।
यह तन अर्पन हरि को कीनों वह सुख कहा लहौं।
परमानन्द मदन मोहन के चरन सरोज गहौं।
——डा० गुप्त के परमानन्ददास-पदसग्रह, ले० डा० गुप्त, पृ० ४८०।

२ बहुरि कहन यह गुन मय देह, पाप पुण्य प्रारब्ध के गेह।
× × ×
कोटि सुरग सुख छिन में लिये, मगल सकल बिदा कर दिये॥
——दशम स्कन्ध, २६वा अध्याय, नन्ददास शुक्ल, पाठ भेद से, पृ० ३२२।
तजि तजि तिहि छन गुन मय देह जाइ मिली करि परम सनेह।
× × ×
नरन के श्रेय करना हित तेही, दिखियत आतमा परम सनेही॥
——दशम स्कन्ध, भाषा, २९वा अध्याय, नन्ददास शुक्ल, पृ० ३२२।

३ घडी एक नहि आवड, तुम दरसण बिन मोय।
तुम हो मेरे प्राण जी, कासू जीवण होय।
धाम का भावै नीद न आवै, विरह सतावै मोहि।
घायल सी घूमत री, मेरो दरद न जाणै कोय।
× × ×
मीरा के प्रभु कब रे मिलोगे, तुम मिलिया सुख होय।
——मीराबाई की पदावली स० परशुराम चतुर्वेदी, पृ० ३७।

जो खर्च करने पर भी कम नही होती, चोर भी उसे नही ले सकता।[1] जब से मीरा ने गिरधरनागर के दर्शन किए तब से उनकी आखो मे कृष्ण बस गए। इस स्थिति मे भक्त और भगवान् मे एकीकरण हो जाता है। वे कहती है—जब से नदलाल की दृष्टि पडी, लोक-परलोक मुझे कुछ भी नही जचता। कृष्ण का मोरमुकुट, केसर का तिलक, कपोलो पर कुडल और अलक की झलक, जादू भरी चितवन यह सब मुझे आकर्षित करते है। चाहे कोई किसी प्रकार की निन्दा करे मै श्री कृष्ण के बिना एक पल भी नही रह सकती।[2] सालोक्य और सामीप्य का यह सुन्दर उदाहरण है। श्री कृष्ण की भक्ति मे वे इतनी तल्लीन हुई कि जगत् के प्रत्येक पदार्थ मे वे श्री कृष्ण का दर्शन करती है। सारा प्रपच भी उन्हे श्रीकृष्णमय ही दिखाई पडता है। उन्होने कहा है 'साप का पिटारा' राणा ने भेजा मुझे वह 'सालिगराम' दिखाई पडा। जहर का प्याला पीयूष, शूलो की शय्या फूलो की सेज प्रतीत हुई। मै अपने 'नागर' के प्रेम मे मस्त फिरती हू।[3] यही भक्त और भगवान् की अभिन्नता है।

रसखान—रसिक रसखान भक्ति मे तत्कालीन होकर कहते है—'चाहे मनुष्य, जानवर, पत्थर और या वृक्ष का जन्म मिले यदि उसको कृष्ण का सत्सग हो जाए तो ससार-सागर से मुक्ति मिलेगी।'[4] कृष्ण भगवान् की सगति के सामने उनको अष्ट सिद्धिया, नव

१ मीराबाई की पदावली।

२ जब से मोहि नन्द नन्दन, दृष्टि पडयो माई।
तब से परलोक लोक, कछु न सोहाई।
मोरन की चन्द्रकला, सीस मुकुट सोहै।
केसर को तिलक भाल, तीन लोक मोहै।
× × ×
भली कहौ कोइ बुरी कहौ मै सब लई सीसि चढाई।
मीरा कहै प्रभु गिरधर के बिनि पल भरि रह्यौ न जाई।
—मीराबाई की पदावली स० परशुराम चतुर्वेदी, पृ० ४२।

३ मीरा मगन भई हरि के गुण गाय॥ टेक॥
साप पिटारा राणा भेज्यो, मीरा हाथ दियो जाय।
न्हाय धोय जब देखण लागी, सालिगराम गई पाय।
जहर का प्याला राणा भेज्या, अमृत दीन्ह बनाय।
न्हाय धोय जब पीवण लागी, हो अमर अँचाय।
सूल सेज राणा ने भेजी, दीज्यो मीरा सुलाय।
साझ भई मीरा सोवण लागी, मानो फूल बिछाय।
मीरा के प्रभु सदा सहाई, राखे बिघन हटाय।
भजन भाव में मस्त डोलती, गिरधर पै बलि जाय।
—मीराबाई की पदावली स० परशुराम चतुर्वेदी, पृ० १६।

४ मानुष हौ, तो वही रसखानि,
बसौ ब्रज गोकुल गाव के ग्वारन।

निधिया सब निस्सार है। कोटिक कलधौत के धाम भी कटील के कुजो पर निछावर करना वे पसन्द करते है।[1]

[मलयालम के कवि]

हम पहले कह चुके है कि हिन्दी के कवि वल्लभमत से प्रभावित रहे है, सूर, परमानन्द, नददास आदि तो वल्लभ-सम्प्रदाय के अनुयायी ही थे और मीरा निम्बार्क की थी। मलयालम के कवियो ने शकर के विचारो का अनुगमन किया है। मोक्ष-सम्बन्धी विचारो मे भी मलयालम के कवि शकरमत के अनुयायी जान पडते है। सालोक्य, सामीप्य, सायुज्य आदि मुक्तियो की अवस्था के सम्बन्ध मे सारे कवियो का मत एक-सा है।

एजुत्तच्छन—मलयालम के प्रतिनिधि कवि एजुत्तच्छन के विचार भी शकराचार्य के विचारो से मिलते-जुलते है। उनके मत मे ससार-जनित अज्ञान के दूर होने पर ही मोक्ष-प्राप्ति होती है। अत वे उपदेश देते है—परमात्मा और जीवात्मा एक ही है। सागर और घडे का जल जैसे एक ही होता है। सत्य असत्य दो अलग-अलग अवस्थाए नही है। केवल सत्य ही सब जगह दिखाई देता है। जब चिन्तनशक्ति उत्पन्न हो जाती है तब यह अनुभव होने लगता है कि 'जीव नित्य है और 'मै' परमात्मा ही हू। उस समय सायुज्य मुक्ति मिलेगी।[2] वे आगे चलकर मुक्ति प्राप्त करने का उपाय भी बताते है। काम, क्रोध,

---

जो पसु हौं, तौ कहा बसु मेरो,
चरो नित नन्द की धेनु मझारन॥
पाहन हौं, तौ वही गिरि कौ,
जो धर्‌यौ कर छत्र पुरदर कारन।
जो खग हौं, तो बसेरो करौं,
मिलि कालिन्दी कूल कदम्ब की डारन॥
—कवि रसखान ब्रजमाधुरीसार, स० श्री वियोगीहरि, पृ० २१०।

१ या लकुटी अरु कामरिया पर, राज तिहू पुर को तजि डारौं।
आठहु सिद्धि नवो निधि को सुख, नन्द की गाइ चराइ बिसारौं।
इन आखिन सों रसखानि कबौं, ब्रज के बन बाग तडाग निहारौं।
कोटिक हौं कलधौत के धाम कुरील की कुजन ऊपर वारौं।
—कवि रसखान ब्रजमाधुरीसार, स० श्री वियोगीहरि, पृ० २१०, २११।

२ परमात्मावु तन्ने जीवात्मा वा कुन्नतु।
वारिय घडोदरवारियु पोले तन्ने।
सत्यवु अनित्यवु मिड्डने रण्ड्ल्ल।
एक वस्तुवुल्लतु नित्यमायुल्ल सत्यमेन्नु।
× × ×
सिद्धिच्चीटुपोल जीवन्मुक्तियु सायुज्यमा।
मुक्तियु वरु पिन्ने जन्मवु उण्डाय्वरा।
—चिन्ता-सन्तानम्, ले० एजुत्तच्छन, पृ० १६।

लोभ आदि मायाजनित विकारो मे पडकर जब जीव दुखी हो जाता है तो उससे छुटकारा पाने के लिए हरि-कथा श्रवण करनी चाहिए। उससे मन निर्मल हो जाएगा और अपने-आप ज्ञान उत्पन्न हो जाएगा। उसी समय जीव मुक्ति की अवस्था का अनुभव करने लगेगा अर्थात् उसे यह अनुभव होगा कि परब्रह्म मैं ही हू।[1] वे फिर कहते हैं—मुक्ति पाने के लिए ईश्वर-सम्बन्धी कथाओ के श्रवण के साथ-साथ सज्जनो की सगति भी आवश्यक है। मनुष्य जो काम करे वह ईश्वर पर अर्पण करके करे। चौथा उपाय है, सर्वदा ईश्वर के नाम का जप करना और उसका ध्यान करना। इस प्रकार आचरण करते रहने से मन अपने-आप शुद्ध हो जाएगा। मन शुद्धि से विवेक उत्पन्न होगा और दु ख सदैव के लिए मिट जाएगा।[2]

श्री एजुत्तच्छन के मत मे सालोक्य, सामीप्य और सारूप मुक्तिया नित्य नही है, केवल सायुज्य-मुक्ति ही नित्य है। जब तक शरीर रहता है तभी तक प्रथम तीन मुक्तियो का अनुभव होता है। वे कहते हैं कि इन तीनो मुक्तियो का अनुभव जिनको मिला है वे सुरो के समान है। सुरगण अपने पुण्य के प्रभाव से बहुत दिनो तक बडे आनद से जीवन व्यतीत करते है और पुण्य के क्षीण होने पर उनको फिर जन्म लेना पडता है। वैसे ही सालोक्य, सामीप्य और सारूप मुक्तियो का अनुभव करने वाले एजुत्तच्छन की भाषा मे कहा जाए तो 'जीव-मुक्तो' को दुबारा जन्म लेना पडेगा। अत सायुज्य-मुक्ति पाने वाले ही वास्तव मे मुक्त कहे जा सकते है।[3]

---

१ भगवल कथकले आवोल केट्टु विचारिच्चु।
× × ×
विज्ञान मुण्टायवन्नालज्ञान मकन्नोट्।
अज्ञान नशिक्कु पोल ज्ञानवु प्रकाशिक्कु।
—चिन्ता-सन्तानम्, पृ० २२।

२ मुन्पिनालुण्टाकेण नालु साधन—
मतिल साधुक्क्लोट्टुल्ल सगम मोन्नु।
× × ×
ब्रह्माप्पर्ण मेन्नु चिन्तिच्चु चेय्तीटेणमेन्नुतु मोन्नु।
नामड्डल पल विध सादर जपिक्कयु।
राम देवने हृदिय्यानिच्चु रमिक्कयु।
निर्म्मल मायवन्नोट्टु मनस्स मतिन्नाले।
—चिन्तामन्तानम्, ले० एजुत्तच्छन, पृ० ३२।

३ सालोक्यादिकल मून्नु मुक्तियु जीवन मुक्ति।
नालान्निर्वाण विदेहानन्द नित्यायन्द।
जीवन मुक्तिकल मून्नु नित्यमाय्वरुन्नील।
देह कैवकोण्टिट्टुल्ल मुक्तिकलताकयाल।
× × ×
मर्त्यरु अमर्त्युरु भोन्नु पोल जीवन मुक्तर।
—चिन्ता-सन्तानम्, ले० एजुत्तच्छन, पृ० ३३।

उस सायुज्य-मुक्ति की व्यवस्था के बारे मे कवि ने इस प्रकार लिखा है—जिसकी प्राप्ति से दूसरी किसी वस्तु को पाने की इच्छा नही होती है, जिसके दर्शन करने से दूसरा कोई दर्शनीय नही प्रतप्त होता, जिसको पाने से जन्म और जरादि दु ख हमेशा के लिए मिट जाते है, वही है सायुज्य मुक्ति या ब्रह्मानद।

पून्तानम नंपुतिरि—आपने अपने पदो द्वारा भगवान् कृष्ण का दर्शन करने तथा उनके समीप रहने की इच्छा प्रकट की है। वे कहते है—हे कृष्ण ! वैजयन्तीमाला से सुशोभित आपकी छाती, रक्त के समान लाल आपके अधर, सुन्दर हाथ-पैर और मनोहर क्रीडाए, यह सब मै देख सकू।[1] मोरमुकुट सिर पर धारण किए हुए ग्वालो के बीच मे श्री कृष्ण खेलते है और कभी-कभी नटखट क्रीडाए करते है। कभी ब्रजवनिताओ के वस्त्रो को लेकर दूर जाकर खेलते है। ऐसे श्री कृष्ण को देखने के लिए मै बहुत दिनो से प्रार्थना करता आ रहा हू।[2] ऐसे कई पदो मे श्री कृष्ण को देखने की उत्कट इच्छा कवि ने प्रकट की है। कवि अपने मन को समझाकर कहता है—जो कुछ तुझे मिलेगा उससे तू तृप्त हो जा। परिवर्तनो को देखकर चचल मत हो। समझ ले कि सब ईश्वरमय है और कभी उदासीन न हो।[3]

पून्तानम, हिन्दी के परमानददास जैसे भक्त कवियो के समान ही सासारिक जनो की मानसिक अवस्था का विश्लेषण करके अन्त मे अपने उपास्यदेव कृष्ण से प्रार्थना करते है—

लोग भूमि, धन और स्त्री आदि पाने की इच्छा से व्याकुल होकर तरह-तरह के कामो मे लगे रहते है परन्तु किसीको तेरी आशा नही। हे मेरे प्यारे कान्ह ! आप मेरे मन

---

१ मन्चाटिक्कुरु कन्निमालकल मुरुविकन पूक्कलित्यादियु।
चेन्चोरिक्क विरोधिया अधरवु तृक्कैकल तृक्कालकल।
चान्चाटि क्कलियु चमञ्ज वटिवु पून्चायायलिल पूजियु।
चेन्चोटे तिरुमेनि रण्टुमणयत्ताम्मारु कण्डावु ञान।
—पून्तानम की कृतिया, स० वासुदेवन मूस्सत, पृ० ८८।

२ पालिक्कणुमणिञ्जु पिल्लर नटुवे कण्णन कलिक्कुन्नतु।
शालक्केटुकल मेलक्कु मेलनुदिन वेव्वेरे काट्टुन्नतु।
बालक्कामिनिमार विज़ृत्ततुकिल वारि क्कोण्टोलिक्कुन्नतु।
चालेक्कण्मिजि कोण्टु काण्मतिनु ञानेन्ने कोनिक्कुन्नवान।
—पून्तानम की कृतिया, स० मूस्सत, पृ० ६१।

३ नन्निच्चु कोल्क तव वन्नतु कोण्टु नित्य।
निन्निक्क वेण्ट गतिभेद ओरोन्नु कण्टाल।
मन्निच्चु पो[illegible]
पून्तानम की कृतिया, स० मूस्सत पृ०, १४२।

को शान्ति प्रदान कर दीजिए।[1] सोते-जागते और काम-वासना मे लिप्त रहते वे अपना जीवन बिताते है। हे मन, तू नन्दकिशोर के चरणारविन्दो मे आश्रय ले।[2]

चेरुश्शेरी नपूतिरि—आपने भगवान् कृष्ण की स्तुति करते हुए कहा है—हे भगवन्, आप सर्वव्यापी है। किन्तु अचरज की बात है कि लोग आपकी महिमा बिना जाने अन्धे होकर आपकी खोज मे इधर उधर घूमते-फिरते है।[3] यह शरीर तो नौ द्वार वाले मदिर के समान है। जब यह मदिर जीर्ण हो जाता है,तो आत्मा दूसरे नये मदिर मे प्रवेश करती है। इस आवागमन से बचने के लिए हे भगवन्! आप अपने चरणो मे आश्रय दे।[4]

एक अन्य स्थल पर चेरुश्शेरी नपूतिरि ससार-सागर की भयकरता का सुन्दर वर्णन करते हुए ईश्वर के चरणारविन्दो मे आश्रय प्राप्त करने के लिए आतुर होकर प्रार्थना करते है—"हे भगवन्! लोग ससार रूपी महासागर मे पुत्र-मित्र रूपी नक्रो के पजे मे पडे व्याकुल होते है और कभी स्त्री रूपी भवर मे पडे कराहते है। वे उस भवसागर मे डूबते उतराते और रोते है। आपके चरण-सरोरुह के अलावा दूसरा कोई आलब नही।[5] सालोक्य,

---

१ मून्नाशयालु मदनाशयालु।
पोन्नाशयालु मरुकुन्नु लोक।
निन्नाश कण्टालोरुर्क्क मय्यो।
करुणा रमे नलकक मानस में।
—पून्तानम की कृतिया, स० मूस्सत, पृ० १३५।

२ स्वापत्तिनालुमयि कामवशालुमोरो।
न्नयायत्तमाय अनुकरिप्पतु कम्म मेतल।
तापिन्छमजरि योटोत्त कलेबर ना।
भाविच्चु कोल्कजकिल नन्द कमारकस्य।
—पून्तानम की कृतिया, स० मूस्सत, पृ० १३५।

३ युल्लिलनिरञ्जु जगत्तिलेङ्ङु।
सन्तत निन्नोरु निन्नेयु काणाते।
यन्धरायप्पोकातोरा रिप्पारिल?
× × ×
—कृष्णगाथा, स० राजराज वर्मा, पृ० २१६।

४ ओनपतु वातिलुल्लन्पल तन्निल पु—
क्कन्पु पोजिञ्जु वमिच्चु चैम्मे।
× × ×
कुपिटुन्नेन् चेम्मे तपुराने।
—कृष्णगाथा, स० राजराज वर्मा, पृ० २१७।

५ जनन महाबुधि तन नटुवे वी—
णानिशमुजर्क्कुम जन निवहङ्डल।
सुतु जन सहज निग्धन्मारा।
मुतलकल वायिल पाञ्जु चाञ्जु।

सारूप्य, सामीप्य और सायुज्य मुक्ति पाने के लिए कवि ने कई पदो मे बडे सरस ढग से प्रार्थनाए की है।

साराश यह है कि मलयालम के सारे भक्तकवियो ने हिन्दी के कवियो के समान मुक्ति पाने के लिए समान रूप से ईश्वर से प्रार्थना की है। यद्यपि विभिन्न शब्दो मे तथा रीतियो से उन्होने यही भाव प्रकट किया है तो भी प्राप्य स्थान एक ही है। इन सबो ने कृष्ण के चरणो मे श्रद्धा और भक्ति पैदा करने के लिए दास्य, सख्य, कान्ता और वात्सल्य भाव से ओतप्रोत होकर कविताए रची है। सभी ने ससार की भयकरता और सत्सग का महत्त्व आदि के बारे मे तन्मयतापूर्वक लिखा है। श्री एजुत्तच्छन को छोडकर शेष सारे कवियो ने सालोक्य आदि मुक्तियो को प्राप्त करने की इच्छा प्रकट की है। श्री एजुत्तच्छन ने सालोक्य आदि मुक्तियो के साथ विदेह-मुक्ति की अवस्था का भी सजीव वर्णन दिया है। वे भक्त, ज्ञानी और कवि भी है। भक्ति के साथ-साथ ज्ञान-सम्बन्धी बाते भी उन्होने लिखी है।

रास-सम्बन्धी विचार

'रास' शब्द एकान्त आनद को सूचित करता है। श्रीधरस्वामी की राय है कि जब कई नर्तकिया एकसाथ नृत्य करती है, उस नृत्य-विशेष को 'रास' नाम दिया जाता है।[1] श्री जीवगोस्वामी ने लिखा है कि नट के गले मे हाथ डालकर मडलाकार होकर नृत्य करना रास कहलाता है।[2] इसी प्रकार बहुत से विद्वानो ने रास की ऐसी ही परिभाषा दी है। सक्षेप मे कह सकते है कि श्याम मनोहर, दिव्य देहधारी कृष्ण के साथ भक्त गोपियो ने जो नृत्यलीलाए की है उसीका नाम रास है।

कृष्णभक्त कवियो ने इस रासक्रीडा पर अनेक सरस रचनाए रची है। हिन्दी मे सूरदास, नन्ददास और मलयालम मे चेरुश्शरी नपूतिरि प्रमुख माने जाते है। सारे भक्त-कवियो ने एक स्वर से उद्घोषित किया है कि कृष्ण ने गोपियो के साथ जो रासक्रीडा की वह गोपियो की भक्ति का कलात्मक रूप है।

जायकलायुल्लावर्तत्तिल ।
पोयिच्चेन्न टनाणु केणु ।
× × ×
चरण सरोज मोजिच्चु हरे ते ।
शरण नैव नमुक्कु पुराने ।
—कृष्णगाथा, स० राजराज वर्मा, पृ० २१६।

१ बहुनर्तकियुक्तो नृत्याविरोधो रास ।
—अष्टछाप और वल्लभ-सप्रदाय से, पृ० ४६७।

२ नटैर्गृहीतकण्ठेन अन्योन्यातकाश्रियाम्।
नर्तकीना भवेत् रासो मडलीभूय नर्तन ।
—अष्टछाप और वल्लभ-सप्रदाय से, पृ० ४६७।

[हिन्दी के कवि]

नन्ददास—आप कहते हैं—रास, कृष्ण और उन दोनो मे रमण करने वाली गोपिया, रास का रस, सब नित्य है। वेदोक्ति है कि रस नित्य और अद्‌भुत है। उसका वर्णन शेष भी नही कर सकता।[1]

सूरदास—सूर ने लिखा है—हरि का रस अद्‌भुत है। रास के लिए उन्होने वशी बजाई, जिसे सुनते ही सारा विश्व दग रह गया।[2] रास के आनन्द का वर्णन करने मे नारदादि मुनि भी असमर्थ दिखाई पडते है। रासक्रीडा की महिमा के बारे मे सूर लिखते है—रास का अर्थ ऐसे लोग समझ सकते है जिनकी बुद्धि चचल न हो, और जो सच्चे भक्त हो और ईश्वर जिनपर प्रसन्न हो।[3] इस रस का प्रभाव इतना अद्‌भुत है कि इसके प्रभाव से नारद जैसे मुनीश्वर विद्यारूपिणी सरस्वतीदेवी और योगेश्वर शिवजी तक आत्मविस्मृत हो गए। विष्णु भगवान् इस रस को पाने के लिए तरसते रहते है और अपनी स्त्री लक्ष्मीदेवी से कहते है, "सुनो मेरी प्यारी, आज कृष्ण गोपियो के साथ रास कर रहे है। उसके आनन्द मे सारी व्रजवनिताए मग्न है। वैसा सुख हमारे भाग्य मे कहा ?[4]

---

१ नित्य रास रस नित्य-नित्य गोपी जन वल्लभ।
नित्य निगम जो कहत नित्य नवतन अति दुल्लभ।
यह अद्‌भुत रस रास कहत कछु कहि नहि आवै।
सेस सहस मुख गावै अजहू पार न पावै।
—रासपचाध्यायी पाचवा अध्याय तथा नन्ददास शुक्ल, पृ० १८२ पाठ-भेद से, पृ० ८८।

२ आजु हरि अद्‌भुत रास उपायौ।
एकहि सुर सब मोहित कीन्हे, मुरला नाद सुनायौ।
अचल चले, चल थकित भए, सब मुनिजन ध्यान भुलायौ।
—सूरसागर, पहला खड, पद स० १७५८, सभा सस्करण।

३ रास रस रीति नहि बरनि आवै।
कहा वैसो बुद्धि कहा वह मन लहो कहा इह चित्त जिय भ्रम भुलावै।
जो कहो कौन मानै अगम निगम जो कृपा बिन नही या रसहि पावै।
भाव सों भजै, बिन भाव मेंए नही, भावही मोह भाव यह बसावै।
यहै निज मन्त्र यह ज्ञान यह ध्यान है, दरस दम्पति भजन सार गाऊ।
यहै मागौ बार-बार सूर के नैन दुवौ रहे नर देह पाऊ।
—सूरसागर, दशम स्कन्ध, वे प्रे, पृ० ३४०।

४ रास रस मुरली ही ते जान्यो।
× × ×
यह अपार रस रास उपायौ सुन्यौ न देख्यौ नैन।
नारायन धुनि सुनि ललचाने स्याम अधर रस बैन।
कहत रमा सौ सुनि-सुनि प्यारी बिहरत है बन स्याम।
सूर कहा हम कौ वैसो सख जो बिलसति ब्रज बाम।
—सूरसागर, पहला खड, पद स० १६८७, सभा सस्करण।

रास-रस के सबध मे नन्ददास का मत है कि यह सब रसो का निचोड है, सकल शास्त्रो के सिद्धान्तो का साराश है। यह महारस है। इसकी महिमा का वर्णन जो भी सुन लेते है वे कृष्ण के परम भक्त बन जाते है।[1]

हितहरिवंश--रासक्रीडा के अवसर पर हितहरिवश लिखते है--मोहन ने वशी बजाई तो ब्रज की युवतिया दौडी हुई आई और उनके साथ रास-क्रीडा की। सबको मुरलीधर ने रस-सिधु मे डुबा दिया। आकाश से पुष्प-वृष्टि हुई। इन्द्र ने दुन्दुभि बजाई।[2]

[मलयालम के कवि]

मलयालम भाषा के एक अज्ञात कवि ने रासक्रीडा के अद्भुत प्रभाव का वर्णन करते हुए लिखा है—रास देखकर चन्द्रमा और नक्षत्र आदि ग्रह स्तब्ध होकर स्थिर हो गए। सिद्ध, गधर्व, देव और मुनि सभी उस अद्भुत आनदसागर मे गोते खाने लगे। वे सब श्याम मनोहर की लीला देखकर मुग्ध हो गए। कृष्ण और गोपिया इस प्रकार रासक्रीडा करने लगी जैसे बादल और बिजली आकाश मे परस्पर विहार करते है। ऐसे मनोहर गोपीरमण कृष्ण मेरी रक्षा करे।[3]

---

१ अवधि भूत गुन रूप नाद तरजन जहँ होई।
सब रस को नियमि (नितसि) रास रस कहिये सोई।
—सिद्धान्तपचाध्यायी, नन्ददास शक्ल, पृ० १८४। पाठ भेद से।
हो सज्जन गन रसिक, सरस मनके यह सुनिए।
सुनि सुनि पुनि आनन्द हृदै ह्वै नीके गुनिए।
सकल सास्त्र सिद्धान्त परम एकान्त महारस।
जाके रचक सुनत गुनत श्री कृष्ण होत बस।
—सिद्धान्तपचाध्यायी, नन्ददास शक्ल, पृ० १९५।

२ आजु बन नीको रास बनायो।
पुलिन पवित्र सुभग यमुनातट मोहन बेनु बजायो।
कल ककन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि खग मृग सचुपायो।
जुवतिनु मडल मध्य श्यामघन सारँग राग जमायो।
ताल मृदग उपग मुरज डफ मिलि रससिधु बढायो।
विविध विसद वृषभान नदिनी अग सुगन्ध दिखायो।
अभिनय निपुन लटकि लट लोचन भृकुटि अनग नचायो।
तातायेइ ताथेई धरि नवगति पति व्रजराज रिझायो।
सकल उदार नृपति चूडामणि सुख वारिद बरखायो।
परिरभन चुम्बन आलिगन उचित जुवति जन पायो।
बरखत कुसुम मुदित नभनायक इन्द्र निसान बजायो।
'हितहरिवस' रसिक राधापति जस वितान जग छायो।
—कविताकौमुदी, पहला भाग, स० रामनरेश त्रिपाठी, पृ० २२०–२२३।

३ लोक नायन्टे कलि मोहन कण्डु मेले लोकत्तु मरुवुन्न चन्द्रनु नक्षत्रङ्ङल
विम्मय पूण्टु तडडल तड्डलिलरियाने

इस रास-क्रीडा मे भाग लेने वाली गोपियो मे से कुछ तो कृष्ण को अपना पतिदेव मानकर उनकी मुरली की ध्वनि सुनकर उनके साथ चली। कुछ 'परकीया' या जार-भाव से उनके निकट चली। रात के समय दूसरे पुरुष के पास जाना मर्यादा के विरुद्ध कार्य है। यह बात सर्वविदित है। कृष्ण ने भी उन्हे अपने साथ चलने से मना किया। इस प्रसग पर सूर, नन्ददास, चेरुश्शेरी, नपूतिरि, एजुत्तच्छन आदि कवियो ने विस्तार से लिखा है। सूर लिखते है—कृष्ण का प्रश्न सुनकर उत्तर मे गोपिकाओ ने जो कहा उससे हम समझ सकते है कि वे जीवन्मुक्त योगियो के समान है। कर्मों का प्रभाव उनपर नही पडेगा। ईश्वर की महिमा के अतिरिक्त वे कुछ नही जानती और उनके कृपा-कटाक्ष के लिए तरसती रहती है। घर, पुत्र, मित्र, माता-पिता और पतिदेव आदि से उनको कोई सरोकार नही।[1]

श्री चेरुश्शेरी नम्पूतिरि ने लिखा है कि कृष्ण से ऐसा अप्रत्याशित प्रश्न सुनते ही गोपियो के चेहरो पर उदासीनता छा गई। मुह फुलाकर वे ज्यो त्यो खडी रही। पृथ्वी पर पैर के नख से रेखा खीचते हुए उन्होने कृष्ण से कहा—'आपके मुरली गान से जो प्रभाव हमने देखा वह इसके पहिले नही देखा। आम्रवृक्षो पर नीम का फल देखते समय सचमुच सीमातीत आश्चर्य होता है। वैसे ही इस समय हमे बडा अचरज मालूम पडता है। लौटने के नाम से हम व्याकुल होती है। आपने हमे आकृष्ट कर लिया।' इस प्रकार कहकर आखो मे आसू भरकर वे कराहने लगी। तब कृष्ण ने उनको अपने मधुर वार्तालाप द्वारा शान्त किया।[2] फिर गोपियो के साथ उन्होने रासक्रीडा की, जिसका चित्र कई पदो मे कवि ने

विश्व मोहन कन्दु कुटिवच्चिरिवकुन्नु
सिद्धन्मार गन्धर्वन्मार देवकल मुनि कनु
मत्भुतमितु कण्टिट्टानन्द तन्निल मुडिड

× ×

कारमुकिल वण्णरुमाकामिनमारु कलि-
न्चीटिनाज रवरेन्टे नल्लतु वरुत्तेण

—कृष्णलीला—म० शकर मेनोन, पृ० १६।

१ तुमहि विमुख धृग धृग नर नारि।
हम तो यह जानति तुव महिमा, को सुनिये गिरधारि।
साची प्रीति करी हम तुम सों अतर्यामी जाने।
गृह जन को नहि पीर हमारे पृथा धर्म हम ठानें।
पाप पुण्य दोऊ परित्यागे अब जो होइ सु होई।
आस निरास सूर के स्वामी, ऐसी करै न कोई।

—सूरसागर, दशम स्कन्ध, वे प्रे, पृ० ३४२।

२ कण्णन तानिड्डिने चोन्नोरु नेरत्तु
पेण्णुड न्लेल्लावर्क्कु कण्णु नीराल
कोङ्कल रण्टिटलु तिड्डि यिरुन्नोरु
ककुम न्चारेल्ला पोन्निक निन्नार

खीचा है। अत मे कवि ने लिखा है कि रात के समय तीन प्रहर तक कृष्ण ने गोपियो के साथ रासक्रीडा करके उन्हे अमर सुख दे दिया। रात के समय यद्यपि गोपिया अपने घरो से सबधियो की अनुमति के बिना चली गई थी तो भी लौटते समय गोपो ने एक शब्द भी नही कहा। कवि कहते है कि भगवान् की माया ने सबको मोहित कर दिया और गोपो को यह प्रतीत हुआ कि उनकी स्त्रिया वहा से कही नही गई थी।[1]

सारे कृष्णभक्त कवियो ने रासक्रीडा को दिव्य रूप दे दिया है। कुछ विद्वानो का मत है कि रासक्रीडा-सबधी रचनाए शृगार काव्य के सुन्दर उदाहरण है। उन लोगो की राय है कि सूर, नन्ददास और चेरुश्शेरी नम्पूतिरि आदि कवियो की कविताए पढने पर पाठक के मन मे कामवासना जागरित हो उठती है। गोपियो का आधी रात के समय श्री कृष्ण के निकट गमन करने का वर्णन अश्लील है। हिन्दी के कृष्णभक्त कवियो के आचार्य श्री वल्लभ ने इन तर्को का खण्डन यो किया—'यद्यपि श्रीकृष्ण के रास मे काम की क्रियाए है तो भी उनमे कामवासना जरा भी नही। वे तो निष्काम है। उनके द्वारा गोपियो की कामपूर्ति का शमन हुआ। यदि उनमे लौकिक काम होता तो सासारिक भावना उत्पन्न होती। उन दोनो मे कामवासना का अभाव है। इस रासक्रीडा से गोपियो को मुक्ति की सिद्धि हुई है। उसके अलावा मर्यादा-भग की समस्या भी यहा नही आती है। जो रासक्रीडा के बारे मे पढता है, सुनता है और मनन करता है वह निष्काम हो जाता है।[2]

दोनत ।' '।।। तन्नेयु
दोर्घमाय वार्त्तड्डु ताज्ञि पिन्ने
× ×
केवल पाटि निन्नाटिच्चु पोरुन्न
पावकलाक्किनान वाक्कु कोण्टे
—कृष्णगाथा, स० राजराज वर्मा, पृ० ६८, ६९।

१ कान्तार तन्निले पाञ्ञवर पोयतक्कान्तन्मार्क्कार्क्कमे तोन्नीतिल्ले
वल्लविमारेल्ला वल्लभन्मारेत्तनमल्लत्तरवकोन्क तन्निलाक्कि
मेल्लवे पूएङ्ङ निन्नुल्लिलेजुन्नोरु अल्लले नीक्किलेल्लिञ्ञु निन्नार।
—कृष्णगाथा, स० राजराज वर्मा, पृ० १०३।

२ क्रिया सर्वापि सैवात्र पर कामो न विद्यते।
तासा कामस्य सम्पूर्ति निष्कामा इति तास्तथा॥
कामेन पूरित काम निष्काम स्यात् न सशय।
अतो न कापि मर्यादा भग्ना मोक्षफलापि च॥
अत एतच्छ्रुतेर्लोको निष्काम सर्वदा भवेत्।
भगवच्चरित सर्वं यतो निष्काममीयते॥
अत कामस्य नोद्बोध तत शुकवच स्फुटम्॥
—भागवत की सुबोधिनी टीका रासप्रकरण की कारिका।

रास के नैतिक औचित्य को सिद्ध करने के लिए सूरदास ने बडी चतुरता से काम लिया है। उन्होने रासक्रीडा के अवसर पर राधा और कृष्ण का विवाह बडे धूमधाम से करा दिया है। इस प्रकार राधा को स्वकीया नायिका पत्नी के रूप मे चित्रित करके सूर ने अपने काव्य को व्यभिचार-भाव से मुक्त कर दिया है।

मलयालम के कवियो ने भी इन्ही विचारो से मिलते-जुलते तर्क अपने गीतो मे दिए है। उनके गीतो का सार यह है—गोपस्त्रिया कई जन्मो से भगवान् के रूप मे कृष्ण की सेवा करती आ रही थी। पूर्वजन्म मे वे बडे महर्षियो का जन्म लेती थी। द्वापर युग मे श्री कृष्ण का कोमल रूप देखकर 'स्वरूपानन्द' मुक्ति पाने की इच्छा से वृन्दावन मे उन्होने जन्म लिया है। राधा जैसी गोपिया गत जन्म मे उत्कृष्ट सिद्धिया प्राप्त कर चुकी थी। पद्मपुराण मे लिखा गया है कि गोपस्त्रिया पूर्वजन्म मे देवता, महर्षि और श्रुतिया आदि का जन्म-धारण कर चुकी थी और उनकी चरम भक्ति के फलस्वरूप भगवान् ने उनके साथ रास-क्रीडा की।[1]

एजुत्तच्छन कृष्ण-मुख से कहलाते है—मेरी प्यारी गोपियो! आप लोगो की भक्ति की परीक्षा करने के लिए ही मै अप्रत्यक्ष हो गया। कुछ लोग सोचेगे, मै बडा स्त्री-लपट हू और तुम भी शायद सोचती होगी कि मै स्त्रियो का सेवक हू। लेकिन याद रखो, मुझे भक्त के समान प्रिय और कोई नही। जो मेरी सच्ची भक्ति करता है मै उसका दास हू।[2]

१ पुरा महर्षयरसर्वे दण्डकारण्यवासिन।
द्रष्ट्वा राम हरि तत्र भोक्तुमैच्छन् सुविग्रहम्।
ते सर्वे स्त्रीत्वमापन्ना समुद्भूताश्च गोकुले।
हरि सम्प्राप्य कामेन ततो मुक्ता भवार्णवात्।

देवकन्याश्च राजेन्द्र न मानुष्य कथञ्चन।
—पद्मपुराण से उद्धरणकर्ता शकर मेनोन, पुरतक कृष्णल ला, पृ० २।

२ नित्यवु भक्तियोटन्ने मजिक्कुन्न
सत्यवान्मार्क्क दासन् ज्ञानरिञ्ञालुम।
× ×
ज्ञानति हीनन जलन स्त्रीवशनेन्नु।
मानसे निड्डलक्कु तोन्नरुतेन्नुमे।
भक्त वात्सलयमेन्नोलमीशन्मार्क्कु।
चित्तत्तिलार्क्क मिल्लेन्नुरच्चीटुविन।
—श्री महाभागवतम्, ले० एजत्तच्छन, प्रकाशक रेड्यार, पृ० २९५।

चौथा परिच्छेद

भक्ति

भक्ति का लक्षण—

तुलनात्मक भक्ति सर्वव्यापी ईश्वर के प्रति जो अगाध प्रम होता है उसे भक्ति-सूत्रकार शाडिल्य 'भक्ति' कहते है।[1] भक्ति से मन का अन्धकार दूर होता है। मानव-हृदय ईश्वरीय ध्यान मे प्रवृत्त होकर उतने समय के लिए सासारिक यातनाओ को भूल जाता है। भक्ति मे मन शुद्ध होता हे, और असत् प्रवृत्तियो का दमन होता है। भक्त को मन मे एक अपूर्व आनन्द का अनुभव होता है। ईश्वर के स्मरण से ही भक्त की हृत्तन्त्री का तार आनन्द से झकृत हो उठता है। भजन-भाव मे आत्मविभोर होकर वह अपने ऐहिक अस्तित्व को भूल जाता है। ऐसी आनन्ददायिनी भक्ति को आलम्बन मानकर अनेक कृष्ण-भक्त कवियो ने काव्य-रचना की है।

हिन्दी मे कृष्णभक्त कवियो ने अपने उपास्यदेव कृष्ण की लीलाओ का वात्सल्य, सख्य, दास्य और कान्ताभाव से वर्णन किया है। उन्होने सर्वत्र कृष्ण के ईश्वरत्व की महत्ता को ध्यान मे रखा। कृष्ण की बालचेष्टाओ और अन्य भावो का स्वाभाविक चित्रण करते समय उनके ईश्वरत्व को प्रकट करना नही भूलते। विनय के पदो मे तो ईश्वर की महत्ता का प्रत्यक्ष वर्णन है। अन्य प्रसगो मे भी ईश्वर के लौकिक चरित्रो के पाठ से भक्त भ्रम मे न पड जाए, इसीलिए वे बार-बार स्मरण कराते है कि बालवत् तथा किशोरवत् लीला करने वाले कृष्ण भगवान् ही है, मनुष्य नही।

मलयालम के कवियो ने अपने आराध्यदेव श्री कृष्ण को देवकी-वसुदेव तथा यशोदा-नन्द के नन्दन के रूप मे चित्रित किया है। उनके कृष्ण गोपियो के प्रेमी, साधु-जनरक्षक, कसादि आततायियो के सहारक, राजनीतिक क्षेत्र मे कुशल कार्यकर्ता, समाजोद्धारक, योगेश्वर, और सर्वशास्त्र-पारगत है। उनका कृष्ण-चरितचित्रण सर्वांगीण कहा जा सकता है।

भक्ति की महिमा—

दोनो भाषाओ के कवियो ने भगवान् कृष्ण की महिमा के वर्णन के साथ-साथ भक्ति

---

१ सा परानुरक्तिरीश्वरे ॥२॥

—शाडिल्य-भक्ति-सूत्र, भक्ति-चन्द्रिका, स० श्री गोपीनाथ कविराज, पृ० २।

की महत्ता का भी वर्णन किया है। उन्होने कहा है कि सासारिक दु ख से निवृत्ति का सरल मार्ग ईश्वर-प्रेम एव भक्ति ही है। भक्ति की समता मे ज्ञान और योग हीन ठहरते है। सूरदास ने भक्ति को निगमागम-सम्मत बताते हुए कहा है कि भक्तो के लिए भगवान् सुलभ है।[1] परमानन्ददास लिखते है—मै कमलनयन गोपाल को देखकर सुख पाना चाहता हू। चाहे लोग ज्ञान, योग या कर्ममार्ग के अनुसार भगवान् की उपासना करे पर मेरे लिए भगवान् की भक्ति ही सुखदायक है।[2] नन्ददास भक्ति की महत्ता का वर्णन करते हुए भगवान् से प्रार्थना करते है—हे भगवन्, तुम्हारी पीयूषमयी भक्ति के बिना कोई सिद्ध भी मुक्ति नही पा सकता। ज्ञानी, योगी तथा कर्मठ लोगो को परम पद पाना बहुत कठिन है। अष्टागविधि के अनुसार वे कर्म करते है किन्तु तुम्हारी शरण मे आकर वे अपने जन्म सफल करते है।[3] स्वामी हरिदास चेतावनी देते है—हरि का नाम जपने मे आलस्य क्यो करते हो। किसी समय भी काल के पजे मे हम पड जाएगे। मृत्यु के समय हमारी सहायता

---

१ रे मन, समुझि सोचि बिचारि।
भक्ति बिनु भगवन्त दुर्लभ कहत निगम पुकारि।
× × ×
सूर श्री गोविन्द भजन बिनु चले दोउ कर झारि।
—सूरसागर, वे० प्रे०, पृ० ३०।

२ राग सारग
भाई हो अपने गोपालहि गाऊ।
सुन्दर स्याम कमलदल लोचन देखि देखि सुख पाऊ॥
जो ग्यानी ते ग्यान विचारो जे जोगी ते जोग।
कर्मठ होंय ते कर्म विचारो जे भोगी ते भोग॥
× × ×
अपने असि की सुरति तजी है माग लियो ससार।
परमानँद गोकुल मथुरा में उपज्यो यह विचार॥
—डा० गुप्त के परमानन्ददास-पदसग्रह से, पद स० ११०।

३ अब विधि कहत ग्यान है जोई, भक्ति बिना सोउ सिद्ध न होई।
तुम्हरी भगति अमी रस सरवर, मोक्षादिक जामे बस निर्झर।
तिहि तजि जे केवल बोध कौं, करत कलेस चित्त सोध कौं।
× × ×
हो प्रभु पाछे बहुतक भोगी, तजि तजि भोग भये मल जोगी।
हृद अष्टाग जोग अनुसरे, ग्यान हेतु बहुते तप करे।
अति श्रम जानि कहा तें फिरे, तुम कहुं कर्म समर्पन करे।
तिनकर शुद्ध भयो मन कर्म, तब लीनो प्रभु तुम्हरे कर्म।
काया श्रवन करि पाई भक्ति, जामे सग फिरत सब मुक्ति।
ता करि आत्म तत्त्व कौ पाई, बैठे सहज परमगति पाइ।
—दशम स्कन्ध, अध्याय २४, 'नन्ददास' शुक्ल पृ० २६२।

कोई नही करेगा।[1] ध्रुवदास मन को सबोधित करके कहते हैं—रे मन, अन्य विचार छोडकर राधाकृष्ण से प्रेम कर।[2] राधावल्लभ के भक्तो की चरणसेवा कर।[3] इस ससार की असारता का सुन्दर वर्णन करते हुए मीराबाई ने लिखा है—अरे मन, जो कुछ तू देखता है वह सब नष्ट हो जाएगा। काशी जैसे तीर्थस्थानो मे जाने से क्या लाभ? अपने सुन्दर शरीर पर गर्व करने की आवश्यकता नही। ये सब मिट्टी मे मिल जाएगे। अत 'अविनाशी' भगवान् के चरणारविन्दो की सेवा कर ले।"[4]

मलयालम के कवि श्री चेरुश्शेरी नपूतिरि ने लिखा है—हे भगवन्! आपकी चरण-सेवा इस विस्तृत भवसागर की नाव है।[5] भक्ताग्रेसर एजुत्तच्छन का भक्ति की महिमा के सबध मे कथन है—यदि मानव का जन्म मिला तो गर्व करके बैठे रहना नही चाहिए। ज्ञानी होने के लिए भगवान् का भजन करो। तब प्रारब्ध-कर्म की जड उखड जाएगी,

---

१ आसावरी
हरि के नाम का आलस, क्यो करत है रे, काल फिरत सांधै।
हीरा बहुत जवाहर सच्चे, कहा भयो दरती पर बाधै॥
वर कुबेर कछू नहि जानत, चल्यो फिरत है काधे।
कहि हरिदास, कछू न चलत जब आवत अत की आधे॥
—कवि स्वामी हरिदास ब्रजमाधुरीसार, स० श्री वियोगी हरि, पृ० १२७।

२ सोरठा
रसिकन के रहु सग, रे मन, आन विचार तजि।
नैननि को लै रग, मिथुन रूप रस रग करि॥
—ले० ध्रुवदास ब्रजमाधुरीसार, स० श्री वियोगीहरि, पृ० २४४।

३ जिनके हिय में बसत है राधा वल्लभ लाल।
तिनको पद रज लेहु ध्रुव, पिवत रहो सब काल॥
—ले० ध्रुवदास ब्रजमाधुरीसार, स० श्री वियोगीहरि, पृ० २४५।

४ राग छायानट
भज मन चरण कमल अविनासी॥ टेक॥
जेताइ दीसे धरण गगन बिच, ते ताइ सब उठ जासी।
कहा भयो तीरथ ब्रत कीन्हें, कहा लिए करवत कासी।
इण देहो का गरब न करणा, माटी में मिल जासी।
यो ससार चहर की बाजी, साझ पड्या उठ जासी॥
—मीराबाई की पदावली, प० स० १९४, स० परशुराम चतुर्वेदी।

५. पेच्चापुल्लेतु दुरित वारिधि
तरण मेड्डलाक्कु वरमेकु।
अतिनु निन्नुटे चरण सेवया,
मरियोरु तोणि यरुलेण॥
—कृष्णगाथा, स० राजराज वर्मा, पृ० २१८।

रागादि दोष मिट जाएगे, भक्ति बढेगी। ज्यो-ज्यो भक्ति बढती है त्यो-त्यो भगवान् की कृपा होती जाएगी और मोक्ष मिलेगा।[1] पून्तानम् अपने मन को समझाते हुए कहते है—रे मन, मुक्ति की प्राप्ति के लिए भगवान् के कीर्तन के अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नही।[2] इस प्रकार सभी भक्तकवियो ने भक्ति की महिमा का वर्णन समान रूप से किया है।

सगुण ब्रह्म, निर्गुण ब्रह्म और भक्ति—

प्राय सभी कृष्णभक्त कवियो ने सगुण ईश्वर की ही उपासना का समर्थन अपनी रचनाओ मे किया है। अनेक पदो मे उन्होने अपना यह निश्चित मत प्रकट किया है कि सगुण भक्ति का मार्ग व्यावहारिक रूप मे सरल और सीधा है तथा वह मार्ग परमानन्द पद देने वाला है। सूर कृष्ण के द्वारा कहलाते है—लोग जटा और भस्म धारण करके भी भिन्न-भिन्न कर्मो के बधन मे जकडे रहते है। जो अहकार छोडकर गद्गद होकर भक्ति मे मग्न हो मेरा गान करते है उनके हृदय मे मै वास करता हू।[3] उद्धव-सवाद मे सूर की गोपी का मत है—हम अबलाए निर्गुण ईश्वर के समझने मे बिलकुल असमर्थ है। श्याम-मनोहर का साकार रूप देखकर हमे सालोक्य आदि मुक्तिया मिल गई और सदा उनके ध्यान मे हमारा मन लग गया है। ज्ञान का सार हमारी समझ मे नही आएगा और हम योग-साधन भी नही कर सकती।[4]

---

१ मानुष जन्म वन्नाल मामियाय इरिक्काते।
ज्ञान मटावान परमानन्द स्वरूपना-।
मोश्वरेश्वरने मजिक्केण मप्पोल कर्म।
पाश नाशमा ज्ञानोत्पतियुमुडायवरु॥
रागादि दोषड्डलु माकवे नशिच्चीटु
योगीन्द्र प्रतापवु भक्तियुं वर्द्धिच्चीटु
भक्ति वर्द्धिच्चाल पिन्ने मुक्तियु सिद्धिच्च टु,
भक्त वत्सलनायोरीशन्टे कारुण्यत्ताल
—चिन्तासतानम्, ले० एनुत्तच्छन, पृ० १,२।

२ युग नालिलु नल्ल कलियुग। सुखमे तन्ने मुक्ति वलर्त्तुवान॥
कृष्ण कृष्ण मुकुन्द जनार्दन कृष्ण गोविन्दराम येन्निड्डने॥
तिरुउ नाम सन्कीर्तन मेन्निये। मट्टेतुमिल्ल येन्नु मरिच्चालु॥
—पून्तानम् की कृतिया, स० सम्मत्, पृ० ६९।

३ कहत नन्द लाड़िलो।
जटा भस्म तनु दहै वृथा करि कर्म बधावै,
पुहुमि दाहिनी देहि गुफा बसि मोहि न पावै।
तजि अभिमान जो गावही गद्गद सुरहि प्रकाश,
तासु मगन हो ग्वालिनी ता घर मेरो वास।
—सूरसागर, दशम स्कन्ध, दानलीला, वे० प्रे०, पृ० २५३।

४ ऊधो सूधे नेक निहारो,
हम अबलनि कों सिखवन आए सुनो सयान तुम्हारो।

सूर के समान परमानन्ददास ने भी सगुण भक्ति की महिमा का गुणगान करते हुए कहा है—जो वृन्दावनवासी श्री कृष्ण के चरणसरोजो पर प्रेम करते है वे सचमुच धन्य है। भस्म लगाकर उदासी तपसी लोग ही काशी जैसे तीर्थस्थानो पर घूमते फिरते है। हम तो श्यामसुन्दर की उपासना करके यहा बडे सन्तोष से रहते है।[1]

मीरा के भगवान् उनके प्रियतम गिरधर नागर है जो भिन्न-भिन्न रूपो मे हमारे सामने प्रत्यक्ष होते है। यहा सगुण ब्रह्म के रूप मे मीरा अपने श्याम का इस प्रकार वर्णन करती है—जो पीताम्बरधारी है, सिर पर मोर-मुकुट और गले मे जो वनमाला धारण किए है, गायो को लेकर जमुना के किनारे जो चराने वाले है, यशोदा के प्यारे दुलारे है, मुरली बजाने वाले है, गोपियो के साथ वृन्दावन मे खेलने वाले है, सुर-मुनियो को भी मोहित करने वाले है, इन्द्र के कोप से जिन्होने ब्रज को बचाया है उन्हीमे मेरा मन लगा हुआ है और उनके दर्शन के लिए मेरी आखे तरस रही है। उनके दर्शन को छोडकर मुझको और कुछ भी अच्छा नही लगता।[2]

निर्गुण कहो कहा कहियतु है तुम निर्गुण अति भारी,
सेवत सगुण स्याम सुन्दर को मुक्ति लही हम चारो।
× × ×
निमि दिन ध्यान सूर प्रभु को अलि, देखत जित तितहीं।
—सूरसागर, दशम स्कन्ध, वे० प्रे०, पृ० २४४।

१ राग विहाग
धन्य धन्य वृन्दावन वासी।
निमि दिन चरन कमल अनुरागी स्यामा स्याम उपासा।
अष्ट महासिधि द्वार तें ठाढी रमा चरण की दासा।
पारप को जो मरम न जानो जाय जमो किन कासी।
भस्म रमाय गरे लिग बाधी निस दिन फिरो उदासी।
परमानन्ददास को ठाकुर सुन्दर घोष निवासी।
—डा० गुप्त के परमानन्ददास पदसग्रह मे, पद स० ४८६।

२ मेरो मन बसिगो गिरधर लाल सो॥ टेक॥
मोर मुकुट पीताम्बर हो, गल बैजन्ती माल।
गउवन के सग डोलत, हो जसुमति को लाल।
कालिन्दी के तीर हो, कान्हा गउवा चराय।
सीतल कदम को छाहिया, हो मुरली बजाय।
जसुमति के दुवरवा हौ ग्वालिन सब जाय।
बरजहु आपन दुलरुवा, हममों अऊझाय।
वृन्दावन क्रीडा करै, गोपिन के साथ।
सुर नर मुनि मोहे हो, ठाकुर जदुनाथ।
इन्द्र कोप धन बरखो, मूसल जलधार।
बूडत ब्रज को राखेऊ, मोरे प्रान अधार।

नन्ददास का कथन है कि ईश्वर के निर्गुण रूप के सम्बन्ध मे समझना और उन्हे प्राप्त करना सरल नही। परन्तु भक्तो के कष्टो को दूर करने के लिए अवतार लेने वाले सगुणेश्वर हमे बहुत प्रिय लगते है। यदि हम उनकी भक्ति करे तो वे अवश्य ही प्रसन्न हो जाएगे।[1]

दोनो भाषाओ के सभी भक्त-कवियो के मत मे भगवान् समान रूप से पतितपावन और करुणा-निधान है, फिर भी अपनी भावना और रुचि के अनुसार भिन्न-भिन्न भक्तो ने उनमे कुछ विशेष गुणो का आरोप किया है। किसीने उनकी दीन-बन्धुता और भक्त-वत्सलता देखी तो किसीने उनकी लीला-प्रियता, किसीने उनके शील और शक्ति की प्रशसा की तो किसीने उनके सौन्दर्य की।

सुदामा-चरित के रचयिता नरोत्तमदास ने अपने भगवान् को करुणा-सागर कहा है। कृष्ण ने सुदामा के पैर धोने के लिए परात भर पानी लाकर रखा। धोने के लिए जब उन्होने सुदामा का पैर उठाया तो देखा कि बिवाइयो से सारा पैर फट रहा है और एक-दो नही, सैकडो काटे इसमे चुभ गए है। पैरो की इस दुर्दशा से कृष्ण ने सुदामा के कष्टो का अनुमान कर लिया और बहुत रोकर उन्होने कहा—हे मित्र, तुमने इतने कष्ट और दु ख से अपने दिन काटे, परन्तु यहा नही आए, न जाने कहा कष्ट भोगते रहे। इतना कहकर और सुदामा की दीन दशा देखकर कृष्ण इतना रोए कि परात का पानी छूने की उन्हे आवश्यकता ही नही पडी। आखो से बही हुई जलधारा से ही उन्होने सुदामा के पैर धो डाले।[2]

मोरा के प्रभु गिरधर हो, सुनिये चित लाय।
तुम्हरे दरस की भूखी हो, मोहि कछु न सोहाय ॥ ६ ॥

—मीरा की पदावली, स० परशुराम चतुर्वेदी, पृ० ३।

१ अब विधि कहत कि निर्गुण ज्ञान, तिहि समान दुर्धर नहि आन।

× × ×

जामे रूप न रेख न क्रिया, तिहि लालच अवलबे हिया।
सहजहि सून्य समाधि लगाई, लेत है तामें तुम मों पाई।
पै यह सगुण सरूप तुम्हारी, ह्यौ मन खोयो जात हमारी।
ये अद्भुत अवतार जु लेत, विश्वहि प्रतिपालन के हेत।
नाम रूप गुन कर्म अनन्त, गनत गनत कोऊ लहै न अन्त।

× × ×

ताते तव भगतिहि अनुसरै, तुम्हरी कृपा मनायी करै।
कब मो पर नद नदन ढरिहै मधुर कटाच्छ चितै रस भरिहै।

—दशम स्कन्ध, अध्याय २४, नन्ददास शुक्ल. पृ० २६२।

२ ऐसे बेहाल बिवाइन सों पग कटक जाल लगे पुनि जोये।
हाय महा दुख पायो सखा तुम आये इतै न कितै दिन खोये॥
देखि सुदामा की दीन दसा, करुणा करि के करुनानिधि रोये।
पानी परात को हाथ छुयो नहि नैनन के जल सों पग धोये॥४३॥

—सुदामाचरित स० ललिताप्रसाद शुक्ल।

इस छन्द मे कवि ने श्री कृष्ण की भक्तवत्सलता के साथ-साथ उनकी मित्रता के अपूर्व आदर्श का बडा ही मार्मिक चित्रण किया है।

मलयालम के कवि श्री कुचन नप्यार, मीरा के समान कृष्ण की मोहिनी मूर्ति का वर्णन करके उनकी प्रार्थना करते हैं—घने बादलो के समान जिनके बाल हैं, जिन्होने अपने बालो पर मोरपख लगाए है, मालती पुष्पो से गुथी हुई माला जिनके ललाट पर शोभित है, जिनकी मनोहर आखे हैं, जिनके ओष्ठ लाल हैं, कमलरिपु के समान जिनका चेहरा है, जिनका गला शख सदृश है, जिनकी छाती पर तुलसीदलो से युक्त वनमाला है, जिनके सुन्दर हाथ हैं, ऐसे कृष्ण की मै वन्दना करता हू।[1]

पून्तानम नपूतिरि अपनी भावना के अनुसार कृष्ण की सगुण मूर्ति की प्रशसा करते हैं—हे भगवान्, आपके पैर वृन्दावन के लिए भूषण, रिपुसमूह को भयदाता, दूध-मक्खन आदि की चोरी करने मे सहायक, क्रूर आत्माओ के लिए घातक, बडे पापो का नाश करने वाले, वनिताओ के आनन्ददाता तथा मजुल ध्वनि से युक्त हैं। आपके ऐसे चरण मेरी मति का दोष दूर कर दे।[2]

भक्ति के नौ साधन

प्राचीन आचार्यो ने भक्ति के नौ साधन बताए है। उनका क्रम इस प्रकार है—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दना, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन।[3] ईश्वर-सबधी कथाओ का श्रवण करके उनका कीर्तन करना चाहिए। फिर उनका स्मरण करके

---

१ पोलिकलिटचेन्नोरु तिरुमुटिनील घनालि समानम्।
मालति वनमल्लिक मालकल फाल विशेषक जालम्॥
लोल नयन लोलकल गटज कुटल मडल शोभा-
जालव् अरुणाधर बिम्बवुमजकोटु शरण शभो॥
अबुज रिपु बिम्ब समान मुखाम्बुजमधिक मनोज्ञम।
कम्बु सदृश कठमकुठ भुजान्तर कान्ति कलापम्॥
लबित तुलसी वनमालकलति रुचि कौस्तुभ रत्नम्।
कम्रत कलरुन्न करड्डलु मनपोटु शभो शभो॥

२ अम्पाटिक्कोरु भूषण रिपुकुलानामिन्नदो भीषणम्।
पैंपाल वेरण [illegible] मति क्रूरात्मना पेषणम्॥
वन् पापत्तिनु शोषण वनितमार्कानन्द सपोषणम्।
निपादम मति दूषण हरत मे मजीर सघोषणम॥२४॥
—पून्तानम् की कृतिया, स० मूस्सत् पृ० ६४।

३ श्रवण कीर्तन विष्णो स्मरण पादसेवनम्।
अर्चन वदन दास्य सख्यमात्मनिवेदनम्॥
—भागवत, सप्तम स्कन्ध, अध्याय ५, श्लोक २३ २४।

ईश्वर के प्रति मन मे श्रद्धा पैदा करनी चाहिए। पादसेवन, अर्चन और वन्दना द्वारा विश्वास को दृढ करना चाहिए। तत्पश्चात् धीरे-धीरे दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन द्वारा रागात्मिका भक्ति का सच्चा आनन्द भक्त पा सकेगा। भागवत तथा अन्य शास्त्रो मे वर्णित नवधा भक्ति का क्रम यही है।

श्रवण—

भगवान् के नाम, चरित, गुण आदि के सबध मे सुनना और सुनाना 'श्रवण' भक्ति है।[1] गुरु तथा महात्माओ के वचनो को श्रद्धापूर्वक सुनने से 'श्रवण' भक्ति बढती है।

दोनो भाषाओ के कृष्ण-भक्त कवियो ने अपनी वाणी का सदुपयोग अपने आराध्य-देव के नाम और लीला के सुनने और सुनाने मे किया है। उन्होने अपनी रचनाओ के अन्त मे कृष्ण की कथाओ के श्रवण से क्या लाभ होगा?—उसके सम्बन्ध मे भी लिखा है। श्रवण-भक्ति का प्रभाव सूर के शब्दो मे सुनिए—

१ जो यह लीला सुनै सुनावै, सो हरि भक्ति पाइ सुख पावै।[2]
२ जो पदस्तुति सुनै सुनावै, सूर सो ज्ञान भक्ति को पावै।[3]
३ शुक जैसे वेद अस्तुति गाई, तैसे ही मैं कहि समुझाई।
४ सूर कह्यो श्री मुख उच्चार, कहै सुनै सो तरै भवपार।[4]

परमानन्ददास कहते है—जो कृष्ण-चरित को नही सुनते और उनका गुणगान नही करते, उनका जीवन व्यर्थ है। इहलोक और परलोक मे जो सुख से रहना चाहते है उन्हे दीनानाथ का चरित्र अवश्य सुनना चाहिए। हरि-कथा-श्रवण मात्र से ही मनुष्य का जन्म सफल होता है।[5]

नन्ददास का मत है कि कृष्णकथा का श्रवण-रस परमानन्द मे डुबाने वाला पीयूष-रस है।[6]

---

१ श्रवण नामचरितगुणादीना श्रुतिर्भवेत्।
—श्री हरिभक्ति-रसामृत-सिन्धु, पूर्वविभाग, लहरी २, श्लोक ३२।

२ सूरसागर, नवम स्कन्ध, वे० प्रे०, पृ० ६९।

३ सूरसागर, दशम स्कन्ध, वे० प्रे०, पृ० ५९२।

४ सूरसागर, दशम स्कन्ध, वे० प्रे०, पृ० ५९२।

५ राग सारग
कृष्ण कथा बिनु कृष्ण नाम बिनु कृष्ण भगति बिनु दिवस जात।
ते प्रानी कहँ को जीवन नही मुख वदत कृष्ण की बात।
श्रवनन कथा स्याम सुन्दर की रामकृष्ण रामकृष्ण रसना नहि स्फुरत।
मानुष जन्म कह पावैगो ध्यान धरहि धन श्याम चतुर मत।
जो इहि लोक परम सुख रापत अरु परलोक करत प्रतिपाल।
परमानन्ददास को ठाकुर अति गम्भीर दीनानाथ दयाल।
—टा० गुप्त के परमानन्ददास-पदसग्रह से, पद स० २६८, अष्टछाप, पृ० २६०।

६ अमृत नाम अमी जहा कान्हर कथा मत रहत सब लोग।
—मानसमजरी, नन्ददास शुक्ल, पृ० ६५।

मीरा ने स्पष्ट लिखा है कि गोविन्द के गुणगान और श्रवण का प्रभाव इतना है कि चाहे सारा ससार शत्रु हो जाए, कोई भी भक्त का बाल बाका नही कर सकता। अपने स्वजनो द्वारा दी गई यातनाओ का मर्मस्पर्शी वर्णन करने के बाद वे कहती है कि मै श्याम-सुन्दर के प्रेम से पागल हो गई हू।[1] एजुत्तच्छन आदि मलयालम के कवियो ने अपनी पुस्तको के प्रत्येक अध्याय के आरम्भ या अन्त मे ईश्वर की कथाए सुनने तथा सुनाने का बार-बार उपदेश दिया है।

एजुत्तच्छन लिखते है—हे शुक, मैं तेरे मुख से भगवान् की कथा सुनना चाहता हू। यदि मै कथा सुनू तो मेरा सासारिक मोह दूर हो जाएगा, मेरे मन मे भक्ति जम जाएगी। जो भगवान् की कथा सुनते है और सुनाते है उनको परम गति अर्थात् मोक्ष मिलेगा, इस प्रकार मुनि बोले।[2]

चेरुश्शेरी का दृढ विश्वास है—ईश्वर के गुणगान से और श्रवण से दु ख का नाश होता है, इसके लिए वे प्रार्थना करते है।[3]

पून्तानम नम्पूतिरि लिखते है—भगवान् के नामो के कीर्तन और श्रवण मात्र ही से जन्म सफल होगा। शास्त्रग्रन्थो का दृढ मत है यह।[4]

कुचन नप्यार अपनी पुस्तक श्रीकृष्णचरित-मणिप्रवालम् मे कहा है कि भगवान् की कथाओ और उनके गुणो का कीर्तन करने और सुनने से ही उनकी कृपा हमे प्राप्त होती

---

१ राग जौनपुरी
मै गोविन्द गुण गाणा ॥ टेक ॥
राजा रूठे नगरी राखे, हरि रूठ्या कहँ जाणा।
राजै भेज्या जहर पियाला, इमरत करि पी जाणा।
डबिया में भेज्या जु भुजगम, सालिगराम करि जाणा।
मीरा तो अब प्रेम दिवाणी, सावलिया वर पाणा ॥४३॥
—मीराबाई की पदावली, स० परशुराम चतुर्वेदी, पृ० १८।

२ अक्कथयोक्के केल्प्पान इत्र पार्त्तुमाना।
दुखड्ङलतु केट्टाल पिन्ने युडाकयिल्ला ॥
शक्तियु नशिच्चु पों भक्तिय उरच्चीटु।
भक्तियु विरक्तियु मुक्तियु ताने वरु ॥
—महाभारत, पीलोमम्, पृ० १, कवि एजुत्तच्छन।

३ कीर्त्तिये बाजतुवान ओर्तु निन्नोटुमे-
न्नार्त्तिये त्तार्त्तु तुणय्क्केणमे।
—कृष्णगाथा, ले० चेरुश्शेरी।

४ आर्क्कन्किलु पोरुमि नाम मात्र।
कीर्त्तिक्क जन्मत्तिलोरिक्कलेन्नु ॥
शास्त्रङ्ङल चोल्लु दृढ निश्चय केल।
भोष्केन्नु वन्नीटोला नन्द सूनो ॥१४०॥
—पून्तानम की कृतिया, स० मूरसत्, पृ० १३६।

है। तभी हमारा अज्ञान दूर होगा और हमे मोक्ष मिलेगा।[1] इन सब उदाहरणो के आधार पर हम कह सकते है कि सभी कवियो ने ईश्वर के गुण और श्रवण के गान का एकमत से समर्थन किया है।

कीर्तन--

उच्च स्वरो मे भगवान् के नाम, लीला और गुण आदि का गान करना 'कीर्तन' कहलाता है।[2] दोनो भाषाओ के कवि भागवतकार के कथन से पूर्णरूपेण सहमत है। उनका कथन है कि कलियुग मे एक केवल श्री कृष्ण के कीर्तन मात्र से ही मनुष्य आसानी से मुक्ति पा सकता है।

कीर्तन की महिमा और प्रभाव का वर्णन सूरदास इस प्रकार करते है—गोपाल के गुणगान से जो आनन्द मिलता है उसके आगे जप, तप तथा तीर्थाटन क्या चीज है? हरि-कीर्तन से पुरुषार्थ मिलेगा और तीन लोक का सुख तुच्छ प्रतीत होगा।[3] मीरा ने कहा है—भगवान् के नाम लेने और गुणगान से पाप कट जाएगे और जन्म सफल होगा।[4] परमानन्ददास के मत मे श्री भगवान् कृष्ण की कथा का श्रवण करना, गुणो का कीर्तन

---

१ इक्काव्य कृष्णलोलामृत कथन महा पावन भावनीय
नल्वकारुण्य लभिप्पानोरु पेरुवजि येन्नोर्त्तु मर्त्यन ग्रहिच्चाल
उल्क्कापिल वोधमुटामस्विन दुरितवु
सल्वकार्ति स्फूर्त्तियुडामवनविकलमा मोक्षवुं सभविक्कु ॥८०॥
—श्रीकृष्णचरित-मणिप्रवालम् ले० कचन नय्यार, पृ० ११।

२ तु कीत्तनम्।
—श्री हरिभक्तिरसामृतसिन्धु, पूर्व विभाग, लहरी २, श्लोक २६।

३ राग सारग
जो सुख होत गुपालहि गाये।
सो नहि होत जप तप के कीने कोटिक तीरथ न्हाये।
दिये लेत नहि चारि पदारथ चरण कमल चित लाये।
तीन लोक तृण सम करि लेखत नन्द नन्दन उरु आये।
वशी वट वृन्दावन यमुना तजि बैकुठ को जाये।
सूरदास हरि को सुमिरन करि बहुरि न भव जल आये।
—सूरसागर, स० सूर-समिति, पद स० ३४१।

४ राग धनाश्री
मेरो मन रामहि राम रटैरे॥ टेक॥
राम नाम जप लीजै प्राणी, कोटिक पाप कटैरे।
जनम जनम के खतजु पुराने, नामहि लेत फटैरे।
कनक कटोरे इम्रत, भरियो, पीवत कौन न टैरे।
मीरा कहै प्रभु हरि अविनासी, तन मन ताहि पटैरे॥२००॥
—मीरा की पदावली, स० परशुराम चतुर्वेदी।

करना और स्मरण करना आदि जितने भक्त के साधन हैं वे सब मगलकारी हैं।[1] नन्ददास का मत है कि भगवान् का लीला-कीर्तन और श्रवण करना ही ज्ञान और दृष्टि से ध्यान का सार है।[2]

एजुत्तच्छन लिखते हैं कि भगवान् की लीलाएं सुनते तथा सुनाते रहें तो इस ससार के प्रति हमारा जो ममत्व है वह टूट जाएगा। फिर धीरे-धीरे मन शुद्ध होगा और आत्म-ज्ञान की प्राप्ति हो जाएगी।[3] कीर्तन का प्रयोजन समझाते हुए पून्तानम कहते हैं—नाम के सकीर्तन से पुरुषार्थ मिलेगा और नरक का भय सदा के लिए दूर हो जाएगा। अतः कीर्तन मे समय न लगाकर उसे क्यो व्यर्थ खोते हो?[4]

कुचन नप्यार ने अपनी पुस्तक 'इरुपत्तिनालुवृत्तम्' मे लिखा है कि कमललोचन कृष्ण के चरित का कीर्तन करने से विष्णु का पद आसानी से मिल सकेगा।[5] रामपुरत्तु

---

१ राग भैरो
मगल माधो नाउ उच्चार।
मगल बदन कमल, कर मगल मगल जन की सदा सभार।
देखत मगल पूजत मगल गावत मगल चरित उदार।
मगल श्रवन, कथा पुनि मगल मगल तन वसुदेव कुमार।
गोकुल मगल मधुवन मगल मगल रचित वृन्दावन मद।
मगल कर्म गोवर्द्धन धारी मगल मेख जसोदा नन्द।
× × ×
मगल कमल चरन सुर वदित, मगल कीरति जगत निवास।
मगल ध्यान विचारत अनुदिन मगल मति परमानन्ददास।
—डा० गुप्त के परमानन्ददास-पदसग्रह से पद स० ३०५, अष्टछाप, पृ० ११९।

२ श्रवण कीर्तन सार सार सुमिरन कौ है पुनि।
ध्यान सार हरि ध्यान सार, श्रुति सार गुधी जुनि।
—रासपचाध्यायी, नन्ददास शुक्ल, पृ० ८२।

३ भगवत् कथकले आवोल केट्टु विचारिच्चुमुलप्रेमान्वित
नाविनालुर चेयतु भिड्डने चिल दिन
चित्तवु अतुनेर शुद्ध मायिटु पिन्ने
चित्तिन्टे सान्निध्यवु तत्व बोधवुमुडाम्।
—चिन्तासन्तानम्, ले० एजुत्तच्छन, पृ० २२।

४ वन्नु कूट्ट पुरुषार्थ मेन्नतु इनियुल्ल नरक भयड्डल्ल।
इन्नु वेंडु निरूपण मोक्कयु एन्तिनु वृथा काल कलयुन्नु।
—पून्तानम की कृतिया, स० मूरसत्, पृ० ७७।

५ वृष्णिवर ईशमतिल वन्नु नलिनाक्षन।
कृष्ण तनुवायवतारिच्योरु चरित्र॥
तृष्णयोट्टु चोल्लुवतिनिन्नु तुनियुन्नेन।
विष्णु पद मेन्नकुंवनिनाशु हरि कृष्ण॥
—भागवत इरुपत्तिनालुवृत्तम्, स० पणिक्कर, पृ० १२८।

वारियर श्री कृष्ण की महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं--कृष्ण की कथा जो भक्ति से सुनते और सुनाते हैं उनको धनधान्य तथा सन्तान की प्राप्ति होती है और उन्हीको इस जन्म मे सायुज्य मुक्ति मिलेगी।[1]

स्मरण—

ईश्वर के नाम, गुण, लीला आदि का स्मरण सदा करना और उसमे लीन रहना 'स्मरण' भक्ति है।[2] इसके अन्तर्गत भगवान् के नामो का जप भी आ जाता है। सारे भक्तो ने उदाहरण देकर स्मरण भक्ति की महिमा गाई है। सच्चा भक्त सदैव भगवान् के नाम जपने मे और उनके गुणो की चिन्ता मे समय लगाता है।

नाम की महिमा समझाते हुए परमानन्ददास कहते हैं--बडे सवेरे उठकर भगवान् का नाम लेना चाहिए। ऐसा किया जाए तो बडे आनन्द से दिन कट जाएगा। करुणामूर्ति भगवान् सारी बाधाओ का नाश करने वाले हैं। भगवान् के नाम मे इतनी शक्ति है कि वह कलियुग को मिटाकर चिन्तामणि, कामधेनु और कल्पवृक्ष के समान सारे अभीष्ट सिद्ध कर देगा।[3] नन्ददास का कथन है--कलियुग मे भवरोग को मिटाने के लिए केशव के नाम के अलावा अन्य कोई शक्तिशाली औषध नही।[4] नाम की अपार महिमा का वर्णन सोदाहरण देते हुए मीरा अपने आराध्यदेव और प्रिय से प्रार्थना करती है—हे भगवान्! आपके नामो पर मैं मुग्ध हो गई हू। वेश्या, गजेन्द्र और अजामिल आदि को नाम की महिमा से ही मोक्ष मिला है।[5] उपदेश देते हुए कहा है--हे महान् जनो, यदि आप भगवान्

---

१ इन्निक्कथ चोल्लुन्नोर्क्कु भक्तियोटे केल्क्कुन्नोर्क्क।
मन्दमेन्ये धन धान्य सन्ततियुण्टाम, एन्नतुतनयुमल्ल।
इज्जन्मत्तु तन्ने विष्णु तन्नुटे सायुज्यव् वन्नु कूटीट मे।
—कुचेलवृत्तम्, पृ० २१।

२ ध्यान रूपगुणक्रीडासवादे सुष्ठु चिन्तनम्।
—हरिभक्तिरसामृतसिन्धु, पूर्व विभाग, लहरी २, श्लोक ३३।

३ राग भैरो
प्रात समैं उठि हरि नाम लीजै आनन्द सा सुख में दिन जाई।
चक्रपानि करुना को सागर विघ्न विनाशन जादोराई।
कलिमल हरन तरन भवसागर भक्त चिन्तामणि कामधेनु।
ऐसो सुमिरन नाम कृष्ण को बन्दनीक पावन पद रेनु।
सिव विरचि इन्द्रादिक देवता मुनि जन करत काम को आस।
भगत बछल ऐसो नाम कल्प दुम वर नायक परमानन्ददास।
—डा० गुप्त के परमानन्ददास-पदसग्रह से, पद स० ३२, अष्टछाप, पृ० ५७६।

४ कलि कलियुग जहा अबर नाहि, केवल केसव नाम।
—अनेकार्थमजरी, नन्ददास शुक्ल, पृ० ६८।

५ पिया तेरे नाम लुभाणी हो॥ टेक॥
नाम लेने तिरता सुण्या, जैसे पाहण पाणी, हो।
सुमिरत कोई ना कियो, बहु करम कुमाणी, हो।

की कृपा और उनके रूप का स्मरण करे तो इसमे तनिक भी सन्देह नही कि वे अति शीघ्र आपके दु ख दूर कर देगे और आपका कल्याण कर देगे। वे आगे भी कहते हैं– –किसी भी भावना से, चाहे सख्य-भाव से हो या शत्रु-भाव से, भगवान् का स्मरण करे तो भगवान् अवश्य उनको मोक्ष देगे।[1]

नाम महिमा––

कृष्णभक्त कवियो ने नाम की महिमा प्रदर्शित करने वाले अनेक पद लिखे है। उन्होने नाम-कीर्तन मे प्राप्त फल का वर्णन करते हुए 'जप' करने पर जोर दिया है। सूरदास स्मरण, कीर्तन, श्रवण, गुरु-सेवा, नाम-भजन आदि भक्ति-साधनो की महत्ता का वर्णन करते हुए भगवान् से प्रार्थना करते है—आप मुझे नाम-रूपी नौका मे बिठाकर भवसागर से पार करा दे।[2]

गणिका कीर पढावता, बैकुँठ वसाणी हो।
अरध नाम कुजर लियो, वाको अवध धरानी हो।
गरुड छाडि हरि धाइया, पसुजूण मिराणी हो।
अजामेल से ऊधरे, जम त्रास नसानी हो।
पुत्र हेत पदवी दई, जग सारे जाणी हो।
नाम महातम गुरु दियो, परतात पिछाणी हो।
मीरा दासी रावली, अपनो कर जाणी हो॥

—मीराबाई की पदावली, स० परशुराम चतुर्वेदी, पद स० १३८, पृ० ४६।

१ मालोकरे ! निड्डल केल्प्पिन भगवान्टे
शीलव् कारुण्यत्तिन्टे पेरुप्पव्
काल कलयातेयेवन् तन्नुटे
रूपत्ते च्चिन्तिच्चु चिन्तिच्चिरिक्कुम्पोल
सकट नाड्ड् माराक्कीट्टवक्कैंडड्
मगल नल्कु भगवानुटन तन्नें
मग कोण्टेन्किलु, पेटि कोण्टेन्किलु
इन्दिरा वल्लभनाय भागवाने,
च्चिन्तिच्चाल वल्लोक्कु मेकोटु मोक्षत्ते

—कृष्णलीला, द्वितीय पाद, पृ० ५।

२ राग धनाक्षरी

वादिहि जनम गयो सिराइ।
हरि सिमरन नहि गुरु की सेवा मधुवन वस्यो न जाइ।
अवकी बेर मनुष्य देह धरि भजो न आन उपाइ।
भटकत फिर्यो स्वान की नाईं के जूठ के चाइ।
कबहुं न रिझये लाल गिधरन विमल विमल यश गाइ।
प्रेम सहित पग बाधि घूघरू नच्यो न अग नचाइ।
श्री भागवत सुन्यो न श्रवणनि नेकहु रुचि उपजाइ।
अनन्य भक्ति नरहरि भक्तन के कबहुं न धोए पाइ।
कहा कहा जो अद्भुत है वह कैसे कहू बनाइ।
भव अबोधि नाम निज नौका सूरहि मेउ चढाई।

—सूरसागर, प्रथम स्कन्ध, वे० प्रे०, पृ० १५।

अर्चन, कीर्तन, स्मरण आदि की महिमा--

अर्चन, कीर्तन, स्मरण आदि की महिमा के बारे मे एजुत्तच्छन ने यो लिखा है--ईश्वर की पूजा करना, कीर्तन करना, स्मरण करना आदि साधनो से मोक्ष की प्राप्ति हो जाएगी।[1] मन मे समझो कि कमलासन के पिता (विष्णु) के कथा रूपी अमृत का सेवन सुखदायी है, वह सुरतरु के समान सर्वस्व देने वाला है।[2] भगवान् का एक बार नाम जपने से ही जिस प्रकार अजामिल को मोक्ष मिल गया उसी प्रकार जपने वाला भक्ति-मोक्ष पाने का अधिकारी हो जाएगा।[3] कडी तपस्या करने की आवश्यकता नही, दान, यज्ञ, आदि भी न करना चाहिए। बल्कि इस कलिकाल मे भगवान् की महिमा के कीर्तन से ही सारी आशाए पूरी हो जाएगी, अर्थात् मोक्ष मिलेगा।[4] भगवान् के मजुल रूप का ध्यान, नाम, जप और उनके चरितो का आख्यान-श्रवण आदि मनुष्यो के लिए उत्तम है।[5]

सूरदास ने स्मरण-भक्ति के सबध मे इस प्रकार लिखा है--हरि के स्मरण से परमानन्द का अनुभव होता है। श्रुति, स्मृति आदि उत्तम ग्रथ पुकार-पुकार कहते है कि हरिस्मरण के समान दूसरी उत्तम वस्तु कोई भी नही। इसीसे मुक्ति प्राप्त होती है। ऊच नीच, भावना के बिना जो हरि का स्मरण करते है उनको भगवान् मोक्ष देते है। अत दिन-रात हरि का स्मरण करने मे विलम्ब न करे। सौ बातो से यदि कोई अच्छी बात है तो वह हरिस्मरण है। हरिस्मरण के बिना कही भी चलो, आनन्द नही मिलेगा और हमारा

---

१ ईश्वरार्च्चन नाम सकीर्त्तनम
शाश्वतानन्द मोक्ष सपादनम
—भागवतकीर्त्तनम्, पद स० ४, कवि एजुत्तच्छन।

२ कमलासन तातन्टे कथामृत-
सुख पान सुर दारु समान
सकलाशा साधन मेन्नुल्लतु
करुतुक चित्ते नारायण जय॥
—भागवतकीर्त्तनम्, द्वितीय पाद, पद स० १, कवि एजुत्तच्छन।

३ कैवल्य तान, करुणा निधि यटे।
तिरु नाभड्डलिलोन्नु जपिच्चाल,
कैवरुमेन्नु मजामिल मोक्ष,
कथा गति कायम् नारायण जय॥
—भागवतकीर्त्तनम्, द्वितीय पाद, पद स० ९, कवि एजुत्तच्छन।

४ कोटुतायुल्ल तपस्सुकल वेण्टा, बहु दानाढ्य मख क्रिय वेण्टा।
कलि कालत्तिल भगवत् कीर्त्तन मखिलेष्टदमा नारायण जय॥
—भागवतकीर्त्तनम्, द्वितीय पाद, पद स० १०, कवि एजुत्तच्छन।

५ कोमल वैष्णव रूप ध्यान नाम जप तिरु चरितारव्यानम।
काममितोरोन्नु नरजात क्षेमदमत्रे नारायण जय।
—भागवतकीर्त्तनम्, द्वितीय पाद, पद स० ११, कवि एजुत्तच्छन।

जन्म भी बेकार हो जाएगा।[1]

परमानन्ददास निरन्तर हरि का स्मरण करने का उपदेश देते हैं—हे भगवान्, आपकी लीला का स्मरण मुझे बार-बार होता है और मेरे मन मे अनेक चित्र बन जाते है। जिसने भगवान् की मीठी मुस्कान का आनन्द लिया है वह उन्हे कभी भूल न सकेगा। आपका स्मरण कभी प्रगाढ आलिगन का सुख देता है तो कभी मन आपके मधुर स्वर मे मिलकर गाने लगता है। जब आप अप्रत्यक्ष होते है तब मेरा मन विकल हो उठता है। आखे बन्द करने पर कभी मेरी अन्तरात्मा आपको सर्वस्व अर्पण करती हुई वनमाला पहनाती है। परमानन्ददास कहते है कि कभी मुझे नन्दलाल के ध्यान मे वियोग की व्याकुलता का अनुभव होता है।[2]

एजुत्तच्छन का मत है जब मन काम, क्रोध और मद आदि से कलुषित हो तब भगवान् की महिमा के बारे मे विचार कर उनके नाम का यदि कोई व्यक्ति उच्चारण करे तो उसका जीवन सफल हो जाए।[3] उसी प्रकार अपने मन को सबोधित करते हुए नाम

---

१ राग बिलावल

हरि हरि हरि, सुमिरो सब कोई।
हरि हरि सुमिरन सब सुख होई।
हरि समान द्वितीया नहि कोई, हरि चरणनि राखो चित गोई।
हरि श्रुति स्मृति सब देखों जोई, हरि सुमिरन होई सो होई,
हरि हरि हरि सुमिरो सब कोई, बिन हरि सुमिरन मुक्ति न होई।
शत्रु मित्र हरि गिनत न दोई, जो सुमिरे ताकी गति होई।
राव रक हरि गिनत न दोई जो गावे ताकी गति होइ।
× × ×
हरि बिनु सुख नहि इहा न वहा हरि हरि हरि सुमिरो जहा तहा।
हरि हरि हरि सुमिरो दिन रात, नातर जन्म अकारथ जात।
सौ बातन की ऐकै बात, सूर सुमिर हरि हरि दिन रात।

—सूरसागर, द्वितीय स्कन्ध, वे० प्रे०, पृ० ३६।

२ राग कल्याण

हरि तेरी लीला की सुधि आवति।
कमल नैन मन मोहना मूरति मन मन चित्र बनावति।
एक बार जाय मिलत मयाकरि सो कैसे बिसरावति।
मृदु मुसिकानि बक अवलोकनि चालि मनोहर भावति।
कबहुंक निबड तिमर आलिगनि कबहुंक पिक स्वर गावति।
कबहुंक सम्भ्रम क्वासि क्वासि करि सगहीन उठि धावति।
कबहुक नयन मुदि अन्तर गति बनमाला पहिरावति।
परमानन्द प्रभु स्याम ध्यान करि ऐसे विरह गवावति।

—डा० गुप्त के परमानन्द-पदसग्रह से, पद स० २२४, अष्टछाप, पृ० २७२।

३ उल्लिल कनत्त मद, [illegible]
कालमुटन्नेकिलु मनसि
चोल्लुन्नितारु तिरुनामङ्ङलेन्नवयु नल्ल गतिक्कु वजि नारायणाय नम ॥१८॥

—हरिनामकीर्तनम, एजुत्तच्छन कवि।

की महिमा के सबध मे पून्तानम ने कहा है—हे मन, नामोच्चारण से दासीपति अजामिल को मोक्ष मिल गया, नामोच्चारण से ही वाल्मीकि मुनि श्रेष्ठ हो गए । जीवन की सफलता के लिए नामोच्चारण ही पर्याप्त है—यही बात वेदान्त भी घोषित करते है । अन्त मे कवि भगवान् से प्रार्थना करते है—हे भगवन्, आप मुझे नामोच्चारण करने की शक्ति तथा रुचि दीजिए ।[1] फिर वे कहते है कि नामामृत के सामने सोमामृत क्या चीज है ! मृतको के लिए नाम पीयूष के समान है ।[2]

पाद-सेवन

ससार मे हम देखते है कि सेवक अपने स्वामी को प्रसन्न करने के लिए सब प्रकार से उसकी सेवा करता है । उसी प्रकार भक्त भगवान् के चरणो की सेवा मन, वाणी, काया से करता है । इसीको पाद-सेवा कहते है ।[3] सारे भक्त कवियो ने एक मत से कहा है कि भगवान् की चरणसेवा से मुक्ति मिलेगी । भागवत मे लिखा है—जो महान् पुरुष भगवान् के कोमल चरण रूपी नौका का सहारा लेते है उनके लिए ससार-सागर गोवत्सपद चिह्न के समान है । परम पद पाने के लिए उन्हे विपत्तियो का सामना करना नही पडता ।[4]

प्रभु के चरणकमलो की महत्ता के सबध मे सूर ने लिखा है—जिसपर प्रभु की कृपा होती है उसे वे सब सामर्थ्य प्राप्त करा देते है । उसके लिए असम्भव बात कोई भी नही । लूला-लगडा दुर्गम पर्वत को भी लाघ सकता है, अन्धा सब-कुछ देख सकता है । ऐसे करुणामय स्वामी के चरणो की सेवा कौन नही करेगा ![5] दूसरे एक पद मे सूर ने कहा

१ नामोच्चारण मोन्नु कोटुगति वन्नु पण्डु दासी पते-
र्न्नामोच्चारणमोन्नु कोडु मुनियाय् वालमीकि पटे तुलो
नामोच्चारणमोन्नु तन्ने मतियेन्नोतुन्नु वेदान्तव्
नामोच्चारण मेन्नतेन्कलरुलाटानन्द पाथो निधे ॥
पून्तानम की कृतिया, पद स० १२ , स० मूरमत् , पृ० १४४ ।

२ नामामृत
सोमामृत पातु निनच्चु कटाल
नामामृत काणमृत मृताना ।
— पून्तानम की कृतिया, पद स० १५५, स० मूरमत् , पृ० १४४ ।

३ सेवकाना तथा लोके व्यवहार प्रसिध्यति
× × ×
—सिद्धान्तरहस्य, षोडश ग्रन्थ, भट्ट रमानाथ शर्मा, श्लोक ७ तथा ८ ।

४ समाश्रिता ये पदपल्लवप्लव, महत्पद पुण्ययशो मुरारे ।
भवाम्बुधिर्वत्सपद पर पद,
—भागवत, दशम स्कन्ध, अध्याय, श्लोक ५८ ।

५ राग बिलावल
चरन कमल बन्दो हरि राइ ।
जाको कृपा पगु गिरि लघे, अन्धे कौ सब कुछ दरसाइ ।
बहिरौ सुनै, गूग पुनि बोलै, रक चलै सिर छत्र धराइ ।
सूरदास स्वामी करुनामय, बार बार बन्दौ तिहि पाइ ॥
—सूरसागर, प्रथम स्कन्ध, स० सूर-समिति, पद स० १, पृ० १ ।

है कि प्रभु की शरण मे जो गए है उन सबको भवसागर से मोक्ष मिला है। अबरीष, गोपाल, गज, प्रह्लाद आदि लोगो का उदाहरण भी उन्होने दिया है।[1]

परमानन्ददास का कथन है कि नन्दनन्दन की पाद-सेवा मुक्ति से भी मधुर है। जो सच्चे भक्त है और सरस है वे इस रस का आस्वादन करने के लिए अपना सर्वस्व पाद-सेवा मे अर्पण करके श्रवण, कथन, स्मरण और कीर्तन मे समय लगाते है। उन्होने वेद-पुराण को निचोडकर इसी रस का आस्वादन कर लिया है। ऐसे भक्तो से प्रेरणा पाकर ही परमानन्ददास ने भगवान् के चरणकमलो से अनुराग करना उचित समझा।[2]

नन्ददास भगवान् कृष्ण की स्तुति करते हुए कहते है—हे नन्द दुलारे! जब तक आपके चरणो मे लोग श्रद्धा-भक्ति से प्रेम नही रखते तब तक रागादि विकारो से छुटकारा पाना असम्भव है। मोह की जजीर से वे हमेशा जकडे रहेगे।[3]

मीरा व्याकुल होकर कहती है—हे भगवन्, आपकी शरण मे मे आई हू। अनेक तीर्थ-स्थानो पर जाकर स्नान किया किन्तु मन की मलिनता दूर नही हुई। वे कहती है कि भगवान् की चरणसेवा से ही यम के फन्दे से छुटकारा मिलेगा।[4]

१ राग रामकली

सरन गए को को न उबार्‌यो।
जब जब भीर परी सतनि कों, चक्र सुदरसन तहा सँभार्‌यो।
भयौ प्रसाद जु अबरीष कों, दुरवासा कौ क्रोध निवार्‌यो।
× × ×
सूर स्याम बिनु और करै को, रणभूमि मे कंस पछार्‌यो॥
—सूरसागर, प्रथम स्कन्ध, पद स० १४, स० सूर-समिति।

२ राग सारग

सेवा मदन गोपाल की मुक्ति हू ते मीठा।
जाने रसिक उपासिका शुक मुख जिन दीठा।
चरण कमल रज मन बर्सी सब धर्म बहाए।
श्रवण, कथन, चिन्तन बढ्यो पावन गुन गाए।
वे पुरान निरुपि मे रस लियो निचोर।
पान करत आनन्द भयो डार्‌यो सब धोर।
परमानन्द विचारि के परमारथ साध्यो।
राम कृष्ण पद प्रेम बढ्यो लीला रस बाध्यो।
—डा० गुप्त के परमानन्ददास-पदसग्रह से, पद स० ३१५, अष्टछाप, पृ० १८१।

३ तबई लगि बधन आगार, देह गेह अरु नेह विचार।
तबई लगि दिढ जजर जेरी, मोह लोह की पाइनि बेरी।
जब लग जन नहि भये तुम्हारे, हे ईश्वर बजराज दुलारे।
—दशम स्कन्ध भाषा, अध्याय १४, नन्ददास, 'शुक्ल' पाठ भेद से, पृ० २६७।

४ मे तो तेरा सरण परा रे रामा, ज्यू जाणै त्यू तार॥टेक॥
अडसठ तीरथ भ्रमि भ्रमि आयो, मन नही माना हार।
या जग मे कोई नहि अपणा, सुणियो श्रवण मुरार।
मीरा दासा राम भरोसे, जम का फन्दा निवार॥
—मीरा की पदावली, स० परशुराम चतुर्वेदी, पद स० १३१, पृ० ४७।

हिन्दी के कवियो के समान ही मलयालम भाषा के कवियो ने पाद-सेवा की महिमा का वर्णन अपनी-अपनी भावना के अनुसार ही किया है। कृष्णगाथा मे चेरुश्शेरी ने लिखा है—आपकी चरणसेवा भवसागर को पार करने वाली नौका है। आपसे विनीत प्रार्थना है आप अपने चरण-कमलो मे हमे अभय दीजिए।[1] श्री पून्तानम ने भी भगवान् के चरणो के दर्शन और चरणो की सेवा से मोक्ष-प्राप्ति आदि के सबध मे कई पद लिखे है। अन्त मे वे उपदेश देते है कि कमल-नयन भगवान् की पाद-सेवा अति शीघ्र कर सके तो तुरन्त करे।[2] एजुत्तच्छन पादसेवन की महिमा यो गाते है—हे भगवन्, मनुष्य के मन मे अहकार रूपी पौधा अकुरित हो जाएगा। धीरे-धीरे काम, क्रोध आदि शाखाओ से वह पौधा परिपूर्ण होगा और दुष्कर्म रूपी फल उसमे लगेगे जिसके कारण कई जन्म लेने पडेगे। अत आपसे प्रार्थना करता हू कि ऐसे अहकार रूपी पौधे को मेरे मन मे अकुरित न होने दे।[3]

अर्चन

सर्वत्र भगवान् को देखते हुए अपने को भगवान् पर अर्पण करके नि सग होकर जीवन बिताने को अर्चन या मानसिक पूजा कहते है। भक्तिवर्द्धिनी मे लिखा है कि श्रद्धा और विश्वास के साथ भगवान् के रूप की पूजा करना अर्चन भक्ति है।[4]

अज्ञानी लोग मन्दिरो मे जाकर पत्थर की मूर्ति की पूजा करते है। माया से मोहित होने के कारण भगवान् की सर्वव्यापकता उनकी समझ मे नही आती, किन्तु सारे कृष्ण-

---

१ पेरुतायुल्लोरु दुरित वारिधि,
तरण मेडल्लक्कु वरमेक
यतिन सिन्नटे चरण सेवया,
मरियोरु तोणि यरुलेण
अटिमयायपुबकोरिवरे ज्ञानेन्नु
वेटियुन्निल्लन्न निनवाले
अज्ञल् नीत्तीटु निन कजलिल् चेर्प्पारु,
कनिवुटाकेणमिनिययो।

—कृष्णगाथा, पृ० २१, स० राजराज वर्मा।

२ नालीक नेत्र चरणाम्बुज सेव चेय्वा,
नालाकिलप्पोजे तुटड्डण मप्रकार ॥१२६॥

—पून्तानम की कृतिया, स० मूस्सत्, पृ० १३८।

३ दभाय वन्मर मतिनुल्लिल निन्नु चिल,
कोम्पु तलिर्तवधियिल्लात कायकनिकल
अपोटुदुत्तरिकिल वाजाय्वतिन्नु गति
निन् पाद भक्ति हरि नारायणणाय नम ॥४७॥

—हरिनामकीर्तनम्, पद स० ४७, ले० एजुत्तच्छन।

४ अन्यावृतो भजेत्कृष्ण पूजया श्रवणादिभि।

—भक्तिवर्द्धिनी, षोडश ग्रथ, भट्ट रमानाथ शर्मा, श्लोक २, पृ० ७२।

भक्त कवियो को ईश्वर की सर्वव्यापकता का अनुभव हुआ है, यह उनकी कविताओ से स्पष्ट रूप से प्रकट होता है।

सूर ने लिखा है—जो घटघटवासी ब्रह्म है, उसके प्रकाश से सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र आदि सब शोभा पाते है। सारा लोक, नारद, सनकादि, सुर-असुर, मनुष्य आदि सब मिलकर उसी सर्वव्यापी ब्रह्म की पूजा करते है।[1]

परमानन्ददास भक्ति मे विभोर होकर प्रेम-प्लावित हृदय से गोपी रूप मे गाते है—हे मनमोहन, मे तुमको बुलाते-बुलाते हार गई। तुम्हारे लिए छाक लेकर आई हू। तुम कहा हो ? मुझे पता नही लगता। तुमको ढूढते-ढूढते बडा कष्ट झेलकर आई हू। देखो तुम्हारी वशी की ध्वनि सुनते ही मेरे उर और अन्य अगो मे पसीना भर गया है और अचल भी भीग गया है।[2]

'दशम स्कन्ध' मे नन्ददास ने वरुण के द्वारा कृष्ण की पूजा कराई है।[3] यह अर्चना-भक्ति का सुन्दर उदाहरण है। चेरुश्शेरी नपूतिरि ने कृष्ण-गाथा मे मुनियो से कृष्ण की स्तुति कराई है, जिसमे स्पष्ट रूप से यह कहा गया है कि कृष्ण सर्वव्यापी है, इस प्रपच मे अग्नि, जल, अरुण, वरुण, कामदेव और आकाश आदि के रूप मे भगवान् ही प्रत्यक्ष दिखाई पडते है। कुसम मे सुगन्धि के समान वे सब कही व्याप्त है। अत सर्वात्म-भाव से

---

१ राग केदारौ

नैननि निरखि स्याम स्वरूप।
रह्यौ घट घट व्यापि सोई ज्योति रूप अनूप।
चरण सप्त पाताल जाके शीश है आकाश।
सूर चन्द्र नक्षत्र पावक सर्व तासु प्रकाश।

—सूरसागर, द्वितीय स्कन्ध, वे० प्रे०, पृ० ३८।

२ राग सारग

तुमको टेरि टेरि मै हारी।
कहा रहे अब लो मन मोहन ले हो मै छाक तुम्हारी।
भूलि परि आवत मारग में क्यों हू न पेडों पायो।
बूझत बूझत यहा लौ आई, तब तुम बेनु बजायो।
देखो मेरे मग पसीना उस को अचल भीनों।
परमानन्द प्रभु प्रीति जानि के आय आलिगन कीनों॥

—परमानन्ददास-पदसग्रह, पृ० स० ४२७।

३ वरुण निरखि उठ्यो अकुलाय, पगन में लोट पोट ह्वै जाइ।
पाछे प्रभु पूजा अनुसर्यो, डालत वरुन परम रग भर्यो।
उत्तम उत्तम रिधि सिधि जिती, आनि धरी हरि चरननि तिती।
दुलभ दरस दिखि बढ्यो जुहेत, अरप्यौ सब अपनपौ समेत।
पुनि पुनि माथ नाय जग धरै, अजुलि जोरि अस्तुति कछु करै।

—दशम स्कन्ध, अध्याय २८, नन्ददास, शुक्ल, पृ० ३१८।

उनकी पूजा करने से ही ससार-सागर से मोक्ष मिलेगा।[1]

एजुत्तच्छन का उपदेश है—प्राकृत लोगो को सुख पाने के लिए मन्दिरो मे जाकर ईश्वर की प्रार्थना करनी चाहिए। उसके बाद उनको यह ज्ञान होगा कि जो शक्तिमूर्ति मे स्थित है वह सर्वत्र व्याप्त है और उनके हृदय मे भी वह शक्ति वास करती है। जब वे हृदय-स्थित ईश्वर की प्रार्थना निर्मल मन से करेगे और जप-ध्यान करेगे तब उनको मोक्ष पाने की इच्छा होगी और धीरे-धीरे भगवान् की कृपा से वे माया से मुक्त होगे।[2]

पून्तानम अपने को समझाते हुए कहते है—अरे मन, तू अपने मूल स्थान को भूला-सा दिखाई पडता है। तुरन्त सासारिक विषयो से हटकर उस विश्वव्यापी परमात्मा का ध्यान कर ले।[3]

वन्दन

ईश्वर की महिमा का चिन्तन, उनके अपार गुणो का स्मरण और सर्वदा उनके सामने नतमस्तक होकर प्रणाम करना वन्दन-भक्ति है। प्राय देखा जाता है कि अर्चन और वन्दन साथ-साथ हुआ करता है।

दोनो भाषाओ के कवियो ने अपनी कविताओ मे भगवान् की महत्ता, अपनी दीनता तथा उनके प्रति अपनी श्रद्धा आदि का वर्णन किया है। उन सन्तो ने कृष्ण को सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान्, दीनानाथ आदि विशेषणो से विभूषित किया है। सर्वप्रथम वे भगवान् की महिमा गाते है और अन्त मे उनकी पादसेवा करना मानव-जीवन का उद्देश्य बतलाकर

---

१ दहननायतु तपननायतु पवननायतु परने नी।
अवनि यायतु गगन मायतु मजकिल वाणेजु परने नी।
अरण नायतु बरुणनायतु करुण क्कातले परन नाये।
× × ×
कसुम तन्नुटे मण पोले निन्न भुवनङ्गलेड्डु निरञ्जु ना
कुटिकोल्केड्डल तन्नकतारिल वन्नु कुवलय वेल्लु निरत्तोने।
—कृष्णगाथा, स० राजराज वर्मा, पृ० २१७।

२ प्राकृतन्मावर्क्कु सुख उण्टाक्कुवान प्रतिमा स्वरूप कट्टतु पोलवरुटे
हृदयावुजत्तिलु ध्यानिच्चु भक्तियोटे भजिच्चुनामङ्डले जपिच्च कम्मर्डले
× × ×
भक्त वत्सलन तन्नुरे कारुण्य मुडाकुपोल शक्तिया महामाया केटायि भवच्चीटुम
—चिन्तासन्तानम्, ले० एजुत्तच्छन, पृ० २४, २५।

३ वित्तु मरन्नु विषयङ्डलोरोन्नु नोक्कि
मनवकुरुन्ने
विश्व निश्च्चु विलयाटिन तपुराने
चित्ते कलन्नैनुभवि प्पतिनोर्तु कोल नी॥१३६॥
— पून्तानम की कृतिया, स मूरमत, पृ० २३८।

विषय को समाप्त करते है। कभी-कभी उनकी कृपा-प्राप्ति के लिए वे कातर प्रार्थना भी करते है।

अपनी विवशता दिखाकर भगवान् की कृपा प्राप्त करने के लिए सूर कातर स्वर से प्रार्थना करते है—हे प्रभो ! आपकी आज्ञा से मै खूब नाचा। अब बस कीजिए। इस प्रवृत्ति से मुझे छुट्टी दीजिए और मेरी अविद्या का नाश कीजिए।[1]

परमानन्ददास ने भी विनीत भाव से प्रार्थना की है—हे प्रभो, आप मुझे अपने चरण-सरोज का भ्रमर क्यो नही बना लेते। मेरी विनीत प्रार्थना आप सुन लीजिए। आपके कर-कमल आतप से रक्षा करने वाले छत्र के समान है। आपकी दृष्टि दयाभरी है। यह परमानन्ददास आपके प्रेम का लोभी है। जिसपर आप कृपा करते है उनको आप अपने निकट बुला लेते है।[2]

नन्ददास ने आरम्भ मे भगवान् की वन्दना करते हुए लिखा है कि नन्दगोपाल रस की खान और सारे जगत् के आधार है।[3] मीरा की कविताओ मे शायद ही कोई ऐसा होगा जिसमे भगवान् की वन्दना किसी न किसी रूप मे न की गई हो। वे मन को समझाते हुए कहती है—रे मन ! तू सदैव हरि-चरणो मे रत हो। हरि के चरण समस्त दु ख दूर करने वाले है और जिन्होने उन चरण-कमलो मे मन लगाया है उन सब को मोक्ष प्राप्त

---

१ राग धनाश्री

अब मै नाच्यौ बहुत गोपाल।
काम क्रोध कौ पहिरि चोलना, कठ विषय की माल।
महा मोह कौ नूपुर बाजत, निन्दा सब्द रसाल।
भ्रम भोयौ मन भयौ पखाज, चलत अमगत चाल।
तृष्ना नाद करति घट भीतर, नाना बिधि दै ताल।
माया को कटि फेटा बाध्यौ, लोभ तिलक दियौ भाल।
कोटिक कला काछि दिखराई जल थल सुधि नहि काल।
सूरदास की सबै अविद्या दूरि करौ नँदलाल॥

—सूरसागर, पहला खड, स० सूर समिति, पद स० १५३, पृ० ५१।

२ अपने चरन कमल की मधुकर मोहु काहे न करि हू जू।
कृपावन्त भगवन्त गुसाई यह विनती चित धरि हू जू।
शीतल आतपत्र को छाया कर अम्बुज सुखकारी।
पद्म प्रवाल नयन रतनारे कृपा कटाक्ष मुरारी।
परमानन्द दास रस लोभी भाग्य बिना क्यो पावे।
जाको द्रवत रमापति सो तुम्हारे ढिग आवै।

—डा० गुप्त के परमानन्ददास-सग्रह से, पद स० ३१३, अष्टछाप, पृ० ५८७।

३ नमो नमो आनन्द, सुन्दर नन्दकुमार।
रसमय रस कारन रसिक, जग जाके आधार।

—रसमजरी, नन्ददास शुक्ल, पृ० ३१।

हुआ है।[1]

हितहरिवश कहते है—साधुओ की सगति करके कल्पवृक्ष कृष्ण भगवान् की सेवा करो तो सच्चा सुख मिलेगा।[2] स्वामी हरिदास का कथन है, कमलनयन का हित करो, उसके सामने 'और हित' फीका है। यह जन्म तो दो दिन का है। अत विहारी की सेवा के सिवा और मोक्ष पाने का कोई उपाय नही।[3] मनुष्य का जन्म बार-बार नही मिलेगा। अत इस अपूर्व समय को बिना खोए भगवान् का भजन करने का उपदेश ध्रुवदास देते है।[4] भगवान् कृष्ण की आश्रित वत्सलता की महिमा का वर्णन करते हुए रसखान अपनी रसात्मक वाणी मे कहते है—जिस भगवान् ने द्रौपदी, गणिका, अजामिल, अहल्या, प्रह्लाद

---

१ राग तिलग

मन रे परसि हरि के चरण ॥टेक॥
सुभग सीतल कवल कोमल, विविध ज्वाला हरण।
लिए चरण प्रहलाद पर से, इन्द्र पदवी धरण।
जिए चरण ध्रुव अटल कीने, राखि अपना सरण।
जिए चरण ब्रह्माड मेट्यो, नख सिखा सिरी धरण।
जिए चरण प्रभु परसि लीने, तरी गोतम घरण।
जिए चरण काली नाग नाथ्यो गोप लीला करण।
जिए चरण गोवरधन धार्‌यो, गन्द्र को ग्रव हरण।
दासि मीरा लाल गिरधर, अगम तारण तरण॥

—मीराबाई की पदावली, स० परशुराम चतुर्वेदी, पद स० १, पृ० १।

२ दोहा

तनहिं राखु सतसग में, मनहि प्रेमरस भेव।
सुख चाहत हरिवश हित, कृष्ण कल्पतरु सेव॥

—हितहरिवश, ब्रजमाधुरीसार, स० वियोगी हरि, पृ० ८५।

३ आसावरी

हित तौ कीजै कमल नैन सो जा हित के आगे और हित लागे फीको।
कै हित कीजै साधु सँगति सों, जावै कलमष जी को॥
हरि कौ हित ऐसो जैसो रग मजोठ,
ससार हित कसभि दिन दुती को।
कहि हरिदास हित कीजै बिहारी सों,
और न निबाहु जानि जो को॥

—स्वामी हरिदास, ब्रजमाधुरीसार, स० वियोगी हरि, पृ० १२६।

४ बार-बार तो बनत नहि, यह सजोग अपूर।
मानुष तन वृन्दा विपिन, रसिकनि सग विवि रूप॥
रसिकनि सग विविरूप भजन सर्वोपरि आही।
मनु दै ध्रुव, यह रग लेहु पल पल अवगाही॥
जौ छिन जात सो फिरत नहिं, करहु उपाय अपार।
सकल सयानप छाडि भजु, दुर्लभ है यह बार॥

—ध्रुवदास, ब्रजमाधुरीसार, स० वियोगी हरि, पृ० २५१।

आदि को मुक्ति दी है उसपर क्यो सन्देह किया जाए। उसकी कृपा हो तो बेचारा काल क्या कर सकेगा।[1]

घनानन्द अपनी मधुर तथा सरल भाषा मे गाते है—हरि के भजन मे विलम्ब न करो। अच्छा अवसर है। उससे न चूको। श्याम मनोहर का गुणगान करके अपना मनोरथ पूरा करो।[2]

मलयालम के एक अज्ञात कवि ने बडे ही हृदयस्पर्शी शब्दो मे भगवान् की स्तुति करते हुए कहा है—हे भगवन्, अपनी मनोमोहिनी वशी बजाते हुए दौडकर आइए। उछलते-कूदते, थिरकते, रागालाप करते, वशी बजाते मेरे पास आइए। सिर पर मोर पख लगाकर, उसपर माला रखे, अपने साथियो के साथ खेलते हुए आइए। गोपियो के वस्त्र छीनकर वट वृक्ष पर बैठने वाले हे भगवान्, मेरा दु ख दूर करने के लिए शीघ्र आइए। यम के आने के समय आप अपनी मनोमोहिनी मूरत मे प्रत्यक्ष हो जाइए। यही मेरी विनीत प्रार्थना है।[3]

चेरुश्शरी नपूतिरि इन्द्र के द्वारा भगवान् की वन्दना करते है—जब मृत्यु आए और दुर्बलता के मारे मेरे सारे अग शिथिल होने लगे, उस समय आप अपने चरण-कमलो के

---

१ द्रौपदि औ गनिका गज गीध, अजामिल सों कियो सो न निहारो।
गौतम गेहिनी कैसे तरी, प्रहलाद को कैसे हर्यो दुख भारो॥
काहे को सोच करै रसखानि, कहा करिहै रविनन्द बिचारो।
कौन की सक परी है जु माखन, चाखनहारो है राखनहारो॥
—सुजान रसखान कवि, रसखान, ब्रजमाधुरी, स० वियोगी हरि, पृ० २१६।

२ कलिगारा
विलम न करिबे हरि के भजन को।
करत पलक मै और नाहिन भरो सौतिन को।
आय बन्यो है ओसर नाको, कर ले मनोरथ मन को।
बार बार सुमिरि गुन पूरन सुनि यस आनदघन को।
—घनानन्द, स० शभुप्रसाद बहुगुना।

३ ओटक्कुजल विलियोटे मुन्निल ओटि वन्नालु मुकुन्द
पाटियु पन्तुवराटियु तोटिय पाटियुमानन्द मोटुटनाटियु
ओट क्कुजल विलियोटे ओटि वन्नालु मुकुन्द
पीलिक्कार कून्तलु केट्टि, अतिल चालवे मालकल् चार्ति
बालकन्मारु ओरुमिच्चु मेलिच्चु लीलकल् चेय्य नीलाबर सादर
वालत्तरुणिमार तन्टे नल्ल चेलकलाक वकवर्न्नु
अलिन मुकलिलड्डेरि वमिच्चोरु बालक
नो भय मालुकल तीक्कुवान अन्तक भीति वरुम्पोल
एन्टे अन्तिम सामनि वेगाल चन्त चिन्तीदुन्न
निन्नुटे पूमेनि हन्न पुरो भागे काणाय् वरेणमे।
ओटकुकुजल विलियोटे ओटि वन्नालु मुकुन्द।
—वेणुगोपल स्तव, के० भा० सा० चरित्र भाग २, पृ० १२१।

स्पर्श से मेरे समस्त दु ख दूर कर दे। आपके अतिरिक्त और कोई अवलम्ब नही।[1] ज्ञानी और उत्तम भक्त एजुत्तच्छन ने पद-पद पर भगवान् की महिमा गाई है। वे जीवन की क्षण-भगुरता का वर्णन करते हुए कहते हैं—जन्म के साथ ही मृत्यु भी हमारे साथ रहती है। मेढक को निगलने से लिए जैसे साप उसका पीछा करता है वैसे ही काल रूपी सर्प के मुझे निगलने से पहिले, हे भगवन्, आप मेरी रक्षा करने की कृपा कीजिए।[2]

पून्तानम ने बालगोपाल की लीलाओ का वर्णन करके प्रार्थना की है—अहकारी असुरो का अहकार दूर करने के लिए आपने वृन्दावन मे जन्म लिया। दूध और हाडी तोडकर गोरस चखने वाले हे कृष्ण भगवान्, आप अपने कमल-चरणो से मेरे पाप-समूह को भस्म कर दीजिए।[3]

कुन्चन नप्यार भगवान् के अनुग्रह पाने के लिए दीनता दिखाते हुए वन्दना करते हैं—हे नन्द के लाल, सुन्दर मुरारी, मन्दर पर्वत को उठाने वाले, केशी के घातक तथा कैवल्यमूर्ति! आपके पैरो पडता हू। आप अच्युत, सच्चिदानन्दमय, निश्चल, निरजन, कारण पुरुष, कसविनाशक, चारणसेवित, दयालु, कमलनयन, प्रबल शत्रुओ के सहारक है। मे आपकी वन्दना करता हू।[4]

---

१ मरण वन्नणञ्जाटु व्यसन कोंडुजन्नाटु
करणडुल तलन्न ञान किटक्कु नेर
शरणमाथ मुनिकल्क्कु मरुवु निन् चरणडुल
मरण मालकट्टु मारुलोटेण।

—कृष्णगाथा, स० राजराज वर्मा, पृ० २४७।

२ भक्षिप्पतिनु गुह पोले पिलर्न्नुमुख,
मय्यो कृतान्तनिर् पिन्पे नटन्नु मम
एन्नुन्नदर्र मुरत्तोटु पिन्ने योरु,
सर्प कणक्के हरि नारायणाय नम

—हरिनाम-कीर्त्तनम्, कवि एजुत्तच्छन, पद स० २३।

३ वन्पेरुन्नसुरक्कु डभु कलवातिनेप्पेरुमम्पाटियिल
पैंपाल वेरुण कवर्न्नु कुगमुटने सभियमेवु विभो।
अभोजत्तिनु सभ्रमार्त्तियरुलु निनपाद मन्पीटिनो,
रेन पापत्तिनु कृ प मेकुक निलिपाणति सप्रेषणम,

—पून्तानम की कृतिया, स० मूसत् पद, स० १३४।

४ नन्द नन्दन नयनानन्द सुन्दरानन वन्दे वन्दे,
नन्दित लोक मुकुन्द दुरान्तक मन्दर पर्व धारक गोरे।
केशव माधव माधव साधो केशि विनाशन केवल मूर्ते।
पेशल कौशल देशन देशिम हे शरण भव नासय पापम।
अच्युत राघव रावण नाशक सच्चिदानन्दमय पन्नग शायिन्
त्वच्चरितामृतसार महो जय निश्चल शील निरजन कृष्ण
कारण पुरुष कस विनाशन चारण सेवित चारु दन्यालो।
वारण पालक वारिज लोचन दारुण वैरि विदारण वन्दे॥

—शवर बध से। केरल भाषा सा० चरित्र, भाग ३ स० आर, नारायणपणिक्कर, पृ० २।

भक्ति के विविध अग

वल्लभाचार्य प्रभृति आचार्यो का मत है कि भक्ति का स्थायी भाव प्रीति अथवा स्नेह है। इस प्रीति की अभिव्यक्ति चार प्रकार से होती है

१ दास्य भाव से,

२ सख्य भाव से,

३ वात्सल्य भाव से,

४ प्रेम अथवा माधुर्य भाव से।

कृष्णकाव्य मे भक्ति के चारो रूप मिलते है और इन चारो की महिमा का वर्णन कृष्णभक्त कवियो ने बडे विस्तार से किया है।

सर्वप्रथम हम दास्य-भावयुक्त भक्ति का विश्लेषण करना उचित समझते है।

दास्य-भक्ति

ईश्वर मेरा पिता है, माता है, स्वामी है, और मै उसका आज्ञाकारी पुत्र अथवा स्वामिभक्त दास हू। यह दास्यप्रीति या दास्यभक्ति है।[1]

वल्लभाचार्य के मत से, सफलता और विफलता की चिन्ता न करते हुए भगवान् की आज्ञा पालन करने मे तत्पर रहना भक्त का परम कर्तव्य है। आचार्य जी ने दास्य-भक्ति मे निष्काम भावना को प्रधानता दी है।[2]

अन्य आचार्यो का भी मत है कि निष्काम भाव से कर्म करते रहने पर भक्त की अहबुद्धि नष्ट हो जाती है। गीता मे लिखा गया है कि भक्त मेरा आश्रय लेकर सब कामो को करता हुआ भी मेरे प्रसाद से अव्यय शाश्वत पद पाता है।[3]

आत्मदोष-प्रकाशन, विनय, याचना, दीनता, समर्पण तथा भगवान् की सर्व-सामर्थ्य की अनुभूति—ये भाव दास्य-भक्ति के अग माने जाते है। सारे कृष्णभक्त कवियो के काव्यो मे दास्य-भक्ति के प्रचुर उदाहरण प्राप्त होते है।

सूरदास कहते है—मै नन्दनन्दन का खरीदा हुआ दास हू। उनकी शरण मे आने के कारण यम के फन्दे से मुझे छुटकारा मिल गया। तिलक, तुलसी, पत्र, वनमाला आदि धारण किए हुए भक्त के वेश मे देखकर लोग मुझे कृष्ण का दास कहते है। यह सुनकर म बहुत प्रसन्न होता हू। दासवृत्ति करने के कारण मुझे भगवान् का जूठन प्रसाद रूप मे

---

१ अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय, ले० डा० दीनदयालु गुप्त, पृ० १९८।

२ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, ले० डा० दीनदयालु गुप्त, पृ० ६०१।

३ सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रय।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वत पदमव्ययम्॥

—गीता, अठारहवा अध्याय, श्लोक स० ५६।

खाने को मिलता है। यह मेरे लिए सबसे बडे आनन्द की बात है।[1] आत्म-निवेदन का भाव प्रबल होने पर सूर कह उठते है—हे प्रभो, मै भले ही बुरा होऊ, किन्तु अब तो आपका दास हो गया हू। आपके अतिरिक्त और किसीपर मै विश्वास नही करता। आपकी शरण मे मै आ गया हू। आपके प्रताप के बल से मै निर्भय हो गया। आपकी कृपा से मुझे बडा सुख मिल गया है।[2]

परमानन्ददास की विनीत प्रार्थना मे दास-भाव सन्निहित है। वे कहते है—आप पर मेरा पूरा भरोसा है। आप तो दीनदयालु और पतित-पावन है। आपकी शरण मे आकर ऐसा कोई भी नही जिसे मोक्ष न मिला हो। आप पतित-पावन और भक्तो का उद्धार करने वाले है। आपके इस यश ने मुझे आकर्षित कर लिया है। आपने गणिका आदि अनेक पापियो को तार दिया। फिर ऐसा कौनसा कारण है, इस दास को आपके द्वारा 'दाद' नही मिलती।[3]

---

१ राग बिलावल

हमें नन्द नन्दन मोल लियो।
यम के फन्द काटि मुकराए, अभय अजात किये।
भाल तिलक श्रवनन तुलसी दल मेरे अग किये।
मुडे मूट कठ बनमाला मुद्रा चक्र दिये।
अब काउ कहत गुलाम श्याम को सुनत सिरात हिये।
सूरदास को और बढो सुख जूठनि खाइ जिये।

—सूरसागर, प्रथम स्कन्ध, वे० प्रे०, पृ० १७।

२ राग धनाश्री

जो हम भले बुरे तो तेरे।
तुम्हें हमारी लाज बडाई बिनती सुन प्रभु मेरे।
सब तजि तुम शरनागत आयो निज कर चरन गहे रे।
तुम प्रताप बल बदत न काहू निटर भये घर चेरे।
और देव सब रक भिखारी त्यागे बहुत अनेरे।
सूरदास प्रभु तुम्हरि कृपा ते पायो सुख जु घनेरे।

—सूरसागर, प्रथम स्कन्ध, वे० प्रे०, पृ० १७।

३ राग सारग

ताते तुम्हरो मोहि भरोसो आवै,
दीन दयालु पतित पावन जस वेद उपनिषद गावै।
जो तुम कहो कौन खल तारे तो हौं जानो साखि,
पुत्र हेत हरि लोक चल्यो द्विज सबयो न काहू राखि।
गनिका कहा कीयो ब्रत सजम शुक हित मनहि खिलावै।
कारन करि सुमिरै गज बपुरो ग्राह परम गति पावै।
× × ×
अभय दान दीवान प्रकट प्रभु साचो विरद बुलावै,
कारन कौन दास परमानन्द द्वारे दाद न पावै।

—डा० गुप्त के परमानन्ददास-पदसग्रह से, पद स० ३०६।

नन्ददास की कविता मे दैन्य भाव नही मिलता। उन्होने भगवान् की महिमा का वर्णन करके भक्त के लघुत्व का भाव प्रकट किया है।

मीरा तो अपने को कृष्ण की दासी ही समझती थी। एक पद मे वे कातर स्वर से प्रार्थना करती है—हे भगवन्! आप ही मेरे जीवन के आधार है। आपके अतिरिक्त इन तीनो लोको मे मेरा कोई आश्रय नही, आपने मुझ दासी को क्यो भुला दिया![1]

मलयालम भाषा के कवियो ने भी हिन्दी के कवियो के समान दैन्य भाव प्रकट करते हुए अनेक पद गाए है।

एक अज्ञात कवि अपनी 'कृष्ण-लीला' नामक पुस्तक मे गोपियो द्वारा इस प्रकार प्रार्थना कराते है—हे भगवन्, हमारे दु ख दूर करने के लिए आपके अलावा और कोई भी नही। दीन दु खी, अशरण लोगो का आश्रय आप ही है। सर्वव्यापी, सर्प पर शयन करने वाले हे प्रभो, आप वेदो को भी अज्ञात है। आप दुष्टो के सहारक है। हमे शरण देकर बचाइए।[2]

कृष्णगाथाकार चेरुश्शेरी दीन भाव से प्रार्थना करते है—हे भगवन्, कितने वर्षों से हम विविध योनियो मे जन्म लेते और मरते आ रहे है। अपने कठिन दु ख का वर्णन मै कैसे करू। मरते समय आपकी सुन्दर मूर्ति का स्मरण हमे होवे।[3]

एजुत्तच्छन जरासन्ध के कारागार मे स्थित राजाओ द्वारा बडी दीनता से श्री कृष्ण की प्रार्थना कराते है—हे नाथ, रमारमण, विष्णो! आपकी जय हो। आपके अतिरिक्त अपने आश्रितो पर इतना अधिक स्नेह और किसे होगा? ऐसी सुबुद्धि दीजिए कि

---

१ हरि मोरे जीवन प्रान अधार ॥टेक॥
और आसिरो नाही तुम बिन, तीन लोक मझार।
आप बिना मोहि कछु न सहावै, निरख्यौ सब ससार।
मीरा कहै मै दास रावरी, दीज्यो मती बिसार।
—मीराबाई की पदावली, दूसरा भाग, पद स० ४, स० परशुराम चतुर्वेदी, पृ० २।

२ अतलप्पाटकट्टवान् नीयोजिञ्ञारु मिल्ल,
नीयल्लो पारोरेजु पालिच्चु पोरुन्नत,
नीयल्लो अगतिकल्काश्रय माकुन्नतु,
नीयल्लो पारिलेड डु मोन्नायि निरञ्जतु
× × ×
नीयल्लो ओरो पेटि जड्डलक्कु पोक्कुन्नत्
कार्वर्ण्ण नी कातुकोल्क तम्पुराने।
—श्री कृष्णलीला, तृतीय पाद, पृ० ११, स० मेनोन।

३ पिरप्पु म रिप्पु पिणञ्जेत्र नालु-
एटलप्पाटिल वीणड् डुजन्मकुन्नु जडुल
× × ×
स्मरिक्कायवरेण मरिक्कुन्न नेर।
—कृष्णगाथा, प० राजाराम वर्मा, पृ० २२१।

हमारे मन मे काम, क्रोधादि षड्विकार न उत्पन्न होवे, हम माया-जाल मे न फसे। जिन चरण-कमलो की पूजा ब्रह्मादि करते है, उन्हीमे हमारा मन भी सदैव रमा रहे। आप हमे अपना बनाइए।[1]

श्री पून्तानम की प्रार्थना है—जैसे तिल मे तेल रहता है वैसे ही सारी वस्तुओ मे हे भगवन्! आपका निवास है। यह तथ्य बिना जाने मै भ्रम मे पड गया। हे प्रभो! मेरा पाप दूर करके मुझसे प्रसन्न हो।[2]

कुचन नप्यार आदि कवियो ने भी भगवान् कृष्ण से कृपा बनाए रखने की प्रार्थना की है। एक स्थान पर नप्यार लिखते है—हे करुणाकर, शरणागतप्रिय, धरणी के भार को दूर करने वाले, मृत्यु के समय मेरे ऊपर कृपादृष्टि रखिएगा।[3]

सक्षेप मे दोनो भाषाओ मे ऐसी अनेक कविताए प्राप्त है जिनमे दैन्य भाव प्रधान है। कवियो का विचार है कि दैन्य भाव से अहकार का नाश होता है और चित्त मे अलौकिक आनन्द पैदा होता है। भक्त ने जब अपने अहकार को मिटा दिया तो पार्थिव पदार्थों की तृष्णा अपने आप चली गई। दीनता मे भक्त की उस असमर्थता के दर्शन होते है जो अशक्त बालक मे पाई जाती है तथा जिसके कारण बालक सबका ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। शिशु माता की गोद चाहता है, परन्तु अशक्त होने के कारण चल नही सकता, वह रोता है और रोते-रोते विकल हो जाता है, तभी मा दौडी हुई आती है

---

१ नारायण जयनाथ हरे जय नारद सेवित नारक नाशन।
× × ×
मुट्टु निनक्कोजि ञ्जिड्डने केवल मट्टोरुवक्कुंमिल्लाश्रितवात्सल्य
तामस माय युगोत्भवमायुल्ल काम मोह क्रोध लोभ मानादिय्।
भूमिपाल भ्रमाहकार भाव्व् कामिनि मारिलुल्लोरनुरागवु
माधव त्वन्महा मायतन् वैभव बाधिक्कुतिनि ञ्जड्डले दैवमे।
× × ×
दुख सुखादिकलोक्के वकलञ्जिनि तृक्कालिण योटु चेर्तरञ्चिच्चु कोल्लेणमे।
—भागवत सभापर्व, कवि एजुत्तच्छन, पृ० १५१, १६०।

२ एल्लल्लिल कलर्न्नियलुमेण्ण कण्णक्के यात्मा,
वेल्लाक्कुं मेन्नतरियाते मयड्डिनेन् ज्ञान
तल्लिक्कलञ्ज् सकल मम कन्नप नी
युल्लिल तेलिञ्जुणरुवेण मुदार कीर्त्ति ॥१२०॥
—पून्तानम की कृतिया, स० मूरमत्, पृ० १३३।

३ शरणागत शरणानत करुणामय हरणा,
तरुणारुण किरणौघ वदरुणामल चरणा
धरणीभर हरणा बहु रमणी मणि रमणा
करुणा कुरु मरणे मम यदु नायक शरण।
—कुचन नप्यार, स० परिक्कर, पृ० १३२

और बालक को उठाकर हृदय से लगाती है। ठीक उसी प्रकार करुणा भरे दीन भाव से द्रवित होकर भगवान् भक्त की सुध लेते है।

सख्य-भक्ति—

परमात्मा सुख-दु ख और आमोद-प्रमोद मे मेरा साथी है। वह मेरा परम मित्र है, बन्धु है, उसके अतिरिक्त मेरा अन्य कोई ऐसा मित्र या बन्धु नही है, इस प्रकार के भाव का बोध सख्य-प्रीत या सख्य-भक्ति से होता है।

सूरसागर मे सूर ने सखा-भाव से अनेक बार श्याम मनोहर का स्मरण करते हुए पद लिखे है। सुदामा के प्रसग मे हमे सख्य-भक्ति का उदाहरण मिलता है। सुदामा-दरिद्र-भजन नामक प्रसग मे भगवान् कृष्ण ने अपने मित्र सुदामा के साथ एक सच्चे मित्र के समान ही आचरण किया। उसका वर्णन सूर यो करते है—कृष्ण ने दूर ही से अपने बालसखा सुदामा को देखा। सुदामा बहुत कमजोर दिखाई पडे। वे फटे-पुराने मलिन वस्त्र पहने हुए थे। अपने मित्र की दीन दशा देखकर उनकी आखे भर आई। वे अपनी शय्या से उठे और तुरन्त उनका स्वागत करके अपने आसन पर बिठाया। कुशल-प्रश्न करने के बाद सुदामा की भेट के चिउडे वे चबाने लगे। मुट्ठी भर चिउडा खाते ही सुदामा की गरीबी दूर हो गई। दूसरी बार खाने के लिए हाथ बढाया कि रुक्मिणी ने रोका।[1]

मलयालम के कवि वारियर इसी प्रसग मे लिखते है—सुदामा बहुत गन्दा और फटा वस्त्र पहने था, उसके कन्धे पर एक उत्तरीय था। वह पोटली और धर्म-ग्रथ काख मे दबाए था। उसकी छाती पर भस्म लगी थी। फटा-पुराना छाता लेकर रुद्राक्ष माला फेरते हुए, भगवान् के ध्यान मे मग्न चला आ रहा था। महल की सातवी मजिल से भगवान् ने उसे देखा, तो तुरन्त दौडे हुए आए और आसू बहाते हुए अपने मित्र को छाती से लगा लिया।[2] अन्त मे कवि पूछते है कृष्ण के सिवा और किसीने इस प्रकार अपने मित्र

---

१ दूरहि तैं देख्यौ बलबीर।
अपने बालसखा जु सुदामा, मलिन बसन अरु छीन सरीर।
पौढे हुते प्रयक परम रुचि रुक्मिणि चमर डोलावत तीर॥
उठि अकुलाइ अगमने लीने, मिलत नैन भरि आए नीर।
निज आसन बैठारि स्याम घन, पूछी कुसल कह्यो मतिधीर।
ल्याए हौ सु देहु किन हमकौं, कहा दुरावन लागे चीर॥
दरस परस हम भये सभागे, रही न मन मैं एकहु पीर।
सूर सुमति तदुल चबात ही कर पकरयो कमला भई धीर॥
—सूरसागर, खड दूसरा, पद स० ४८४६, पृ० १६८६, स० सूर-समिति।

२ करडालेत्र कष्ट मेत्रयु मुषिञ्ञ जीर्ण तस्त्र
कोडु तट्टुटुत्तिट्टुत्तरीयवु इट्टु
मुडिल पोंतिञ्ञ पोतियु मुख्यमाय पुस्तकवु
रडु कूटे कक्षत्तिङ्कलटक्किवकोडु

के प्रति समवेदना तथा सहानुभूति दिखाई है ? गोचारण-प्रसग मे सूर ने लिखा है कि सख्य-प्रेम से प्रेरित होकर कृष्ण अपने बाल-सखाओ के साथ गाय चराने चले जाते है और उन्हे प्रसन्न करने के लिए नाना प्रकार की मनोरजक बाते वे करते है।[1]

परमानन्ददास भी सख्य-भाव से भगवान् की पूजा करते थे । वे कहते है—एक दिन एक गोप अपने सखा कृष्ण के साथ बैठकर भोजन कर रहा था। उस समय उसने कहा—हे गोपाल ! तेरे साथ बैठकर खाने मे मुझे जो आनन्द हुआ उसका वर्णन मै नही कर सकता। कई दिन से इस प्रकार का सुख खाने मे मुझे नही मिला था, यद्यपि हम सदैव एक-साथ कुमुद-बन मे रहते है। अन्त मे परमानन्ददास कहते है कि प्रभो, हास्य-विनोद द्वारा अपने सखाओ को आनन्द-सागर मे डुबा देते है।[2]

भद्रमाय भस्मवु धारिच्चु नमस्कार किण
मुद्रर्यु मुखरमाय पोलिक्कुटयु
रुद्राक्ष मालयु ण्न्ति नाम कीर्त्तनवु चेयतु
चिद्रूपत्तिन्कलुरच्चु चेन्व मे चेल्लु

× × ×

पाराते चेन्नेतिरेट्टु कुचेलने दीनतया
पारवश्य मेव मट्टोरीश्वरनुडो

—कुचेलवृत्त, ले० रामपुरत्तु वारियर, पृ० १०, ११।

१ राग सारग

चरावत वृन्दाबन हरि गाइ।
सखा लिए सँग सुबल श्रिदामा डोलत है सुख पाइ।
क्रीडा करत जहाँ तहा सब मिलि अति आनन्द बढाइ,
बगरि गई गैया बन बीथिनि देखी अति अकुलाइ।
कोउ गए ग्वाल गाइ बन घेरन कोउ गए बछरु लिवाइ।
आपुहि रहे अकेले बन मै कहुं हलधर रहे जाइ।
बशीबट सीतल जमुनातट अतिहि परम सुखदाइ,
सूर स्याम तब बैठि विचारत सखा कहाँ बिरमाइ॥

—सूरसागर, दशम स्कन्ध, पद स० १११८, स० सूर-समिति।

२ राग सारग

आजु दधि मीठो मदन गोपाल।
भावत मोहि तिहारो जूठो चचल नयन विशाल।
आके पात बनाये दोना दिये सबन को बाट,
जिन नहि पायो सुनो रे भैया, मेरी हथेरी चाट।
बहुत दिनन हम बसे कुमुद वन कृष्ण तिहारे साथ,
ऐसो स्वाद हम कबहुं न चाख्यो सुन गोकल के नाथ।
आपुन हँसत हँसावत ग्वालन मानस लीला रूप,
परमानँद प्रभु हम सब जानत तुम त्रिभुवन के भूप।

—डा० गुप्त के परमानन्ददास-पद-सग्रह से, पद स० ४३२, अष्टछाप और वल्लभ-सप्रदाय, पृ० ६१५।

नन्ददास ने सूर या परमानन्ददास के समान सख्य-भक्ति के पद नही लिखे है। अपनी पुस्तक सुदामाचरित मे उन्होने लिखा है कि सुदामा के समान सखा-भाव से जो भगवान् की पूजा करेगा उसे हरि सब सुख देगे।[1] मीराबाई ने कृष्ण भगवान् को पति और स्वामी मानकर ही पूजा की थी। उनकी कविताओ मे सख्य-भक्ति के पद प्राय नही मिलते है।

मलयालम भाषा के कवियो ने लिखा है कि पाचो पाडव और द्रौपदी ने भगवान् कृष्ण की सख्य-भाव से भक्ति की थी। उसके साथ ही साथ बाल्यकाल के समय बाल कृष्ण ने अपने मित्रो के साथ बडे प्रेम के साथ व्यवहार किया था, इसका चित्र भी हिन्दी के कवियो के समान चेरुश्शेरी आदि ने खीचा है। श्री कृष्ण की युवावस्था के समय की प्रमुख घटनाओ का वर्णन सूर आदि ने केवल सरसरी दृष्टि से लिखा है, किन्तु एजुत्तच्छन आदि कवियो ने बडी तन्मयता से उन घटनाओ का वर्णन किया है। सख्य-भाव से भगवान् की पूजा करने वालो मे प्रमुख पाडव अर्जुन है। कृष्ण अपने मित्रो की सहायता करने मे सदा जागरूक रहते थे। बचपन मे कृष्ण अपने मित्रो को किस प्रकार प्रसन्न रखते थे उसका चित्र चेरुश्शेरी ने इस प्रकार खीचा है। 'कृष्ण बडे भाई के साथ गाय चराने के लिए निकले। गोपियो ने दोपहर के समय खाने के लिए पकवान दोनो मे भरकर दिया। उसे लेकर कृष्ण मित्रो सहित वन के मध्य मे पहुचे। उन्होने उनसे कहा—हमे एकसाथ बैठकर खाना चाहिए। साथियो ने यह प्रस्ताव मान लिया। भोजन करते समय वे अनेक प्रकार से अपने बालमित्रो का चित्त प्रसन्न करने लगे। मयूरो के स्वरो और कोकिला के गाने का अनुकरण करते हुए वे उन्हे रिझाने लगे। विहगगण जब उडते तो वे उनकी छाया को पकडने को दौडते, हसो के पीछे चलते। जब बन्दर पेड पर चढते तो कृष्ण उनकी पूछ पकडकर नीचे गिरा देते। इसी प्रकार तमाशा दिखाकर कृष्ण अपने बालमित्रो को प्रसन्न रखते थे और वे भी परमानन्द का अनुभव करते थे।[2]

---

१ ऐसे जो कोऊ हरि को भजै, हरि उदारता ते सुख सजे।
—सुदामाचरित, नन्ददास शुक्ल, परिशिष्ट, पृ० ४५४।

२ उग्रड्डलायुल्ल व्यग्रड्डल तीर्त्तुत-
न्नग्रजनोंटु कलर्न्नु चेम्मे
चारत्त निन्नुटन कन्नुकल मेप्यानाय
× × ×
चाले क्कलिच्चु नटन्नार पिन्ने
केकिकल कूक्कुपोल फूकत्तटड्डिनार
कोकिल पाटुपोल प्यारि प्यारि
पक्षिकल पाटुपोल छाय पिटिप्याना-
योक्कवे येल्लारुमोटि योटि
× × ×
पुण्यड्डल चय् तुल्ल पैतड्डलिड्डने
कण्णनुमायि कलिक्कुन्नेर। —कृष्णगाथा, स० राजराज वर्मा, पृ० ३४।

भारतम् ग्रथ मे श्री एजुत्तच्छन ने अनेक स्थलो पर कृष्ण के मैत्री भाव का चित्राकन किया है। कृष्ण पाडवो की सर्वदा सहायता करते थे। जब कोई विपत्ति उनपर पडती थी तो वे कृष्ण की सहायता मागते थे। कृष्ण सब-कुछ छोडकर अपने सच्चे मित्रो की सहायता के लिए दौड पडते थे । धर्मपुत्र कहते है—कौरव और पाडवो के लिए आपके समान यथार्थ मित्र और कोई नही। हे भगवन्, आप दोनो के बीच मे समझौता करने की योग्यता रखते है।[1]

जब अभिमन्यु का निधन हुआ तो अर्जुन अत्यन्त दु ख से रोने-पीटने लगे। उस समय भगवान् कृष्ण आकर अपने मित्र को यो सात्वना देते है—अरे अर्जुन, मैने जो उपदेश दिया वह जल-रेखा के समान एकाएक बेकार रह गया। जो जन्म लेता है वह अवश्य मरेगा। फटे-पुराने वस्त्रो को छोडकर मनुष्य नए वस्त्रो को पहन लेते है । उसी प्रकार है शरीर धारण करना। स्त्रियो के समान ढाढे मारकर रोना तुझे तनिक भी शोभा नही देता।[2]

एक स्थान पर भगवान् ने स्वय दारुक से कहा कि पाडव तो मेरे मित्र है, वे हमेशा मेरी पूजा करते है। अपने सेवको को छोडना मेरे लिए असम्भव है।[3]

श्री कुचन नप्यार ने अपनी कविताओ मे लिखा है कि पाडव भगवान् को मित्रवत् मानते थे । अत भगवान् कृष्ण अपने मित्रो की सहायता करने के लिए कपट वेष भी धारण कर लेते थे। युद्ध के प्रसग मे कवि लिखते है—कृष्ण ने सोचा कि दुर्योधन और मेरे परम मित्र अर्जुन मुझे अपने-अपने पक्ष मे मिलाने का प्रयत्न करेगे। ऐसा विचार कर

---

१ इन्नोक्कुरुक्कलक्कोक्केय् मुख्यनाकु सुहृत्त् नी
सबन्धि दयितन नित्य रण्डु पक्षत्तिलु समन्
पाडुक्कलाय् धर्त्तराष्ट्रर्क्कनामयमणयक्कण
समर्थन राग मुडाक्कान पोन्नोनड्डुन्नु केशव !

—श्रीकृष्ण नामक पुस्तक से पृ० १४६, ले० सि० पि० गोविन्द मेनोन।

२ निन्नोट्टु तन्ने ञान चोन्नोरुपदेश मिन्नु जलरेखयायितो फलगुन।
जातनायाल मृतना मृतनायवन् जातनाभिड्डने जन्तु धर्म्म पुरा।
जीर्ण वस्त्रड्डलुपेक्षिच्चु मानवर पूर्ण शोभड्डला वस्त्रड्डल् कोल्लुवोर।
जीर्ण देह कलञ्ञव्वरण देहिकल् पूरर्ण शोभड्डला देहड्डले वकोल्लु।

× × ×

पेरुण्णुड्डले प्पोले दुखिच्चिवरियाते

—महाभारतम्, द्रोण, कवि एजुत्तच्छन, पृ० २३८.

३ एन्नुटे सेवकन्मारेयुपेक्षिक्क
येन्नुल्लतोन्नु कोंडु वरा निर्णय,

—भारतम्, ले० एजुत्तच्छन, पृ० २४०।

निद्रा का बहाना करके वे लेटे।[1]

मलयालम भाषा के कवियो ने सख्य-भाव-प्रधान भक्ति का आश्रय लेते हुए अनेक पदो की रचना की है। हिन्दी मे सख्य-भाव को इतना अधिक महत्त्व नही दिया गया है परन्तु जहा कही भी सख्य-भक्ति का प्रसग आ गया है, उसका निर्वाह हिन्दी-कवियो ने भली भाति किया है। अकेले नरोत्तमदास का छोटा-सा खडकाव्य सुदामा-चरित्र सख्य-भक्ति का अनुपम ग्रन्थ है।

वात्सल्य-भक्ति—

भगवान् को अपना बालक समझकर उपासना करना वात्सल्य-भक्ति है। बालक की तोतली वाणी, उसका निर्मूल रूप और उसकी मनोहर क्रीडाए आदि देखकर माता-पिता तथा अन्य गुरुजनो के मन मे उसके प्रति वात्सल्य-भाव सहज ही उमड पडता है। कृष्ण के बाल-रूप की उपासना मे वात्सल्य-भक्ति की अभिव्यक्ति हुई है।

वात्सल्य-रस-प्रधान कविताए लिखने मे, सूरदास और परमानन्ददास जैसे कृष्ण-भक्त कवि बेजोड है। हिन्दी के अनेक विद्वानो का मत है कि वात्सल्य-रस-प्रधान श्रेष्ठ कविताए हिन्दी के अतिरिक्त किसी और भाषा मे नही है। मै मानता हू कि तद्विषयक बहुत सुन्दर कविताए हिन्दी मे है। साथ ही यह भी कहना चाहता हू कि मलयालम मे भी वात्सल्य-भाव-प्रधान सुन्दर रचनाए प्राप्त है। मलयालम मे ऐसी कविताओ की सख्या कम हो सकती है, किन्तु गुण की दृष्टि से कुछ कविताए उसी स्तर की होगी, इसमे सन्देह नही। कुछ तुलनात्मक उदाहरण नीचे दिए जाते है—

यशोदा अपने दुलारे पुत्र कान्ह को पालने मे लिटाकर सुलाने मे लगी रहती है। किसी प्रकार उनके लाल को नीद आ जाए, यही उनकी इच्छा है। वे उसे पालने मे लिटाकर सुलाने लगती है। उसे सुलाने के लिए लोरी गाने लगती है—ऐ निंदरिया, तू जल्दी आ, तुझे मेरा कान्ह बुला रहा है। इसी बीच कृष्ण कुछ-कुछ सोने लगते है। उन्हे सोता जानकर मा चुप हो जाती है। तभी कृष्ण जाग जाते है। मा फिर गाने लगती है। इस प्रकार माता यशोदा को वह दुर्लभ सुख सहज ही मिल जाता है, जो देवताओ और मुनियो के लिए पाना असम्भव है।[2] यहा सूरदास ने मा और बच्चे की मनोदशा का सच्चा और

---

१ वरुमिह सप्रति दुर्योधननु
परम सखन् मम पार्थन् तानु
इरुवरुमेन्ने वरिप्पतिनायि
वकरुति वरुन्नू नारायण जय

—भगवद्दूत, पतिन्नालुवृत्तम्, ले० नप्यार, पृ० १।

२ राग धनाश्री
जसोदा हरि पालनै झुलावै।
हलरावै, दुलराइ मल्हावै, जोइ सोइ कछु गावै।

स्वाभाविक वर्णन किया है। दूसरे पद मे माता की अभिलाषाओ की चर्चा बडी स्वाभाविक रीति से कवि ने की है, कृष्ण कब घुटने चलेगे, कब उसके दात निकलेगे, और कब वह अपनी तोतली वाणी से बोलेगा। मुझे देखकर धीरे-धीरे पैर रखकर कब मेरे पास आवेगा। हलधर के साथ आगन मे कब घूमेगा आदि।[1]

सूरदास ने वात्सल्य-रस-प्रधान असख्य पद वियोग के प्रसगो मे लिखे है। उनमे उनकी बालभक्ति की झाकी मिलती है। कृष्ण अक्रूर के साथ मथुरा चले गए। अपने प्यारे पुत्र के विरह से यशोदा छटपटाने लगी। दु ख के मारे वे बिलख-बिलखकर कहने लगी—मेरे बच्चे को जाने से रोकने वाला ब्रज मे कोई नही है। मधुपुरी के राजा ने किस उद्देश्य से मेरे बच्चो को बुलाया है। चाहे कस मेरे सब गोधन छीन ले, मुझे बन्दी बनाकर ले चले, मै यही चाहती हू कि मेरा कान्ह हमेशा मेरे सामने खेलता रहे, मेरी गोद मे बैठा रहे। हाय, अब आगे मै किसे हसती हुई बुलाऊगी—यह कहते-कहते वे मूर्च्छित हो गईं।[2]

मेरे लाल कौं आउ निदरिया, काहै न आनि सुवावै।
तू काहै नहि वेगिहि आवै, तोकौं कान्ह बुलावै।
कबहुं पलक हरि मूदि लेत है, कबहु अधर फरकावै।
सोवत जानि मौन ह्वै के रहि, करि करि सैन बतावै।
इहि अन्तर अकुलाइ उठे हरि, जसुमति मधुरै गावै।
जो सुख सूर अमर मुनि दुरलभ सो नंद भामिनि पावै।

—सूरसागर, प्रथम खड, पद स० ६६१, स० सूर समिति।

१ मेरो नान्हरिया गोपाल बेगि बडो किनि होहि,
इहि मुख मधुरै वयन हसि कबहू जननि कहोगे मोहि।
यह लालसा अधिक दिन दिनप्रति कबहू ईश करै,
मो देखत कबहू हसि माधव पगु द्वै धरनि धरै।
हलधर सहित फिरै जब आगन चरण शब्द सुख पाऊ,
छिन छिन क्षुधित जान पद काटन हौ हठि निकट बुलाऊ।
आगम निगम नेति करि गायो शिव अनुमान न पायौ,
सूरदास बालक रस लीला मन अभिलाष बढायौ।

—सूरसागर, दशम स्कन्ध, वे० प्रे०, पृ० १०६।

२ राग सोरठ

जसोदा बार बार यौं भाषै।
है कोउ ब्रज मै हितू हमारौ, चलत गुपालहि राखै।
कहा काज मेरे छगन मगन कौं, नृप मधुपुरी बुलायौं।
सुफलक सुत मेरे प्रान हरन कौं, काल रूप ह्वै आयौ॥
बरु यह गोधन हरौ कस सब, मोहि बदि लै मेलौ।
इतनोई सुख कमल-नयन मेरी अखियनि आगे खेलौ॥
बासर बदन बिलोकत जीवौं, निसि निज अकम लाऊ।
तिहि बिछुरत जौ जियौं कर्मबस, तौ हँसि काहि बुलाऊं॥

परमानन्ददास के हृदय मे भी गोपाल की क्रीडा देखकर वात्सल्य रस उमड उठता है।

नन्ददास ने भी बाललीला का सुन्दर वर्णन किया है। उनका एक पद देखिए—रानी यशोदा अपने पुत्र को जगाती है और कहती है माखन, मिश्री, दूध, मिठाई और मलाई मै लाई हू। प्रिय पुत्र, उठो और कलेवा करो, तब कृष्ण उठकर तुतलाने लगे। जिन्हे सुनकर माता बहुत प्रसन्न हुई।[२]

सूर के समान चेरुश्शेरी नपूतिरि के बाललीला-वर्णन वात्सल्य रस से ओतप्रोत है। माखन चोरी का प्रसग विशेष रूप से सुन्दर है। कृष्ण के कपट व्यवहार और कुशलता का वर्णन करते हुए कवि कहते है एक दिन कान्ह के हाथ मे यशोदा ने कुछ माखन दे दिया। तुरन्त ही उसे खाकर वे कहने लगे—'अरी मा! मैने साधारण रीति से माखन खाया। किन्तु वह अभी मेरे गले के अन्दर अटक गया है। बडे सकट मे पडा हू। बिना कुछ दूध पिए वह नीचे नही उतरेगा।' इस प्रकार कहकर कान्ह आखे फाडकर देखते रह गए। बेचारी मा ने समझा, कान्ह का कहना ठीक है। उसी दम दूध देकर पूछा, 'अब कैसा है?' तब कान्ह मुसकराते हुए बोले, 'अरी मा, यदि इस प्रकार बहाना न करता तो तू मुझे दूध देने का नाम न लेती। अब मै तृप्त हो गया हू।' यह सुनकर मा की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा।[3]

कमलनयन गुन टेरत टेरत, अधर बदन कुम्हिलानी।
सूर कहा लगि प्रगटि जनाऊ, दुखित नन्द जु की रानी॥
—सूरसागर, दूसरा खड, पद स० ३५९१, स० सूर समिति, पृ० १२७३।

१ बाल विनोद गोपाल के देखत मोहि भावै।
प्रेम पुलकि आनन्द भरि जसोमति गुन गावै।
बाल समेत धन सावरो आगन में धावै,
बदन चूमि कोरा लिये सुत जानि खिलावै।
सिव बिरचि मुनि देवता जाको अन्त न पावै,
सो परमानन्द ग्वालि को भलो मनावै।
—डा० गुप्त के परमानन्द-पदसग्रह से, पद स० १३, अष्टछाप, पृ० ६२०।

२ अपने सुतहि जगावति रानी।
उठो मेरे लाल मनोहर सुन्दर, कहि कहि मधुरी बानी॥
माखन मिश्री और मिठाई, दूध मलाई आनी।
छगन मगन तुम करहु कलेऊ, मेरे सब सुखदानी॥
जननी बचन सुनत उठि बैठे, कहत बान तुतरानी।
'नन्ददास' प्रभु निरखि जसोदा, मन ही मन हरषानी॥१॥
—नन्ददास, अष्टछाप के कवि, ले० प्रभुदयाल मीतल, पृ० ३१७।

३ नित्य मायप्पट्टु विजुड्ड्न्नवेरणये
सत्वर मिन्नु विजुड्ड्न्नेर।
मारिल तट्ञ्ञु विलट्टिच्चु पोयिते

एक अज्ञात कवि ने कृष्ण की बाललीला का वर्णन इस प्रकार किया है—कृष्ण अपने मित्रो के साथ वन जाने की इच्छा से यशोदा की गोद मे उनकी अनुमति पाने के लिए बैठे। मा ने उन्हे छाती से लगाया और दूध पिलाकर बडा दुलार किया। तब कृष्ण बोल उठे, 'मा, मेरे बत्तीस साथी है। वे वन मे जाकर खेलना चाहते है, उनके साथ मुझे भी जाने दो मा।' यशोदा कह उठी, 'अरे, रे, मत जा, मत जा, मेरे प्यारे, बडी कडी धूप है।' कृष्ण कहने लगे, 'मुझे मत रोको मा। हमे खाने के लिए घृत, दधियुक्त चावल दो, मेरी बशी भी दे दो। मेरी अच्छी मा।' इतना कहकर माताजी की गोद से उठकर वे भाग गए।[1]

कालिय-दमन के प्रसग मे कृष्ण ठीक समय पर घर न लौटे। यशोदा व्याकुल हो अपनी सखी से पूछती है—मेरा कान्ह अभी तक नही आया। कल इसी समय वह आ गया था। गायो को न देखने के कारण वन मे भटकते-भटकते उसके पैरो पर काटे न लग गए हो? अथवा पेड से वह न गिरा हो, या रास्ता भूल गया हो, कोई बाघ उसके ऊपर न झपटा हो, कि वह लडको के साथ झगडते-झगडते थककर गिर गया हो। खाना ठडा हो रहा है। मेरी छाती जल रही है। आगे वे कहती है, माताए सर्वदा दु खी हुए बिना नही रह सकती। ऐसा मालूम होता है, पिछले जन्म के शत्रु ही इस जन्म मे पुत्र होकर दु ख पहुचाते है। मै दिन रात अपने प्यारे पुत्र की चिन्ता मे लगी रहती हू। गायो के गले की घटियो की आवाज भी नही सुनाई पडती। शायद पूतना की सखियो ने मेरे बच्चे को मारा हो अथवा, कालिन्दी नदी मे नहाते समय कालिय नाग ने ही डस लिया हो।[2]

× × ×

अप्पोजे निन्ने जानिड्डने वच्चिच्चे-
[illegible] कुलुर्तबल्लो। —कृष्णगाथा, स० राजराज वर्मा, पृ० २३।

१ ओमन क्कुट्टन गोविन्दन बल रामने क्कुटे कूटाते।
कामिमणियम्मतन्नक सीमनी चेन्नु मेविनान।
[illegible] मारणच्चिट्टड्डुम्भ वेच्चु किटाविने।
अम्मिञ्ञु नलिक यानन्दिप्पिच्चु चिन्मयनप्पोल ओतिनान्
ओप्पत्ति ुन्न बालकराइ मुप्यत्तिरण्डु पेरुण्डु
अप्पिल्लेराय्वनत्तिल कलिप्पान इप्पोल जानम्मेपाकेट्टे
अय्यो एन्नुरिण इप्पोल पोकोल्ले तीयुपोलुल्ल वेयिलत्ले
वेरुने एन्नम्म तट्योल्ले केट्टो [illegible]
नरु नेय् कूट्टियुरुट्टोट्टु नल्लोरुर तयिर कूट्टि युरुट्टोट्टु
वरुत्तोरुप्पेरि पतिच्चिट्टु ईरडुरुलयु एन्टे मुरलियु
तरिक एन्नम्मे मटियिल चाचाटि तरसा कण्णान तान पुरप्पेट्टान।
—श्रीकृष्णविलासम्, स० डा० अच्युत मेनोन, पृ० २४।

२. एन्मकेनेतुपोल वाराञ्ञु तोन्नि चो-
लिन्नले यिन्नेर बन्नानल्लो
कालिकल काणाञ्ञु काट्टिल नटक्कुम्पोल
काल तन्निल मुल्लु तरच्चिल्लल्लो

पुत्र के वियोग मे माता की व्याकुलता और शका का उदाहरण यहा दिया गया है। एजुत्तच्छन के कृष्ण की बाल-लीला का एक उदाहरण देखिए—कृष्ण ने माखन मागा तो तुरन्त मा ने एक हाथ पर उन्हे दे दिया। तब वे बोले, 'मेरी मा! देख, तूने एक हाथ मे माखन रखा है। दूसरे हाथ मे माखन न रखने के कारण वह रो रहा है।' उसी दम उस हाथ मे भी मा ने माखन रखा। कृष्ण ने एक हाथ का माखन तुरन्त खा लिया और रोने लगे। यशोदा ने कारण पूछा तो कृष्ण ने उत्तर दिया, 'अरी मा, एक कौवा आकर मेरा माखन छीन ले गया, मै बडा बेवकूफ निकला।' इतना कहकर फिर भी कृष्ण रोने का बहाना करके खडे रहे। यह देखकर यशोदा ने तुरन्त फिर माखन दे दिया और मधुर बाते कहकर उन्हे शान्त किया।[1]

कालिय-नाग के दर्पहरण के प्रसग मे एजुत्तच्छन ने पुत्र-वियोग का हृदय-विदारक वर्णन किया है। कृष्ण की विरहाग्नि मे तडपती हुई यशोदा कहती है—यदि पुत्र नही है तो हमेशा दु खी होना पडता है। पुत्र के जन्म के बाद उसे पाल-पोसकर बडा करना अत्यन्त क्लेशकर है। मेरे लिए कोई सहारा नही। मेरे समान दु ख सहने वाली को सुख मिलना असम्भव है। दु ख झेलने के लिए ही मेरा जन्म हुआ है। पुत्र के अभाव मे कितने दिन मै

कायकले क्कोल्लुवान पाञ्मर मेरीट्टु
कानन तन्निले वीणानो तान्
चालेत्तट्टुत्तु तेलिक्कुन्न नेरत्तु
कालिकल कुत्ति क्कूर्तन्निल्लल्ली
कानन तान्निले नल वज्रि काणाञ्ञु
दीननाय निन्नड् ड जन्नानो तान
× × ×
कालिन्दि तन्निल् कुलिक्कुन्न नेरत्तु
कालियन् वन्नु कटिच्चानो तान्।

—कृष्णगाथा, स० राजराज वर्मा, पृ० ४२।

१ चेट्टु नवनीतव् कोण्डु वन्नुट
नेट्टन्नु पुत्तन वलतु करावुजे
वच्चालतु कण्डु मन्दस्मितान
नच्चुतनुण्णि चोन्नान भवतिक्किह
सिद्धमल्लाय्कयुण्डायतेन्नुटे
हस्त मेन्निन्नट्टो। वेण्ण नलकीटिनाल
मट्टेतिनेतु तोन्नु रामनेतानु
मुट्टु [illegible]
× ×
चेन्नु विरवोट्ट चूट्टुल्लपाल कोंडु,
वन्नु कोट्टुत्तु तलोटिनाल मेल्लवे।

—भागवतम्, दशम स्कन्ध, ले० एजुत्तच्छन, पृ० २१८।

दु खी रही। पुत्र-जन्म के बाद भी दु ख पर दु ख आता ही रहता है । हाय ! मेरा प्यारा कान्ह अभी तक घर न आया ।[1]

पून्तानम नपूतिरि ने कृष्ण के बारे मे जो कुछ लिखा है उससे उनकी वात्सल्य-भक्ति का परिचय मिलता है। वे कहते है—कृष्ण नन्हे पैरो से नाचते-कूदते है। कमरबन्द की सोने की घटिकाए आपस मे टनाटन बजती रहती है । सिर पर उन्होने मोर-मुकुट पहना है। वह तोतली बोली बोलते है । उनका शरीर सुन्दर है । सखाओ के साथ वे वशी बजाते है। यह रूप सर्वदा मेरे सामने सदा प्रत्यक्ष हो जाए।[2] कवि आगे कहता है, दर्पण मे अपना रूप देखकर कृष्ण विचार करते है कि यह मेरा सखा है । तुरन्त वह आइने से आलिगन करते है।[3] बालक के ऐसे भोले स्वभाव का चित्रण कुछ ही कवि कर सके है।

कृष्ण की नटखटी का वर्णन करते हुए कुचन नप्यार एक गोपी द्वारा कहलाते है यशोदे, तुम्हारे प्यारे कान्ह ने मेरे घर मे जो अनाचार किया है उसे सुन लो। मैने पिताजी के लिए थोडा दूध गरम करके कमरे के कोने मे एक सुरक्षित स्थान पर रखा था । कान्ह छिपे-छिपे घर के अन्दर घुसा, सारा दूध पी लिया, और पात्र मे जल भरकर चला आया। पिताजी ने अधेरे मे जाकर उसे पी लिया तो मालूम हुआ कि दूध नही बल्कि जल है।

---

१ मक्कल तनिक्कोन्नु मिल्लाक्किलेप्पोज
दुखिच्चिरिक्कियेन्नाय्वरु ईश्वरा।
पेट्टु वलर्त्त कोलवान् पणि तुलों
मट्टारुमिल्लोराधारमोर्तालय्यो।
चित्ते विचारिक्क पुत्र सपत्तिकल।
इत्र परिभ्रमिक्कुन्नवारुल्लु।

× × ×

ओट्टुमदुत्तु वन्नालेन्मकन पशु,
कूकुट्टिकलोच्चकल् केट्टतिल्लेड्ड मे।

—भागवतम्, दशम स्कन्ध, ले० एजुत्तच्छन, पृ० २७२

२ उरिणक्काल् कोडु नृत्तङ्ङलुमर निरये विकडिङ्गि वप्पोन्नरञ्ञा,
लुरिणक्कै कोडू तालङ्ङलुमणि मुटियिल पिछवु कोंचल्वाय्पु
उरिए वकरणन्टे पू पै कुञ्चल विलियु अटुत्तुल्ल चिलप्पिल्लरु मे
करिणाल् वकाणुन्न पोले [illegible] ॥१६॥

—पून्तानम् की कृतिया, स० मूस्सत्, पृ० १०।

३ कण्णटियिल कण्टुकलाय रम्य। कण्णल् तेलिञ्ञोरु मुखारविन्द ॥
चङ्ङातियेन्निट्टु चिरिच्चु कण्णन। कण्णाटि पूणुन्नतु कण्डातावु ॥२८॥

—पून्तानम् की कृतिया, स० मूस्सत्, पृ० ६५।

मारे क्रोध के उन्होने मुझे बुरा-भला कहा। और मेरे सामने बर्तन तोड डाले।[1]

वात्सल्य-विरह की अनुभूति मे कुचन नप्यार ने बहुत कम पद लिखे है।

सूरदास के समान चेरुश्शेरी और एजुत्तच्छन ने अनेक पद लिखे है, जिनके उदाहरण ऊपर दिए गए है। वात्सल्य-भाव का तथा बालरूप मे कृष्ण का जैसा स्वाभाविक और प्रचुर चित्रण और उस भक्ति का प्रकाशन हिन्दी मे हुआ है वैसा मलयालम भाषा मे नही हुआ है।

मधुर भक्ति

माधुर्य-भक्ति के सम्बन्ध मे चैतन्य सप्रदाय के श्रीरूपगोस्वामी का कथन है कि माधुर्य एक पृथक् रस है। कृष्ण और गोपिया तथा ब्रजबालाए आदि इसमे उद्दीपन विभाव है। स्वेद, कप, रोमाच, विवर्णता आदि अनुभाव है। निर्वेद, हर्ष, आदि व्यभिचारी भाव है। कृष्ण मे रति स्थायी भाव है। शृगाररस के समान विप्रलभ और सयोग अवस्थाए भी इसमे पाई जाती है।[2]

शान्त, दास्य, सख्य और वात्सल्य से भिन्न है मधुर रस। शान्त रस मे भक्त भगवान् की सगुण मूर्ति का चिन्तन करता है, दास्य मे भगवान् की विभूति चिन्ता मे लीन होकर उसका गायन करता है। सख्य मे भगवान् को सखा मानकर उनसे अत्यधिक घनिष्ठता का सबध रखता है और वात्सल्य मे भगवान् की बाललीला का आस्वादन करता है। मधुररस मे भक्त भगवान् को पति के रूप मे देखता है। उसको सारा जगत् भगवान्मय ही दिखाई पडता है। किसी सुन्दर युवक को देखकर युवतियो के मन मे प्रेमभाव जाग उठता है वैसे ही भक्त लोगो के मन मे भगवान् के प्रति प्रेम उत्पन्न होता है। वह प्रेम, विभाव, अनुभाव आदि से मधुर रस बन जाता है।

सासारिक प्रेमभाव का निग्रह करना विश्वामित्र और पराशर प्रभृति मुनियो के लिए भी कठिन था, फिर षड्रसयुक्त भोजन का आस्वादन करने वाले साधारण लोगो के लिए, काम-क्रोधादि विकारो पर विजय पाना असाध्य ही है। अतएव ज्ञानियो और सतो का मत है कि भगवान् की सेवा करते हुए वैराग्यपूर्ण जीवन व्यतीत करना ही श्रेयस्कर है। दूसरी ओर सूरदास जैसे भक्त-कवियो ने बताया है कि मन मे स्थायी रूप से रहने वाले प्रेम या वात्सल्य को ईश्वरोन्मुख कर देना उचित है। इन कवियो ने स्वय अपने व्यक्तित्व

---

१ अप्पोल परञ्ञालोरु गोप नारी। त्वल् पुत्रनामुण्णि महा कुशीलन्
मल्पत्तने वन्नु कटन्नोरुन्नालल्पेतर चेय्तोरुकैतव केल्
× × ×
दुष्टत्ति नी येन्नु परञ्ञु किण्ण। पोट्टिनेरिञ्ञारवरेन्न नेरे
—कृष्णचरित्र मणिप्रवालम्, ले० कुचन नप्यार, पृ० २५।

२ हरिभक्तरसामृतसिन्धु-परिचय-विभाग, लहरी, पृ० ४२६।
तथा—अष्टछापवल्लभ-सप्रदाय, ले० डा० गुप्त।

की प्रतिष्ठा गोपियो मे करके, कृष्ण के प्रति अपने प्रेमोद्‌गार प्रकट किए है और सर्वगुण-समन्वित कृष्ण को अपना सर्वस्व समर्पण करके अपने जीवन को सफल बनाया है।

सूरदास और चेरुश्शेरी आदि कवियो ने भगवान् के प्रति अपने प्रेम को 'लौकिक' रूप देकर उसे स्वाभाविक और बोधगम्य बनाने की चेष्टा की है। 'गोपिया' उनके इस अटूट प्रेम की अभिव्यक्ति का साधन एवं आलबनमात्र है। वे गोपिया भी कृष्ण की भांति अवतारी है अर्थात् उन्होने पूर्व-जन्म के पुण्य-बल से भगवान् की सगति का सुख भोगने के लिए अवतार लिया है। सूरदास ने उन्हे महर्षियो, वेद, स्मृतियो और ऋचाओ का अवतार बताया है। साराश यह कि कृष्ण और गोपियो का प्रेम शुद्ध सात्त्विक और आध्यात्मिक है। साधारण जन भूल से ही ऐसा समझ लेते है कि कृष्ण के रूप पर आसक्त गोपिया लोकलाज की चिन्ता न करके सामाजिक मर्यादा का उल्लघन करती है। वस्तुत कवि का उद्देश्य यह सिद्ध करना है कि जिस भगवान् को प्राप्त करने के लिए ऋषि-मुनि संसार-त्याग करते है, उसे गोपिया इहलोक मे ही अपने शुद्ध तथा आनन्द-प्रेम द्वारा प्राप्त कर लेती है।

हिन्दी-कवियो ने लिखा है कि गोपिया ने कौमार्यावस्था से ही कृष्ण को पति के रूप मे वरण कर लिया था। यद्यपि विवाहित स्त्रिया भी उनसे प्रेम करती थी परन्तु उनकी संख्या कम थी। 'जार'-भावना प्रदर्शित करने वाले पद हिन्दी मे बहुत कम है। सूरदास, नन्ददास तथा अन्य कवियो के मतानुसार राधा श्री कृष्ण की परिणीता स्त्री है। नन्ददास की एक सखी कहती है—हे सखी, श्री कृष्ण के साथ राधा के ब्याह का शुभ अवसर निश्चित कर लिया गया है। उपहार मे दी जाने वाली विविध रग की गाए स्थान-स्थान पर सुशोभित है। भूषण आदि देखकर मुझे बडा लोभ होता है। राधा-कृष्ण को वधु-वर के रूप मे देखकर मै बलि जाती हू।[1]

नन्ददास ने परकीया के रूप मे भी गोपियो का चित्र खीचा है। परकीया भाव की उत्कृष्टता की प्रशसा करते हुए वे लिखते है, विवाहित गोपिया कृष्ण का अपूर्व सौन्दर्य देखकर कृष्ण से सच्चा अनुराग करने लगी। अपना 'गुण-दोषमय शरीर' छोडकर उनसे मिली।[2] लोक-लाज छोडकर अपने स्वजनो की ताडना की उपेक्षा करके गोप स्त्रिया श्री कृष्ण

---

१. राग नट

सजनी आनँद उर न समाऊ।
बरसाने वृषभान लगन लिखि पठई है नँद गाऊ।
धौरी धुमरी धेनु विविध रग शोभित ठाऊ ठाऊ।
भूषण मणि गण पार नाहिने सो धन देख लुभाऊ।
नन्ददास लाल गिरधर की दुलहिन पर बलि जाऊ॥

—नन्ददास, शुक्ल, परिशिष्ट भाग, पृ० ३७४।

२. तजि तजि तिहि छिन गुनमय देह।
जाइ मिलीं करि परम सनेह।

के पास चली गईं। ऐसे चित्र सूर ने भी बडी सुन्दरता से खींचे हैं। सूरदास लिखते है—प्राणप्यारे कृष्ण की मुरली ध्वनि, और सुन्दर रूप आदि से हम (गोपियां) बहुत प्रभावित हुई है और प्रेम-वेदना से हम तडप रही है। सुजान कृष्ण के आलिगन से ही हमारी व्यथा दूर हो जाएगी।[1]

माधुर्य-भाव से भगवान् का स्मरण करने वाले भक्तो मे मीरा का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। वे कहती है—गिरधर गोपाल के अतिरिक्त मेरा और कोई नही है। साधुओ के साथ बैठकर मैने लोक-लज्जा छोड दी है। भक्ति से मै प्रमत्त हुई और ससार की दशा देखकर मुझे बडा दु:ख हुआ। मै गिरधर की दासी हू।[2]

एक दूसरे पद मे वे कहती है कि मै गिरधर के घर जाती हू। वे मेरे प्रीतम है।[3] एक अन्य पद मे भगवान् से अपने सबध की उन्होने यो व्याख्या की है तुमको बिना देखे मै एक घडी भी रह नही सकती। तुम मेरे प्राण हो, तुम्हारे विरह मे मै मारी-मारी फिरती

जद्यपि 'जारबुद्धि' अनुसरी,
परमानन्द कद रस भरी।

—दशम स्कन्ध, भाषा, नन्ददास, शुक्ल, पृ० ३२१,३२२।

१ राग धनाश्री

मन मृग बेध्यो मोहन नैन बान सों,
गूढ भाव की सैन अचानक तकि ताक्यो भ्रकुटि कमान सों।
× × ×
है है सुख तबही उर अन्तर आलिंगन गिरिधर सुजान सों।

—सूरसागर, दशम स्कन्ध, वे० प्रेस, पृ० २१२।

२ राग झिझोटी

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट, मेरे पति सोई।
छाड़ि दई कुल की कानि, कहा करिहै कोई।
सतन ढिग बैठि बैठि लोक लाज खोई।
अँसुवन जल सींचि सींचि, प्रेम बेलि बोई।
अब तो बेल फैल गयी, आणद फल होई।
भगति देखि राजी हुई, जगति देखि रोई।
दासी मीरा लाल गिरधर, तारो अब मोहीं॥

—मीरापदावली, भाग २, स० परशुराम चतुर्वेदी, पद स० १५, पृ० ६।

३. राग चुनकली

मैं तो गिरधर के घर जाऊ॥ टेक॥
गिरधर म्हारो साचो प्रीतम, देखत रूप लुभाऊ।
× × ×
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, बार बार बलि जाऊं॥

—मीराबाई की पदावली, भाग २, स० परशुराम चतुर्वेदी, पद स० १७, पृ० ७।

हू। मुझे नीद नही आती और ध्यान भी मुझे अच्छा नही लगता। मेरा दु ख कोई नही जान सकता।[1]

भगवान् कृष्ण के प्रति मीरा का यह भाव साधारण प्रेम नही प्रत्युत उनकी सच्ची साधना है। वे कहती है—मेरी नीद समाप्त हो गई है। प्रिय की प्रतीक्षा करते-करते रात बीत गई। सब सखियो ने मिलकर सान्त्वना दी। किन्तु प्रिय को देखे बिना कल नही पडती। जैसे चातक बादलो से वर्षा के लिए रट लगाए रहता है और मछली पानी (कृष्ण) के लिए छटपटाती रहती है वैसे ही मेरे प्राण अपने पतिदेव (कृष्ण) से मिलने की उत्कठा मे रहते है।[2] सच्चे भक्त या ज्ञानी की मानसिक अवस्था के समान ही मीरा की दशा है। अनन्य भक्तिभावो से ओतप्रोत और सासारिक जीवन से विरक्त भक्तजन अपने आराध्यदेव के स्मरण मे जिस प्रकार तल्लीन दीख पडते है, वैसे ही मीरा अपने पतिदेव की चिन्ता मे सब-कुछ भूल बैठी है। यह प्रेमावस्था की चरम सीमा है। कई दिन प्रतीक्षा करने पर भी भगवान् प्रत्यक्ष नही होते। तब विरह-वेदना से तडपती हुई वे कहती है—मै अपने प्रीतम को पत्र लिखूगी। जान-बूझकर उन्होंने मौन धारण कर लिया है। ऊचे महल पर चढकर मै उनकी बाट जोहती और अश्रुधारा बहाती रहूगी। मेरा हृदय फटा जाता है। हे मेरे पूर्वजन्म के साथी! तुम कब मिलोगे?[3]

---

१ राग पहाडी

घड़ी एक नहि आवडे, तुम दरसण बिन मोय।
तुम हो मेरे प्राण जो, कास् जीवण होय।
धान न भावै नीद न आवै, विरह सतावै मोहि।
घायल सी घूमत फिरू रे, मेरो दरद न जाणे कोय।

× × ×

मीरा के प्रभु कब रे मिलोगे, तुम मिलिया सुख होइ॥

—मीराबाई की पदावली, भाग २, स० परशुराम चतुर्वेदी, पद स० १०१, पृ० ३७।

२ राग आनन्द भैरो

सखी मेरी नीद नसानी हो।
पिय को पथ निहारत, सिगरी रैण बिहानी हो॥टेक॥
सब सखियन मिली सीख दई, मन एक न मानी हो।
बिनि देख्या कल नाहि पड़त, जिय ऐसी ठानी हो।
अगि अगि व्याकुल भई, मुखि पिय पिय बानी हो।
अन्तर वेदन विरह की, वह पीड न जानी हो।
ज्यू चातक घनक् रहै, मछरी जिमि पानी हो।
मीरा व्याकुल विरहणी, सुध बुध बिसरानी हो॥

—मीराबाई की पदावली, भाग २, स० परशुराम चतुर्वेदी, पद स० ८७, पृ० ४३।

३ मेरे प्रियतम प्यारे राम क, लिख भेज् रे पाती॥टेक॥
स्याम सनेसो कबहुं न दीन्हों, जानि बूझ ज़सवाती।
[illegible] पथ निहारू, जोइ जोइ अखिया राती।

इस कथन से स्पष्ट है कि मीरा की दृष्टि मे उनका प्रेम-सबध आध्यात्मिक था और पूर्वजन्म मे भी उन्होने कृष्ण को पति मानकर आराधना की होगी। जिससे इस जन्म मे उनकी भक्ति और भी प्रबल हुई। ज्ञानी या योगी जिस प्रकार ब्रह्म के ध्यान मे लीन रहते है, वैसे ही मीरा भी दिन-रात प्रेम मे सब-कुछ भूली बैठी है। श्रीधरनागर के अतिरिक्त किसी और की ओर उनका ध्यान जाता ही नही। ईश्वर के प्रति उनके अनन्य प्रेम का पता उनके प्राय प्रत्येक पद से चलता है।

प्रेम की महिमा पर रसखान ने कई पद रचे है। वे कहते है—प्रेम का नाम लोग लेते है, किन्तु उसका मर्म वे नही जानते,[1] जो सच्चे प्रेमी है वे फिर इस ससार मे जन्म नही लेगे।[2] सच्चे प्रेमी होने के कारण ही वरुण 'जलधीस' और शिव-मगलकारी बन गए। प्रेमियो को मान, अपमान, सुख-दु ख आदि की द्वद्व भावनाए नही होती।[3] काम क्रोध आदि विकारो से प्रेमी का मन चचल नही होता।[4]

प्रेम-भावना से प्रभावित व्यक्ति का चित्र ध्रुवदास खीचते है प्रेम का मन खाने-पीने के सुख से अप्रभावित रहेगा। जिसने प्रेम-रस का आस्वादन किया है उसका मन और किसी वस्तु पर न लगेगा। रात दिन प्रेमी का चित्र प्रेम-रस से समाया रहेगा। अपने प्रेम से सबधित बाते ही उसे अच्छी लगती है।[5]

राति दिवस मोहि कल न परत है, हीयो फटत मेरी छाती।
मीरा के प्रभु कब रे मिलोगे, पूरब जनम के साथी॥
—मीराबाई की पदावली, भाग २, स० परशुराम चतुर्वेदी, पद स० १२४, पृ० ४२।

१. प्रेम प्रेम सब कोउ कहत, प्रेम न जानत कोय।
जो जन जाने प्रेम तो, मरे जगत क्यों कोय।

२ प्रेम अगम, अनुपम, अमित, सागर सरित बखान।
जो आवत एहि ढिग बहुरि, जात नही रसखान॥

३ लोक वेद मरजाद सब, लाज काज सन्देह।
देत बहाये प्रेम करि, विधि निषेध को नेह॥

४ काम क्रोध मद मोह भय, लोभ द्रोह मात्सर्य।
इन सब ही तै प्रेम है, परे कहत मुनिवर्य॥
—प्रेमवाटिका, ले० रसखान, ब्रजमाधुरीसार से, स० श्री वियोगी हरि, पृ० २२२-२२४।

५ खान पान सुख चाहत अपने, तिनकौं प्रेम हुवत नहि सपने।
जो या प्रेम हिडोरे झूलै, तिनकौ और सबै सुख भूलै।
प्रेम रसासव चाख्यौ जबही, औरे रग चढै, ध्रुव तबही।
या रस में जब मन परै आई मीन नीर की गति ह्वै जाई।
निसि दिन ताहि न कछू सुहाई प्रीतम के रस रहै समाई।
जाकौ जासों है मन मान्यो, सो है ताके हाथ बिकान्यो।
अरु ताके अग सग की बातें, प्यारी सब लागति तिहिनाहें।
रुचै सोई जो ताकौ भावै, ऐसी नेह की रीति कहावै॥
—ध्रुवदास, ब्रजमाधुरीसार, स० वियोगीहरि, पृ० २४२, २४३।

मलयालम भाषा के कवियो ने श्री कृष्ण की प्रेमिकाओ मे अधिकाश गोपियो को परकीया नायिका के रूप मे चित्रित किया है । अत भगवान् के प्रति अपना प्रेम प्रकट करने के लिए उन्हे अनेक कठिनाइयो का सामना करना पडा । उनको मालूम था कि अपने पति को छोडकर कृष्ण के पास जाना समाज के नियमो का उल्लघन करना है। किन्तु कृष्ण की मोहिनी मुरली सुनते ही वे अपने प्यारे पुत्र, पति, बूढे मा-बाप, समाज के सभ्य लोग, इन सब की परवाह न करके सब-कुछ भूलकर भगवान् के पीछे दौड पडती है। उन्हे सर्वदा श्री कृष्ण का ध्यान रहता है। सारा जगत् उन्हे कृष्णमय दीख पडता है। ज्ञानी, यती और तपस्वी सब लोगो का ध्येय भी इसी स्थिति तक मन को पहुचता है। यहा ऊच-नीच अपना, पुराना-दु ख-सुख आदि कुछ नही होता। गोपिया प्रेम भाव से यह स्थान प्राप्त कर सकी।

श्री चेरुश्शेरी लिखते है—जब श्याम ने वशी बजाई, उस समय वृन्दावन की गोपिया दुहना और उबालना, बच्चो को लोरी सुनाकर सुलाना, बच्चो को दूध देना, पतिदेव के साथ भोजन करना, बिछौना बिछाकर अपने पतिदेव के साथ सोने के लिए जाना, प्रेमी के साथ पान खाना, कृष्ण को अपने स्वामी समझकर उनके सामीप्य के लिए आखे डबडबाती हुई प्रार्थना करना आदि विविध कामो मे व्यस्त थी। मुरली का स्वर सुनकर वे सब गृह-कार्य त्यागकर मन्त्रमुग्ध-सी निकल पडी।[1]

एक स्त्री एक आख मे काजल लगाने के बाद दूसरी आख मे काजल लगाने जा रही थी कि मुरली की ध्वनि सुनाई दी, उसी दम सब-कुछ छोडकर वह दौड पडी। दूसरी एक कान मे कुण्डल पहन रही थी। उसने वशी नाद सुना तो बेसुध होकर दौडी। गोपियो का यह दौडना-भागना देखकर उनके भाई, मा-बाप, पतिदेव आदि निकट सबधियो ने

---

१ पाल्क्कुज ...नेयेट्टत्तड्डु चेन्निटट्टु
गोक्कले निन्नु करन्नारप्पोल
आक्कमियन्नुल्ल चेल्क्कणिण्मार चिलर
पाल्क्कलमोक्कवे तीक्कल वेच्चू
बालकन तन्नुटे लीलकल् पाटीट्टु
पालु तिकत्तिनार मेल्ले मेल्ले
तन्मकन तन्ने येटुत्तड्डु लालिच्चु
नन्मुल नलिकनाल मट्टोरुत्ति
× × ×
गोकुल नारिमार ओरोरो बेलयि
लाकुल मारायि निन्न नेर
× × ×
पोटिड्ड नी येन्नु चोल्लि वलिच्चिट्टु
नेरे नटत्तितुटडीतप्पोल

—कृष्णगाथा, स० राजराज वर्मा, पृ० ६५-६८ ।

उन्हे रोका। कवि कहते है कि इसपर भी वे नही रुकी, क्योकि उनको आकर्षित करने वाला सबसे अधिक प्रबल है।[1]

मधुर-भक्ति के अन्तर्गत वियोग भाव को प्रकट करने वाले अनेक पद दोनो भाषाओ के कवियो ने लिखे है। इन पदो मे अपने प्रिय से मिलने के लिए गोपियो का तरसना और कामना करना आदि का सुन्दर चित्र खीचा गया है। विरह-व्यथा का मर्मस्पर्शी चित्र सूर इस प्रकार खीचते है—

राग सारंग

कहो तो जो कहिबे की होई।
प्राण नाथ बिछुरे की वेदन जानत नाहिन कोई।
जो हम अधर सुधा रस लैलै, रही मदन गति मोई।
कहा कहौं कछु कहत न आवै तन मन रही समोई।
विरह व्यथा वेदन उर अन्तर जापे बीते जाने सोई।
सूरदास शिव सनकादिक लोभा सो हम बैठे खोई।[2]

परमानन्ददास का एक पद है :

राग सारंग

मारग माधौ को जीवे।
वह अनुहारि न देख्यो कोऊ जो नैन दुख खोवे।
बाल विनोद किये नंद नंदन सुमिरि सुमिरि गुनरावे।
वासर प्रति गृह काज न भावै जिस मरि नींद न सोवे।
अन्तर गति कौं विथा मानसी सो तन अधिक विगोवें।
परमानन्ददास गोविन्द बिन आसुवन जल उर धोवे।[3]

नन्ददास कहते है कि वियोग के अवसर पर सब कुछ प्रियमय ही दिखाई पडता है।[4]

---

१ मातृ जनड्डुलु भ्रातृ जनड्डुलु
मोतिनार पोकोल्ला येन्नु तन्ने
× ×
पोक्कु तटुक्कुन्न वन्धुक्कले क्कालु
मूक्कनल्लो यड्ड निन्नवन तान

—कृष्णगाथा, स० राजराज वर्मा, पृ० ६७।

२ सूरसागर, दशम स्कन्ध, वे० प्रे०, पृ० ५३८।

३ डा० गुप्त के परमानन्ददास-पदसग्रह से, पद स० २१७, रूपमजरी, नन्ददास, शुक्ल, पृ० २३०, अष्टछाप, पृ० ६४२।

४ हौं जानौं पिय मिलन तें, विरह अधिक सुख होई।
मिलने मिलिये एक सों, बिछुरे सब ठा सोई।

—रूपमजरी, नन्ददास, शुक्ल, पृ० २३।

आतुर भाव से मीरा अपनी वियोग-व्यथा प्रकट करती है। उनको प्रिय के विरह मे सब कुछ फीका जान पडता है।[1]

घनानद लिखते है कि वियोगावस्था मे प्रेमी की आखे प्रिय के अतिरिक्त और कुछ नही देखती। उसके कान प्रिय की पीयूषमयी वाणी के अतिरिक्त और कुछ नही सुनते, रसना निशि-वासर प्रिय की कथा कहती है—किबहुना उसके सारे अग प्रिय के रग मे भीग जाते है। उसके मनोमदिर मे प्रिय का वास सदा रहता है।[2]

सूरदास आदि के समान मलयालम भाषा के कवियो ने भी वियोगपक्ष की ओर समुचित ध्यान दिया है। उन्होने लिखा है कि जब सारे सबध तोडकर भयकर वन से होकर गोपिया कृष्ण के पास आई तो उनकी भक्ति की कडी परीक्षा कृष्ण ने ली। सारोपदेश देकर उन्होने उन्हे घर लौटाने का निश्चय किया, किन्तु वे अप्रभावित ही रही। अन्त मे कृष्ण ने उनके साथ रासक्रीडा की। उनकी भक्ति की परीक्षा करने के लिए वे एकाएक अतर्धान हो गए। उनके विरह से गोपिया अत्यन्त व्याकुल हुई। वन-वन मे कृष्ण की खोज करती हुई वे फिरने लगी। किन्तु कृष्ण प्रत्यक्ष न हुए। विवश होकर जैसी हृदयस्पर्शी प्रार्थना गोपिकाओ ने इस समय की वह माधुर्य-भक्ति की वियोगावस्था मे प्रकट किए गए सच्चे उद्‌गार है।

मलयालम के एक अज्ञात कवि गोपियो द्वारा यो प्रार्थना कराते है—हमारे दु ख दूर करने वाले, हे भगवन्! आपके अतिरिक्त हमारा और कोई भी नही। आप ही चौदह लोको का पालन करते है। निराधार के आधार भी आप है। आप सर्वजगन्मय है। आदि-शेष पर विश्राम करने वाले, वेदो के अगोचर है। ब्रह्मा की प्रार्थना मानकर आपने पृथ्वी पर अवतार लिया। वसुदेव-पुत्र, आपने अपने कन्धे पर गोवर्धन पर्वत को उठा लिया,

---

१ राग पीलू

रमइया बिनि रह्योइ न जाय ॥टेक॥
खान पान मोहि फीको सो लागे, नैणा रहे मुरझाइ।
बार बार मैं अरज करत हू, रैण गई दिन जाय।
मीरा कहै हरि तुम मिलिया बिनि तरस तरस तन जाइ।

—मीरा की पदावली, द्वितीय भाग, पृ० २७।

२ जब तें निहारे इन आखिन सुजान प्यारे।
तब तें गही है उर आन देखिबे की आन।
रस भीजे बैननि लुभाइ कै रचे है तही।
मधु मकरन्द सुधा नावौ न सुनत कान।
प्रानप्यारी ज्यारी घनआनद गुननि कथा।
रसना रसीली निसि वासर करत गान।
अग अग मेरे उन ही के सग रग रगे।
मन सिहासन पै विराजै तिनही को ध्यान।

—घनानद, पृ० २५, स० शभुप्रसाद बहुगुना।

दावानल का पान कर लिया, कालियनाग का अहकार चूर्ण कर दिया। हमारे त्राता आप है। आप हमारा पालन-पोषण करे। काले बादलो सदृश अपने बालो को देखने का हमे अवसर दे। आप हमारे ऊपर ऐसी कृपा करे जिससे हम मनोदु ख दूर करने वाले आपके वदन, लक्ष्मी के क्रीडास्थल आपके वक्षस्थल, दु ख दूर करने वाले आपके कर-कमल, पीताबर, किकिनि, जघाए और चरणकमल आदि को देखने का सौभाग्य प्राप्त कर सके। हे श्याम मनोहर, आप अपना परम पावन दिव्य शरीर हमे दिखाइए।[1]

श्री कृष्ण की विरहाग्नि से तडप-तडपकर गोपिया कराहती है। उसका चित्र चेरुश्शेरी नपूतिरि इस प्रकार हमारे सामने प्रस्तुत करते है—हे कृष्ण! हमारे प्रति आपने जो सहानुभूति दिखाई थी वह कहा गई? चातक जिस प्रकार घनश्याम की प्रतीक्षा करता रहता है उसी प्रकार हे घनश्याम! आपके दर्शन के लिए हम उत्कठित रहती है। जल से अलग होकर जैसे मछलिया छटपटाती रहती है वैसे ही हम भी आपके बिना व्याकुल है। हमपर कृपा की वर्षा करे। यदि हममे कोई कमी हो तो आप उसे बता सकते है। आप हमे क्यो इस प्रकार अपार दु ख देते है!।[2]

इसी प्रसग मे एजुत्तच्छन भी गोपियो द्वारा हृदय-विदारक प्रार्थना कराते है—हे भगवन्! हम कामाग्नि से जलती रहती है। हमारी रक्षा करने मे आप इतना विलब क्यो करते है, हे कमललोचन! आप हमारे ऊपर अनुग्रह करे। आपसे अलग होकर हम एक निमिष भी नही रह सकती। मृत्यु से हमे बचाइए। हे प्राणनाथ! हम बार-बार प्रणाम करती है।[3]

---

१ अत्तलप्पाटकट्टुवान नीयोञ्ञिञ्ञारुमिल्ला
नीयल्ली पारीरेज़ु पालिच्चु पोरुन्नतु
× × ×
कार्वर्ण्ण अड्डले नी कात्तु कोल् तपुराने
कारकोण्डल किकिण्डल नलकु वार कुज़ल काणाकेण
× × ×
भगियिल कुज़ुलुतु भगिकल् काणाकेण
विश्व मोहन माय पूमेनि काणाकेण
—कृष्णलीला, स० शकर मेनोन एम० ए०, पृ० ११-१२।

२ कारवर्ण्ण कण्णा कटल वण्णा काणय्यो
कारुण्यमाण्डोरु कारणने
× × ×
पाराते वल्लाय्म चोल्लामल्लो।
—कृष्णगाथा, स० राजराज वर्मा, पृ० ८४।

३ गोपने रक्षिच्चु कोल्क भवानेन्नु
कामाग्नि तन्निल दहिक्कुन्न अड्डले
क्कामदा रक्षिप्पतिनेन्तु तामस
× × ×

कुचन नप्यार ने लिखा है कि श्री कृष्ण राधा के साथ जब अन्तर्धान हुए तब दूसरी गोपिया वृक्ष-लतादि से श्री कृष्ण के बारे मे पूछती हुई फिरने लगी। अन्त मे वे कहती है—हे दयासागर ! आप क्यो इतने क्रूर बने है ? हम क्या करे ? लोग हमारी हसी उडाएगे। आपने हमे धोखा दे दिया। हमसे बढकर राधा मे क्या और कोई गुण है ? आपके चरण-सरोज के अतिरिक्त हमारा और कोई अवलब नही। इस प्रकार हमको दु ख पहुचाने की अपेक्षा हमे मार डालना ही अच्छा है।[1]

शान्ता भक्ति—

श्रेष्ठ मुनियो का कथन है कि जहा दु ख,सुख, चिन्ता, द्वेष और राग नही है, वहा शान्त रस की निष्पत्ति होती है।[2] साहित्यदर्पण मे ऐसा लिखा गया है । शान्त रस की अनुभूति मे लौकिक भाव नही पाए जाते। उसका आधार ईश्वरोन्मुख भाव है। शान्तरस-प्रधान कविताए दोनो भाषाओ के कवियो ने पर्याप्त सख्या मे लिखी है। उन्होने अपनी कविताओ मे वैराग्य, आत्मप्रबोध, विनय, आत्मनिवेदन आदि भावो को प्रकट करते हुए मानो शान्त रस की धारा ही प्रवाहित कर दी है। सूर, परमानन्द, एजुत्तच्छन पून्तानम आदि कवियो की कृतिया शान्त रस मे सनी हुई है।

भगवान् अपने भक्तो की प्रसन्नता के हेतु किसी प्रकार का भी काम करने को सन्नद्ध रहते है। उसके कई उदाहरण सूरदास देते है। वे कहते है—शबरी के जूठे बेर उन्होने बडे प्रेम से खाए। विदुर के यहा जाकर साग-भाजी का साधारण भोजन किया। पाण्डवो को दुर्वासा महर्षि के शाप से बचाने के लिए अक्षय पात्र मे लगा हुआ अन्न का कण खाकर तृप्त हुए और दूसरे लोगो को तृप्त किया। भगवान्

प्राणन् नशिन्चु पोरुन्नतिन मुन्नमे
प्राणात्मका प्राणनाथा नमो नम

—श्री महाभागवतम्, दशम स्कन्ध, एजुत्तच्छन, पृ० २९४।

१ नीयल्लातोरु गतियिल्ल वल्लवीना
पोय्यल्लेन्नरिक विभो दयाम्बुराशे
× × ×
कोन्नाकिल करलिलए निक्कुखेदमिल्ला
नन्नायि पुनरपि निन् कज़ल्क्कु चेरा।

—श्री कृष्णचरितम्, कवि कुचन नप्यार, पृ० ५३-५४।

२ न यत्र दु ख न सुख न चिन्ता, न द्वेषरागौ न च काचिदिच्छा।
रस स शान्त कथितो मुनीन्द्रै सर्वेषु भावेषु शम प्रधान ॥

—साहित्यदर्पण।

३ गोविंद प्रीति सबनि की मानत।
× × ×
कौरव-काज चले रिषि सापन, साक पत्र सु अधाए।
सूरदास करुना-निधान प्रभु जुग जुग भक्त बढाए ॥

—सूरसागर खड १, पद स० १३, सभा सस्करण, पृ० ५।

भगवान् का कृपा-कटाक्ष प्राप्त करने के लिए सूरदास बडे मर्मस्पर्शी शब्दो मे प्रार्थना करते है।[1] अपनी दीनावस्था जताते हुए परमानन्ददास का पद शान्ता भक्ति का उत्तम उदाहरण है।[2] भगवान् की लीला मे तन्मय होकर नन्ददास ने भी ऐसा ही निरूपण किया है।[3]

सूर और नन्ददास के समान मलयालम के कवियो ने भी शान्त रस की अनेक कविताए लिखी है—भगवान् की महिमा का वर्णन करते हुए निरणम कवियो मे श्रेष्ठ माधव पणिक्कर लिखते है—मै उस परमात्मा को नमस्कार करता हू जो अद्‌भुतता के आगर है, सपूर्ण है, जरा-मरणादिहीन है, पुष्प की गन्ध के समान सर्वत्र व्याप्त और आलिप्त है तथा सच्चिदानदमय है।[4]

चेरुश्शेरी अपनी दीनता प्रकट करते हुए भगवान् कृष्ण से निवेदन करते है—हे भगवान्! मै ससार-सागर मे डूब रहा हू। लहरो के आवर्त मे पडकर मै बिल्कुल निर्बल हो गया हू। मेरे लिए पार पाना असाध्य प्रतीत होता है। मृत्यु सर्वदा मेरा पीछा करती

---

१ नमो नमो करुणा निधान
चितवत कृपा कटाच्छ तुम्हारी मिटि गयो तम अज्ञान
× × ×
मेरे जिय अब यहै लालसा लीला श्री भगवान
श्रवण करौ निसि वासर हित सों, सूर तुम्हारी आन।
—सूरसागर, द्वितीय स्कन्ध, वे० प्रे०, पृ० ३८-३९।

२ रे मन सुनि पुरान कहा कीनों
अन पायनी भक्ति न उपजी भूवे दान न दीनो।
× × ×
चरन कमल अनुराग न उपज्यो भूत दया नहि पाली
परमानन्द साधु सगति बिनु कथा पुनीत न चाली।
—डा० गुप्त के निजी परमानददास-पदसग्रह से, पद स० ३०१, अष्टछाप, पृ० ६२१।

३ मोहन लाल रसाल की लीला इनहीं सोहै
केवल तन्मय भई कछु न जानति हमको है।
× × ×
भृ गी भय से भृ ग होइ वह कीट महा जड
कृष्ण प्रेम ते कृष्ण होइ कछु नहि अचरज बड़।
—रासपचाध्यायी, नन्ददास, शुक्ल, पृ० १६९।

४ अ ु ा.ाा.ा.ा.ा मरनालिनुमरिवायखिल जगत् पूर्णवुमाय्
उद्‌भव मरणादिकल करणादिकलोन्निनोटु कूटातोलिवाये
× × ×
न्नेपोजुतु सच्चिल सुखमाय् निन्नोटिन परमात्मानतोजुन्नेन
—कवि माधव पणिक्कर कणणुश्शन्मरु एजुत्तच्छन नामक पुस्तक से, स० विद्वान् के० ई० नारायण पिल्ला, पृ० ३२।

है। आप मेरे दु ख का निवारण करे।[1]

एजुत्तच्छन आत्मनिवेदन करते है—आशा रूपी डाकिन के पजे मे पडने से मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यह जगत् सत्य है, हमारा जीवन जल के बुलबुले के समान क्षण-भगुर नही, बल्कि स्थिर है, ससार के माया-मोह मे फसने के कारण उनके मन मे तीव्र पश्चात्ताप का भाव उत्पन्न होता है और वे कहते है कि हे कृष्ण ! मैने जानते हुए और बिना जाने बहुत से पाप किए है। आपकी कृपा के बिना वे पाप नही मिट सकते।[2]

प्रसिद्ध भक्त कवि पून्तानम भक्ति-सुधा मे सराबोर होकर कृष्ण की प्रार्थना करते हुए कहते है—हे कृष्ण, तुम ही दु ख दूर करने वाले हो । मै आपके सम्मुख सिर नवाता हू। मेरे दु ख का कारण क्या है ? फिर कवि कृष्ण का नाम लेकर कहते है, दु ख जन्म लेने से होता है। जन्म लेने का मूल क्या है ? कर्म के प्रभाव से जन्म लेना पडता है। हे कृष्ण ! कर्म का कारण है क्या ? राग अभिमान से होता है। अभिमान क्यो होता है ? (कवि कहते है कि) आपकी महत्ता और अपनी स्थिति के बारे मे न सोचने के कारण जीवो के मन मे अभिमान होता है। भगवान् की महत्ता और अपनी स्थिति के बारे मे न सोचने के कारण जीवो के मन मे अभिमान होता है। भगवान् की महत्ता और अपनी स्थिति के सबध मे मनुष्य क्यो नही सोचता ? (उत्तर है) अज्ञान के कारण लोग सोचते नही। (अन्त मे कवि कहते है) कृष्ण की सच्ची सेवा से ही मोक्ष-प्राप्ति हो जाएगी।[3] सारे आध्यात्मिक

---

१ मायाकार तोय तन्निल
पाय पाय मुड्डि नटुड्डि
ओरु कर येड्डु मुड्डि नटुड्डि
तेरु तेरे नीन्ति त्तान्तन्माराय
पेरुकिन ताप मियन्तु तलर्न्नु
करुतिन तोरु माज्कुन्नय्यो
× ×
पाक्वेजुमल्लल् तलर्त्तुनतिन्नाय्

—कृष्णगाथा, स० राजराज वर्मा, पृ० २२०।

२ उट्टोराशाशिशचितन बाधयाल् चुटटुवार्मेय्यिन् वाज्चयुवीज्चयु
× × ×
नष्टमाकऐ निन् कृपा पूर्णमा दृष्टि पातत्ताल् कृष्ण हरे जय

—भागवत कीर्तनम्, ले० एजत्तच्छन, पृ० १।

३. दु ख मोटुक्कुन्न तपुराने कृष्ण तृक्कत्तल ज्ञानिता कृपिटुन्नेन्
दु ख मेटुत्ततिनेन्ते मूल कृष्ण दु ख मेटुत्तनुजन्म मूल
जन्म मेटुत्ततिनेन्ते मूल कृष्ण जन्म मेटुत्तु कर्म्म मूल
× × ×
सज्जन सगति क्केन्तु मूल कृष्ण वाम पुरेशने सेव चेय्वू
वाम गेहाधिप वासुदेव कृष्णा बाल गोपालक पालय मा

—केरल-भाषा-साहित्य-चरित्रम् से, स० महाकवि उल्लूर एस० परमेश्वरय्यर, भाग ३, पृ० ६१६।

तत्त्वो का साराश उपर्युक्त कविता के द्वारा कवि ने हमे समझाया है।

एक अन्य स्थल पर पून्तानम कहते है—मनुष्य का मन विविध प्रकार की आशाओ मे लगा रहता है। किन्तु बडे अचरज की बात है कि हे भगवन्! तुझे पाने की आशा किसीको नही होती। हे कृष्ण, मेरे मन को शान्ति दीजिए।[1] इसके पश्चात् अपने मन को सबोधित करते हुए कवि निवेदन करता है—हे मन! सुन्दरी स्त्री का मुख और धन की चिन्ता मे लगकर तू आनन्दमूर्ति भगवान् को मत भूल। प्राण-वायु के जाते समय विचार करने पर भी तू कोई अच्छा काम न कर सकेगा।[2]

श्री कुचन नप्यार ने लिखा है कि ईश्वर की प्राप्ति के लिए योग, मन्त्र, उपासना और आसनो का अभ्यास कुछ काम नही आएगे। जो भगवान् के चरणो की पूजा करता है वही मुक्ति पा सकेगा। यह सारा प्रपच मायाजनित है, क्षणभगुर है। यह सब भगवान् की लीला है।[3]

प्रस्तुत अध्याय मे यह दिखाया गया है कि दोनो भाषाओ के कवियो ने भक्ति की महिमा अपनी शक्ति के अनुसार प्रदर्शित की है। ईश्वर के दोनो रूपो का वर्णन उन्होने किया है। यह भी दिखाया गया है कि ईश्वर की प्राप्ति का सरल मार्ग आम जनता के लिए भक्ति ही है, जिसके कई उदाहरण दिए गए है। ईश्वर के निर्गुण रूप का खडन किसीने नही किया है। एजुत्तच्छन को छोडकर शेष कवियो ने ईश्वर के साकार रूप के वर्णन मे अनेक पद लिखे है। निर्गुण ब्रह्म की उपासना करना अत्यन्त कठिन है। यही उनका मत है। सूरदास, परमानन्ददास, चेरुश्शेरी नपूतिरि और पून्तानम नपूतिरि ने कई

---

१ मन्नाशायालु मदनाशायालु
पोन्नाशायालु मरुकुन्नु लोक
निन्नाश कण्डीलोरुवर्क्कमय्यो
कण्णा रमे नल्कुक मानस मे
—पून्तानम की कृतिया, पद स० १२७, स० पि० के० ब्रदर्स कोज़िक्कोट, पृ० १३५।

२ एणीदृशा वदनवु पणवु निनच्चि
द्रानद मूर्त्तिये मराय्क मनक्कुरुन्ने
प्राणन् तलर्न्नु तमकादिक्लाय चमञ्ञाल
वेगुन्नतोन्नुमेलुतल्ल नमुक्करिञ्ञाल
—पून्तानम् की कृतिया, पद स० १३२, पृ० १३७।

३ वेगमीश्वरनोटु चेर्न्नु वसिप्पतिनु मनुष्यरे
यागवु पल योगवु पल मन्त्रवु चिल तन्त्रवु
आगमङ्ङ लुपासनङ्ङलु मासनङ्ङलु मोन्नुमे
राग सागर वासिकल्क्कु फलिक्कथिल्ल धरिक्कण
× × ×
अप्रमेयननन्तनव्ययनेक नाय्वरु मीश्वरन
—श्री कुचन नप्यार, स० जि० रामकृष्ण पिल्ला, पृ० ६४।

स्थानो पर निर्गुण ईश्वर की उपासना का खडन करके ईश्वर के सगुण रूप की उपासना करने की सुगमता पर जोर डाला है। नौ प्रकार की भक्तियो पर दोनो भाषाओ के कवियो ने अनेक कविताए रची हैं।

दोनो भाषाओ के कवियो का दृढ विश्वास है कि भक्त अपने जीवन मे जो कुछ करते हैं वे सब भगवान् को प्रसन्न करके उनके दर्शन पाने के लिए ही करते हैं। उनके मन मे मान, अपमान, दु ख-सुख आदि द्वन्द्व विचारो का प्रवेश भी नही होता। सर्वदा, सर्वथा ईश्वर पर अर्पण करते हुए सारे कार्य करते हैं। दास्य-भक्ति, सख्य-भक्ति, वात्सल्य-भक्ति और माधुर्य-भक्ति पर समान भाव से दोनो भाषाओ के कवियो ने रचनाए की हैं।

माधुर्य-भक्ति मे मीराबाई और चेरुश्शेरी नपूतिरि का स्थान समान है। दूसरे कवियो की अपेक्षा इन दोनो ने गोपियो के सहारे अपनी मधुर भक्ति सुन्दर और सरस कविताओ मे प्रकट की है।

वात्सल्य-भक्ति-रस-प्रधान कविताए लिखने मे चेरुश्शेरी नपूतिरि, पून्तानम नपूतिरि आदि का स्थान सूरदास आदि से पीछे नही। बाललीला के वर्णन मे सब ने अपनी-अपनी क्षमता सिद्ध कर दी है। दोनो भाषाओ के कृष्ण-भक्त काव्यो का तुलनात्मक अध्ययन करने पर यह निश्चय करना कि वात्सल्यपूर्ण पदो की रचना करने मे सूर श्रेष्ठ है या चेरुश्शेरी, अत्यन्त कठिन है।

पांचवां परिच्छेद

काव्य-कला

'काव्य' की सम्पूर्ण और सर्वांगीण परिभाषा देने का प्रयास कितने ही विद्वानो और मनीषियो ने किया है। काव्य कवि की आत्माभिव्यक्ति है।[1] यह परिभाषा सीधी-सादी, सरल और सर्वग्राह्य है। श्रीमद्भगवद्गीता मे 'कवि' शब्द का प्रयोग आत्मा के सूक्ष्मतम रूप के लिए हुआ है।[2] ऋग्वेद मे भी कवि को आत्मा का रूप बताया गया है।[3] साहित्यदर्पण मे दी गई परिभाषा 'वाक्य रसात्मक काव्यम्' के अनुसार काव्य कवि की रसात्मक आत्माभिव्यक्ति है। 'रस' ब्रह्म है और 'कवि' शब्द ब्रह्म के लिए भी श्रुति[4] मे आया है। इसलिए कवि की कृति का रसयुक्त होना स्वाभाविक है। काव्य को ब्रह्मानन्द-सहोदर भी कहा गया है। ब्रह्मानन्द को प्राप्त करके आत्मगत रखने से ही काव्य की रचना नही होती उसकी अभिव्यक्ति आवश्यक है। अत अभिव्यक्ति के एकमात्र साधन भाषा के महत्त्व को स्वीकार करना पडता है। काव्यशास्त्रज्ञो ने काव्य की परिभाषा मे भाषा-सौष्ठव और भाषा-शक्ति को अपेक्षित स्थान देना आवश्यक समझा है। काव्य के क्षेत्र मे रस के साथ-साथ अलकारो और शब्द-शक्तियो का महत्त्व भी है। रस या आत्मा की अभिव्यक्ति काव्य का सत्य तत्त्व है और भाषा चमत्कार कला तत्त्व है। सस्कृत-साहित्य मे भामह[5] प्रथम शास्त्रकार थे जिन्होने अलकारो की प्रतिष्ठा की और अनेक नये अलकारो की रचना की। दण्डी[6] ने भी काव्य के कलापक्ष को ही अधिक महत्त्व दिया। वामनाचार्य[7] ने काव्य की आत्मा 'रीति' है, ऐसा बताया। 'रीति' का अर्थ विशिष्ट पद-

---

१ साहित्य और सौन्दर्य डा० फतेहसिह, पृ० १।

२ कवि पुराणमनुशासितारमणोरणीयासमनुस्मरेद्य।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमस परस्तात्॥ गीता अ० ८, श्लो० ९।

३ कविमिव प्रकेतसम् (८८४,२ सा, वे० १२४५)
कवि केतु धासिभानुभ्ये (७,६,२)

४ रसो वै स। रस ह्येवाय लब्ध्वा आनन्दीभवति। को ह्येवान्यात्क प्राण्यात्। यदैष आकाश आनन्दो न स्यात्। एष ह्येवानन्दपति (तै० उ० २०७)

५ भामह काव्यालकार।

६ दण्डी काव्यादर्श।

७ वामन काव्यालकारसूत्र तथा वृत्ति।

रचना है। आनन्दवर्धन ने अपने ध्वन्यालोक मे 'ध्वनि सिद्धात' को प्रमुखता दी। सस्कृत के प्रसिद्ध आचार्य मम्मट ने बताया सर्वगुणसम्पन्न एव दोषरहित अभिव्यक्ति जो अलकारो का सहारा मनोनुकूल ले सकती है, काव्य के नाम से आभाषित होगी।[1]

आश्चर्य की बात है कि पाश्चात्य विद्वानो ने प्रारभ से ही काव्य के विश्लेषण मे लगभग उसी मनोवृत्ति[2] का परिचय दिया, जिसका सक्षिप्त विवरण हम ऊपर दे चुके है। यूरोपीय विद्वानो ने एक बात का और ध्यान रखा। उन्होने 'सामाजिक तत्त्व' का काव्य मे होना आवश्यक बताया। प्लेटो[3] ने उस काव्य की पूरी तरह से भर्त्सना की, जो समाज को अध पतन की ओर ले जाता है। उसके मतानुसार व्यक्तिगत आनन्द मे लिप्त कवि केवल अपराधी ही है। उसके शिष्य अरस्तू[4] ने बडी योग्यता से, प्लेटो के प्रहार से काव्य की रक्षा की और उसने सिद्ध किया कि हर दशा मे काव्य ही समाज को सन्मार्ग पर लाने का सर्वोत्तम साधन है। उसने काव्य को, सत्य कला और लोककल्याण की भावना से समन्वित करके गौरवान्वित किया।[5] कालातर मे इन्ही तत्त्वो को लेकर लगातार विचार-विमर्श होता रहा।

साहित्य का ज्यो-ज्यो विकास होता गया, काव्य की रूपरेखा निर्धारित करने का प्रयत्न जारी रहा। उसके परिणामस्वरूप साहित्य का वर्गीकरण भी हुआ—महाकाव्य, नाटक और आख्यान तथा खडकाव्य, महाकाव्य, मुक्तक काव्य आदि। वर्गीकरण से सबसे बडा लाभ यह हुआ कि काव्य का क्षेत्र निश्चित हो गया और प्रत्येक वर्ग के लिए कुछ निश्चित उपकरण भी स्थिर कर लिए गए, जिससे प्रत्येक प्रकार के काव्य का मूल्याकन सरलता से किया जा सका। वे उपकरण है—काव्य का विषय, वर्ण्य विषय से सबधित भाव आदि, रमणीय अर्थ, अलकार और रस तथा भाषा।[6]

हिन्दी और मलयालम के भक्त कवियो के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते समय उपर्युक्त काव्यागो को आधार मानकर हम चलेगे। हमारी विवेचना का प्रथम चरण काव्य-विषय है।

काव्य-कला का तुलनात्मक अध्ययन

काव्य-विषय

हिन्दी और मलयालम के कृष्ण-भक्त कवियो का मुख्य विषय श्री कृष्ण और उनकी लीलाए है। सूरदास ने भागवत की कथा का अनुसरण करके कृष्ण की बाल तथा यौवन-

---

१ मम्मट काव्यप्रकाश।
२ आलोचना इतिहास तथा सिद्धात—ले० एस० पी० खत्री, पृष्ठ १६५-१६६।
३ प्लेटो रिपब्लिक।
४ अरस्तू पोयटिक्स।
५ आलोचना इतिहास तथा सिद्धात—ले० एस० पी० खत्री, पृष्ठ ५३,५४।
६ साहित्यालोचन—बा० श्यामसुन्दरदास, पृ० ६२ से ६७।

लीलाओ का वर्णन बडी सुन्दरता से किया। परमानन्ददास ने कृष्ण के जीवन के भिन्न-भिन्न भावात्मक प्रसगो पर मुक्तक पद लिखे हैं। ब्रज-लीलाओ के चित्रण मे भी उन्होने ध्यान लगाया है। असुरो के वध आदि के सबध मे लिखने का प्रयास उन्होने नही किया है। श्री कृष्ण के बाल्यकाल की घटनाए बडी भावुकता से परमानन्ददास ने लिखी हैं। नन्ददास ने कृष्ण-कथा के कुछ चुने हुए प्रसग लेकर कविताए रची। मीरा ने अपनी सरस-कोमल वाणी द्वारा अपने प्रियतम कृष्ण के वियोग की अनुभूतिया प्रकट की हैं। मीरा के पदो मे कथा की कोई अतर्धारा नही दिखाई पडती। उन्होने किसी साहित्य-परपरा का आश्रय नही लिया है। उनके पद सरल, स्पष्ट तथा सीधे हृदय से लिखे गए हैं। उन्होने श्री कृष्ण को प्राकृतिक गुणो से रहित, योगेश्वर तथा सगुण ब्रह्म के रूप मे अपने पदो मे चित्रित किया है। प्रबन्धात्मक शैली मे वे पद नही लिखे गए हैं।

हिन्दी के प्रमुख कवियो ने कृष्ण-चरित्र के सहारे बहुधा मुक्तक काव्य ही लिखे हैं किन्तु मलयालम के प्रमुख कवि जैसे चेरुश्शेरी नपूतिरि, पून्तानम्, एजुत्तच्छन, कुचन नप्यार आदि ने कृष्ण की कथा के आधार पर प्रबन्धकाव्यो की रचना की है। प्रबन्ध के लिए निर्धारित शास्त्रीय नियमो का पालन करने मे मलयालम के कवियो ने पूरी तत्परता दिखाई है, यथा, कथा के मध्य मे प्राकृतिक चित्रो और घटनास्थलो के रूप मे विविध स्थानो के वर्णन, पात्रो के चरित्र का उत्तरोत्तर विकास, विभिन्न अवस्थाओ तथा घटना-चक्र के बीच उनकी प्रतिक्रिया, उनकी मनोदशाओ का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण आदि का निर्वाह पूरी तरह से किया गया है। अत मलयालम की कृष्णगाथा, श्रीकृष्णचरितम्, मणिप्रवालम् जैसी कृतिया महाकाव्यो की श्रेणी मे आ गई हैं। फिर भी इसमे सन्देह नही कि इन भक्तकवियो ने भक्ति-भावना से प्रेरित होकर ही कविताए रची और आत्म-विषयात्मक शैली का प्रयोग भी किया जो मुक्तक काव्य की मुख्य विशेषता है।

दोनो भाषाओ के कवियो की कविताओ मे सार्वजनिक प्रेमानुभूतियो का सजीव, स्वाभाविक और सरस चित्रण है। दूसरे इनमे अलौकिक नायक कृष्ण के उदात्त चरित्र के सहारे आध्यात्मिक अनुभूति की व्यजना भी हुई है। इस आध्यात्मिकता की व्यजना करने मे इन कवियो की चित्तवृत्ति अधिक रमी है। इससे न केवल मानव-समाज का हित हुआ, वरन् यह हमे ब्रह्मानन्द का आस्वादन भी कराती है। दोनो भाषाओ के कवि उच्चकोटि के भक्त हैं और बाद मे कवि। काव्य और भक्ति के सयोग के कारण मानो सोने मे सुगधि आ गई है।

हिन्दी मे कृष्ण-भक्त कवियो के ग्रन्थो मे उक्ति-रूप मे अथवा चरित्रो के दृष्टान्त-रूप मे आत्मोत्थान के लिए व्यावहारिक उपदेश और जन-समाज के हितार्थ नीति-कथन के प्रसग अधिक नही हैं, पर मलयालम की कविताओ मे काव्य, रस, आध्यात्मिक अनुभव और चरित्रो के दृष्टान्तो द्वारा तथा उपदेशात्मक मुक्तको द्वारा व्यक्त किए हुए लोक-मर्यादा की रक्षा के भाव, नीति और नैतिकता के उपदेश, इन सबका सुन्दर समन्वय हमे मिलता है। हिन्दी के कृष्णभक्त कवियो के समान मलयालम के कवियो की विचारधारा

सीमित नही है। एजुत्तच्छन, कुचन नप्यार जैसे कवियो की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। जीवन का कोई ऐसा अग नही जिसे उन्होने अछूता छोडा हो।

विषय के सबध मे मलयालम की कविताओ मे कोई मौलिकता न होने पर भी घटनाओ का वर्णन करते समय कवियो ने स्थल-स्थल पर अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है।

चरितनायक कृष्ण की वर्ण्य कथावस्तु

पूर्वार्द्ध

[जन्म से उद्धव के गोकुल आने तक की घटनाए]

कृष्ण के जन्मकाल का वर्णन सूर ने यो किया है—सकल लोकनायक ने जन्म लिया और यह रूप मा-बाप को दिखाया सिर पर मुकुट है, पीताम्बर पहने हुए है, छाती पर भृगु-रेखा शोभित है, चारो हाथो पर शख, चक्र, गदा, पद्म शोभित है। वेष अति प्रतापी है।[1] कुन्चन नप्यार जैसे मलयालम कवियो का वर्णन भी उससे मिलता-जुलता है। वे लिखते है—जन्म के समय भगवान् कृष्ण के माथे पर जगमगाता हुआ किरीट था, हाथ मे सोने के ककण, कटि पर किकिनी और पुष्प समान मृदुल वस्त्र पहना था। छाती पर श्री वत्स था और कौस्तुभ रत्न भी शोभित था। शख, चक्र, गदा तथा कमल चारो हाथो मे शोभायमान थे। शरीर सावले रग का था। कवि कहते है, ऐसे रूप वाले भगवान् आपका मगल करे।[2]

श्री कृष्ण के मनुष्य का जन्म लेने के कारण के सबध मे सूरदास ने एक पद मे सकेत किया है—**याकी कोखि ओतरै वे सुत, करै प्रान परिहारा।**[3] जन्म के पूर्व भी परिस्थिति के सम्बन्ध मे मलायलम के कवियो ने भी ऐसा ही वर्णन किया है। चेरुश्शेरी इस प्रकार कहते है—असुरो के अत्याचारो से पीडित होकर मेदिनी ने विष्णु भगवान् से कातर स्वर मे प्रार्थना की है। उसकी प्रार्थना सुनकर करुणानिधि द्रवित हो गए और उन्होने सान्त्वना देते हुए उसे धैर्य बधाया।

कस अपनी बहन देवकी को रथ मे बिठाकर ससुराल के लिए विदा करने जाता

---

१ सकल लोक नायक, सुखदायक, अजन जन्म धरि आयौ।
माथे मुकुट, सुभग पीताबर उर सोभित भृगु रेखा।
सख चक्र गदा पद्म विराजत अति प्रताप सिसु भेषा।
—सूरसागर, खड १, सभा सस्करण, पृ० २५८।

२ मिन्नुपोन्निन् किरीट तरिवल कटक कान्चि पून्चेल माला
धन्य श्री वत्स सल् कौस्तुभमिट कलरु चारु दोरन्तराल
शख चक्र गदा पन्कज इव विलसु नालु तृवक्कैकलोटु
सन्कीर्ण श्याम वर्णं हरि वपुरमल पुरयेन्मगलव
—श्रीकृष्णचरितम् मणिप्रवालम्, ले० कुचन नप्यार, पद स० ७३।

३ सूरसागर—खड १, सभा सस्करण, पृ० २५६।

है। मार्ग मे आकाशवाणी हुई—देवकी के आठवे पुत्र से तुम्हारा निधन होगा और तुम सावधान रहो।[1] इतना सुनते ही कस रथ से उतरकर देवकी के बाल खीचकर तलवार से मारने को तैयार हुआ। इस प्रसग का वर्णन चेरुश्शेरी यो करते है—कस तलवार से मारने लगा। तब कुछ लोगो ने आखे बन्द की, आसू पोछे। कुछ लोग दौडे हुए कस के पास आए। कुछ लोगो के हाथ फडक उठे। कुछ लोगो की आखे लाल हो गई और कुछ लोग जोर से रो पडे।[2]

सूर ने इस प्रसग का वर्णन बडे सीमित ढग से किया है—कस रथ से उतरकर देवकी को तलवार से मारने चला।[3] इस अवसर पर उपस्थित जनो के मनोभावो के सम्बन्ध मे सूर ने कुछ नही लिखा। कस का भयानक रूप देखकर देवकी की क्या दशा हुई उसके विषय मे कृष्णगाथा मे इस प्रकार लिखा है—जब सिह अपने शिकार हिरण को पकडकर मुह मे रखता है उस समय के रोते हिरण के समान देवकी भयभीत होकर 'हा देव ! हा देव !' चिल्लाने लगी। कस की कराल मूर्ति देखकर वह डर के मारे पिता जी, माता जी, और मामा जी की दुहाई देने लगी। अन्त मे अपने भाई कस से भी दया की प्रार्थना की और अपने पतिदेव की ओर भी दीन दृष्टि से देखा।[4] इस प्रकार के मर्म-स्पर्शी मनोभावो की उपेक्षा सूर ने की है।

महान् व्यक्तियो के जन्मकाल का वर्णन भी मलयालम कवियो ने असाधारण ढग से किया है। श्री कृष्ण के जन्मकाल का वर्णन करते हुए चेरुश्शेरी ने लिखा है—सब कही मगलकारी दृश्य दिखाई देने लगे। ब्राह्मणो ने यज्ञकुड मे अग्नि जलाई और परि-

---

१ देवकी तन्नुटे यष्टम गर्भत्तिल् मेवि निन्नुण्डाय बालकन् तान्
निन्नुटे कालनायन्तु निन्नोटुन्नोनेन्नतु चिन्तिच्चु कोल्क कसा
—कृष्णगाथा, स० राजराज वर्मा, पृ० ३।

२ कण्णटच्चीटिनार कण्णु नीर तूकिनार तिण्णमड्डो टिनार खिन्नरायि
कै तिरुम्मीटिनार वण चोवत्तोटिनार कय्यलच्चीटिनार मेय्यिलेडडु
—कृष्णगाथा, स० राजराज वर्मा, पृ० ३।

३ रथ में उतरी, केस गहि राजा कियौ खड्ग पटनारा
—सूरसागर, खड १, स० सभा-सस्करण, पृ० २५६।

४ कैसरि वीरन् तन्नाननय् तन्निलाय केबल केजुन्नोरेणम पोले
मेवि निन्नोटुन्न देवकी देवि तान् दैवमे येन्नडड चोल्लि च्चोल्लि
घोरनायुल्लोरु कसने नोक्कीट् टु पार विरच्चु नटुड्डु मप्पोले
कटु निन्नीटुन्न लोकरे नोक्कीट्टु कोज पूण्डेट्टवु केजु पिन्ने
चडडाति मारुटे नन्मुख नो विकनिन्निड्डने येन् कर्म मेन्नु पिन्ने
अच्छने तन्नेयु मेच्चये नोकिक निन्नुच्चत्तिल नीले विलिच्चु केजु
× × ×
आनक दुन्दुभि तन्नुटे याननम दीनयाय मेल्लवे नोक्किकवाक्कुं
—कृष्णगाथा, स० राजराज वर्मा, पृ० ३, ४।

क्रमा की। नदी, झील, सरोवर का जल सज्जनो के मानस के समान स्वच्छ हो गया। आकाश नक्षत्र रूपी हार पहनकर शोभित हुआ। भ्रमर गुजारते हुए भ्रमण करने लगे। मद-शीतल-सुगन्धित वायु बहने लगी।[1]

कृष्ण का अवतार हुआ। कस ने जान लिया कि ब्रज मे जन्मा हुआ बालक ही उसका हन्ता है। अत वह पूतना को उसे मार डालने के लिए भेजता है। इस प्रसग का वर्णन भी मलयालम कवियो ने बडी मार्मिकता से किया है। वे कहते है—सुन्दर, सुकोमल, निष्कलक नन्दकुमार अकेले एक छोटी-सी शय्या पर लेटा है। उसे चालाकी से मारने के विचार से कपट वेषधारिणी दुष्टा पूतना उसके पास आती है। जैसे गरुड के पास साप दौडते हुए आ जाता है (गरुड के पास सर्प के आने का अर्थ है साप की मृत्यु) वैसे ही पूतना बच्चे के पास आई। बच्चे का कोमल मुख देखकर वह कुछ क्षण रुककर कुछ सोचने लगी। ऐसा मालूम पडता है मानो वह अपने काल के आने की देर के कारण पर विचार कर रही हो। तब उसने धीरे-धीरे उस बच्चे के कोमल शरीर का स्पर्श किया जैसे रत्न समझकर अग्नि को छू रही हो। जिस प्रकार रज्जु समझकर कोई साप को उठा लेता है उसी प्रकार पूतना ने कृष्ण को उठा लिया। उस शिशु के पुष्प समान कोमल शरीर के स्पर्श से ही उसके रोगटे खडे हो गए। उसे देखकर ऐसा मालूम पडता है मानो पूतना के पहले ही वे रोगटे स्वर्ग जाने के लिए तैयार हो गए। उसने अपने लम्बे हाथो से बच्चे का आलिगन किया मानो खजूर समझकर हाथी ने अग्निशिखा को पकड लिया है। पश्चात् उसने श्री कृष्ण के मुख का एक बार चुबन कर लिया। ठीक है, उस मुख को देखकर ऐसी स्त्री कौन है जो चुबन नही करती![2]

---

१ मगल जालड्डल तिड्डि निन्नेड्डमे पोड्डि येजुन्नु तुटड्डि तप्पोल
आरणर कृष्णत्तिलग्निकलेल्लामें पारमेजुन्नु वलज़न्चुजन्नु
स्वच्छ ड्डलाय्वन्नु तोयड्डलेल्लामे सज्जन मानस मेन्न पोले
तारड्ड लायुल्ल द्वारड्डुल् पूण्डिटट्टु पार विलड्डि वियत्तु मप्पोल
मत्तड्डुलाय् निन्नु पाटि त्तुटड्डीतच्चित्त तेलिञ्ञल्लल भृ गड्डलु

—कृष्णगाथा, स० राजराज वर्मा, पृ० ७।

२ दूरत्तु निन्नड्ड कण्डोरु नेरत्त चारत्तु चेन्नु चतिच्चु पुक्काल
अण्डज नायकन तन्नुटे चारत्तु कुण्डलि तान चेन्नु पुकुम्पोले
ओमनत्तमुख तन्निले नोक्कि क्कोण्डोत्तुं निन्नीटिनालोट्टु नेर
चीत्तोरु कोप कोण्डन्तकन् वाराञ्ञु पात्तुं निन्नीटिनालेन्नपोले
मेल्लवे चेनड्डु तोट्टु निन्नीटिनाल् पल्लव वेलुमप्पूवल मेनि
रत्नमेन्निड्डने तन्निले नण्णि निन्नग्निये च्चेन्नु तोटन्न पोले

× × ×

अगन मारिलन्नन्मुख काणपोज़ड्डने तोन्नातो रिल्लेयारु

—कृष्णगाथा, स० राजराज वर्मा, पृ० १७।

यहा पूतना का घर मे घुसना, बच्चे का अपूर्व सौन्दर्य देखकर ठिठकना, फिर स्पर्श करना, उसे उठा लेना, उसके रोगटे खडे हो जाना, आलिगन करना, चुबन लेना आदि पूतना की चेष्टाओ का क्रमिक वर्णन कितना स्वाभाविक है! एक सफल कलाकार के समान कवि ने प्रसग का वर्णन करने मे पूर्ण तन्मयता प्रदर्शित की है। भावना और तन्मयता का सयोग काव्यकला मे सोने मे सुगन्धि का काम कर देती है। तन्मयता एक सस्कार-विशेष है जो जन्म के साथ पैदा होती है। विद्वानो ने इसे भी एक शक्ति कहा है। यह एक ऐसी शक्ति है जिसकी सहायता से कवि अपने मन के भावो को व्यक्त करने के लिए उपयुक्त शब्द अनायास ही ढूढ लेता है। कवि की सफलता इसीमे है कि भावना से जो बात जानी गई है उसे अर्थयुक्त शब्दो मे लिख दे। यहा पूतना की मोक्ष-प्राप्ति जताना कवि का उद्देश्य है। ईश्वर का दर्शन पाए हुए भक्त और पूतना दोनो की चेष्टाए एक-सी दिखाई पडती है। भगवान् के दर्शन होते ही भक्त ठिठक जाता है और किकर्तव्य-विमूढ-सा हो जाता है। फिर बडे स्नेह से भगवान् का स्पर्श करते-करते पुलकित हो जाता है। और सब कुछ भूल गले से लगाकर चुबन करने लगता है। यद्यपि शत्रु भाव से ही पूतना श्री कृष्ण के साथ व्यवहार करती है तो भी उसका मन कृष्ण मे इतना लीन है कि वह सहज ही अपने मोक्ष की पात्री बन जाती है। अतएव पूतना की चेष्टाओ की तुलना भक्त से करना कवि की प्रतिभा तथा रुचि को सूचित करती है। यह सब वर्णन चेरुश्शेरी ने सुन्दर भाषा मे किया है। सूर ने सरसरी तौर पर वह कथा कही है। उसके अनन्तर श्रीधर-अग-भग की कथा सूरसागर मे है। किन्तु मलयालम मे वह कथा कदाचित् ही किसी कवि ने लिखी हो।

शकटासुर की मृत्यु की कथा दोनो भाषाओ के कवियो ने सक्षेप मे लिखी है। सूर ने पालने पर भगवान् के शयन का वर्णन सुन्दर रूप से किया है। कृष्ण के जन्म के कारण वृन्दावन-निवासी अत्यन्त सौभाग्यवान् हो गए है। वे कहते है—भगवान् के ससर्ग से जो आनन्द मिलता है उसके आगे तीन लोको का सुख क्या चीज़ है! अष्टसिद्धिया और नव-निधिया यहा कर जोडे उपस्थित रहती है। शिव, सनक आदि के लिए अगोचर भगवान् ने वृन्दावन मे जन्म लिया। निस्सन्देह यशोदा माता धन्य है, क्योकि वे कृष्ण को अपनी गोद मे बिठाकर दुलार कर सकी।[1]

---

१ राग रामकली

जो सुख ब्रज मै एक घरी।
सो सुख तीनि लोक में नाहीं धनि यह घोष पुरी।
अष्टसिद्धि नवनिधि कर जोरे, द्वारै रहति खरी।
सिव-सनकादि सुकादि अगोचर, ते अवतरे हरी।
धन्य धन्य [illegible] निगमनि सही परी।
ऐसै सूरदास के प्रभु कौं, लीन्हौं अक भरी॥

—सूरसागर, खड १, सभा सस्करण, पद स० ६८७, पृ० २८४-२८५।

दोनो भाषाओ के कवियो ने भगवान् कृष्ण की मोहिनी मूर्ति, बालक्रीडा आदि के बारे मे बहुत-से पद रचे है । कृष्ण वृन्दावन मे सब की आखो की पुतली बन गए। गोपिया उनके अपूर्व सौंदर्य पर निछावर थी। कान्ह के नन्हे दात अकुरित होने लगे, यह देखकर सूर ने लिखा—अपने पुत्र का मुख देखकर यशोदा फूली न समाती थी । दूध के रग के दातो को अकुरित अवस्था मे देखकर वे सब कुछ भूल गई । बाहर से नन्द को बुलाया और कहा दातो को देखकर नयनो को सफल करो। नन्द आए और बच्चे का किलकना देखा। ऐसा मालूम पडा मानो कमल मे बिजली जडी हुई हो।[1]

जसुमति अपने कुमार का सौन्दर्य देखकर निहाल हो जाती है, उसके सम्बन्ध मे परमानन्ददास का पद है जसोदा कहती है—मै अपने श्याम मनोहर पर निछावर हो जाती हू । दृष्टिदोष से बचने के लिए माता जसोदा राई नोन उतारती है और अपने बच्चे को आपत्ति से बचाने के लिए प्रार्थना भी वे भगवान् से करती है।[2] अपने बच्चे के प्रति माता की चिन्ता और चेष्टा की झलक यहा कवि ने दिखाई है।

कृष्ण के मुह मे दातो को देखकर चेरुश्शेरी लिखते है—प्यारे दुलारे राम तथा कृष्ण के मुह मे दात अकुरित हुए। उन्हे देखकर ऐसा मालूम पडता है मानो हरिमल्लिका की हरी-भरी सुन्दर लताओ के पुष्प की कली फूटी हो। पय-पान कराने के लिए बुलाए जाने पर वे हसते है तो दात के अकुर धीरे-धीरे दिखाई पडते है। दूध पीते समय स्तनो को जान पडा कि बच्चो के दात निकलने लगे। (यहा स्तनो का मानवीकरण किया गया है।) दातो के अकरो को देखकर गोपियो की खुशी का ठिकाना न रहा। वे कान्ह के मुख का चुम्बन करती रही, मुख से अपना मुख हटाने मे गोपिया असमर्थ रही। मुख का चुम्बन

---

१ सुत मुख देखि जसोदा फूली।
हरषित देखि दूध की दँतिया, प्रेम मगन तन की सुधि भूली।
बाहिर तैं तब नद बुलाए, देखौ धौं सुन्दर सुखदाई।
तनक तनक सी दूध दतुलिया, देखौ नैन सफल करौ आई।
आनन्द सहित महर तब आए, मुख चितवत दोउ नैन अघाई।
सूर स्याम किलकत द्विज देख्यौ, मनौ कमल पर बिज्जु जमाई।
—सूरसागर, भाग १, सभा सस्करण, पद स० ७००, पृ० २८९।

२ राग रामगिरी
यह तन वारि डारों कमल नयन पर सावलिया मोहि भावे रे।
चरन कमल की रेनु जसोदा लै लै सिरहि चढावै रे।
लै उछग मुख निरखन लागो रहि रहि लोंन उतारै रे।
कौन निरासा दृष्टि लगाई लै लै अचर झारै रे।
तू मेरो बालक हो। नँदनन्दन तोहि विसम्भर राखै रे।
परमानँद स्वामी चिर जीवहु बार बार यों भाषै रे।
—डा० गुप्त जी के परमानद-पदसग्रह से, पद स० १९, तथा अष्टछाप और बल्लभ-स प्रदाय, पृ० ७०२।

करने का जिनको अवसर न मिला वे उसका सौन्दर्य देखती रह गई।[1] यहा कवि ने बच्चो के अधर-रूपी किसलय मे दातो की स्थिति की तुलना लताओ मे स्थित मल्लिका की कलियो से की है। किन्तु कलियो के समान दात मृदुल नही, पयपान कराते समय माताओ को बच्चो का दातो से काटना यद्यपि दु खदायी है तो भी दातो के अकुर देखकर माताए हठात् आकर्षित हो जाती है और चुम्बन करने लगती है। चुम्बन करते-करते बच्चो के मुख से नेत्रो को हटाने मे गोपिया बिलकुल असमर्थ-सी दिखाई पडती है। इसमे उनके सौन्दर्य की विशिष्टता स्पष्ट है। जिन लोगो को राम और कृष्ण के मुखो पर चुम्बन करने का सौभाग्य नही मिला वे उन बालको को देखते ही रह गए। निस्सन्देह सौन्दर्य की अलौकिकता की ओर सकेत करने वाले मलयालम कवि चेरुश्शेरी का यह वर्णन बहुत सुन्दर है।

बालको की प्रकृति के पूर्ण ज्ञाता सूरदास ने कई ऐसे पद लिखे है जिनमे कृष्ण को पालने मे लिटा यशोदा द्वारा सुलाने का वर्णन है। बालक को सोते देखकर ज्यो ही वह चुप होती है, कृष्ण जाग पडते है और रोने लगते है। तब यशोदा मधुर स्वर मे गाने लगती है।[2]

घुटनो के सहारे कृष्ण चलते है। उस समय का सुन्दर चित्र सूरदास इस प्रकार खीचते है—कान्ह का मुख चन्द्र के समान सुन्दर है, कटि मे मणि-माणिकयुक्त किंकिणी शोभित है, भाल पर लटकन है। गले मे केहरि-नख और वज्रप्रवाल की माला है, कर मे पहुची, पैरो मे नूपुर है और अपने शरीर पर पीत वस्त्र पहन लिया है। इस प्रकार के वेष से अलकृत श्याम अपने मुह मे नवनीत लगाते हुए घुटनो के बल पर आगन भर मे खेलते फिरते है।[3]

---

१ ओमनयायि बलर्न्नु निन्नाटुन्न रामनु पिन्नेयक्कावर्ण्णनु
चन्तमेजुन्नोरु चेन्तोण्डि वाय्तन्निल दन्तङ्ङल पोन्नु वन्नन्कुरिच्च
पल्लवमाण्डोरु मुल्लया वल्लिमेलल्लु सन्मोटटु कलेन्न पोले
नन्मुल नल्कुवानम्ममार चेन्नङ्ङु सम्मोद पुण्डु विलिक्कयाते
चेन्चम्मे युल्लोरु पुन्चिरि तूकुम्पोल किन्चन काणायि वन्तुकट्ट
पालुण्णु नेरत्तु वार्मुल रणिडन्नु चालत्तेलिञ्ञडङ रियाय्वन्नु
दन्तडडल तन्नुटे यन्कुर कण्डटट् सन्तोष पूण्डुल्ल वल्लविमार
वेगत्तिल चुविच्च नेरत्तु नन्मुख वेर पेटुत्तीटुवान वल्लीलार्क्क
कन्तु वन्नन्नन्ने कण्डु निन्नीटुन्नोर कण्णण तन्नेय्युमौवण्णमे

—कृष्णगाथा, स० राजराज वर्मा, पृ० २१।

२ कबहुं पलक हरि मूदि लेत है कबहुं अधर फरकावै।
सोवत जानि मौन ह्वै रहि रहि करि करि सैन बतावै।
इहि अन्तर अकुलाइ उठे हरि जसुमति मधुरै गावै।

—सूरसागर, भाग १, सभा सस्करण, पृ० २७६।

३ खेलत नँद आंगन गोविद।
निरखि निरखि जसुमति सुख पावति, बदन मनोहर इन्दु।

कभी किलकारी करके तात-मुख देखते है कभी माता-मुख देखते है। दोनो श्याम को अपने-अपने पास आने के लिए बुलाते है और कान्ह को खिलौना बनाकर बाजी लगाते है।[1]

कृष्ण का खीझते हुए माखन खाना, टेढी भौहे और लाल आखे दिखाना, घुटनो से चलना जिससे शरीर का धूलिधूसरित होना, माता की अलके खीचना, तोतली वाणी से तात कहना[2] आदि का चित्र बडी तन्मयता से सूर ने हमारे सामने प्रस्तुत किया है।

यशोदा अपने दुलारे कान्ह को चलना सिखाती है। यह चित्र तो बहुत ही सुन्दर है। सूर कहते है—माता भुजा पकडाकर कृष्ण को खडा करती है पर वे लडखडाकर गिर पडते है, फिर घुटनो के बल से दौडते है। फिर धीरे-धीरे भुजा टेककर दो-दो कदम चलते है।[3] कृष्ण अपने सावले शरीर पर झिगुली और सिर पर कुलही धारण करके ठुमक-ठुमक

कटि किंकिनी चद्रिका मानिक, लटकन लटकत भाल।
परम सुदेस कठ केहरि-नख, बिच बिच बज्र प्रवाल।
कर पहुची, पाइनि मे नूपुर, तन राजत पट पीत।
घुटुरुनि चलत, अजिर महँ बिहरत, मुख मटित नवनीत।
सूर विचित्र चरित्र स्याम के, रसना कहत न आवै।
बाल दसा अवलोकि सकल मुनि, जोग बिरति बिसरावै ॥९७॥

—सूरसागर, भाग १, सभा-सस्करण, पृ० २९४।

१ राग आसावरी

घुटुरुनि चलत स्याम मनि आगन, मातु पिता दोउ देखत री।
कबहुंक किलकि तातमुख हेरत, कबहुं मातु मुख पेखत री।
लटकन लटकत ललित भाल पर, काजर बिंदु भ्रुव ऊपर री।
यह सोभा नैननि भरि देखैं, नहि उपमा तिहुं भू पर री।
कबहुंक दौरि घुटुरुवनि लपकत, गिरत, उठत पुनि धावै री।
इततैं नद बुलाइ लेत है, उततैं जननि बुलावै री।
दपति होड करत आपुस में, स्याम खिलौना कीन्हौ री।
सूरदास प्रभु ब्रह्म सनातन सुत हित करि दोउ लीन्हौ री ॥७१६॥

—सूरसागर, भाग १, सभा सस्करण, पृ० २९४-२९५।

२. राग रामकली

खीझत जात माखन खात
अरुन लोचन, भौंह टेढी, बार बार जँभात।
कबहुं रुनझुन चलत घुटुरुनि, धूरि धूसर गात।
कबहुं झुकि कै अलक खैचत, नैन जल भरि जात।
कबहुं तोतर बोल बोलत, कबहुं बोलत तात।
सूर हरि की निरखि सोभा निमिष तजत न मात ॥७१८॥

—सूरसागर भाग १, सभा सस्करण, पृ० २९५।

३ राग सूहौ बिलावल

धनि जसुमति बड़भागिनी, लिए कान्ह खिलावै।

चलते है । पैजनिया बजती है । उनकी झिगुली, किंकिणी, जन्त्रहार, पहुची, भाल का तिलक, नवनीत रखा हुआ हाथ आदि की अपूर्व शोभा देखकर यशोदा उनपर निछावर होती है।[1]

कृष्ण के चपल तथा विनोदप्रिय स्वभाव का वर्णन सूर इस प्रकार करते है—नन्द-रानी श्याम को नचाती है। कृष्ण मीठी वाणी से गाने लगते है । पैरो मे नूपुर बजते है, किंकिणी बजती है। यशोदा भी गान सुनकर ताली बजाती हुई गाती है।[2] दधि-मथन करने मे जसुमति व्यस्त है। कृष्ण पास खडे होकर हसते है। माता पुत्र से कहती है अरे ! मोहन ! तू नाच ले, नवनीत तुझे मिलेगा। तुरन्त कृष्ण नाचने लगते है।[3] माता तथा पुत्र का सुन्दर तथा स्वाभाविक चित्रण है यह।

तनक तनक भुज पकरि कै, ठाढौ होन सिखावै ।
लरखरात गिरि परत ह, चलि घुटरुनि धावै ।
पुनि क्रम क्रम भुज टेकि कै, पग द्वैक चलावे ।
अपने पाइनि कबहि लौ, मोहि देखन धावै ।
सूरदास जसुमति इहे विधि सो जु मनावै ॥७३०॥

—सूरसागर, भाग १, सभा-सस्करण, पृ० २९९ ।

१ चलत लाल पैजनि के चाइ ।
पुनि पुनि होत नयौ नयौ आनँद, पुनि पुनि निरखत पाइ ।
छोटौ बदन छोटियै झिगुला, कटि किंकिनी बनाइ ।
राजत जत्र हार, केहरि नख, पहुंची रतन जराइ ।
भाल तिलक पख स्याम चखौडा जननी लेति बलाइ ।
तनक लाल नवनीत लिए कर सूरज बलि बलि जाइ ॥७५१॥

—सूरसागर, भाग १, सभा-सस्करण, पृ० ३०६ ।

२ राग सूहो
आगन स्याम नचावही, जसुमति नदराना ।
तारी दै दै गावही, मधुरी मृदु बानी ।
पाइनि नूपुर बाजई कटि किंकिनि कृजै ।
× × ×
जसुमति सुतहि नचावई, छबि देखति जिय तै ।
सूरदास प्रभु स्याम कौ, मुख टरत न हित तै ॥७५२॥

—सूरसागर, भाग १, सभा-सस्करण, पृ० ३०६ ।

३ राग विलावल
जसुमति दधि मथन करति, बैठी बर धाम अजिर ।
ठाढै हरि हँसत नान्हि दँतियनि छबि छाजै ।
× × ×
गावत गुन सूरदास, बढयौ जस भुव अकास ।
नाचत त्रैलोकनाथ माखन के काजै ॥७६४॥

—सूरसागर, भाग १, सभा-सस्करण, पृ० ३११ ।

कृष्ण का नूपुर से रुनुक-झुनुक शब्द उत्पन्न करते हुए आगन मे नाचना, भाल पर का तिलक, कठहार आदि देखकर यशोदा और गोपिया आनद-सागर मे डुबकी लगाती है। उसका चित्र परमानन्ददास सूर के समान ही खीचते है

राग असावरी

माई मीठे हरि के बोलना।
पाय पैंजनियां रुनझुन बाजै, आगन आगन डोलना।
कज्जर तिलक कठ कठुला मनि पीताम्बर को चोलना।
परमानददास को ठाकुर गोपी झुलावत मो ललना[1]॥

बाल-प्रकृति का सुन्दर चित्रण करते हुए सूरदास कहते है—एक दिन कृष्ण ने माखन खाते हुए और किलकारी मारते हुए दधि-घट पकडकर अन्दर अपनी परछाई देखी तो मालूम हुआ वहा दूसरा एक बालक खडा है। उसे देखकर वे आपे से बाहर हो गए। उसी दम नन्द के यहा दौडे और शिकायत की कि एक लडका घर के अन्दर घुसकर मेरा माखन खा रहा है। अपने दुलारे को छाती से लगाकर नन्द घट के पास पहुचे और अन्दर देखा। कृष्ण ने समझा कि अपने प्यारे पिताजी उसी लडके को अपनी गोद मे लिए खडे है। उनके क्रोध का पारावार न था। मा के पास दौड गए और तोतली बोली मे कहा—मा, मै तेरा पुत्र हू, किसी और लडके को बाबा ने अपना बनाकर मेरा अनादर किया है। कृष्ण की सरल बाते सुनकर मा घट के पास गई और जब घट को अपने दोनो हाथ से हिलाया तो प्रतिबिब नही दिखाई पडा। कृष्ण बहुत प्रसन्न हुए और हसने लगे।[2]

कृष्ण की चचलता के कई उदाहरण देते हुए सूर ने लिखा है एक दिन कृष्ण ने मा से कहा—अरी मा! तू जल्दी मुझे बडा कर ले। जो मै मागू उसे जरूर देना। यदि मेरी इच्छानुसार दूध, दही, मक्खन आदि तू दे दे तो मै सबल हो जाऊगा, कस को पछाड सकूगा और मथुरापुरी को अपने अधीन कर लूगा।[3] यद्यपि ये वचन बालक की

---

१ डा० गुप्त के परमानन्ददास-पदसग्रह से, पद स० २२, तथा अष्टछाप, पृ० ७०२।

२. राग बिलावल
माखन खात हँसत किलकत हरि, पकरि स्वच्छ घट देख्यौ।
निज प्रतिबिब निरखि रिस मानत, जानत आन परेख्यौ।
मन मैं भाप करत, कछु बोलत, नद बबा पै आयौ।
× × ×
कवर हँस्यौ आनद प्रेम बस, सुख पायौ नँदराना।
सूरज प्रभु की अद्भुत लीला जिन जानी तिन जानी॥७७४॥
—सूरसागर, भाग १, सभा-सस्करण, पृ० ३१४।

३ राग सारग
मैया मोहि बड़ौ करि लै री।
दूध दही घृत माखन मेवा, जो मागौ सो दै री।
× × ×

चचलता सूचित करते है लेकिन उनमे व्यग्य छिपा हुआ है। कभी कृष्ण गाते हुए घूमते है, कभी नाचते है, कभी गायो को टेरकर बुलाते है, कभी अपने पिता नद को बुलाते है, कभी घर के अन्दर जाकर स्वय मक्खन उठाकर खाते है और कभी खभे मे अपनी परछाईं देखकर उसे खिलाते है। ये सब देखकर यशोदा बहुत प्रसन्न होती है।[1]

एक स्थान पर कुछ पल भी कृष्ण शान्त नही बैठते। सोने के पहले मा रामायण की कथा बच्चो को सुना लेती है। सीताहरण के प्रसग पर कृष्ण सोते से जागते है। लक्ष्मण को बुलाकर चाप लेने के लिए कहते है। तब मा डर जाती है।[2] कृष्ण की बाललीला पर सूर ने असख्य सुन्दर पद लिखे है। उसी प्रकार के मिलते-जुलते पद मलयालम कवियो ने भी लिखे है।

चेरुश्शेरी लिखते है—कृष्ण अपने बडे भाई के साथ आगन मे खेल रहे है। तब गोपिया कहती है अरे कृष्ण! देखो तेरे लिए मक्खन! मक्खन का नाम सुनते ही कृष्ण उनके पास दौडकर जाते है। उसी प्रकार केले का नाम सुनने की देरी है, तुरन्त कृष्ण अपना मुह दिखाते हुए उनके पास जाएगे। खीर की गध पाते ही वे सब कुछ भूलकर उसे पाने के लिए जाएगे। गुड का नाम लिया जाए तो उनके मुह मे पानी आएगा।[3]

रगभूमि मे कस पछारा, धीसि बहाऊ बैरी।
सूरदास स्वामी का लाला मथुरा राखौ जै री ॥७९४॥

—सूरसागर, प्रथम भाग, सभा-सस्करण, पृ० ३२०।

१ हरि अपनें आगन कछु गावत।
तनक तनक चरननि सो नाचत, मनही मनहि रिझावत।

× × ×

सूर स्याम के बाल चरित, नित नितही देखत भावत ॥७९५॥

—सूरसागर, भाग १, सभा-सस्करण, पृ० ३२०।

२ राग बिहागरौ
नद नंदन, इक सुनौ कहानी।
पहिली कथा पुरातन सुनी हरि जननि पास मुख बानी।
रामचन्द्र दसरथ सुत, ताकी जनकसुता गृहरानी।
कहे तात सौं, पचवटी बन, छाडि चले रजधानी।
तहा बसत सीता हर लीन्ही, रजनीचर अभिमानी।
लछिमन, धनुष देहु, कहि उठे हरि, जसुमति सूर डरानी ॥८१७॥

—सूरसागर, भाग १, सभा-सस्करण, पृ० ३२९।

३ मूत्तवनायुल्ल रामनुमाय चालक्कलिच्चु पुलच्चु निन्नीटिनार
नोलक्कारवर्णनम्मन्दिरत्तिल वेण्ण काणुण्णि निनक्केन्नु चोल्लुम्पोल
पेण्णुड्डल चारत्त तिण्ण चेल्लु वाजप्प त्तिन्टे [illegible]

× × ×

वेल्लनिड्डने चोल्लि निन्नीटिलो वेल्ल मुरय्क्कुन्नु वायिलप्पोल्

—कृष्णगाथा, स० राजराज वर्मा, पृ० २१।

एक दिन मा नहाने के लिए चली गई । कृष्ण ने अन्दर जाकर देखा। कोई नही था। अच्छा अवसर पाकर वे मक्खन लेने के लिए एक चारपाई के ऊपर खडे होकर छीके को पकडने लगे। तब चारपाई खिसककर नीचे गिर गई। कृष्ण छीके की रस्सी को पकडकर हिलने-डुलने लगे। कातर होकर वे चिल्लाने लगे। मा आई और पुत्र को जमीन पर खडा करके पूछा अरे तू क्यो ऐसी शरारत करता है ? तब कृष्ण बोले अरी मा ! जब तू नहाने गई तो मैंने सोचा कि तूने अच्छी तरह दही और मक्खन को रखा है कि नही। तू तो बडी मेहनत करके इसे रखती है तब कोई बिल्ली आकर इसे न खावे और दूध न पीवे। इस विचार से मैं इधर आया। मैं झूठ नही बोलता। तू मुझपर विश्वास रख। पडोस के बच्चो के समान मैं चोरी नही करता। देख ले ! कल भी पिताजी ने कहा—मै बहुत अच्छा लडका हू। मै बार-बार कहता हू कि मक्खन खाने की इच्छा से यहा नही आया।[1]

पून्तानम नपूतिरि ने सूर के समान ही कृष्ण की चचलता, विनोदप्रियता आदि का सुन्दर वर्णन बहुत सक्षेप मे किया है । रामचरित की कथा के प्रसग पर पून्तानम गाते है—एक दिन कृष्ण को नीद नही आई। तब यशोदा रामायण की कथा सुनाने लगी। बीच मे कहा कि रावण ने सीता को छीन लिया तो कृष्ण जाग उठे और 'अरे लक्ष्मण' पुकारा।[2] कृष्ण का नाचना, तोतली बाते करना, घुटने टेककर चलना, भाल का तिलक, कटि की किकिणिया, मोरपख का किरीट आदि के सबध मे दोनो भाषाओ के कवियो ने समान रूप से लिखा है।

पून्तानम कृष्ण की बालचेष्टाओ के बारे मे लिखते है—एक दिन कृष्ण ने आइने मे अपना प्रतिबिब देखा। उसे अपना साथी समझकर उन्होने आइने को छाती से लगाया।[3]

---

१ स्नान त्तिन्नायिट्टु मातावु पोकुन्न कालत्तेपार्त्तु निन्नन्नोरुनाल
वेरुणयु पालु वेच्चुल्लक पूकिनान वेगत्तिल नोक्किक्कोण्डडुमिड्डु

× × ×

तन्नु निन्नीटुन्न पाल वेरुण येन्निमट्टिन्नुमे वेरुडतिल्लिन्नमुक्को

—कृष्णगाथा स० राजराज वर्मा, पृ० २२-२३ ।

२ नालीक लोचन नुरक्कु वराञ्जेशोदा
नारायणन्टे चरित कथ चोल्लुमप्पोल
सीताम् हरिच्चु दशकन्धरनेन्नु केट्टि-
टटालोकनाथनयिलल्लमण येन्नुरच्चु ॥१३॥

—पून्तानम की कृतिया, स० पि० के० ब्रदर्स, पृ० ८६ ।

३ कण्णाटियिल कण्डुकलाय रम्य
कण्णिणल तेलिञ्ञोरु मुखारविन्द
चड्डाति येन्निट्टु चिरिच्चु कण्णन
कण्णादि पूण्णुन्नतु कण्डितावू ॥२८॥

—पून्तानम् की कृतिया, स० पि० के० ब्रदर्स, पृ० ६५ ।

जसुमती प्रार्थना करने के लिए बैठती है। अर्चन के पुष्प रखे हुए हैं। कृष्ण दौडे हुए आते हैं। सारे पुष्प अपने सिर पर रखकर कहते हैं, 'मैं ईश्वर हू' तब मा बोल उठती है, 'अरे रे तू क्या कहता है ?'[1] फिर नारायण का जप करने के लिए कृष्ण से वह कहती है तो भगवान् कृष्ण शर्मिन्दा होकर हस देते हैं। क्योकि वे स्वय भगवान् हैं।

दूसरे कवियो ने भी इसी ढग से कृष्ण की बाल-क्रीडाओ का वर्णन किया है। परन्तु हिन्दी कवियो का बाल-भाव-वर्णन अद्वितीय है।

बच्चो का आपस मे झगडा करना, एक-दूसरे को नीचा दिखाने का प्रयत्न करना आदि का वर्णन सूर ने बडी कुशलता से किया है। वे लिखते हैं—कृष्ण को बिना मा-बाप का कहकर बलराम खिझाते हैं।[2] तो कृष्ण माता और पिता से शिकायत करते हैं। यशोदा उनको सरल शब्दो मे कसम खाकर सान्त्वना देती है कि सुनो मेरे लाल, गोधन की सौगन्ध खाकर मैं कहती हू, तू मेरा बेटा है और मैं तेरी मा हू।[3] माटी-भक्षण प्रसग के सबध मे सारे कवियो ने एक ही समान लिखा है

नन्दकुमार की बालोचित क्रीडाओ का चित्र सूर इस प्रकार खीचते हैं—एक दिन कृष्ण अपने साथियो को लिए माखन की चोरी को निकले। गली से जाते समय एक गोपी के घर मे देखा कि वहा एक गोपी दूध मथ रही है। जब वह कमोरी मागने चली गई तो कृष्ण अपने दोस्तो को बुलाकर अन्दर घुसे और मक्खन खाया। बाहर जाते समय

---

१ नारायणा एन्नु जपिक्क नावे।
न्नारो मलायिप्परयु यशोदा।
नाण कुणुङ्ङीट्टु चिरिक्कुप्पोल।
नारायणन तानिति वासुदेवन ॥३५॥
—पून्तानम् की कृतिया, स० पि० के० ग्रदर्स, पृ० ९८।

२ सखा कहत है स्याम खिसाने।
आपुहि आपु बलकि भए ठाढे अब तुम कहा रिसाने ?
बाचहि बोलि उठे हलधर तब याके माइ न बाप।
× × ×
सूर स्याम उठि चले रोइ कै, जननी पूछति धाइ ॥८३२॥
—सूरसागर, भाग १, सभा सस्करण, पृ० ३३३।

३ मैया मोहि दाऊ बहुत खिझायौ।
मोसौ कहत मोल को लान्हौ, तू जसुमति कब जायौ ?
कहा करौ इहि रिस के मारे खेलन हौ नहि जात।
पुनि पुनि कहत कौन है माता, को है तेरौ तात।
× × ×
सुनहु कान्ह, बलभद्र चबाई जनमत ही कौ धूत।
सूर स्याम मोहि गोधन की सौ, हौ माता तू पूत ॥८३३॥
—सूरसागर, भाग १, सभा-सस्करण, पृ० ३३४।

गोपी ने उन्हे देखा और कृष्ण से उसने पूछा, 'तुम लोग कहा गए थे।' कृष्ण ने कहा, 'खेलते समय हमारा यह मित्र भाग गया और तुम्हारे घर मे छिपा रहा।' इस प्रकार कहकर कृष्ण ने अपने उस मित्र को आगे खडा कर दिया। इसके बाद सब वहा से चले गए। यह देखकर गोपी चकित हो गई। उसका मन कृष्ण की ओर हठात् आकर्षित हो गया।[1] सूर आगे कहते है—एक दिन कृष्ण एक गोपी के घर मे घुस गए। उस समय वहा कोई नही था। माखन खाने के बाद उन्होने भाजनो को फोड डाला। फिर सोते बच्चो को कूक कर जगाया और हसते हुए भाग गए।[2] कृष्ण की शरारते बढने लगी। यशोदा तक कृष्ण की चोरी की शिकायते पहुचने लगी। प्रतिदिन एक न एक गोपी उलाहना देने पहुच ही जाती थी। कृष्ण से जब पूछा गया तो मा से उन्होने जो युक्तिभरे वचन कहे वे अनूठे है। वे कहते है—मा! मैने माखन नही खाया। खेल खेल मे मेरे सखाओ ने मेरे मुख पर माखन लगा दिया है। तू ही सोच मा! मै छोटा, उस ऊचे छीके से मक्खन कैसे निकाल सकता हू! ये वचन सुनकर मा मुस्कराई और कान्ह को छाती से लगा लिया।[3]

---

१ सखा सहित गए माखन चोरी।
देख्यौ स्याम गवाच्छपथ हौं, मथति एक दधि भोरी।
× × ×
भुज गहि लियौ कान्ह इक बालक, निकसे ब्रज को खोरि।
सूरदास ठगि रही ग्वालिनी, मन हरि लियौ अँजोरि॥८८८॥
—सूरसागर, भाग १, सभा-सस्करण, पृ० ३५१।

२ राग गौरी
गए स्याम ग्वालिनि घर सूने।
माखन खाइ, डारि सब गोरस, बासन फोरि किए सब चूने।
बचौ माट इक बहुत दिननि को, ताहि करयौ दस टूक।
सोवत लरिकनि छिरकि मही सौं, हँसत चले दै कूक।
आइ गई ग्वालिनि तिहि औसर, निकसत हरि धरि पाए।
देखे घर बासन सब फूटे, दूध दही ढरकाए।
दोउ भुज धरि गाढै करि लीन्हे, गई महरि कै आगै।
सूरदास अब बसे कौन ह्या, पति रहिहे ब्रज त्यागे॥९३५॥
—सूरसागर, भाग १, सभा-सस्करण, पृ० ३६६।

३ राग रामकली
मैया मैं नहिं माखन खायौ।
ग्वाल परे ये सखा सबै मिलि, मेरे मुख लपटायौ।
देखि तुही सीके पर भाजन, ऊचै धरि लटकायौ।
हौं जु कहत नान्हे कर अपने मैं कैसैं करि पायौ।
मुख दधि पोंछि, बुद्धि इक कीन्ही, दोना पीठि दुरायौ।
डारि साटि, मुसुकाइ जसोदा, स्यामहि कठ लगायौ।
बाल विनोद मोद मन मोह्यौ, भक्ति प्रताप दिखायौ।
सूरदास जसुमति कौ यह सुख, सिव बिरचि नहिं पायौ॥९५२॥
—सूरसागर, भाग १, सभा-सस्करण, पृ० ३७१।

चोरी के प्रसग पर मलयालम कवि चेरुश्शेरी लिखते है—एक दिन माता यशोदा नहाने गई। अवसर पाकर बालक कृष्ण कमरे मे घुस गए। चारो ओर देखने लगे। एक कोने मे लटके हुए छीके से मक्खन लेने का सकल्प करके कही से एक तिपाई ले आए और उसपर चढे। छीके की रस्सी उन्होने पकडी ही थी कि तिपाई गिर गई और कृष्ण टगे ही रह गए। घबराकर वे सहायता के लिए चिल्लाने लगे। मा दौडकर आई और कान्ह को लटकते देखकर मुस्कराती हुई उसके पास पहुची। उसने कृष्ण को नीचे उतारा। मा के पूछने के पहले ही कान्ह ने सफाई देते हुए कहा मा! तेरे जाने के बाद मैने सोचा कि तू बडी कोशिश करके मक्खन आदि बनाती है उसे बिल्ली न खाए, इस विचार से मैने ऐसा किया। उसके सिवा मुझे दूसरी कोई इच्छा नही। तेरी कसम, मै सच कहता हू। इस तरह की कुछ और बाते करने के बाद उसने कहा कि रखवाली करने की मजदूरी के रूप मे कुछ मक्खन तो दो। मा ने एक हाथ मे मक्खन रखा। तब कृष्ण ने कहा—देखा मा! दूसरा हाथ रो रहा है। उसको भी कुछ दे दो। मा ने वैसा किया। एक हाथ का मक्खन खाने के बाद कान्ह ने चिल्लाकर कहा—हाय! हाय! काक लेकर उड गया। तब मा ने प्रसन्न होकर और मक्खन दे दिया।[1]

कृष्ण के उत्पातो से तग हुई गोपियो की शिकायतो का रोचक वर्णन सूरसागर के समान परमानन्दसागर मे भी पाया जाता है। परमानन्ददास गाते है—गोपिया उलाहना देती है अरी यशोदे! तेरे पुत्र के कारण हमे बडा कष्ट होता है। हमारे घर मे तेरा लडका आकर बडी हानि पहुचाता है, दूध, मक्खन वगैरह ले जाता है, पात्र सब फोड डालता है और लडको के कान मरोडकर भाग जाता है।[2]

---

१ रनानत्तिनायिटट्टु मातावु पोकुन्न कालत्ते पयार्त्तुन्निन्नोरुनाल

× × ×

वन् कोति पूणुन्न पकज लोचनन।
तन कैयिल वच्चोरु वेणनेरे।

—कृष्णगाथा, म० पि० के० नारायण पिल्ले, पृ० १६३ से १६७।

२ राग धनाश्री

जसोदा चचल तेरो पूत।
आनद्यो ब्रज भीतर डोले करै अटपटो सूत।
दह्यौ दूध घृत ले आगे करि जहँ जहँ धरो दुराई।
अधियारे घर माउ न जाने तहँ पहले ही जाई।
गोरस के सब भाजन फोरे माखन खाय चुराई।
लरिकन के कर कान मरोरे तहँ ते चले पलाई।
बाटि देत बनचरन कौतुकी करै विनोद बिचारि।
परमानँद प्रभु गोपी बल्लभ भावै मदन मुरारि।

—डा० गुप्त के परमानन्ददास-पदसग्रह से, पद न० ३८।

यद्यपि कृष्ण नटखट, चचल और उत्पाती है तो भी बिगडी गाय को सभालने की उनकी शक्ति का पता गोपियो को लग गया। उसी दिन से बहुत घरो से उनको निमन्त्रण मिलने लगा जिसका मनोमुग्धकारी चित्रण परमानन्ददास ने यो किया है

राग गौरी

नेकु पठै गिरिधर को भैया।
रही बिन स्याम पत्याय न औरे, इनके हाथ लगी मेरी गैया।
ग्वाल बाल सब सखा सयाने पचिहारे बलदाऊ भैया।
हूकि हूकि इन ही तन चितवत चाहत नाहिन अपनो लैया।
सुनि ये वचन हाथ कौरे रहियो दुहु दिसि चितवत कुवर कन्हैया।
परमानँद जसुदा मुसकायो सग दियो गोकुल को रैया॥[1]

कृष्ण की शरारतो का वर्णन मलयालम कवियो ने भली भाति लिखा है। चेरुश्शेरी कहते है एक दिन एक गोपिका ने अपने पिताजी के लिए रोटी बनाई और सुरक्षित स्थान पर रख कही चली गई। कृष्ण ने वहा पहुचकर रोटी तो खा ली और गोबर की रोटी बनाकर उसी स्थान पर रख आए। बेचारी स्त्री ने अनजान मे गोबर की रोटी पिताजी को और घर के दूसरे लोगो को दे दी। खाते समय गोबर का स्वाद उनको लगा।[2] उसकी परवाह बिना किए जब वे चबाने लगे तब जिह्वा पर सुई-सी चुभने लगी और वे घबराकर एक-दूसरे की ओर बदरो की तरह देखने लगे।

वन-भोजन के समय भी कृष्ण अपने सखाओ के साथ तरह-तरह के खेल करते और विनोद करते हुए उन्हे हसाते थे। अपने पुत्रो के प्रति नन्द का व्यवहार भी वात्सल्य-पूर्ण है। श्रीकृष्ण का कहना मानकर उनका हाथी बन जाना, बालक को अपने ऊपर बिठाकर घुमाना आदि बालक-सुलभ चेष्टाओ का अच्छा वर्णन चेरुश्शेरी ने किया है।

उलूखल-बन्धन की कथा मलयालम, सस्कृत और हिन्दी के कवियो ने लिखी है। सूर ने हिन्दी मे कथा को महत्त्व न देकर जसुमति और सखियो की वात्सल्य-भक्ति पर जोर दिया है। उलूखल मे बधे हुए कृष्ण की अवस्था देखकर गोपियो का हृदय द्रवित हो उठता है और कृष्ण को बन्धन से छुडाने की उनकी प्रार्थना अत्यन्त मर्मस्पर्शी है। वे कहती है—अरी जसोदा मा! तू जरा नन्दकुमार की ओर देख। वे भय से काप रहे है और रक्षा पाने के लिए कातर दृष्टि से तेरी ओर देख रहे है। तू अपना क्रोध तज

---

१ डा० गुप्त के परमानन्द-पदसग्रह से पद स० ६१।

२ चाणक्क नारुन्नोन्तिनेन्नेल्लारु शकिच्चु निन्नुटन वायिलाक्कि
वेगत्तिल निन्नु चवच्चोरु नेरत्तु वेरोन्नाय वन्नितु भाव मेल्ला
तूम कलन्नोल कैनख तन्निले सूचि तरक्कुम्पोलेन्न पोले
तड्डलिल तड्डलिल नोक्कि त्तुटडिञ्ञार कोञ्ञड्डल काट्टन्नोरेन्नपोले
आनन्द कण्डाकिल तड्डलेन्नोर्त्तिट्टु वानर वन्नड्डू पूणुमप्पोल
—कृष्णगाथा, स० पि० के० नारायण पिल्ला, पृ० १७०।

दे और उनको गले से लगा ले । वे भले ही माखनचोर हो, लेकिन समझना चाहिए कि वे त्रिलोक की निधि हैं।[1]

उलूखल-बन्धन के प्रसग मे कुबेर के पुत्रो के उद्धार की कथा सारे कवियो ने सुन्दर शैली मे लिखी है। वृन्दावन मे प्रवेश करना, गोप-बालको के साथ बाल कृष्ण की विविध लीलाए, वत्सासुर और बकासुर का वध आदि घटनाओ पर प्रकाश डाला गया है। भागवत-कृष्ण लीला मे सूरदास और चेरुश्शेरी दोनो ने मौलिकता दिखाई है । सूर ने भागवत की कथा के आधार पर यह प्रकरण लिखा है। भागवतकार ने कृष्ण को अखिलेश्वर सच्चिदानन्द, दुष्टनाशक, शिष्टपालक आदि के रूप मे प्रस्तुत करके आध्यात्मिक तत्त्वो का वर्णन बडी गभीर शैली मे लिखा है। उसी समय सूर ने कृष्ण को सच्चे मित्र के रूप मे चित्रित कर सखाओ का पारस्परिक मधुर भाषण, व्यवहार आदि का सुन्दर चित्रण नाटकोचित ढग से दिया है। उसमे कृत्रिमता का लेश नही है। उसकी वर्णनात्मक तथा गीत-पदशैली प्रशसनीय है।

चेरुश्शेरी ने प्रस्तुत प्रसग पर एक मनोवैज्ञानिक कहानी बडी ही कुशलता से लिखी है। अपना प्रभुत्व दिखाने के लिए ब्रह्मा ने देखते-देखते गोप-बालको और गायो को लुप्त कर दिया। कृष्ण ने तुरन्त बात जान ली। उन्होने अपनी माया से नन्द गोपो और गायो की सृष्टि की। इतना ही नही, ब्रह्मा का गर्व दूर करने के लिए उन्होने एक दूसरा ब्रह्मा भी रच डाला। दूसरे ब्रह्मा की सृष्टि, पहले ब्रह्मा और दूसरे की बातचीत कवि की मौलिक कल्पना का परिचायक है। घबराहट के मारे पहले ब्रह्मा ने दूसरे से पूछा तुम कौन ? दूसरे ने कहा मैं हू ब्रह्मा। इसपर झगडा बढता गया। दोनो आपस मे अपने-अपने बल का बखान देने लगे। एकाएक कैटभ नामक असुर बीच मे कूद पडा और पहले ब्रह्मा की जान लेने के लिए दौडा। बेचारा जान बचाने के लिए भागने लगा। असुर ने उसका पीछा किया । तब ब्रह्मा की दशा पर कृष्ण को दया आई। उन्होने अपनी माया हटा ली। पहले ब्रह्मा को शान्ति मिली और उसे बोध हुआ कि अहकार के कारण ही यह सब मुझे झेलना पडा। फिर वह कातर

---

१ राग केदारो

देखि री नद नदन ओर।
त्रास तै तन त्रसित भए हरि, तकत आनन तोर।
बार बार डरात तोका, बरन बदनहि थौर।
मुकुर मुख, दोउ नैन ढारत, छनहि छन छबि छौर।
सजल चपल कनीनिका पल अरुन ऐसै टोर (ल)।
रस भरे अबुजनि भातर भ्रमत मानौ भौर।
लकुट कैं डर देखि जैसे भए स्रोनित घोर।
लाइ उरहि बहाइ रिस जिय, तजहु प्रकृति कठोर।
कछुक करुना करि जसोदा, करति निपट निहोर।
सूर स्याम त्रिलोक की निधि, भलेहि माखन चोर ॥९८२॥

—सूरसागर, भाग १, सभा-सस्करण, पृ० ३८१।

शब्दो मे कृष्ण की प्रार्थना करने लगा। तब उसकी हसी उडाते हुए भगवान् कहते है—आप जैसे वयोवृद्ध हमारे साथ इस प्रकार का व्यवहार करे तो हम बेचारो पर बडी विपत्ति आ जाएगी। गाव के भोले-भाले बच्चो और गायो को घर न पहुचा सकू तो मार खानी पडेगी। मेरा रोना देखने के लिए ही क्या आपने ऐसा किया ?[1]

बचपन से कृष्ण के प्रति गोपियो के मन मे प्रेम अकुरित होने लगा था। उनकी वाक्पटुता, क्रीडा, सौदर्य, चचलता तथा विनोदप्रियता के कारण कृष्ण के प्रति इनका प्रेम बढने लगा। राधा-कृष्ण की पहली भेट का चित्र बडी सुन्दरता से सूर ने खीचा है। यमुना नदी के किनारे अपरिचिता राधा को देखकर कृष्ण का मन आकर्षित हो गया। उन्होने राधा से पूछा—अरी गोरी ! तू कहा की है ? किसकी बेटी है ? मैने अभी तक तुझे देखा भी नही। राधा उत्तर देती है—नन्दकुमार की चोरी की वार्ता सुनकर यहा आना ठीक नही समझा। तब कृष्ण कहते है—हम तुम्हारी क्या चोरी करेगे, अच्छा हम मिलकर खेले। रसिक कृष्ण की चतुर बातो मे राधा आ गई।[2] उसी दिन से उन दोनो का प्रेम दिन दुगुना रात चौगुना बढने लगा। अन्त मे स्थिति ऐसी उत्पन्न हो गई कि राधा के लिए कृष्ण से अलग होकर रहना बिलकुल असभव हो गया। एक दिन राधिका ने बहाना किया कि उसे एक साप ने काट लिया। सखिया उसे घर लाई और माता जी से उन्होने कहा कि कृष्ण गारुडी मन्त्र जानता है। यदि वह आए तो राधा बच जाएगी। तुरन्त कृष्ण बुलाए गए। कृष्ण को देखकर राधिका बहुत प्रसन्न हुई। कृष्ण ने बडी सफलता से गारुडी मन्त्र का प्रयोग किया। राधा चगी हुई। कहने का तात्पर्य यह है कि सूर ने समय के अनुसार राधिका को भोली, चचल, चतुर, प्रेमविवश, परम सुन्दरी, गूढ, अतृप्त मानवती, गौरवशालिनी, स्वकीया, गभीर, परम वियोगिनी के रूप मे सूरसागर मे चित्रित

---

१. वृद्धान्मारायोर कलिच्चु तुटडिडनाल मुग्धरा जड्डलितेन्तु वेण
इड्डने निड्डल कलिच्चु तुटडिडनालेड्डक्के सकट माकुमल्लो
नाट्टारे वीट्टिने पैतडडलेक्कोण्डेक्कार्ट्टि क्कोडुप्पु जानेडिडनेचोल।

× × ×

ईश्वरनोडु पिजच्चतिल्लेतु जानाश्रय मायतु मट्टोन्नल्ले

—कृष्णगाथा, स० राजराज वर्मा, पृ० ४०।

२ राग बिलावल

सिर दोहनी चली लै प्यारी।
फिरि चितवत हरि हँसे निरखि मुख, मोहन मोहनि डारी।
व्याकुल भई, गई सखियन लौं, ब्रज को गए कन्हाई।
[पद स० १३५८]

× × ×

मरी आनि राधिका जिवाई, टेरत एकहि नाम।
हम समझी यह बात तुम्हारी, जाहु आपनै धाम।
सूर स्याम मनमोहन नागर, हँसि बस कीन्ही बाम॥ [पद स० १३८१]

—सूरसागर, भाग १, सभा-सस्करण, पृ० ५१७ और ५२३ तक।

किया है। इस प्रकार का सुन्दर चित्रण और किसी भी भाषा मे नही पाया जाता, मलयालम मे भी नही है।

कालिय-दमन, कृष्ण के सौदर्य का वर्णन, मुरली-गान, गान सुनकर गोपियो पर क्या प्रभाव पडा, यज्ञ-पत्नी-लीला, गोवर्धन-धारण आदि कथाए दोनो भाषाओ के कवियो ने भागवत के आधार पर लिखी है। यज्ञ-पत्नी-लीला के द्वारा कृष्णगाथाकार ने यह शिक्षा दी है कि कथा के ब्राह्मणो के समान कोई कितना ही पण्डित, [illegible] कर्मठ, कुलीन हो, यदि उसमे सच्ची भक्ति नही हो तो वह भगवान् के दर्शन से च्युत हो जाएगा, किन्तु निष्कलक भक्ति होने पर मुनि-पत्नियो के समान अपढ, भोले-भाले मनुष्यो को भी ईश्वर के दर्शन मिल सकते है।

कालियदमन-लीला के वर्णन मे सूर ने कृष्ण की दिनचर्या, गोचारण, कस-नारद का परामर्श, कालियदह के कमल पुष्प भेजने के लिए नन्द को कस का निर्देश आदि घटनाओ का विवरण दिया है, जिससे उनकी मौलिकता का आभास पाठक को मिलता है। उसे देखकर ऐसा मालूम पडता है मानो कालियदमन-लीला एक स्वतत्र खडकाव्य हो। घटनाओ की विचित्रता, प्रबन्ध-पटुता, चरित्र के चित्रण मे स्वाभाविकता आदि खडकाव्य सभी आवश्यक लक्षण उसमे पाए जाते है। इस प्रकार का चित्रण और कही नही दिखाई पडता।

कालियदमन के बाद मलयालम कवियो की कविताओ मे दावानल-पान, ग्रीष्मकाल का वर्णन, प्रलबवध और विविध ऋतुओ का सुन्दर वर्णन पाया जाता है। इसके विपरीत सूर तथा हिन्दी के अन्य कवियो ने राधा-कृष्ण की दूसरी भेट का वर्णन सुन्दर शैली मे किया है। कृष्ण का मुरलीवादन सुनते ही ससार मे क्या प्रभाव पडता है, उसके सबध मे सूर कहते है—विश्व मे मुरली का स्वर व्याप्त होते ही बडे-बडे परिवर्तन हुए है। स्थिर चलने लगे, चर स्थिर हो गए, पवन थकित हो गया, जमुना उलटी बहने लगी, मृग-समूह सर्वस्व भूल गये है, पशु-वृन्द मोहित हो गए, सुरभिया (गौए) विथकित हो दातो मे घास दबाए खडी है। सनकादि मुनि वृन्दो की समाधि टूटी।[1] गोपियो की दशा के सबध मे सूर लिखते है—मुरली ध्वनि सुनते ही गोप-स्त्रिया स्तब्ध रह गई। किसीकी सुधि उनको न रही। निर्निमेष दृष्टि से वे खडी देखती रह गई। ऐसा मालूम पडा मानो सभी

---

१ जब हरि मुरली अधर धरत।
थिर चर, चर थिर, पवन थकित रह, जमुना जल न बहत।

× × ×

सुक सनकादि सकल मुनि मोहे, ध्यान न तनक गहत।
सूरजदास भाग है तिनके जे या सुखहि लहत॥१२३८॥

—सूरसागर, भाग १, सभा-सस्करण, पृ० ४८०।

चित्रार्पित वस्तुए हो।[1]

मुरली-गान की महिमा सूर ने सर्वत्र दिखाई है । वे कहते हैं—कृष्ण ने मुरली बजाई, नाद सुनकर गोपिया सर्वस्व भूल गई। कुल-मर्यादा, गुरुजन का भय, सतान, पति का प्रेम आदि का ध्यान उन्हे न रह गया । पागल-सी होकर वे श्रीकृष्ण के समक्ष जा पहुची जैसे वेणु आदि के बधन से स्वत खिचती चली गई हो।[2]

दूसरे पद मे सूर ने बताया है कि मोहिनी मुरली का गान सुनते ही जगत् मे उलटी गति हो गई। जो बछडे दूध पीते थे, उन्होने दूध पीना छोड दिया। धेनुओ ने चरना छोडा, जमुना उलटी धार बहने लगी और हवा रुक गई।[3]

साराश यह है कि ध्वनि सुनकर बिना प्रभावित हुए बैठे रहने की सामर्थ्य किसी मे न रह गई। जो मुरली जमुना की प्रबल धारा को उलटा बहा सकती है, जिसकी ध्वनि सुनकर गाए चरना छोडती है, बछडे दूध नही पीते, शिव की भी समाधि भग हो जाती है। खग, मृग, तरु, सुर, नर, मुनि आदि पर जिसका अबाध अधिकार है, उसकी ध्वनि कान मे पडते ही गोपिकाए 'कुलकानि' त्यागकर कृष्ण के पास पहुच ही गई। कैसा जादू है इस मुरली मे !

वशी की महिमा का गान करने के बाद चीरहरण-लीला पर सूर ने विस्तार से

---

१ राग बिहागरा

(कहौं कहा) अगन की सुधि बिसरि गई।
स्याम अधर मृदु सुनत मुरलिका, चक्रित नारि भई।
जो जैसें सो तैसैं रहि गई, सुख दुख कह्यौ न जाइ।
लिखी चित्र मी सूर सु ह्वै रहि, इकटक लल बिसराइ ॥१२३६॥

—सूरसागर, भाग १, सभा-सस्करण, पृ० ४८१।

२ राग जैतश्री

जबहि बन मुरली स्रवन परी
चकित भई गोप-कन्या सब, काम-धाम बिसरी।
कुल मर्जाद वेद की आज्ञा नैकुहु नही टरी।
स्याम सिधु, सरिता ललना गन, जल की ढरनि ढरी।
× × ×
सुतपति नेह, भवन जन सका, लज्जा नाहि करी।
सूरदास प्रभु मन हरि लीन्हौ, नागर नवल हरी ॥१६१८॥

सूरसागर, भाग १, सभा-सस्करण, पृ० ६०६।

३ राग पूरबा

मुरली गति बिपरीति कराई।
त्रिभुवन भरि नाद समान्यौ, राधा रमन बजाई।
× × ×
बिह्वल भए नही सुधि काहू, सुर गधर्ब नर नारि।
सूरदास सब चकित जहा तहा, ब्रज जुवतिनि सुखकारि ॥१६८५॥

—सूरसागर, भाग १, सभा-सस्करण, पृ० ६२८।

लिखा है। उसमे कृष्ण के प्रति गोपियो का अनुराग बढना, अनुराग का चरम सीमा पर पहुचना आदि का सुन्दर चित्रण मनोवैज्ञानिक ढग से किया गया है। गोपियो की माधुर्य भक्ति का चरम विकास दिखाकर उनको भगवान् की सच्ची प्रेमिकाओ के रूप मे प्रस्तुत करने मे सूर ने कमाल कर दिया। मलयालम कवियो ने चीरहरण-लीला सक्षेप मे लिखी है।

इस प्रकरण के बाद सूरसागर मे पनघट-प्रस्ताव पर कई पद पाए जाते है। इसपर मलयालम के कवि ने कुछ नही लिखा है। परमानन्ददास के कुछ पद मिलते है। इन दो कवियो ने पनघट-प्रस्ताव के द्वारा गोपियो के माधुर्य भाव का विकास दिखाया है।

यमुना नदी के किनारे पर कृष्ण के रूप सौदर्य का आस्वादन करने के लिए गोप-कन्यकाए एकत्रित हो जाती है। उसी समय कृष्ण के छेडछाड से तग आकर गोपिया यशोदा से पास आकर शिकायत कर देती है। उनकी शिकायते सुनकर मा जसोदा आपे से बाहर होती है और कृष्ण को डाटती है। कृष्ण का उत्तर सुनकर यशोदा समझती है कि कृष्ण दोषी नही और उल्टे वह गोपियो को दोषी ठहराकर उनको बुरा-भला कहती है। कृष्ण के हाव-भाव, विनोदप्रियता, विविध चेष्टाए आदि से गोपिया विशेष रूप से राधा प्रेम मे विकल हो जाती है। उनका प्रेम इतना बढ गया कि उन्होने निश्चय कर लिया कि कृष्ण के अतिरिक्त और किसीसे ब्याह नही करेगी और कृष्ण की प्राप्ति के लिए सब कुछ छोड देगी। वे सूर्य भगवान् से प्रार्थना करती है कि भगवान् जसुमतिसुत को पाने के लिए हम प्रण करेगी। उन्हे हम आत्मसमर्पण करती है।[1]

सूर के समान परमानन्ददास ने भी लिखा है कि कृष्ण के अपूर्व सौदर्य, विनोद-प्रियता और छेडछाड आदि से गोप-कन्यकाए उनकी ओर आकर्षित होने लगी। ज्यो-ज्यो आयु बढने लगी त्यो-त्यो उनका अनुराग बढने लगा। कृष्ण के रूप और गुणो पर वे मुग्ध हो गई।

एक दिन यमुना के किनारे कृष्ण किसी गाय को पानी पिला रहे थे। उसी समय एक ग्वालिन पानी भरने को उस ओर आई। मार्ग मे फिसलन होने के कारण वह गिरने लगी। उसी दम कृष्ण ने उसे गिरने से बचाया। दोनो की आखे चार हो गई। उसका चित्र परमानन्ददास यो देते है

---

१ राग धनाश्री

ब्रज बनिता रवि कौ कर जोरैं।
सीत भीति नहि करति छहों रितु, त्रिबिध काल जल खोरै।
गौरीपति पूजति तप साधतिं, करत रहति नित नेम।
भोग रहित निसि जागि चतुर्दसि, जसुमति सुत कै प्रेम।
हमकौं देहु कृष्न पति ईस्वर, और नही मन आन।
मनसा बाचा कर्म हमारैं, सूर स्याम कौ ध्यान ॥१४००॥

—सूरसागर, भाग १, सभा-सस्करण, पृ० ५२६।

राग बिलावल

नेकु लाल टेकहु मेरी बहियां।
औघट घाट चढ्यौ नहिं जाई रपटति हौं कालिन्दी महिया।
सुन्दर स्याम कमल दल लोचन देखि स्वरूप ग्वालि उरझानी।
उपजी प्रीति काम अन्तर गति तब नागर नागरि पहिचानी।
हँसि ब्रजनाथ गह्यो कर पल्लव जाने गगरी गिरन न पावै।
परमानन्द ग्वालिनी सयानी कमल नैन तन परस्यौ भावै॥[1]

एक दूसरी गोपी पनघट पर कृष्ण के रूप को देखकर मुग्ध हो गई। वह कहती है—

राग आसावरी

सावरौ बदन देखि लुभानी।
चले जात फिरि चितयौ मोतन तब ते सग लगानी।
वे उहि घाट चरावत गैया हो इतते गई पानी।
कमल नैन उपरेनो फेर्यौ परमानदहि जानी॥[2]

नन्दकुमार की मुरली-ध्वनि, मोहिनी मूरत आदि देखकर एक गोपी मोह-परवश हो गई। उससे सबध मे परमानन्ददास लिखते है—

राग धनाश्री

भावे मोहि माधो बेनु बजावनि।
मदन गोपाल देखि हम रीझी मोहन की मटकावनि।
कुडल लोल कपोल लोल मधु लोचन चारु चलावनि।
कुतल कुटिल मनोहर आनन मीठे धेनु बुलावनि।
स्याम सुभग तन चदन मडित उर कर अग नचावनि।
परमानन्द ठगी नंद नदन दसन कुद मुसकावनि॥[3]

अष्टछाप के दूसरे कवियो ने भी मुरली की महिमा और कृष्ण के अपूर्व रूप पर कई पद लिखे है।

'यज्ञ-पत्नी-लीला' के द्वारा दोनो भाषाओ के कवियो ने कर्मकाण्ड की अपेक्षा भक्ति की श्रेष्ठता प्रमाणित की है। इसके सबध मे विस्तार से लिखा जा चुका है।

मलयालम के कवियो ने गोवर्धनलीला का वर्णन धार्मिक तथा दार्शनिक दृष्टि से किया है। सूर ने उसी प्रसग पर ब्रज के निवासियो का चरित्र और आचार-विचार आदि पर सुन्दर पद रचे है। कृष्ण सबसे पहले अपने सपने की बाते कहकर सरल तथा भोले-भाले ब्रज-निवासियो का मन इन्द्र की ओर से धीरे-धीरे विमुख करते है और

---

१ डा० गुप्त के परमानन्ददास-पदसग्रह से, पद स० ६०, अष्टछाप पृ० ७०७।
२ डा० गुप्त के परमानन्दास-पदसग्रह से, पद स० ९६, अष्टछाप पृ० ७०८।
३ डा० गुप्त के परमानन्ददास-पदसग्रह से, पद स० ८८, अष्टछाप पृ० ७१०।

गोवर्धनपूजा करने का उपदेश उन लोगो को देते है। इन्द्र का कोप और जलवृष्टि का चित्र बडी भावुकता से सूर ने खीचा है। यह प्रसग बडा स्वाभाविक बन पडा है। मलयालम तथा सस्कृत के कवियो ने जहा कृष्ण मे ईश्वरत्व का आरोप किया है, वहा सूर ने कृष्ण को केवल एक मानव के रूप मे प्रस्तुत किया है। सूर की वर्णनात्मक शैली प्रशसनीय है।

चेरुश्शेरी आदि कवियो ने गोवर्धन-लीला के अवसर पर घटित होने वाली एक दूसरी घटना का वर्णन किया है। कामधेनु एक गोपाल का वेष धरकर कृष्ण के सामने प्रकट हुई और कहा कि ब्रह्मा ने मुझे आपके समक्ष मे भेजा है। आपके अतिरिक्त हमारा कोई आश्रय नही। आप पृथ्वी का भार दूर कर दे। इतना कहकर उसने अपने दूध से भगवान् का अभिषेक किया। उसी दिन से कृष्ण का गोविन्द नाम पड गया।[1] यह प्रकरण सूरसागर मे नही पाया जाता।

एक दिन जमुना मे स्नान करते समय नन्द को वरुण के दूत लेकर चले गए। कृष्ण अपने बाबा की खोज मे वरुण नगरी मे पहुचे। कृष्ण के दर्शन पाकर वरुण बहुत प्रसन्न हुए। यह कथा दोनो भाषाओ के कवियो ने सक्षेप रूप से लिखी है। एजुत्तच्छन ने वरुण के द्वारा कृष्ण को निर्गुण, सगुण और भक्तवत्सल कहलवाया है।

मलयालम के कवि चेरुश्शेरी ने नन्द-प्रकरण के बाद रासक्रीडा का प्रसग, सन्ध्या-वर्णन, चन्द्रोदय-वर्णन, वेणुगान, गोपियो का भ्रम, बन्धुओ का त्याग, गोपियो की यात्रा, भगवान् कृष्ण की भेट, वनवर्णन, गोपियो का दु ख, भगवान् कृष्ण की सान्त्वना, वृन्दावनलीला, रासक्रीडा, जलक्रीडा, उद्यानलीला आदि विविध शीर्षको पर बडे विस्तार से वर्णनात्मक शैली मे एक प्रबधकाव्य की रचना कर डाली है।

सूर रासलीला का प्रारभ वशी-वादन से करते है। जब कृष्ण ने वशी बजाई तो गोपिया अपने सुत, पति, कुल-मर्यादा, पुरजन आदि सब छोडकर कृष्ण की भक्ति मे निमग्न होकर कृष्ण से मिलने निकली। उन्हे कृष्ण के बिना कुछ भी अच्छा न लगा।[2]

मुरली के प्रभाव के सबध मे विस्तार से लिखने के बाद सूर कहते है—मुरली

---

१ नान्मुखन् चोल्लाले वन्नु ञानिड्डने नाथनायुल्लोरुनिन्नेक्कारणमान्
× × ×
कार्वर्ण्णन तन्निभषेकमे च्चेयतिट्टु गोविन्दनेन्नोरु पेरुमिट्टाल्
—कृष्णगाथा, स० राजराज वर्मा, पृ० ५९।

२ राग गुड मलार
सुनत मुरली भवन डर न कीन्हौ।
स्याम पै चित्त पहुँचाइ पहिलै दियौ, आपु उठि चली सुधि मदन दीन्हौ।
कहत मन कामना आज पूरन करै नद नदन सबनि बन बुलाई।
जानि लायक भजी, तरुनि सुत पति तजी, काहु नहि लजी अति प्रेम धाई।
तज्यौ कुल, धर्म, गोधन, भवन जन तजे, पगी रस कृष्न बिनु कछु न भावै।
सूर प्रभु सौ प्रेम सत्य करि कै कियौ, मन गयौ तहा, इनकौ बुलावै।
—सूरसागर, भाग १, सभा सस्करण, पृ० ६०५।

नाम से सारा भुवन आकर्षित हो गया, हवा रुक गई, चन्द्रमा भ्रमण करना भूल गया, नक्षत्र-समूह लज्जित हो गए। नाग, नर, मुनि, सब थक गए। ब्रह्मा शिव समाधि से जाग पडे। नारद का ध्यान टूट गया, अनन्त का आसन चलायमान हो गया। बैकुण्ठ मे वशी की ध्वनि पहुची तो भगवान् विष्णु ने कृष्ण को देखने की इच्छा कमला से प्रकट की।[1] वे दोनो वृन्दावन पहुचे और रासलीला देखते-देखते पलके मारना भूल गए।[2] कहने का साराश यह है कि मुरली की अपार महिमा का वर्णन बडी सुन्दरता से विस्तृत रूप मे सूर ने किया। सारे लोको मे इसका प्रभाव पडा है।

मलयालम के कवियो ने इस प्रसग पर बहुत कुछ लिखा है। चेरुश्शेरी इस प्रकार लिखते हैं—श्याम मनोहर मुरलीधर वशी बजाने लगे तो चराचर पर जादू का सा प्रभाव पडा। वृन्दावन के सब प्राणी परमानन्दसागर मे डूब गए। पशु-पक्षियो पर जो प्रभाव पडा उसके बारे मे कवि कहते हैं—पुष्पो से भ्रमर रस चूस रहे थे। मुरली-गान सुनते ही उन्होने रस चूसना एकदम छोड दिया और गानरूपी मधु का आस्वादन करने के लिए चल पडे। गो-समूह गान सुनकर दग रह गया। मोर मोरनियो के सग नाचने लगे। वृक्ष मधु भरे पुष्पो को गिराना छोड अपनी डालियो को झुकाकर खडे हो रहे। कस के हृदय के समान कडा पत्थर भी उद्धव के मानस के तुल्य अद्‌भुत परतन्त्र हो गया। कल-कल स्वर करती हुई बडे वेग से बहने वाली यमुना भी लहरो का लहराना रोककर स्तब्ध रह गई। मछलियो के आनन्द के बारे मे क्या कहना! वे सब अपनी-अपनी पूछ के सहारे जल से स्थल मे कूदकर उछलने लगी। हिरनिया गरदन घुमाकर जहा से गान सुनाई पडा उस ओर देखने लगी। आधा चबा हुआ तृण उनके मुह मे लगा रहा। सिह ने, जो क्रोध के मारे हाथी का मस्तक फाड रहा था, ज्यो ही मुरली-गान सुना, खडा रहा। चूहे के पीछे दौडते हुए साप ने जैसे ही उसे पकडा वैसे ही गान सुना, वह भी अवाक् स्थिर हो गया। बाघ बछडे पर हमला कर रहा था, गीत सुनते ही उसे अपने बच्चे के समान प्यार करने

---

१ राग कल्यान

हरषि मुरलीनाद स्याम कीन्हौ।
करषि मन तिहुं भुवनि सुनि, थकि रह्यौ पवन, ससिहि भूल्यौ गवन ज्ञान लीन्हौ।
तारका गन लजे, बुद्धि मन मन सजे, तबहि तनु-सुधि तजे सब्द लाग्यौ।
नाग नर मुनि थके, नभ धरनि तन तके, सारदा स्वामि, सिव ध्यान जाग्यौ।
ध्यान नारद टर्‌यौ, सेस आसन चल्यौ, गई बैकुठ धुनि मगन स्वामी।
कहत श्री प्रिया सौ राधिका रमन, ये सूर प्रभु स्याम के दरसकामी।

—सूरसागर, भाग १, सभा-सस्करण, पृ० ६२७।

२ पल्प्पद मालकलत्भुतमायोरु पुष्परसत्ते वेटिञ्ञुटने

× × ×

व्याघ्रवरन चेन्नडङ्डेणक्किटाविने शीघ्रतर चेन्नु वायूक्कोण्डप्पोल
पाट्टड्डु केल्क्कयाल तन् पैतले प्पोले वाट्ट वरुत्ताते चेत्तुनिन्नान

—कृष्णगाथा, स० राजराज वर्मा, पृ० ६४, ६५।

और दुलारने लगा। कवि आगे कहते है—मुरली-गान ब्रह्मा के लिए सामवेद समान, भक्त लोगो के लिए मन मे आनन्द उत्पन्न करने वाले मधु के तुल्य और नारियो के लिए मन्मथ मन्त्र-सा मालूम पडा।[1] विविध कामो मे लगी हुई गोपिकाए सब कुछ भूलकर कृष्ण के पास दौडी हुई आई। वे पागल के समान दीख पडी। इस विषय मे दोनो भाषाओ के कवियो ने एक ही समान कविताए रची है। जब गोपिया रात को कृष्ण के पास आई तब उन्होने ये वचन कहकर उन्हे लौटाने की कोशिश की—आप लोग क्यो इस अवसर पर यहा आई, यह तो भयकर वन है। यहा कई भयकर जानवर है। अब आप लोगो के पतिदेव और गुरुजन आपके विरह मे व्याकुल हो रहे होगे। क्या आप वन की शोभा देखने के लिए निकली है? तो यहा की हरियाली, पक्षियो का कलरव आदि का आस्वादन करके जल्दी लौट जाइए। नही तो घर के लोग रूठ जाएगे। लोग क्या-क्या सोचेगे और कहेगे?[2] ये सुनकर गोपियो को बडा दु ख हुआ और उनका चेहरा उदास हो गया। वे इस प्रकार की बातो की आशा भी नही करती थी। अन्त मे कृष्ण ने उनको सान्त्वना दी और उनके साथ रासक्रीडा की। बीच मे गोपियो के हृदय मे जरा अहकार पैदा हुआ, उसके सबध मे चेरुश्शेरी ने लिखा है—

कान्ह रूपी जगमगाता दीप बुझ गया तो दु खान्धकार चारो ओर फैल गया। गोपियो के मन मे प्रेममिश्रित क्रोध उत्पन्न हुआ।[3] कृष्ण के अन्तर्धान होने से गोपियो को अपार दु ख हुआ। कृष्ण को कोसती हुई और आखो मे आसू भरे हुए वे उनकी खोज करने लगी। मार्ग मे वृक्ष, लताए, फूल भ्रमर, पक्षी आदि से कृष्ण का पता-ठिकाना पूछती है। विरह-वेदना से उनका हृदय छटपटाने लगता है। यह दृश्य सचमुच करुणापूर्ण है। वे पेड-पौधो से पूछती है—हे अनन्नास के पौधे! तुझसे एक बात हम पूछे तो निष्कपट होकर बता देना। बता कि क्या हमारे कृष्ण इस ओर आए है? उनका रग काले बादल

---

१ वार् मेत्तुम् गानमप्पकज योनिक्कु सामतिन गान माय्मेविनिन्नु।
× × ×
[illegible] मोहनमायितु लोकड्डल्क्कु।
नारिमारेल्लावर्क्कु मारन् जपिक्कुन्न मारण मन्त्रमाय् नेरेवन्नू।
—कृष्णगाथा, स० राजराज वर्मा, पृ० ६५।

२ अन्पाटि तन्निलिन्नावर्क्कु मोरुवर्क्कु तप्पेटुमारेतु वन्नीलल्ली
× × ×
गोपन्मारेल्लारु काणुन्ननेरत्तु को पिच्चु चेय्युन्न वेलयेन्ते?
वैकल्यमोन्निनु वाराते कण्डड्डु वैकाते पोकण निड्डलेल्लाम्
—कृष्णगाथा, स० राजराज वर्मा, पृ० ६८।

३ कण्णनायुल्लोरु नल् विलक्कड्डिने तिण्ण मरञ्ञड्ड पोय नेर
[illegible] पुक्कु परन्नूतायि
प्रेम मेज़ुन्नोरु [illegible] नुरुड्डुण्डायि।
—कृष्णगाथा, स० राजराज वर्मा, पृ० ७३।

के समान है, सिर के बालो पर मोरपख खोसे हुए है, हाथ मे मुरली है, पैरो मे नूपुर है। छाती पर माला है, पीताम्बर पहने है, भाल पर बिन्दी है, वाणी मीठी है, ललाट पर कुकुम लगा है, भुजाओ मे ककण है, स्त्रियो के हृदयो को शीतल करने वाली उनकी मीठी मुस्कान है। उस चितचोर को शायद तुमने न देखा होगा, तो भी यह मत कहना कि मैने नही देखा। हे कोकियो ! तुमने हमारे केशव को देखा है ? बालको के साथ खेलते-खेलते वे इस ओर तो नही आए ? यदि कही देखा है तो तुरन्त हमे बता दो। हे कोको ! तुमने हमारे गोकुल-नायक को देखा ?[1] इस प्रकार रोती-कलपती और हाय-हाय करती हुई गोपिया उनको खोजती है और अन्त मे शिथिल होकर उनको पुकारकर कहती है—हे भगवान्, हमारे पिता, माता सब तुम ही हो। हमारे लिए दूसरा कोई अवलब नही। हमे अभय स्थान दो। हे कृष्ण ! तुम्हारी कृपा न हो तो हम कैसे जी सकती है ? तुम प्रत्यक्ष होकर वचन रूपी सुधा की वर्षा कर दो। इसके पूर्व जब-जब आपत्तिया आई थी, तब तुम्हीने उन्हे दूर करके हमारी रक्षा की थी। अब हमपर प्रसन्न हो जाओ।[2]

---

१ कैने आन निन्नोट्टु मेल्लोन्नु चोदिच्चाल कैतव कैविट्टु चोल्लेण नी
एड्डलु वन्नुल्लोरोमन क्कान्तने विड्डु वरुन्नतु कण्डिल्लल्ली
कार मुकिल पोले यवन्नु निर तन्ने कारकुजलोटटुण्डु केट्टिप्पिन्ने
कय्यिल कुजनुण्डु कालिल् च्चिलपुण्ड् मेय्यिलम्माणपुट्ट पुण्णुमुण्डे
मञ्जल पिजिञ्ञोरु कूरयुटुत्तुड्डु
मञ्जल माय मोजियुमुण्टे
नेट्टिमेल ल्लाण कुरु निरयुमुण्डु
नेरिल्लयातोरु क्कान्तियुण्डे
कुकुम कोण्डु तोट्टुकुरि यिट्टुण्डु
ककणमुण्डु करउलिल
पेण्णुड्डल् नेन्चक तन्नेप्पिलक्कुन्न
पुन्चिरि युण्डुटल कूटक्कूटे
कण्टिल्ल येन्किल् कन्डतिल्लेन्नतु
मिण्डोल्ला अड्डलोटड्डने नी
× ×
केवल कण्टिल्ल येन्ने वेण्डु ॥२८४॥

—कृष्णगाथा, स० पि० के० नारायण पिल्ला, पृ० २७४ से २८५।

२ अच्छनाय निन्नतु अम्मयाय् निन्नतु
निश्चलना किन नातानत्रे
नायिन्नु अड्डले क्कैवेटिञ्ञेकिलो
पोटोल्लायोन्नुमे कालमिप्पोल
× × ×
चेवि तन्निल पोट्टि निरय्क्केणमेट्टमेट्ट

—कृष्णगाथा, स० श्री रामविलास प्रेस, पृ० ७८।

इस प्रकार की कातर प्रार्थना के बाद कृष्ण प्रत्यक्ष होकर गोपियो को प्रसन्न करते है। सच्चा भक्त अपना अहकार जब दूर करता है तब उसे भगवान् का साक्षात्कार होता है। उसी प्रकार गोपियो के मन मे अहकार हुआ तो भगवान् कृष्ण अप्रत्यक्ष हुए। फिर आत्मसमर्पण से गोपियो का मन शुद्ध हुआ, तब भगवान् के दर्शन हुए। यद्यपि गोपियो को कुछ लोग चरित्रहीन कहते है तो भी कवि ने दिखा दिया है कि पश्चात्ताप और भक्ति से गोपियो के मन की मलिनता दूर होती है और योगियो के लिए भी दुर्लभ भगवान् के दर्शन उन्हे प्राप्त होते है।

प्राय सभी कवियो ने सजीव, सुन्दर भाषा मे लिखा है कि भगवान् कृष्ण ने दर्शन देने के बाद गोपियो के साथ रासक्रीडा की। उसे देखने के लिए अनेक देव तथा देविया आती है जिसका चित्रण कृष्णगाथाकार ने विस्तार से किया है। यह उनकी मौलिक रचना है। उस प्रसग से गाथाकार की बहुमुखी प्रतिभा असाधारण लोकज्ञान, विशेषकर स्त्रियो के स्वभाव का ज्ञान तथा कल्पना की कुशलता का परिचय पाठक को मिलता है। कवि ने लिखा है—रभा आदि अप्सराओ ने कृष्ण की रासक्रीडा देखने के लिए सबसे पहले आकाश-गगा मे स्नान किया। फिर सुन्दर-सुन्दर साडिया पहन ली। सबने निश्चय कर लिया कि अच्छे-अच्छे वस्त्र पहनकर ही वहा जाना चाहिए। नन्दनन्दन के सामने सुन्दर रूप मे ही उपस्थित होना चाहिए।[1]

फिर सब प्रकार सजकर वे निकलती है। कवि ने इन सब का बडा लबा वर्णन किया है। स्त्रियो के स्वभाव, बातचीत, गहनो की ओर उनकी रुचि, आपस मे बुरा-भला कहना, अपनी-अपनी साडिया और वस्त्रो के सबध मे बढ-बढकर बाते करना आदि इतनी तन्मयता और सुन्दरता से शायद ही किसी कवि ने लिखा हो। उनकी बातचीत का ढग इस प्रकार है—अरी मेनके, तू जरा आगे ही चल तो दूसरी कहती है—यदि तू देर करेगी तो मै आगे जाऊगी। यह तो कवि की मौलिक कल्पना है। देवस्त्रियो के नाम रखने मे कवि ने अपनी प्रतिभा और भावुकता प्रदर्शित की है। गुण के अनुसार नाम भी दिए गए है। नाम ये है, कन्दर्पी, मालिका, मल्लिका, विलासिनी, लीलावती, हेमा, शृगारमजरी, काचनमालिनी, पेशलवादिनी, मालिनी, पकजमालिनी, सीमन्तवेणी, आनदलीला, मालेयलीला, कर्पूरवाणी, शकिनी, कस्तूरमजरी, मालेयकामिनी, चन्द्रिका आदि। मूल ग्रन्थ मे यह प्रसग बहुत साधारण रीति से लिखा गया है। उस समय गन्धर्वराज उत्सुकता से अपनी-अपनी स्त्रियो को साथ ले विमानो मे आरूढ होकर चलने लगे तो ऐसा प्रतीत हुआ कि सैकडो विमानो से आकाश भर गया। दुन्दुभिया बजने लगी और पुष्प-वृष्टि

---

१ नन्द तनूजने काणुन्न नेरत्तु
नन्नायिरिक्केण नामेल्लारु

—कृष्णगाथा, स० पि० के० नारायण पिल्ला, पृ० ३२५।

होने लगी।[1]

सूरसागर मे सूर ने लिखा है कि रासक्रीडा के अवसर पर श्रीकृष्ण के साथ राधा का विवाह हुआ। वे कहते हैं—विवाह के समय देवो ने बाजे बजाए। मुनिवृन्द जयजयकार करने लगे। नवल गिरधरलाल दूल्हे बने और दुलहिन श्री राधिका।[2] विवाह के बाद रासक्रीडा का वर्णन बडे विस्तार से सूर ने लिखा है। इस क्रीडा मे राधिका को प्रमुख भाग दिया गया है। यह सूर की मौलिक सूझ है। राधा-कृष्ण का मिलन, रति-सबधी वर्णन, राधा का रूठ जाना, उन्हे मनाने के लिए कृष्ण की उक्तिया, राधा का मान जाना, रतिलीला आदि का नग्न चित्र सूर ने खीचा है।

पनघट-प्रस्ताव के समान दानलीला सूर की मौलिक रचना है। इसके द्वारा सूर ने माधुर्य भाव की महत्ता दिखाई है। गोपियो के प्रेम की विभिन्न अवस्थाओ का चित्रण सूर ने दिया है। कृष्ण का अपने सखाओ के साथ गोपियो से वार्तालाप करना नाटकीय और सजीव है। इसकी सरल तथा सुबोध शैली प्रशसनीय है।

इसकी कथा यह है कि जब गोपिया दधि बेचने के लिए मथुरा जाती है तब मार्ग मे अपने सखाओ के साथ कृष्ण उनको रोककर दधिदान मागते है। गोपिया पहले उनका विरोध करती है परन्तु अन्त मे उनकी इच्छा के अनुसार वे दधि देने के लिए तैयार होती है। गोपियो की व्यग्य भरी बातो से उनका उत्कट कृष्ण-प्रेम व्यजित होता है। अन्त मे मे यहा तक हो गया है कि गोपिया कृष्ण पर पूर्ण रूप से सर्वस्व अर्पण करती है जिससे वे योगियों के लिए भी दुर्लभ सुख की अधिकारिणी बन जाती है।

दानलीला मे सूर ने लिखा है कि कृष्ण भक्तो को सुख पहुचाने वाले है, स्त्री-पुरुष भेद के बिना जो उनका भजन करते है उनके साथ समान भाव से वे व्यवहार करते है। जो जिस भावना से उनकी पूजा करते है उसी प्रकार उनको वे दर्शन देते है। कामातुर गोपियो ने उनको पति के रूप मे पाने के लिए मन-वाणी-काया से उनमे अपना चित्त लगाया। भगवान् कृष्ण ने उसी प्रकार उनकी इच्छा पूरी की। जहा-जहा गोपिया जाती थी, वहा-वहा कृष्ण ने जाकर उनका मन बहलाया और उनकी काम-व्यथा मिटाई। नवयुवतिया भिन्न-भिन्न कर्म करते समय भी कृष्ण की मनोमोहिनी सूरत का ध्यान रखती

---

१. य मन्नेयरन नमस्तावद्विमान शत सकुलम
दिवौकसा स दाराणामौत्सुक्यापहृतात्मनाम्
ततो दुन्दुभयो ने दुर्निवेतु पुष्पवृष्टय
जजु गन्धर्व पतय सस्त्रीका स्तयशोमलम्

—दशम स्कन्ध अध्याय ३३।

२ बाजहिं जु बाजन सकल सुर नभ पुहुप अजलि बरषहीं।
थकि रहे व्योम बिमान, मुनि जन जय सबद करि हरषहीं।
सुनि सूरदासहि भयौ आनँद, पूजि मन की साधिका।
श्री लाल गिरिधर नवल दूलह, दुलहिनी श्री राधिका ॥१६९०॥

—सूरसागर, भाग १, सभा-सस्करण, पृ० ६३१।

हुई सुख लूटने लगी । गोपिया गोरस बेचने के लिए निकली तब उनकी सुन्दर वेश-भूषा देखकर कृष्ण बहुत प्रसन्न हुए और उन्होने अपने सखाओ के साथ दधिदान मागकर उनको सुख पहुचाया ।[1] सूर ने इस लीला के द्वारा गोपियो की मधुर भक्ति की चरम सीमा दिखाई है ।

दधिदान मागते समय कृष्ण और गोपियो के सवाद बडे मनोरजक हैं । बातचीत के सिलसिले मे कृष्ण ने कहा कि इस त्रिभुवन मे कोई ऐसा नही जो उनके वश मे न आता हो । गोपिया कहती है—छोटे मुह बडी बात ! अपने को सभालकर बात कहो । जो अनजान है उससे ऐसी बाते करो । तीन लोक और कस कब से तुम्हारे वश मे आ गए है ? इस प्रकार की झूठी बाते क्यो कर रहे हो ? हमे यह अच्छा नही लगता ।[2]

बाते करते-करते कृष्ण कहते है—मैंने लडकपन मे गोवर्द्धन पर्वत को अपने कन्धो पर उठा रखा और मै बडा शक्तिशाली हू । इसपर गोपिया कहती है—तुमने अपने घर का गिरवर उठा लिया और उसपर व्यर्थ अभिमान करते हो । हमे यही मालूम है कि तुम गाय चराने वाले, पीताम्बरधारी हो । तुम्हारी कामरी और लकुटिया भी हम जानती है ।[3]

फिर कृष्ण ने अपनी बडाई करते हुए कहा कि हमने भक्तो की रक्षा करने के लिए अवतार लिया है और हम सर्वव्यापी और सर्वज्ञ है ![4] इसे सुनकर गोपिया व्यग्य करती

---

१ भक्तनि के सुखदायक स्याम । नारी पुरुष नही कछु काम ॥
सकट मैं जिनि जहा पुकार्‌यौ । तहा प्रगटि तिनकौं उद्धार्‌यौ ॥
× × ×
अब दधि दान रचौं इक लीला । जुवतिनि सग करौं रस क्रीला ॥
सूर स्याम सँग सखनि बुलायौ । यह लीला कहि सुख उपजायौ ॥
—सूरसागर, भाग १, सभा-सस्करण, पृ० ७६४-७६५ ।

२ छोटे मुह बड़ी बात, कहौ किन आपु सम्हारे ।
तीन लोक अरु कस कबहि बस भए तुम्हारे ।
× × ×
झूठी मिलवत आनि, सुनत हमकौं नहि भावत ॥
—सूरसागर, भाग १, सभा सस्करण, पृ० ७६६ ।

३ गिरवर धर्‌यौ आपने घर कौं ।
ताही कै बल दान लेत हौ, रोकि रहत तिय पर कौं ।
× × ×
सूरदास कांधै कामरिया, और लकुटिया कर कौं ।
—सूरसागर, भाग १, सभा सस्करण, पृ० ७८५ ।

४ भक्त हेत अवतार धरौ
ब्रह्मा कीट आदि लौं व्यापक, सब कौं सुख दै दुखहि हरौं ।
सूर स्याम तब कही प्रगटही जहा भाव तहँ तैं न टरौं ।
—सूरसागर, भाग १, पद स० २१४०, पृ० ७८७ ।

है अरे कृष्ण ! तुम क्या बात करते हो ? युवतियो से इस प्रकार की बाते कहकर क्यो डरपाते हो ? यदि चाहो तो माखन-दधि ले लो परन्तु युवतियो को क्यो कष्ट पहुचाते हो ?[१]

कृष्ण ने मार्ग रोका तो गोपियो ने घरवालो को बुलाने की धमकी दी। तब कृष्ण ने कहा कि मै राजा कस का भी काम तमाम कर सकता हू ।[२] उसको मारकर छत्रपति बनने की इच्छा तुच्छ है और यह भी कहा कि जब तक कस जीता रहेगा तब तक हमारी मैत्री रहेगी। यह सुनकर गोपियो के मन मे कृष्ण के प्रति शका होने लगी ।[३] कृष्ण की यह बात जानकर गोपिया अत्यन्त व्याकुल हुई । उनसे अलग होकर रहना गोपियो के लिए बिलकुल असभव मालूम पडा। तुरन्त दधिदान करने के लिए वे तैयार हो गई । कृष्ण तो दधिदान से तृप्त न होने वाले थे। वे और ही दान चाहते थे। गोपिया यह जानकर कहती है—सखाओ के साथ पराई स्त्रियो को घेरना अच्छा नही, मर्यादा भग हो जाएगी ।[४] कृष्ण ने उनकी बातो पर ध्यान न दिया। अत मे प्यारी ने उनको अपने पास बुलाकर लोक-मरजाद की बात कही। सखाओ ने कहा कि तुम सब एक हो।[५] यह आध्यात्मिक तत्त्व गोपियो की समझ मे नही आया।

---

१ कान्ह कहा की बात चलावत।
स्वर्ग पताल एक करि राखौ, जुवतिनि कहा बतावत॥
जौ लायक तौ अपने घर को, बन भीतर डरपावत।
कहा दान गोरस को ह्वै है, सबै न लेहु दिखावत॥
रीती जान देहु घर हमको, इतनें ही सुख पावत।
सूर स्याम माखन दधि लीजै, जुवतिनि कल अरुझावत॥
—सूरसागर, भाग १, सभा-सस्करण, पद स० २१४१, पृ० ७८७।

२ अब तुमकौं मै जान न दैहौं।
दान लेउ कौडा कौडी करि, बैर आपनौ लैहौं।
गोरस खाइ बच्यौ सो डार्‌यौ मटुकी डारी फोरि।
दै दै गारि नारि झकझोरी चोली के बंद तोरि।
हँसत सखा करतारी दै दै बन मै रोकी नारि।
सुरत लोग घर तै आवैगे सकिहौ नही सम्हारि।
घर के लोगनि कहा डरावति कसहि आनि बुलाइ।
सूर सबै जुवतिनि कै देखत, पूजा करौ बनाइ।
—सूरसागर, भाग १, सभा-सस्करण, पद स० २१६३, पृ० ७९४।

३ तबहि लगि यह सग तिहारौ, जब लगि जीवत कस।
सूर स्याम के मुख यह सुनि तब मन मन कीन्हो सस॥
—सूरसागर, भाग १, सभा-सस्करण, पद स० २१६५, पृ० ७९४।

४ सखा लिए तुम घेरत पुनि पुनि, बन भीतर सब नारि पराई।
सूर स्याम ऐसी न बूझियै इन बातनि मरजाद नसाई॥
—सूरसागर, भाग १, सभा-सस्करण, पद स० २१७२, पृ० ७९६।

५. सूर स्याम स्यामा तुम एकै, कह हसिहै ससार।
—सूरसागर, भाग १, पद स० २१७६, सभा-सस्करण, पृ० ७९८।

अन्त मे गोपियो ने श्याम से शरण देने की याचना की। कृष्ण ने उन गोपियो की प्रार्थना स्वीकार कर ली। सूरदास कहते है—कृष्ण अन्तर्यामी है, उन्होने गुप्त रूप मे ही यौवन का दान ले लिया।[1] कवि ने यहा दिखा दिया है कि गोपियो का काम-सुख केवल मानसिक है।

इसके बाद सूरदास दधिदान की पार्थिव लीला का वर्णन करते है। गोपालो के साथ कृष्ण दधि-माखन खाते है। कृष्ण तो अपने लिए माखन नही खाते है वरन् अपनी प्रेमिकाओ की तृप्ति के लिए खाते है, प्रेमवश ऐसा करते है। सभी मटकिया वैसे ही भरी रहती है। उनके एक हाथ मे दधि और दूसरे मे दधिजात है। गोपिया उन्हे देखकर अत्यन्त प्रसन्न होती है।[2] दान-लीला का इतना सुन्दर वर्णन किसी भी पुस्तक मे और किसी भी भाषा मे नही पाया जाता।

गोपियो के साथ राधा और कृष्ण का झूला झूलने का एक प्रसग सूरसागर मे पाया जाता है। जो सूर की स्वतत्र रचना है। यह एक खण्डकाव्य के समान प्रतीत होता है। कृष्ण के सुख-विलास का चित्र इसमे खीचा गया है। गायो को चराने के लिए कान्ह वन मे जाया करते है। तब उनके रूप-सौदर्य, मुरली-वादन आदि की चर्चा मे गोपिया अपना समय बिताती है। इन सबके बारे मे भागवत और दूसरी पुस्तको के समान सूरसागर मे भी लिखा गया है। सूर का वर्णन और भी अधिक भावात्मक है।

सुदर्शन-मोक्ष, शखचूडवध, अरिष्टासुर का वध के बाद चेरुश्शेरी ने अपनी कृष्ण-गाथा मे नारद और कस की बातचीत का वर्णन किया है। नारद कस से कहते है कि अरे कस! वृन्दावन मे एक लडका पैदा हुआ है, जो देवकी का आठवा पुत्र है। तुम उससे

---

१ अतरजामी जानि लई।
मन मै मिले सबनि सुख दीन्हो, तब तनु की कछु सुरति भई।
तब जान्यौ बन मै हम ठाढी, तन निरख्यौ मन सकुचि गई।
कहति परस्पर आपुस मे सब, कहा रही, हम काहि रईं।
स्याम बिना ये चरित करै को, यह कहि के तनु सौपि दयौ।
सूरदास प्रभु अतरजामी, गुप्तहि जोबन दान लयौ।
—सूरसागर, भाग १, सभा-सस्करण, पद स० २२०९, पृ० ८०७।

२ गोपिनि हेत माखन खात।
प्रेम कौ बस नद नदन नैंकु नाहि अघात।
सबै मटुकी भरी बैसें हि प्रेम नाहि सिरात।
भाव हिरदय जानि मोहन, खात माखन जात।
इकनि कर दधि दूध लीन्हे, इकनि कर दधि जात।
सूर प्रभु कौ निरखि गोपी, मनहिं मनहिं सिहात।
—सूरसागर, भाग १, सभा-सस्करण, पद स० २२१९, पृ० ८१०।

होशियार रहो। यदि तुम उसे जल्दी न मार डालोगे तो तुम्हारा नाश होगा।[1] फिर केशी और व्योमासुर का वध कृष्णगाथा मे लिखा गया है। सूर ने वे सब प्रसग बहुत सक्षिप्त करके लिखे है।

अक्रूर के आगमन के प्रसग पर सूर ने मौलिकता प्रदर्शित की है। यहा नारद कृष्ण की सलाह लेकर कस के पास जाते है और कस को उपदेश देते है—राम-कृष्ण को मथुरा मे बुलाना चाहिए। कस के दु स्वप्न और नारद के भावी कस-वध-सबधी स्वप्न सूरदास की मौलिकता के परिचायक है। गोपिया और यशोदा के करुणाभावो से ओत-प्रोत विरह-विलाप का चित्रण भी मार्मिक है।

कस की आज्ञा से अक्रूर वृन्दावन आते है और दोनो भाइयो को मथुरा ले जाते है। कृष्ण के दर्शन के लिए आने वाले भक्त अक्रूर की चिन्ताओ का चित्रण करने के बाद उनके मिलन का प्रसग सुन्दर शैली मे लिखा गया है। कृष्ण-गाथाकार ने अक्रूर की निष्कलक भक्ति का सुन्दर चित्र यो खीचा है

जब अक्रूर ने देखा कि भगवान् के पैर भूमि पर अकित है तो रथ से उतरकर दण्डवत् की और वह मिट्टी अपने शरीर पर लगा ली। अत मे कवि ने भूखे-प्यासे चातक से अक्रूर की तुलना की है।[2] यह कल्पना बडी उत्कृष्ट है।

मथुरा मे रहते समय कृष्ण का मन, माता यशोदा से विलग होने के कारण सदा उदास रहता था। मा के लिए अच्छे कपडे देने के बाद उन्होने नद को मा यशोदा को सदेश देते हुए कहा मेरे ये चार कपडे मेरी मा के हाथ मे आज ही दे देना। फिर कहना, मुझे मत भूल जाना। दूध और मक्खन न मिलने से मेरे पेट मे बडा दर्द है। यदि घर से कोई आदमी इस ओर आए तो उसके द्वारा दूध आदि पहुचा देना, नही तो मै रोऊगा ही। मैने अपनी काछनिया सदूक मे छिपाकर रखी है। मन मे दु ख है कि वे खराब न हुई हो। हल्दी से रगीले मेरे कपडे सुरक्षित रखना। मैने बच्चो के चुटकी काटी जिससे तुमने नाराज होकर मुझे मारा। तब मै बिना खाए रहा। उस समय मुझे प्रसन्न करने के लिए एक कपडा दिया था न। उसे कही तुम सुरक्षित रखो मा। मेरी किकिनिया, तीर-कमान, खिलौने, सब मेरे आने तक रखना मा।[3]

---

१ मुन्पिले नी चेन्नु कोल्लुन्नोनल्लाय्किल
तण पेटु मेन्नुल्लतोर्केवेण

—कृष्णगाथा, स० राजराज वर्मा, पृ० १०६।

२ कामिच्चु निन्निट्टु केजुन्न वेज्ञापल
कारमुकिल मालये क्काणुम्पोले।

—कृष्णगाथा, स० राजराज वर्मा, पृ० १०६।

३ अम्मय्क्कु नल्कुवान चेम्मल्ल चेलकल्
नन्दन्टे कैयियले नल्कि च्चोन्नान
नल् च्चेल नालु मेन्नम्म तन् कैय्यिले

उद्धव के द्वारा कृष्ण ने यशोदा को जो सन्देश भेजा था उसके वर्णन मे सूर और चेरुश्शेरी मे समानता दिखाई पडती है । सूर कहते है—हे मा ! हम और हलधर भैया दोनो चार-पाच दिन मे लौट आएगे। मेरी मुरली, बेत, बिखान, सीग आदि को देखना, नही तो राधिका कुछ खिलौने चोरी करके ले जाएगी। जिस दिन से हम वहा से निकले उस दिन से मुझे किसीने कन्हैया नही पुकारा । यहा वसुदेव और देवकी मुझे अपना पुत्र बताते है। नन्द बाबा ने तो बडी निठुरता दिखाई है । यहा हमे पहुचा देने के बाद इस ओर आए भी नही।[1] बच्चो का सहज स्वभाव और भोलेपन के साथ शिकायत आदि का सरल और मार्मिक चित्रण इन पदो मे किया गया है।

अक्रूर के साथ राम और कृष्ण मथुरा मे पहुचते है। उनको देखकर मथुरा के नागरिको तथा कस पर क्या प्रभाव पडा, उसका सुन्दर चित्र सूर ने खीचा है । रजक-वध, कुब्जा की कथा, चाप-भजन, कुवलयापीड हाथी, मल्ल-वध आदि का वर्णन दोनो भाषाओ के कवियो ने किया है। मल्लयुद्ध का वर्णन मलयालम के कवियो ने विशेष रूप से किया है, जो सूरसागर मे नही पाया जाता। कसवध, उग्रसेन का राज्याभिषेक, नन्द को ब्रज के लिए विदा करना, इन सबकी कथाए लिखकर कृष्णगाथाकार ने अपनी कृति का प्रथम भाग समाप्त किया है । और गुरुदक्षिणा से लेकर दूसरे भाग का श्रीगणेश

यिच्छयिल नलकेण मिन्नु तन्ने
एन्नम्म तन्नोट्टु चोल्लेण पिन्ने नी
येन्ने मरक्कोल्ला येन्निड्डने
× × ×
किकिणि येड्डानु वीजोल्लाते
पावकलोन्नुमे पाजायिप्पोकाते
पालिच्चु कोल्लेण पाराने नी
चेणुट्ट् निन्नुल्लोरोण विल्लोल्लामे
ञाणट्टु पोकाते सूच्चिक्केण

—कृष्णगाथा, स० राजराज वर्मा, पृ० १२०-१२२।

१ कह्यौ कान्ह सुनि जसुदा मैया ।
आवहिगे दिन चारि पाच मैं, हम हलधर दोउ भैया ।
मुरली बेत बिषान हमारौ, कहू अबेर सबेरौ ।
मति लै जाइ चुराइ राधिका, कछुव खिलौना मेरौ ।
जा दिन तै हम तुम सौ बिछुरे, काहु न कह्यौ कन्हैया ।
प्रात न कियौ कलेऊ कबहू, साझ न पय पियौ घैया ।
कहा कहौ कछु कहत न आवै, जननी जो दुख पायौ ।
अब हमसौ बसुदेव देवकी, कहत आपनौ जायौ ।
कहिऐ कहा नद बाबा सौं, बहुत निठुर मन कीन्हौ ।
सूर हमहि पहुंचाइ मधुपुरी, बहुरि न सोधौ लीन्हौ ।

—सूरसागर, भाग २, सभा-सस्करण, पद स० ४०६१, पृ० १४३०-३१ ।

किया है । नन्द का ब्रज-आगमन, नन्द और यशोदा का सवाद इन प्रसगो पर अनेक वात्सल्यपूर्ण तथा मार्मिक पद सूर ने लिखे है। उसी प्रसग पर गोपियो का विरह नैन-प्रस्ताबु-पद, स्वप्न-दर्शन, पावस-समय-वर्णन और चन्द्र प्रति तरक ददति लिखकर सूर ने मौलिकता दिखाई है।

मलयालम के कवि चेरुश्शेरी ने उद्धव के आगमन, उनके उपदेश, इसी बीच मे भ्रमर का आना, उसे कृष्ण का दूत समझकर गोपियो के व्यग्यवचन आदि की कथा बहुत सक्षेप मे लिखी है। सूर ने इस प्रसग को लेकर बहुत से पद लिखे, जिनसे उनकी कवित्व-शक्ति और भक्ति-भावना का पूर्ण परिचय मिलता है । सूरसागर मे बताया गया है कि सच्ची भक्ति के सामने ज्ञान की महत्ता का कोई मूल्य नही। यही दिखाने के लिए कृष्ण ने उद्धव को भेजा था। उन्होने प्रत्यक्ष रूप से उद्धव से कहा कि तुम वृन्दावन जाकर योग की बाते सुनाकर गोपियो को ज्ञान का प्रबोध दो । तुम परब्रह्म के बारे मे अच्छी तरह जानते हो। अत उनको ज्ञान की बाते समझाओ । वास्तव मे कृष्ण ने मन मे सोचा कि उद्धव के ज्ञान का अहकार मिटाना चाहिए। इसलिए उन्हे पत्र देकर ब्रज भेज दिया।

कृष्ण के आदेश के अनुसार उद्धव गोकुल पहुचे। उन्हे प्रिय कृष्ण का सखा समझकर नद, यशोदा और गोपियो ने उनका बडा सत्कार किया और वे सब कृष्ण के सन्देश सुनने के लिए आतुर हो उठे । उद्धव ने बिना सन्देश सुनाए निर्गुण ब्रह्म के बारे मे एक लम्बा-चौडा व्याख्यान दे डाला, जो गोपियो को अच्छा न लगा। तब कही से एक भ्रमर राधिका के चरण पर बैठा। उसे देखते ही गोपियो ने उसे सबोधित करते हुए व्यग्य की बौछार करनी प्रारभ की। उन्होने निर्गुण के सिद्धान्तो का खडन युक्ति तथा अनुभव से किया। इसी प्रसग को भ्रमरगीत कहते है। इसपर हिन्दी के बहुत से कवियो ने बहुत सी सुन्दर रचनाए रची है । स्वय सूरदास ने तीन भ्रमरगीत रचे है । परमानन्ददास, नन्ददास, तुलसीदास, रहीम, मतिराम, भारतेन्दु आदि कवियो ने भी भ्रमरगीत लिखे है। हिन्दीकृष्ण-काव्य मे भ्रमरगीत का स्थान महत्त्वपूर्ण है।

सूर लिखते है—नन्दनन्दन के आगमन की वार्ता सुनकर राधा को जल के लिए मरती हुई मछली के समान आनन्द हुआ।[1] केवल राधा की ही नही, सारे ब्रज-निवासियो की मूर्च्छा दूर हुई। लेकिन दु ख की बात है कि जब उन्होने जान लिया कि कृष्ण नही आए है, बल्कि उनके मित्र आए है तब तो उनके दु ख का ठिकाना नही रहा। सूर लिखते है—जब कहा गया कि स्याम नही आए तो कुछ पृथ्वी पर बेहोश होकर गिर पडी, कुछ स्तम्भित रह गई। यदि काटो तो खून नही।[2]

१ आए री नद सुवन राधा हरषानी।
सूर मरत मीन तुरत मिलैं अगम पानी।
—सूरसागर, भाग २, सभा-सस्करण, पद स० ४०७८, पृ० १४२७।

२ जबहि कह्यौ ये स्याम नही।
परी मुरछि धरनी ब्रजबाला, जो जहँ रही सु तहीं।
—सूरसागर, भाग २, सभा-सस्करण, पद स० ४०८६, पृ० १४२६।

उद्धव की ज्ञानचर्चा से गोपिया जरा भी प्रभावित नही होती प्रत्युत कृष्ण से मिलने की उत्कट अभिलाषा प्रकट करती है—

राग सारंग

निरखति अंक स्याम सुन्दर के बार बार लावति लै छाती।
लोचन जल कागद मसि मिलि कै ह्वै गइ स्याम स्याम जू की पाती।
गोकुल बसत नदनदन के कबहुँ बयारि न लागी ताती।
अ हम उती कहा कहं ऊधौ जब सुनि वेनु नाद संग जाती।
उनकें लाड बदति नहिं काहूँ निसि दिन रसिक रास रस राती।
प्रान-नाथ तुम कबहि मिलौगे सूरदास प्रभु बात सघाती।[1]

परमानन्ददास की एक गोपी विनीत भाव से प्रार्थना करती है कि कोई उसकी विरहातुर अवस्था के सबध मे नन्दकुमार को बता दे—

राग सारग

जो पै कोउ माधो सो कहे।
टोकत कमल नैन मथुरा में एको घरी रहै।
प्रथम हमारी दशा सुनावे गोपी विरह दहै।
हा ब्रजनाथ रटत विरहातुर नैनन नीर बहै।
विनती कर बलबीर धीर सौं चरन सोज गहै।
परमानद प्रभु इत सिधारबौ ग्वालिनि दरस लहै॥[2]

मुरलीधर के मुरली-निनाद की कल्पना करके परमानन्ददास की गोपी चिन्तित तथा मूछित हो जाती है। वे उसका चित्र यो खीचते है—

राग केदारो

रैनि पपीहा बोल्यो री माई।
नींद गई चिन्ता चित बाढ़ी सुरति स्याम की आई।
सावन मास देखि वरषा रितु हो उठि आंगन धाई।
गरजत गगन दामिनी दमकत तामे जीउ उड़ाई।
राग मलार कियो जब काहू मुरली मधुर बजाई।
विरहिन बिकल दास परमानद धरनि परी मुरझाई॥[3]

सूर ने लिखा है कि ब्रज की गोपिया सर्वदा हरि की चिन्ता मे लगी रहती है और हरि ने उनके साथ जिस प्रकार का प्रेमव्यवहार किया था उसकी स्मृति मे वे समय बिताती है—

---

१ सूरसागर, भाग २, सभा-सस्करण, पद स० ४१०५, पृ० १४३५।
२ डा० गुप्त के निजी परमानन्द पद-सग्रह से पद न० १८६।
३ डा० गुप्त के निजी परमानन्द पदसग्रह से पद स० ३२३।

राग धनाश्री

हमतें हरि कबहूँ न उदास।
रास खिलाइ पिलाइ अधर रस, क्यों बिसरत ब्रजबास।
तुमसों प्रेम कथा को कहिबो, मनो काटिबो घास।
बहिरो तान स्वाद कह जानै, गूगो बात मिठास।
सुनि री सखी बहुरि हरि ऐहैं, वह सुख वहै विलास।
सूरदास ऊधौ अब हमकौं, भए तेरहौं मास॥[1]

विरहावस्था की विभिन्न अवस्थाओ का वर्णन सूरदास और परमानन्ददास ने बडी मार्मिकता तथा भावुकता से किया है। कृष्ण के प्रति गोपियो का तीव्र अनुराग देखकर उद्धव चकित हो जाते है और उनको अनुभव होता है कि उनके ज्ञान से गोपियो की भक्ति कही अधिक श्रेष्ठ है और उसी क्षण से वे उनके दास बन जाते है। अन्त मे वे मथुरा जाकर गोपियो की अनन्य भक्ति का चित्र कृष्ण के आगे प्रस्तुत करते है और कृष्ण के व्यवहार की कडी आलोचना करते है। यही से सूर का भ्रमरगीत समाप्त होता है।

नन्ददास आदि कवियो ने कलापक्ष और दार्शनिक पक्ष की ओर अधिक ध्यान दिया है। नन्ददास ने कथानक मे भी कुछ परिवर्तन कर डाला है। कृष्ण और उद्धव के पूर्व वार्तालाप के बारे मे उन्होने कुछ नही लिखा है। प्रथम भाग मे गोपी और उद्धव के सवाद का चित्र खीचा गया है। कुशलवार्ता के उपरान्त गोपियो से उद्धव कृष्ण के महत्त्व के बारे मे लबा-चौडा व्याख्यान झाडते है। उद्धव ने कहा—तुम लोग जिसे स्याम कहते हो उसके कोई मा-बाप नही। वह तो अखिललोकव्यापी ब्रह्म है।[2] वह तो इन्द्रियो के लिए अगोचर है। जल-थल, लोह, काष्ट आदि मे वह व्याप्त है तथा ज्योतिस्वरूप है।[3] इस प्रकार के दार्शनिक तथा धार्मिक तत्त्वो से भरे हुए गम्भीर भाषण देकर वे गोपियो को अपने वश मे लाने का विफल प्रयत्न करते है। गोपिया भ्रमर को सबोधित करके उद्धव को व्यग्यवचन कहती है और कृष्ण की निष्ठुरता पर उन्हे कोसती है—किसीका कहना है जो रग का काला होता है वह हृदय से भी काला होता है। श्याम तो काले है और ज्ञानोपदेश रूपी काले भुजग को लाने वाले उद्धव भी काले है। यह भ्रमर जो उद्धव के उपदेश

---

१ सूरसागर खड २, सभा-सस्करण, पद स० ४५७७, पृ० १५८०।

२ जाहि कहत तुम श्याम ताहि कोउ पिता न माता।
अखिल अड ब्रह्माण्ड विश्व उनही में जाता॥
—भवरगीत, नन्ददास शुक्ल, पाठभेद से, पृ० १२५।

३ वै तुमतें नहि दूरि ग्यान की आखिन देखौ।
अखिल बिस्व भर पूरि ब्रह्म सब रूप बिसेखौ॥
लोह दारु पाषान में जल थल महि आकास।
सचर अचर बरनत सबै ज्योतिहि रूप प्रकास॥
—भवरगीत, नन्ददास शुक्ल, पाठभेद से, पृ० १२४।

को दुहराने वाला है वह भी काला है ।[1] एक श्याम के अगस्पर्श से आज तक अग जला रहा है इसपर यह दूसरा श्याम भ्रमर योग-रूपी काले साप को ले हमारे चरणो का स्पर्श कर हमे और भी दु ख पहुचा रहा है। इस प्रकार कृष्ण को उपालभ देती हुई अत मे दग्ध हृदय से गोपिया भगवान् की प्रार्थना करती है—

ता पाछे इक बार ही रुदित सकल ब्रजनारि।
हा करुणामय नाथ हा केशव कृष्ण मुरारि।
फाटि हियरो चल्यो।[2]

यह सुनकर महाज्ञानी उद्धव बहुत प्रभावित हुए। उसके सबध मे कवि कहता है—

उमड्यो जो मोऊ सलिल सिन्धु असुवन की धारनि।
भीजत अबुज नीर कनुकी बहुगुन हारनि।
ताही प्रेम प्रवाह में ऊधव चले बहाय।
भली ज्ञान की मेंड हो ब्रज में दीनी आय।
सकल कुल तरि गयो।[3]

अब उद्धव को मालूम हुआ कि उनके कोरे ब्रह्मज्ञान से बढकर भोली-भाली गोपियो की प्रेमभक्ति श्रेष्ठ है और उनके मन मे यही कामना रहती है कि मै ब्रज की धूलि बन जाऊ जिससे गोपियो के चरणारविन्द की धूलि मेरे शरीर पर पडे या वृन्दावन-वृक्ष-लतादि बन जाऊ जिससे गोपियो की परछाई मुझपर पडती रहे। किन्तु क्या करू? यदि वश होता तो मै इन वस्तुओ का रूप धारण कर लेता। हे भगवन्, आपसे मेरी यही विनीत प्रार्थना है कि मेरी इच्छा की पूर्ति करे।[4]

---

१ कोऊ कहै री विस्व माझ जेते है कारे।
कपटी कुटिल कठोर परम मानस मसिहारे।
एक स्याम तन परसि के जरत आज लौ अग।
ता पाछे फिरि मधुप यह लायो जोग भुजग।
कहा इनको दया।
—भवरगीत, नन्ददास शुक्ल, पृ० १३४।

२ भवरगीत—नन्ददास शुक्ल, कुछ पाठभेद से, पृ० १३८।

३ भवरगीत—नन्ददास शुक्ल, कुछ पाठभेद से, पृ० १३८।

४ (अ) अब रहिहौं ब्रजभूमि की ह्वै पग मारग की धूरि।
बिचरत पद मोपै परै सब सुख जीवन मूरि।
मुनिन हूँ दुर्लभै।
—भवरगीत, नन्ददास शुक्ल पृ० १३९।

(ब) कैसे होंहु द्रमलता बेलि बल्ली वन माही।
आवत जात सुभाय परै मोपै परछाही।
सोऊ मेरे बस नही जो कछु करौं उपाय।
मोहन होंहि प्रसन्न जो यह बर मांगौ जाय।
कृपा कर देहु जू।
—भवरगीत, नन्ददास शुक्ल, पाठभेद से, पृ० १४०।

गोपियो के चेले बनकर उद्धव जी कृष्ण के पास गए और उनसे गोपियो की विरहातुर अवस्था का मार्मिक चित्रण उनके आगे प्रस्तुत किया, जिससे कृष्ण भी प्रेम-विभोर हो गए, उनको कुछ भी सुधि न रह गई। नन्ददास कल्पवृक्ष से कृष्ण की तुलना और गोपियो की तुलना पत्तियो से करते है--

सुनत सखा के बैन नैनि भरि आए दोऊ।
बिबस प्रेम आवेष रही नाहीं सुधि कोऊ।
रोम रोम प्रति गोपिका ह्वै रहि सावरो गात।
कल्प तरोरुह सांवरो ब्रज बनिता भई पात।
उलहि अग अग ते।[1]

अन्त मे कृष्ण ने कहा कि जैसे तरगे और वारि भिन्न होते हुए भी अभिन्न है वैसे ही गोपियो और उनमे कोई भेद नही है।[2]

सूरदास और नन्ददास के भ्रमरगीत के तुलनात्मक अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि सूर का भ्रमरगीत भावप्रधान है और मुक्तक शैली मे लिखा गया है और नन्ददास ने बुद्धिपक्ष की ओर अधिक ध्यान देकर प्रबन्धकाव्य के समान इसकी रचना की है।

उद्धव दूत के बाद दोनो भाषाओ के कवियो ने कृष्ण के अक्रूर के घर जाना, उन्हे हस्तिनापुर भेजना आदि कथाए लिखी है।

उत्तरार्ध

[जरासन्ध-वध, रुक्मिणी-विवाह आदि से कृष्णार्जुन-युद्ध आदि तक]

जरासन्ध-वध मूल कथा के अनुसार मलयालम के कवियो ने प्रबन्धात्मक शैली मे लिखा है। कालयवन के साथ जरासन्ध के अठारहवे आक्रमण के वर्णन मे सूर ने मूल कथा से कुछ अन्तर कर दिया। कृष्णगाथा मे रुक्मिणी के स्वयवर का बहुत सुन्दर ढग से वर्णन किया गया है। इसके आरम्भ, विकास, चरमसीमा और पर्यवसान का ऐसा सगठन किया गया है कि सारा प्रसग एक स्वतत्र खण्डकाव्य के समान प्रतीत होता है।

रुक्मिणी के अपूर्व सौन्दर्य के बारे मे चेरुश्शेरी कहते है—ब्रह्मा ने चन्द्र और कमल का निर्माण किया। तब कवि को आश्चर्य हुआ कि ब्रह्मा ने इन वस्तुओ की सृष्टि क्यो की ? किन्तु रुक्मिणी के मुख को देखा तो समझा कि ऐसे सुन्दर मुख के निर्माण करने के लिए चन्द्र, कमल जैसी सुन्दर वस्तुओ की सृष्टि करके, मानो ब्रह्मा ने अभ्यास

---

१ भवरगीत, नन्ददास शुक्ल पाठभेद से, पृ० १४१।

२ मोमे उनमै अन्तरौ एकौ छिन भरि नाहि।
ज्या देखौ मो माहि वै त्यौ मै उनही माहि।
तरगनि बारि ज्यों।
—भवरगीत, नन्ददास शुक्ल, पाठभेद से, पृ० १४२।

किया हो।[1] रुक्मिणी का रूप देखकर सब सुन्दरी स्त्रियो के मन मे आशा हुई कि यदि हम पुरुष होती तो कितना अच्छा होता।[2]

रुक्मिणी सयानी हुई। उसका विवाह शिशुपाल के साथ कराने के लिए उसका बडा भाई बहुत यत्न करता है। स्वयवर रचा गया। रुक्मिणी के स्वयवर का समाचार पाकर देश-देश से बहुत से राजा-महाराजा आए। उसका रूप देखकर सोचने लगे—कितनी सुन्दर है यह! मानो इस सुन्दर शरीर को द्वादश राशियो से बनाया हो, भौहें मानो चाप, लोचन मछली स्तन दो कुम्भ आदि हो।[3] कवि राजाओ से परस्पर कहलाते है—रुक्मिणी के शरीर मे सारे तीर्थ मौजूद है। उसका हार गगा, रोए कलिन्दजा, सुन्दर स्तन कुम्भकोण तीर्थ और सोने को भी मात करने वाली देह मानो काञ्चीपुरी हो।[4]

रुक्मिणी के कृष्ण के प्रति अनुराग, विवाह के निकट आने पर ब्राह्मण के द्वारा आमत्रण आदि के सबध मे सूर, नन्ददास, चेरुश्शेरी, कुन्चन नप्यार आदि ने समान रूप से लिखा है। विरहतप्ता रुक्मिणी का चित्र बडी कुशलता से नन्ददास ने प्रस्तुत किया है—

हरि न रहति पिय आरति प्रगटहि देत दिखाई।
पुलक अग सुर भग स्वेद कबहू जडताई।
उरधर धर अति कपत जपत जब कुवर कन्हाई।

---

१ तिन्कले निर्म्मिच्चान पन्कज निर्म्मिच्चान पकज सभवन पण्डु पण्डे
एन्तिनेन्निड्डने चिन्तिच्चु निन्नु आनन्धनाय पोयिनेनित्रनालु
रुक्मिणि तन्मुख मिड्डने निर्म्मिप्पानभ्यसिच्चानेन्नतिन्नरिञ्चु
—कृष्णगाथा, स० पि० के० नारायण पिल्ला, पृ० ४०८।

२ आणुड्डलायावू नामेल्लामेन्नुल्लो
राशयेप्पूण्डारे वेण्डु वण्ण।
—कृष्णगाथा, स० पि० के० नारायण पिल्ला, पृ० ४१०।

३ राशिकल कोण्डु तिरिञ्चु चमच्चोन्नि
प्पेशल मेनि तानेन्नु तोन्नु
चापमाय निन्नति च्चिल्लिकल रण्डुमे
लोचनमायतो मीन मल्लो
कोन्ककल रण्डुमे कुभमेन्निड्डने
शकये कैविटटु चोल्ला मल्लो
—कृष्णगाथा, स० पि० के० नारायण पिल्ला, पृ० ४३५।

४ पावन मायुल्ल तीर्थवु देशवु केवल मिन्निवल मेयियलुतान
× × ×
कान्चन वेल्लु मिक्कामिनि मेनियिल
कान्चियु कण्डालु कान्तियोटे।
—कृष्णगाथा, पृ० ४३५।

कबहू टकी लगि जाय कबहु आवति मुरझाई।
ह्वै गयो कछु विवरन तन छाजत यो छवि छाई।
रूप अनूपम बेलि तनक मनु धाम मे आई।

कवि आगे भी रुक्मिणी की परेशानी का वर्णन करते है—

टप टप टप टप टपकि नैन सो अंसुआ ढरहीं।
मनु नवनील कमल दल ते मल मुतिया झरहीं।
उपजि विरह दुख दवा अवा तन ताप तये हैं।
कोउ कोउ हार के मोतिया तचि तचि लाल भये हैं।
कबहु मनहि मन सोचति मोचति स्वास ढरारे।
मोहन सोहन श्याम न ह्वै है कस हमारे।[1]

यद्यपि इस वर्णन मे अत्युक्ति है तो भी इसका सवेदनात्मक रूप जरा भी बिगडने नही पाया है।

मलयालम के कवि चेरुश्शेरी कृष्णगाथा मे सखियो द्वारा रुक्मिणी के विरह दु ख के वर्णन की हसी कराते है। पिजडे मे वह सारिका गाने के रूप मे यो गाती है—हे! भगवन्, मै आपके पैरो पडती हू। मुझे मत छोडिए। मेरी यही प्रार्थना है कि मुझे देवकी-नन्दन की छाती से लगने दीजिए। यह सुनते ही सखिया एक-दूसरे की ओर देखकर बोलने लगी—देखो, सारिका की बातो से ऐसा मालूम पडता है कि उसको कृष्ण पर बडा अनुराग है।[2] इस पद के अतिम चरण मे हास्य का सुन्दर पुट है। अन्त मे कवि ने ब्राह्मण के द्वारा रुक्मिणी की विरह-व्यथा का वर्णन कराया है—रुक्मिणी सर्वदा आखे डबडबाती रहती है। उसे देखकर ऐसा मालूम पडता है मानो आसुओ की बूदे पलको मे मोती हो। कमल, कोकिल, चन्द्र आदि का नाम वह सुन न सकती थी। शीतल, सुगन्धित वायु लगते ही वह पागल-सी हो जाती है। भ्रमरो का गुजन सुनकर वह कहती है कि यह यमराज के भैसे के गले की घटावलियो की ध्वनि है। सदा गोविन्द और माधव आदि नाम वह जपा करती है। उसके लिए आतप और चादनी बराबर है।[3] विरहावस्था का ऐसा

१ रुक्मिणी-मगल, नन्ददास शुक्ल, कुछ पाठभेद से, पृ० १४३।

२ दैवमे निन कजल केतोतीज़ुटुन्नेन
कैवेटिञ्ञोटोल्ला येन्ने येन्नु
देवकी नन्दनन तन्नुटे मेय्योट्
केवल चेर्क्केणमेन्नेयु नी
× × ×
शारिक प्पैतलक्कुमाधवन तन्निले
[illegible] वेण्डु।

—कृष्णगाथा, स० राजराज वर्मा, पृ० १३३-१३४।

३ रुग्मिणि तन्ने ज्ञान दु खमा वारियिल
× × ×

सजीव वर्णन दोनो भाषाओ के कवियो ने लिखा है।

नन्ददास ने द्वारिकापुरी का वर्णन दूसरे कवियो की अपेक्षा अधिक सुन्दरता से किया है। रुक्मिणी की पत्रिका पाते ही कृष्ण की अवस्था का चित्र नन्ददास ने यो खीचा है। कृष्ण भावावेश के कारण पत्र न पढ सके। ब्राह्मण ने पत्र पढकर सुनाया तो तुरन्त रथ मे चढ बैठे। उनके हृदय की अशाति का सूक्ष्म वर्णन नददास के शब्दो मे देखिए—

तुरत चढे छवि मढ़े, चढ़त बानक बनि आयो।
हरबर में खसि पर्‌यो पीत पर द्विज पकरायो।
जनु कुमुदिनी पर चल्यो चन्द्रमा देन परम सुख।[1]

कृष्ण का सन्देश पाने के लिए रुक्मिणी अशान्त बैठी थी। ब्राह्मण को देख और और उनकी वाणी सुनकर उसकी क्या दशा हुई उसका वर्णन नन्ददास करते है—सन्देश सुनाने के लिए ब्राह्मण ने अपना मुह खोला तो उसके प्राण निकलकर मानो ब्राह्मण के वचनो मे स्थित हो गए। जब उसने सुना कि हरि आए तब वह ऐसी प्रसन्न दिखाई पडी मानो शरीर मे प्राण फिर आ गए हो।[2] चेरुश्शेरी उसी प्रसग का वर्णन करते हुए कहते है—नारीरत्न रुक्मिणी ब्राह्मण को देखकर वैसे ही खडी रही मानो चन्द्रमा को देखकर कुमुदिनी खिल गई हो। मुरझाए हुए कमल से निकलकर जैसे भ्रमर कुमुद पुष्प पर बैठ जाता है वैसे ही रुक्मिणी की दृष्टि ब्राह्मण के मुख पर जम गई। शीतल-सुगन्धित मलय पवन से मल्लिका के फूल जैसे खिलते है वैसे ही रुक्मिणी का चेहरा प्रसन्न हो गया फिर ब्राह्मण क्या बोलेगे, इस विचार से रुक्मिणी का दिल धडकने लगा। तब ब्राह्मण के मुख से मधु समान यह वचन निकले कि कृष्ण सवेरे आकर तेरा पाणिग्रहण करेगे। रुक्मिणी का सन्तोष आसुओ और मन्द मुसकान के रूप मे प्रकट हुआ।[3]

कृष्ण जब कुण्डनपुर मे आए थे, उनकी अपूर्व सुन्दरता को देखकर लोगो ने दातो तले अगुली दबाई। सब टकटकी लगाकर खडे रह गए। कोई उनके सिर पर शोभित पाग पर मोहित हो गए। उनकी चितवन और पीताम्बर की चमक से कुछ लोग चकित रह गए।[4] एक सुन्दर उपमा देते हुए कवि लिखते है कि कृष्ण के अग-अग के सौन्दर्य को

आतप तानेन्नु वे एिणलावेन्नु तान
भेदत्ते क्काणुन्नोलल्लायिप्पोल। —कृष्णगाथा, स० राजराज वर्मा, पृ० १३५ से १३७।

१ रुक्मिणी-मगल, नन्ददास शुक्ल, पृ० १४८।
२ रुक्मिणी-मगल, नन्ददास शुक्ल, पृ० १४९।
३ कृष्णगाथा, स० राजराज वर्मा, पृ० १३८।
४ पुर के लोगन सुनी कि श्री सुन्दर वर आए।
जहा तहा ते धाय देखि हरि बिसमय पाए।
× × ×
कोउ लखि ललित कपोलनि मधुरो बोलनि भर के
मद गज ज्यों परै चहले फेर न भटके।
—रुक्मिणीमगल, नन्ददास शुक्ल, पृ० ११।

देखकर प्रसन्न मन की वही दशा है जैसे रत्नो से भरे घर मे एक से एक सुन्दर रत्न को देखकर चोर की दशा होती है। वह उसी असमजस मे पड जाता है कि कौन वस्तु ले, कौन वस्तु न ले, कभी एक वस्तु को वह उठाता है और उसे रखकर दूसरी बदल लेता है।

कोउ इक नैननि अटकि गए हैं लोभ लुभारे
भरे भवन के चोर, भये बदलत ही हाये।[1]

इसी प्रकार रुक्मिणी के रूप का वर्णन भी चेरुश्शेरी के समान नन्ददास ने किया है।

सूरदास ने रुक्मिणी-मगल की कथा कवित्वपूर्ण शैली मे लिखी है। किन्तु कही-कही पुनरुक्ति-दोष आ गया है। भाषा की सरसता एव भावो की उत्कृष्टता मे नन्ददास का रुक्मिणी-मगल अद्वितीय है। मलयालम के कवियो ने भी प्रबन्ध काव्य के रूप मे इस प्रसग को लिखा है। रुक्मिणी के स्वयवर के समय राजाओ की बातचीत और राजकुमारी के अपूर्व सौष्ठव को देखकर राजाओ का भाव-परिवर्तन आदि का वर्णन बडी सुन्दरता से चेरुश्शेरी और कुचन नप्यार आदि कवियो ने किया है। उनकी शृगार तथा हास्यप्रधान कविताओ का मलयालम-साहित्य-प्रेमियो मे बडा सम्मान है।

मलयालम भाषा के चपू ग्रन्थो मे 'रुक्मिणी स्वयवर चपू' प्रमुख है। इसमे रुक्मिणी के वयस्क होने पर उसका अपूर्व सौन्दर्य तथा विवाह के सम्बन्ध मे पिता की चिन्ता आदि का बडा ही हृदयग्राही वर्णन है। जब रुक्मिणी के पिता ने निश्चय कर लिया कि रुक्मिणी का ब्याह कृष्ण के साथ किया जाएगा तब भाई रुक्मी आपे से बाहर हो जाता है। कवि लिखते है—पिताजी के वचन सुनते ही रुक्मी तिलमिला उठा। उसकी आखे अगुजा के समान अत्यन्त लाल हो गई। चेहरे पर पसीने की बूदे दिखाई पडने लगी। और धिक्कार-भरे वचन उसके मुह से निकले।[2] रुक्मिणी का सन्देश भी करुणाजनक है—हे दीनबन्धो! मेरे लिए दूसरा कोई अवलब नही। विष्णु भगवान् जैसे लक्ष्मी को स्वीकार कर लेते है वैसे ही मुझे स्वीकार कर लीजिए। मुझे इस दु ख से छुडाइए।[3] इस ग्रन्थ के कर्ता के सबध मे कुछ भी पता न लग पाया है। यह एक बडा लम्बा ग्रन्थ है।

---

१ रुक्मिणीमगल, नन्ददास शुक्ल, पृ० १५१।

२ अच्छन ताने परञ्चाटिन वचनमिद केट्टु कोप मुजुत्ति
टटुच्चैरवकण्णु रण्डु नृपसदसि चुवप्पिच्चु मन्चाटिपोले
स्वच्छ तन्नानात्तिल श्रम जल कणिका वृन्दवु चेर्त्तु मेन्मे
लुलच्चेरु सर्व गर्व तटविन वचन घोषयामास रुक्मी
—रुक्मिणी-स्वयवर चपू, स० उल्लूर, भाषा-साहित्य-चरित्रम्, भाग २, पृ० १९४।

३ मट्टारुमिल्ल शरण मम दीनबन्धो
वट्टातेजिन्टे करुणामय तोय सिन्धो
चुट्टत्तिल वन्नु दयिना तव कोण्डुपोमा
पट्टु रमा भगवती हरि येन्टे पोले।
—रुक्मिणी-स्वयवर चपू, स० उल्लूर, भाषा-साहित्य-चरित्रम्, भाग २, पृ० १९४।

पहले लिखा जा चुका है कि मलयालम भाषा के पद्य साहित्य मे कथकलि का स्थान प्रमुख है। करीब एक सौ ग्यारह ग्रन्थ कथकलि साहित्य मे पाए जाते हैं। रुक्मिणी का मगल भी कथकलि मे लिखा गया है। रुक्मिणी के पिताजी के गुणो का वर्णन करते हुए कवि ने ग्रन्थ आरम्भ किया है। राजा धर्मधुरधर और अशेष धरणीपति 'चक्र-चक्र विकान्त विश्रुत' है।[1] वे अपनी चचलाक्षी तरुणी रानियो से अपनी प्यारी बेटी के ब्याह के सबध मे परामर्श करने लगे। एक दिन नारद मुनि वहा आते है और सलाह देते है कि रुक्मिणी के लिए योग्य वर श्री कृष्ण है। राजा मान लेते है। यह समाचार रुक्मिणी के भाई ने सुना तो आपे से बाहर हो गया। अपने पिताजी से कहता है कि एक गोप बालक के साथ आपकी बेटी का ब्याह करना जरा भी उचित नही। उसका कोई भी कुल या वश नही। स्त्री पूतना का वध करने वाला पापी है वह।[2] पिता पुत्र को समझा देता है कि हमारे लिए कृष्ण के साथ बैर ठानना जरा भी अच्छा नही। सज्जनो की निन्दा मत करो। उनकी निन्दा करना सबसे बुरा है।[3] किन्तु रुक्मी अपने पिता भीष्मक की बातो मे नही आता है और शिशुपाल नृप के साथ रुक्मिणी का विवाह करने का निश्चय कर लेता है। यह समाचार पाकर रुक्मिणी बहुत दु खी होती है और एक ब्राह्मण के द्वारा वह अपनी इच्छा कृष्ण को जता देती है। कृष्ण ने वादा किया कि तरुणी 'मणि मेरी रमणी' को स्वयवर के दिन ले जाएगे। प्रतिज्ञा के अनुसार कृष्ण कुण्डिनपुरी मे आए। भीष्मक ने उनका सत्कार किया। राजा लोग भी वहा आ पहुचे थे। उनको मालूम हुआ कि कृष्ण बलपूर्वक रुक्मिणी को ले जाएगे तो वे सब क्षुभित हो उठे और शिशुपाल राजा के नेतृत्व मे उन लोगो ने कृष्ण का सामना किया। रुक्मी ने भी बडे आवेश के साथ युद्ध किया। कृष्ण ज्यो ही रुक्मी को मारने लगे कि रुक्मिणी ने रोक दिया। युद्ध का वर्णन, राजाओ की बातचीत, कृष्ण-आगमन की वार्ता, ब्राह्मणो की आलोचना आदि सब प्रबन्धात्मक शैली मे लिखे गए है। शृगार और रौद्र रस-प्रधान कई पद इसमे पाए जाते है। अश्विनि नक्षत्रज नामक एक सहृदय इसके कर्ता है। राजघराने से सबध होने के कारण इनको लोग अश्विनि नक्षत्रज राजकुमार कहकर पुकारते है।

प्रद्युम्नजन्म और शबरवध की कथा सूरदास और चेरुश्शेरी ने बहुत सक्षेप मे लिखी है। कथकलि-साहित्य मे शबर की कथा बडी सुन्दरता से किसी पडित ने लिखी है। इसके कर्ता के सबध मे मतभेद है। कुछ लोग कहते है कि कुचन नप्यार की यह कृति

---

१ आट्टक्कथकल, म० के० राजगोपाल पिल्ला, पृ० १७३।

२ भूपवरनादु तव नन्दनिये इन्नु
गोपबाल पाशकनो नलकीटुन्नु
जाति येन्नतु मुएटो पार्त्तु काण् किलन्नु
पूतनये हनिच्चोरु पापना भवन्न
—रुक्मिणी-स्वयवर—ले० अश्विनि नक्षत्रज राजकुमार, पृ० १७४।

३ रुक्मिणी-स्वयवर—ले० अश्विनि नक्षत्रज राजकुमार, पृ० १७५।

है। दूसरे कुछ विद्वानो की राय है कि कुचन नप्यार के मामा केलक्कत नप्यार ने इसे लिखा है।[1]

कवि ने ग्रन्थ का प्रारभ करते हुए लिखा है कि कृष्ण अपनी स्त्रियो के साथ बडे सुख से दिन बिता रहे थे। एक दिन रुक्मिणी कृष्ण से वरदान के रूप मे एक पुत्र मागती है। कृष्ण आशीर्वाद देते है कि शिव की कृपा से तेरे एक पुत्र पैदा हो जाएगा।

नारद मुनि शबर के पास जाकर बोले—देव, दानव, मानव, सब आपका आदर करते है। आपकी आज्ञा के विरुद्ध कार्य करने की किसीको शक्ति नही। आपके रूप-सौन्दर्य की बात सुनकर सुन्दरी तरुणिया आपपर निछावर होती है। सब कही आपकी धाक जम गई है। किन्तु याद रखे कि आज रुक्मिणी के एक पुत्र पैदा होगा जो आपका बडा शत्रु निकलेगा।[2] कवि आगे लिखते है—वह पुत्र कामदेव का अवतार है। शीघ्र ही उसका वध करने का उपाय करे।[3] शबर ने अपनी माया के प्रभाव से रुक्मिणी के बच्चे को सागर मे फेक दिया। रुक्मिणी तथा उनके सबधियो मे दु ख का ठिकाना न रहा। यह सब कवि ने अत्यन्त निपुणता से लिखा है।

बालक को एक मछली ने निगल लिया। वह मछली एक मछुए के जाल मे फस गई। उसको मारने पर उसके पेट से एक सुन्दर शिशु निकला। वह शबर के यहा ले जाया गया। शबर ने बच्चे का पालन-पोषण करने का भार मायावती को सौप दिया। नारद के वचन के अनुसार रतिदेवी ने दूसरा अवतार लिया। उसका नाम है माया-देवी। वह शिशु का पालन-पोषण बडे प्रेम से करने लगी। जब शिशु जवान हुआ तो मायावती ने अपनी पूर्व-कथा उससे सुनाई और उससे पति, पत्नी के समान जीवन बिताने की प्रार्थना की। मायावती की प्रार्थना, बालक प्रद्युम्न का उत्तर आदि का वर्णन बडी सुन्दरता से लिखा गया है। अपनी पूर्व-कथा जानकर प्रद्युम्न शबर के पास जाता है और उसे युद्ध मे मार डालता है। इसी समय रुक्मिणी तथा कृष्ण ने जान लिया कि शबर का वध करने वाला व्यक्ति उनका पुत्र है। उनकी खुशी का ठिकाना न रहा। पुत्र को पुन प्राप्त करके रुक्मिणी का जीवन हरा-भरा हो उठा। शबरवध नामक कथकलि का स्थान मलयालम साहित्य मे प्रमुख है। उसकी गीत तथा प्रबन्धात्मक शैली से लोग अधिक आकृष्ट होते है। शृगार तथा वीररस-प्रधान कई पद इसमे पाए जाते है। अहकार बुरा है, भाग्य के आगे किसीका वश नही, आदि शिक्षाए उस काव्य से हमे मिलती है।

सूरदास ने जामवन्ती और सत्यभामा का विवाह बहुत सक्षेप मे लिखा है। मलयालम के कवि चेरुश्शेरी और कुचन नप्यार आदि ने प्रस्तुत कथाए स्यमन्तक के शीर्षक मे बडे विस्तार से कवित्वपूर्ण शैली मे लिखी है। कृष्णगाथा मे चेरुश्शेरी लिखते है—

---

१ केरलभाषा-साहित्य-चरित्रम्—भाग ३, ले० नारायण पणिक्कर, पृ० २४४।

२ आट्टक्कथाम्—स० के० एन० गोपाल पिल्ला, पृ० ३९८-३९९।

३ आट्टक्कथाम्—स० के० एन० गोपाल पिल्ला, पृ० ३९८-३९९।

स्यमन्तक नामक मणि की प्राप्ति से यादव सत्राजित को अपार धन मिलने लगा । वह केवल धन कमा लेता था। अच्छे काम के लिए उसका उपयोग नही किया जाता था। सूम के यहा धन की राशि रहने से कोई लाभ नही होता। अत कृष्ण ने जाकर उससे कहा स्यमन्तक मुझे दे। दो कृपण सत्राजित ने उनकी प्रार्थना को ठुकरा दिया। एक दिन स्यमन्तक को लेकर सत्राजित का भाई आखेट करने गया। उसकी अपूर्व शोभा देखकर एक सिह ने सत्राजित के भाई प्रसेन को मार डाला और स्यमन्तक को लेकर भाग गया । रास्ते मे जामवान ने उसे देखा और सिह को मारकर स्यमन्तक को अपनी बेटी को खेलने के लिए दे दिया ।

सत्राजित के भाई के निधन का समाचार बिजली के समान सब कही फैल गया। उसने चारो ओर यह प्रचार करा दिया कि स्यमन्तक के प्रलोभन मे पडकर कृष्ण ने प्रसेन को मरवा डाला है। अफवाह सर्वत्र फैल गई। लोगो ने आपस मे जो कुछ कहा उसके बारे मे चेरुश्शेरी लिखते है—देखो ! कृष्ण की बाल-लीलाओ का स्मरण करो । उसने क्या-क्या नही किया ? बेचारी गोपियो के वस्त्रो को चुरा ले जाने वाला अवसर के आने पर अमूल्य रत्न स्यमन्तक को पाने मे कोई घृणित काम करने को तैयार न होगा। कवि आगे कहते है—कृष्ण ने अपने सम्बन्ध मे वे बाते सुनी जो यात्री लोग अपने बच्चो से कहते थे[1] 'कृष्ण के पास मत जाओ ।' उसका इतना प्रभाव पडा कि बच्चे जब कृष्ण को देखते है तो डर के मारे इधर-उधर भागने लगते है । कृष्ण ने केले दिखाकर बालको को आकृष्ट करना चाहा । तब घर के लोग कहने लगे देखो ! यदि तुम लोग उसके पास जाओगे तो वह तुम्हारे गहने चुरा ले जाएगा ।[2] अपने सबध मे फैले हुए इस अपवाद को मिटाने के लिए कृष्ण स्वय स्यमन्तक की खोज मे निकलते है। खोजते-खोजते जामवत की गुफा मे पहुचे। उनको कोई चोर जानकर जामवत बिना सोचे-समझे उनके साथ विकट युद्ध करता है। तुमुल युद्ध हुआ। तीस दिन के भयकर युद्ध के बाद महाप्रतापी जामवत को अनुभव हुआ कि उसका दुश्मन एक शक्तिशाली व्यक्ति है । आखे खोलकर देखा तो मालूम हुआ उसके उपास्यदेव सामने खडे है। उनके पैरो पर पडकर उसने क्षमा-याचना की। उसने अन्त मे स्यमन्तक रत्न के साथ-साथ अपनी कन्या को भी उन्हे समर्पित कर दिया।

इधर कृष्ण के विरह से द्वारिका-निवासी छटपटाने लगे। सब लोग अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार कृष्ण के आगमन के लिए मन्दिरो मे जाकर होम, पूजा आदि करने मे

---

१ वारिज लोचनन शीलड्डलोक्कम्पोल
चेरुवोन्नाकुन्नु वार्त्तयिप्पोल
× × ×
२ मूच्चिच्चु कोल्लेण निड्डले न्निड्डने
रूक्षमायुल्लोम वाक्कु चोन्नान

—कृष्णगाथा, स० राजराज वर्मा, पृ० १४८ ।

लग गए।[1] कृष्ण स्यमन्तक तथा जामवती के साथ लौट आए। लोगो का सशय दूर हुआ। सत्राजित स्यमन्तक पाकर प्रसन्न दिखाई पडा। उसे कृष्ण पर लोकापवाद का अपराध लगाने का बडा पछतावा हुआ। कुछ दिन बाद उसने कृष्ण के पास जाकर विनीत प्रार्थना की कि आप मेरी पुत्री और रत्न स्यमन्तक को स्वीकार करने की कृपा करे। कृष्ण ने पुत्री सत्यभामा को स्वीकार कर लिया और स्यमन्तक को लौटा दिया।

सत्राजित की मृत्यु, सुफलकसुत को स्यमन्तक की प्राप्ति की कथा दोनो भाषा के कवियो ने समान रूप से लिखी। श्री कुचन नप्यार ने इस कथा के द्वारा कई लोक-तत्त्व लोगो को समझाए है। जैसे देखते ही किसी चीज की याचना करने वाला क्या अवसर आने पर उसे चुराएगा नही? बाल्यकाल का स्वभाव कभी नही बदलेगा। नीम के फल दूध मे कई दिन रखे जाए तो भी वे मीठे नही होगे।

श्री कुचन नप्यार ने स्यमन्तक-कथा तुल्लल-पद्धति मे प्रबन्ध काव्य के तौर पर बडे रोचक ढग से लिखी है।

आरम्भ मे उपास्य देवो और गुरु की स्तुति वे सरल भाषा मे करते है। जन-साधारण के विविध दोषो और अभावो का चित्रण वे खीचते है—अभी शिक्षित लोग बहुत कम है। जो शिक्षित है उनमे अधिकाश लोग सभा-समाजो मे अपना आशय प्रकट करने मे पीछे रह जाते है।[2] फिर सत्राजित का तप, सूर्यदेव का प्रत्यक्ष होना, वरदान आदि का वर्णन वे करते है। उसके बाद वरदान पाए हुए सत्राजित का आगमन देखने के लिए साधारण जनता का उत्साह-वर्णन कवि ने किया है। भगवान् कृष्ण को यह समाचार पहुचाया जाता है। कृष्ण और सत्राजित की बात, अमूल्य रत्न को सुरक्षित रखने का भार उठाने के लिए भगवान् का तैयार होना, सत्राजित का प्रत्युत्तर, प्रसेन का आखेट, आखेट करने वाले लोगो का स्वभाव, आखेट की तैयारी, वन-गमन, सिह से मुठभेड, प्रसेन की मृत्यु, मृत्यु का समाचार पाकर लोगो का भिन्न-भिन्न प्रकार वार्तालाप, कृष्ण के सबध मे लोकापवाद आदि का सुन्दर चित्र कवि ने खीचा है। लोकापवाद को दूर करने के लिए कृष्ण

---

१ कण्डालिरक्कुन्न जनड ङ्लुण्डो
कप्पान मट्टिक्कुन्नु तर वरुम्पोल
चेरुप्प कालड्डलिलुल्ल शील
मरक्कुमो मानुषनुल्ल काल
कारस्फरत्तिन कुरु पालिलिट्टाल
कालान्तरे कय्पु शमिप्पतुण्डो।

—कृष्णचरित मणिप्रवालम्—ले० कुचन नप्यार, पृ० ७९

२ कुरविल्लातुल्लव्वर विद्यक
लरिवानमात्र बुद्धियुमिल्ल
अरिवुल्लतिने सभयिल चेन्नाल
परवान वाक्किनु कौशल मिल्ल

—ओट्टेन तुल्लल, ले० नप्यार, स० पि० के० नारायण पिल्ला, पृ० ३०५।

का प्रस्थान और जामवत की गुहा मे पहुचना केवल साधारण रूप से कवि ने लिखा है। गुहा मे प्रवेश करके उन्हे उसकी दीवारो पर रामायण की सारी कथाए चित्रो मे अकित दिखाई पडी। अन्य किसी कवि ने इतनी सुन्दरता से रामायण की सक्षेप मे कथा नही लिखी है। कृष्ण को देखकर जामवत का लडका डर जाता है और चिल्लाने लगता है। उसी दम जामवत बाहर आकर नवागत से भयकर सघर्ष करने लगता है। युद्ध का वर्णन बडी सजीवता से कवि ने किया है। अन्त मे कृष्ण को पहचानकर जामवत हृदयहारी प्रार्थना करता है। जाववती का परिणय, स्यमन्तक को लेकर सत्राजित को देना आदि कथाए लिखने के बाद कवि ने विवाह की धूमधाम के बारे मे बडे विस्तार से लिखा है। केरल प्रान्त के विवाह की रीति का चित्र उसमे पाया जाता है। उनकी विविध भाषाओ मे की हुई बात सरल भाषा मे लिखी है। हिन्दीभाषा-भाषी लोग भी उसमे निमत्रण के अनुसार आते थे। उनकी बातचीत का नमूना मलयालम लिपि मे दिया गया है। वे कहते है—'जय जय राम राम सीता राम राम तुम्हारा मुलक कौन मुलक ? हमारा मुलक काशी है अच्छा पानी लाओ।'[1] इससे हम कह सकते है कि नप्यार जी हिन्दी जैसी उत्तर भारत की भाषाए भी जानते थे।

स्यमन्तक नामक एक चपू ग्रन्थ किसी कवि ने लिखा। उसका बडा मान होता है। लोगो की बातचीत का सुन्दर नमूना उसमे भी पाया जाता है। कवि का परिचय अब तक नही मिल सका है।

कथकलि के रूप मे भी स्यमन्तक की कथा का वर्णन सरल भाषा और कवित्वपूर्ण शैली मे किया गया है। करय वेट्टत्तु सुकुमार पिल्ला ने इसकी रचना की।[2] सत्राजित से कृष्ण ने क्यो स्यमन्तक देने के लिए कहा, उसके सबध मे कवि कहते है—धन की वृद्धि के साथ अहकार बढेगा। उससे अविवेकी लोग आफत मे पड जाएगे।[3] प्रसेन की मृत्यु, जामवत-युद्ध, जामवती का परिणय केवल थोडे पदो मे वर्णित है। सत्यभामा कृष्ण के प्रथम दर्शन से अनुराग-परवश हो जाती है। और उनको पति के रूप मे पाने के लिए

---

१ जै जै राम सीता राम
जै जै राम कोदण्ड राम
तुरहारा मुलुक कौन मुलुक
हमारा [illegible]
× ×
अच्छा पानी डालो डालो
पानी पियो

—तुल्लल क्कथकल, स० पि० के० नारायण पिल्ला, पृ० ३३०।

२ आट्ट क्कथकल, स० गोपाल पिल्ला पृ० ४।

३ वित्त वर्द्धिच्चु वेन्नालतु मदकरमा तन्निमित्त विवेक
मेत्तीटातुल्ल लोकत्तिनु विविध विपत्तेरु मेन्नोत्तिरिक्कल

—आट्ट क्कथा, के० एन० गोपाला पिल्ला, पृ० ७७६।

हृदय-विदारक प्रार्थना करती है। ये सब कवि की मौलिक रचनाए है। भक्तिरस-प्रधान कई पद इसमे पाए जाते है। भौमासुर-वध प्रद्युम्न-विवाह और रुक्म-वध विस्तार रूप से किसी कवि ने नही लिखा है।

कृष्ण की भक्ति की महत्ता दिखाने के लिए बाण-वध और उषा-अनिरुद्ध-विवाह का वर्णन सूर ने दो पदो मे लिखा है। मलयालम के कवि चेरुश्शेरी, कुचन नप्यार आदि ने उसी प्रसग पर कई सुन्दर कविताए रची है। चेरुश्शेरी ने उषा का स्वप्न, स्वप्न मे उसका अनुराग-परवश होना, नायक को देखने के लिए उषा की सखी का तूलिका-चित्रण, अपने प्रेमी को पहचानकर उषा का प्रसन्न होना, योगिनी सखी की सहायता से अनिरुद्ध का आगमन, अनिरुद्ध के साथ उषा का प्रेममय जीवन आदि विषयो पर क्रमानुगत रूप से पद लिखे है। प्रेममय जीवन बिताने से उषा मे जो परिवर्तन हुए उन्हे देखकर चतुर सखिया सब कुछ ताड लेती है और जाचने के बाद सारी कथाए बाण को सुना देती है। यह प्रसग बडी मार्मिकता से कवि ने लिखा है वे आपस मे कहती है—अरी सखी! उषा आजकल बहुत शर्मीली दिखाई पडती है। उसके चेहरे पर एक विशेष छवि छाई हुई है। मालूम पडता है, उसका कोई प्रेमी अवश्य होगा।[1] सखियो से यह रहस्य ज्ञात होने पर बाण अन्त पुर मे जाता है और कपट द्वारा अनिरुद्ध को कैद कर लेता है। विरह-विधुरा उषा का विलाप अत्यन्त मर्मस्पर्शी है। इस प्रसग पर मलयालम भाषा के आधुनिक कवि वल्लत्तोल ने करुणापूर्ण रचना रची है। कृष्ण का आगमन, बाण के साथ उनका युद्ध, अन्त मे विवश होकर बाण का पराजित होना आदि कथाए गीतात्मक शैली मे चेरुश्शेरी ने लिखी है।

बाण युद्ध कथकलि मे लेखक बालकवि राम शास्त्री कृष्ण की स्तुति सरल सस्कृत भाषा मे इस प्रकार करते है

भजत सदा यदुनायकम् भजत सदा यदुनायकम्
करतल विलसित मुरली कलरव तरलित
पशुपालककमनीकम् (भजत)
कुटिल चिकुर भर जटिल निटिलतट घटित तिलक
रुचिकमनीयम् (भजत)
बभिदुपल कुल विलसित मृदु तनु बिहसित सजल
जलद जालम् (भजत)

---

१ नम्मुटे चारत्तु वन्नडु मेवुम्पोल नाणवु मुण्टिन्नु काणाकुन्नु

× × ×

इन्निवल तन्नुटे कामुकनायोरु धन्यनुण्टेन्नोर्त्तु निर्णय तान

—कृष्णगाथा, स० राजराज वर्मा, पृ० १५७।

चटुल घन पटल विलसित तटियाम पुरट काञ्ची
भूषित कटीतटम् ।[1]

इसके बाद वसन्त काल का सुन्दर वर्णन है। अपने मन्त्रियो के साथ उषा के विवाह के विषय मे बाण के परामर्श का प्रसग भी बडा रोचक है । कथकलि का अधिकाश भाग वर्णनो से भरा हुआ है। शृगार, वीर तथा रौद्ररस-प्रधान कई पद इसमे पाए जाते है।

श्री कुचन नप्यार ने तुल्लल-पद्धति के अनुसार बाण-युद्ध की कथा लिखी है। उन्होने प्रस्तुत कृति मे बाण का जन्म, यौवन काल की चेष्टाए, तप, वर-प्राप्ति, उषा का स्वप्न, स्वप्न मे कामपीडित होना अपने प्रेमी से मिलने के लिए सखी चित्रलेखा से कातर प्रार्थना करना आदि कथाए पूर्वकथाओ के आधार पर लिखी गई है । स्वप्न-पुरुष को पहचानने के लिए सखी ने जो मौलिकता दिखाई है उससे कवि की प्रतिभा का परिचय मिलता है। बाण के युद्ध के अवसर पर देशवासी डर के मारे भाग जाते है। उनके वार्तालाप द्वारा युद्ध के समय जनता को मिलने वाले अपार कष्टो का विशेष विवरण दिया गया है। नप्यार लिखते है—सेनाओ के आगमन की वार्ता सुनते ही गाववासी जान लेकर भागने लगे। कुछ अपने बच्चो को छोडकर भाग गए और कुछ अपनी प्यारी स्त्री को बिना बुलाए चल दिए। एक स्त्री कहने लगी—मै अपने चार-पाच बच्चो को लेकर कैसे भाग सकूगी। हाय भगवन्! कुछ वीरो की हसी उडाते हुए कवि लिखते है—अपने को वीर कहने वाले वीर पुरुष सेना को देखते ही वन की ओर चपत हुए ।[2] शेष कथाए मूल कथाओ के समान है। कुचन नप्यार की सरस-कोमल-कान्त पदावली मे लिखी बाण-युद्ध की कृति घटना, काव्य-व्यापार, नाटकीय तत्त्व और व्यजनापूर्ण सलाप, कथा-विकास, भाव-चित्रण और पर्यवसान आदि सभी की दृष्टि से उत्तम मानी गई है। उनकी प्रत्येक कृति मे सामाजिक स्थितियो का चित्रण हमे मिलता है।

सूर ने नृग के उद्धार की कथा एक स्तुति-गीत के रूप मे लिखकर भगवान् की कृपा की अपार महिमा का वर्णन करके समाप्त कर दी है। उसमे उन्होने उपदेश दिया है कि 'सब तजि हरि भजिए' ।[3]

---

१ बाणयुद्ध आट्टक्कथ, स० के० एन० गोपाल पिल्ला, पृ० ३३७।

२ पट वन्निड्डु करेरी नम्मुटे
× ×
केट्टिय पुरुष काणाञ्जिटट्टु
ओट्टु विलिच्चु करञ्ज वलञ्ज्ञु
× ×
कोच्चु किटाड्डल नालन्चुएटति
लय्यो कोच्चु करञ्जोट्टुन्नु।

—ओट्टनतुल्लल, स० पि० के०, पृ० ३५०-३६०।

३ सूरसागर खड दो, सभा सस्करण, पृ० १६७२।

चेरुश्शेरी नपूतिरि ने नृग की कथा भागवत के अनुसार ही लिखी है । कुचन नप्यार ने कई प्रसगो पर मौलिकता दिखाई है। प्रारम्भ मे कृष्ण के पुत्रो की बाल-क्रीडाओ का वर्णन स्वाभाविक रूप से किया है । एक दिन सब बालक एकत्र होकर शिकार खेलते है। शिकार खेलते-खेलते एक अन्धे कूप के किनारे जाकर उन्होने देखा कि एक बडा गिरगिट वहा पडा है। उसे ऊपर उठाने का व्यर्थ प्रयास वे करते है। फिर कृष्ण के पास जाकर कथा सुनाते है। कृष्ण ने आकर ज्यो ही उसका स्पर्श किया, गिरगिट अपना वह रूप तजकर एक जाज्वल्यमान मूर्ति के रूप मे प्रत्यक्ष हुआ और कृष्ण से अपनी पूर्व-कथा सुनाई । मलयालम कवि ने दान-कर्म की कथा भागवत से अधिक बढा-चढाकर लिखी है और अन्त मे उपदेश देने के बाद उन्होने कहा है—विप्र लोगो को अप्रसन्न किया जाएगा तो नृग नृप के समान कष्ट झेलना पडेगा ।[1] फिर विविध प्रकार के लोगो के स्वभाव के विषय मे कृष्ण अपने पुत्रो को बताते है—अधिकाश लोग स्वार्थी होते है। अपनी इच्छा से यदि कोई काम नही करता तो उसके साथ लोग बुरा व्यवहार करने लगते है। देखो, ऐसे भी लोग है जो भोजन न पाने पर अपनी स्त्रियो को कष्ट पहुचाने लगते है। लूट-खसोट करने वाले लोग भी बहुत होते है। दूसरो को बहकाकर अपने स्वार्थ की पूर्ति करने वाले लोग कम नही। इस प्रकार के अवगुणो को दूर करना चाहिए। साराश यह है कि नृग-मोक्ष-कथा के साथ नप्यार ने सामाजिक अवस्था का सुन्दर चित्र खीचा है और यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि समाज को इन दोषो से मुक्त करने के लिए ब्राह्मणो को प्रसन्न करना आवश्यक है।

सूर और चेरुश्शेरी नपूतिरि ने बलराम के ब्रज आगमन के प्रसग पर समान रूप से लिखा है । यशोदा के पैर पकडना, प्यारी बाते करना, गोपस्त्रियो को प्रसन्न करना आदि यह सब दोनो कवियो ने थोडे पदो मे लिख डाला है । सूर ने चेरुश्शेरी के समान वारुणी और कालिन्दी को मानवी के रूप मे चित्रित किया है। जाते समय बलराम ने यह कहकर सान्त्वना दी कि श्याम मनोहर से तुम लोगो की भेट हो जाएगी।[2]

---

१ विप्रनोटप्रिय चेय्युन्नमानुषन
क्षिप्र नशिक्कमन्नोर्त्तु कोल्लेणमे ।
—तुल्लल कथकल, स० पि० के० नारायण पिल्ला, पृ० १४५ ।

२ काट्टिल पशुक्कले मेच्चु नटक्कुन्न
कृट्टत्तिलेक्कु प्रधानि यायुल्ल नी
× ×
वेण्णय् पालु कवर्न्नु भक्षिक्कय्
पेण्णुड्डलोटटि कोण्डु किटक्कय्
× ×
प्राणाभिलाष मुण्डेन्किल मरिक्करु
तेणाक्षिमार पतिनारायिरत्तेट टु
—कल्पिच्चयच्चितु वपना पौंडकन ओट्टन तुल्लल, पृ० १५६ ।

पौड्रक की कथा सूरदास ने थोडे शब्दो मे निपटा दी है पर मलयालम के कवियो ने इस प्रसग पर सरस एव गभीर कृतिया रची है। एज़ुत्तच्छन और चेरुश्शेरी, नपूतिरि ने मूल कथा के अनुसार ही इस विषय पर रचनाए की है। कुचन नप्यार नाटकीय ढग से लिखते है—एक दिन पौड्रक ने अपने दूत के द्वारा कृष्ण को सन्देश भेजा कि यदि तुम जीना चाहते हो अपनी सारी स्त्रियो और अमूल्य वस्तुओ को मुझे सौप दो। कृष्ण की निन्दा करते हुए उसने कहा—तुम माखन चुराने वाले, दस पन्द्रह गायो के चराने वाले, गोपियो की मटिया भर छाछ के लिए नाचने वाले, और अपने मातुल का वध करने वाले हो। यदि तुममे साहस हो तो मेरा सामना करो। देखो! स्वर्ग की सुन्दरी स्त्रिया भी मुझपर मुग्ध होकर मुझे पति के रूप मे पाने की प्रार्थना करती है।[1] इस प्रकार निन्दा के वचन सुनकर कृष्ण निरुत्तर हो बैठे और अपने भक्त सात्यकी की ओर देखा। तुरन्त सात्यकी ने आवेश मे आकर पौड्रक की हसी उडाते हुए कहा—अरे दुष्ट! तू अपने स्वामी के पास जाकर कह कि कृष्ण उपहार लेकर अविलम्ब आने वाले है। देखो पौड्रक का सिर फोड डालूगा। उसको भगवान् का रूप धारण करने मे लाज नही। यदि भूखे कुत्ते के नकली दाढी लगाकर और सिह का वेष रचकर पर्वत के ऊपर खडाकर दिया जाए तो उसके कठ से असली सिह की गर्जन-ध्वनि तो न निकलेगी। वह केवल भूक सकता है। क्या तितलिया गरुड के समान उड सकेगी? गोविन्द की सौगन्ध खाकर मै कहता हू, तेरे स्वामी को बिना मारे मै लौटने वाला नही हू।

दूत जाकर सारा समाचार सुना देता है। पौड्रक युद्ध की तैयारी करने लगा। उसका बडा सुन्दर वर्णन नप्यार ने दिया है। आगे वे लिखते है—कृष्ण की सेनाओ ने चित्रालय, सत्रालय, मित्रालय, छात्रालय, विद्यालय, मद्यालय, उद्यान, वाटिकाए, क्षेत्रालय आदि का नामो-निशान मिटा दिया है।[2] अत मे अपने चक्रायुध से कृष्ण ने पौड्रक का वध किया। उसका मस्तक उसकी स्त्रियो के सम्मुख जा गिरा। अपने पतिदेव को मरते देखकर वे हाय-हाय करके चिल्लाने लगती है। उनका विलाप करुणरस से ओत-प्रोत है। पौड्रक का पुत्र सुदक्षिण पिता के वध का बदला लेने के लिए ब्राह्मणो की सलाह लेकर

१ पट्टिक्कु ताटियु मीशयु दष्ट्रयु
केट्टि चमयिच्चु केसरी मेवुन्न
× ×
इप्प परञ्ञयक्कुन्न मोजिक्कु वि
कल्प तरिपिल्ल गोविन्दनाणये

—ओट्टन तुल्लल, ले० कुचन नप्यार, पृ० १५६-१५७।

२ चित्रालयडङ्लु सत्रालयड्ङ्लु
मित्रालयडङ्न छत्रालयड्डलु
× ×
मरिक्काते सर्वं नाशिप्पिच्चु

—ओट्टन तुल्लल, ले० कुचन नप्यार, पृ० १५९।

शिव की पूजा करता है। होमकुण्ड से एक भयकर भूत निकलता है, जिसका वर्णन कवि करते है। उस भूत के बाल ताम्र वर्ण के है, दाढी, मूछ, विशाल मुह, लबे दात, लाल आखे, अत्यन्त भयानक है। जगल की बढती हुई अग्नि के समान शरीर, ताड वृक्ष सदृश लबे हाथ और हाथो मे त्रिशूल भी दिखाई पडते है। उसके चारो ओर भूतगण गर्जते है।[1] इस प्रकार भयकर भूत ने अपने गणो के साथ द्वारिकापुरी पर हमला किया और थोडे क्षणो मे सारे मकान, किले आदि चकनाचूर कर दिए। खबर पाकर भगवान् कृष्ण ने अपने सुदर्शन चक्र का प्रयोग किया। उसकी अपार शक्ति के सामने भूत और गण खडे न रह पाए। अन्त मे सुदर्शन चक्र ने शत्रुओ का सहार किया और लौट आया। कवि इस घटना के द्वारा समझाते है कि बुरे काम के लिए तपस्या करके सचित शक्ति का प्रभाव अन्त मे क्षीण हो जाता है। वह शक्ति अपने लिए ही घातक सिद्ध होती है।

पौड्रक-वध की कथा कथकलि के रूप मे अश्विनी नक्षत्रज राज ने कवितापूर्ण शैली मे लिखी है। पुराण-कथा के आधार पर इस भावपूर्ण रचना का उन्होने निर्माण किया। कथकलि-साहित्य मे इसका उच्च स्थान है। सहृदय लोग इस सरस कृति का अध्ययन बार-बार करके आनद लूटते है।

होमाग्नि से भूत का आगमन देखकर ब्राह्मण लोग डर के मारे आपस मे कहते है अरे देखो, कौन आता है। ऐसा मालूम पडता है मानो काल-प्रभजन सबको हिलाता हुआ चला आ रहा हो, क्योकि असमय मे ही बडे-बडे वृक्ष गिरे पडते है, सागर मे उत्तुग लहरे उठ रही है, मगरमच्छ आदि परेशान होकर इधर-उधर चक्कर काट रहे है। धूलि-जाल से सारा जगत् अन्धकारमय दिखाई पडता है। शिव के नेत्र से अग्निज्वाला निकलती है या यह धूमकेतु का आगमन है। निस्सन्देह इसके पहले ऐसी एक भी घटना न हुई थी।[2] आर्तबन्धु कृष्ण के अतिरिक्त हमारा कोई आश्रय नही। इतना कहकर ब्राह्मणो का

---

१ चेपिच्च केशवु ताटियु मीशयु
वपिच्च वक्त्रवु वक्र दन्तड्डलु
चैपरत्ति क्कुसुम पोले कण्णुकल
पैंचिटाभारवु घोर नादड्डल्
काट्टुतपट्टि ज्वलिक्क महाद्रिये
क्काट्टिल किलन्नोरु देह विस्तारवु
तालडल पोले नेट्त्तु करड्डलिल
× × ×
रूपमीवण्ण प्रकाशिच्चु वाह्नयिल

—ओट्टन तुल्लल, कुचन न्पयार, पृ० १६२-१६३।

२ एन्तहो ! भूसुरन्मारे एन्तहो
चण्टमारुतन वलरुन्नु जग
दण्टमाके इलकुन्नु खग
× ×

सवाद समाप्त किया जाता है। उत्सव के अवसर पर यह कथकलि देखने के लिए लोग बडी सख्या मे आया करते हैं। साब विवाह और नारद-सशय की कथा की ओर सकेत मात्र करके सूर आगे बढ जाते हैं। मलयालम के कवियो ने भी मूल कथा के अनुसार दो प्रसग लिखे हैं। भावुक कुचन नप्यार लिखते हैं एक घर से दूसरे घर मे जाकर मुनि ने देखा। वहा एक रमणी कृष्ण को पान दे रही है। वहा से दूसरे घर मे गए तो देखा, कृष्ण एक स्त्री के साथ शतरज खेल रहे हैं। एक घर मे कृष्ण नही दिखाई पडे। झाककर देखा तब मालूम हुआ कि कृष्ण उसी घर मे अपनी रमणी के साथ वशी बजा रहे हैं, एक घर मे कृष्ण सुन्दरी के साथ गाना गा रहे हैं।[1]

नारद-परीक्षा के द्वारा कवियो ने कृष्ण की योग-महिमा का वर्णन किया है। यागी एक ही समय मे कई कार्य कई स्थानो मे रहकर कर सकते हैं, यह दिखाया है। इसके बाद चेरुश्शेरी नपूतिरि ने खाण्डवदाह और राजसूय की कथा अपनी सरल कोमल-कान्त पदावली मे लिखी है। ये प्रसग सूरसागर मे नही पाए जाते। भारत मे बडे विस्तार से मूल कथा के आधार पर एजुत्तच्छन ने इन कथाओ का वर्णन अपनी गभीर शैली मे किया है। शिशुपाल-वध, जरासन्ध-वध आदि कथाओ पर सूरदास ने बहुत थोडे पद लिखे हैं। मलयालम के कवियो ने आदि से अन्त तक वे कथाए क्रमानुगत रूप से लिखकर साहित्य की सेवा की है। राजसूय की कथा कथकलि के रूप मे तिरुविताकूर राज्य के राजा कार्तिक नक्षत्रज ने सुन्दर ढग से लिखी। यह एक प्रमुख रचना मानी जाती है।

इसके पश्चात् सूर ने सुदामाचरित लिखा है। सुदामाचरित के प्रसग पर बहुत से कवियो ने अपनी लेखनी का अपनी-अपनी प्रतिभा के अनुसार प्रयोग किया। केवल सुदामाचरित लिखकर हिन्दी के कवि नरोत्तमदास अमर हो गए। उसी प्रकार मलयालम के कवि रामपुरत्तु वारियर ने महाकवि का पद पाया। सूर ने सुदामाचरित मे करुण तथा भक्तिरस-प्रधान पद लिखे हैं। सुदामा का चरित्रवर्णन द्वारकाधीश भगवान् कृष्ण का मित्र-प्रेम और उदारता प्रदर्शित करने के लिए ऐसा ही किया गया है। उसके साथ ही सुदामा की सरलता, सहृदयता, और उस समय की उनकी दीनावस्था आदि का हृदयग्राही चित्रण सूर के सुदामाचरित मे हमको मिलता है। मलयालम मे सबसे पहले चेरुश्शेरी ने ही सुदामाचरित पर भावनाप्रधान पद लिखे। इसे मलयालम मे कुचेलवृत्त कहा जाता है।

वेलयु वेटिञ्ञु वारिधि युमति
वेल भाकुलत पूएडु कण्डिटुन्नतेन्न हो।

—आट्टक्कथा, ले० के० गोपाला पिल्ला, पृ० १८७।

१ एन्नतरिञ्ञु मुनीन्द्रन मट्टोरु
मन्दिर मीमनि चेल्लुन्नेर
× ×
विध विनोद विलीनन कण्डान

—नारदपरीक्षा, ले० कु चन नप्यार, स० राजराज वर्मा, पृ० ५२

इसमे महाप्रतिभाशाली, शक्तिशाली, गुणवान्, रूपवान्, दीनवत्सल कृष्ण और उनके बाल्य-काल के सखा अत्यन्त दरिद्र, दुर्बल मित्र सुदामा के पुनर्मिलन की कथा वर्णित है।

सुदामा को देखकर द्वारकावसियो से चेरुश्शेरी कहलाते है—इस ब्राह्मण के शरीर पर केवल हड्डिया ही रह गई है। देखकर ऐसा मालूम पडता है मानो बीभत्सरस को दिखाने के लिए ही इसकी सृष्टि की गई हो। उसकी आखे मानो दो गढे हो।[1] दूसरी बार कृष्ण जब चिउडा खाने लगे तो रुक्मिणी ने रोक दिया और कहा—हे भगवान् आप मुझे इस ब्राह्मण की पत्नी की दासी न बनावे।[2] इस तरह प्रसग के अनुसार सरस वर्णन कृष्णगाथा मे पाए जाते है। सुदामा के भ्रम का वर्णन विशेष उद्देश्य से किया गया है। सुदामा भगवान् कृष्ण के दर्शन तथा सत्कार से अत्यन्त प्रसन्न होकर अपनी कुटी के पास आए। वे देखते है कि कुटी के स्थान पर बडा ऊचा महल बना है। तब एक अपूर्व सुन्दरी मुस्कराती हुई उनका स्वागत करने के लिए खडी है। उसके मुख की लजीली चेष्टाओ को देखकर ऐसा प्रतीत होता है जैसे किसी ब्राह्मण की स्त्री ही हो। सुदामा को तो वह स्त्री साक्षात् लक्ष्मी जान पडती है। उन्होने विचारा कि यह रमणी मेरी स्त्री तो नही जान पडती तो भी इसके प्रति मेरा मन आकृष्ट हो गया। परस्त्री को प्यार करना पाप है। हाय! मेरा मन कलुषित हो गया।[3]

कहा जाता है कि मलयालम भाषा के कवि रामपुरत्तु वारियर की कृति सुदामा-

---

१ अस्थिकल कोण्डु चमच्चतिन्मूलमे
न्तज्जन पण्डिवन मेनि तन्ने
× × ×
पान्कुजि एन्नोत्तों रसत्ति ने क्काटटुवावद्ध लीलनायल्लयल्लो?

—कृष्णगाथा, स० राजराज वर्मा, पृ० १८-१८९।

२ वट्टातोरन्पु कोण्डारणनेन्ने नी
मुट्टमटिक्कु माराक्कोल्लाते

—कृष्णगाथा, स० राजराज वर्मा, पृ० १९२।

३ सुन्दरि यायोरु नारि युण्डिङ्डोटुट
वन्नु तुटड्डुन्नु मन्द मन्द
रत्नङ्डल पूण्डोरु मेनिये क्काणुम्पोल
कल्पकविल्लुतानेन्नु तोन्नु
लक्षण मोरोन्नु चिन्तिच्चु काणुम्पोल
लक्ष्मितान केवल मल्लयल्ली
उत्तमयायोरु नारि येन्नुल्लतो
× × ×
तन्नुटे कोरक एन्नु नण्णि
कष्टमे येन्नुटे धर्मवु कैविट्टु
दुष्टनाय् वन्नु ज्ञानिन्नु नेरे।

—कृष्णगाथा, स० पि० के० नारायण पिल्ला, पृ० ५५२।

चरित की दृष्टियो से उत्तम मानी जाती है अत यहा वारियर और नरोत्तमदास-कृत सुदामाचरित का तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया जाता है। दोनो भाषाओ मे दोनो कवियो का स्थान प्रमुख है।

नरोत्तमदास अपनी पुस्तक मे श्री गणपति की वन्दना से कथा का आरभ करते है। वारियर गणपति के पिता शिवजी की वन्दना करने के बाद अपने राजा की विरुदावली गाते है। उसके अनन्तर कृष्णावतार की महत्ता वे लिखते है—ब्रह्मा, शिव, देव आदि की प्रार्थना से साक्षात् ब्रह्म की पूर्ण कलाओ का रूप धारण कर देवकी के पेट मे जन्म लेकर भगवान् कृष्ण आठ-नौ वर्ष तक वृन्दावन मे पले।[1] तत्पश्चात् श्री कृष्ण की बाललीला का वर्णन है जो नरोत्तमदास की कविता मे नही मिलता। फिर कवि ने सुदामा तथा उनकी स्त्री का सवाद प्रस्तुत किया है। वारियर की कृति मे सुदामा तो विरक्त ब्राह्मण है, परन्तु उनकी धर्मपत्नी सन्यासिनी नही बन पाई है। अत वह अपनी निर्धनता दूर करने के लिए सुदामा से श्री कृष्ण के पास जाने की प्रार्थना करती है। हे भगवन्! आप हमपर कृपादृष्टि रखे। इसमे कोई सन्देह नही कि निर्धनता से बढ़कर और कोई दु ख इस ससार मे नही है। घर तो गिर रहा है। पर आप तो सदा ईश्वर के ध्यान मे मग्न बैठे रहते है। तब आप अपनी दीन स्त्री की पीडा कैसे जान सकते है।[2]

इसका व्यग्यार्थ यह है—आप मेरे पतिदेव है। मेरे पालन-पोषण का भार आपके ऊपर है। ऐसा मालूम पडता है कि यह बात आप बिलकुल भूल गए है। सब लोग आपके समान सदा ईश्वर के ध्यान मे ही नही बैठ सकते। मेरे समान सासारिक प्राणी को भूख लगती है। सब दु खो से बडा दु ख निर्धनता है। यदि आप चाहे तो वह दु ख दूर कर सकते है। आपके प्यारे तथा पूज्य मित्र भगवान् कृष्ण की कृपा हो तो सारा दु ख मिट जाएगा और उसके लिए अवसर भी है। शिक्षा-दीक्षा के बाद आपकी उनसे भेट नही हुई है। अत मेरा निवेदन है कि आप उनसे मिलने के लिए अवश्य जाइए।

सुदामा की स्त्री अच्छी तरह जानती है कि यदि मै हठ करू तो कृष्ण के दर्शन

---

१. ब्रह्मादिकलर्थिच्चिटटु परिपूर्णमायिरिक्कु
ब्रह्म मुजुवन देवकियुटे जठर
जन्मभूमि याक्कीट्टीन्पाटियिलेट्टोन्पतु वर्ष
नन्मयोटे नालु तोरु वलन्नींलयो १
—कुचेलवृत्तम्, स० शूरनाट कुञ्जन पिल्ला एम० ए०, पृ० ५।

२ चिल्लोन मानस पते! चिरन्तननाय पुमान
चिल्लि चुलिच्चोन्नु कटाक्षिप्पानोर्क्कणे
इल्ल दारिद्रार्त्तियोल वलुतायिट्टोरार्त्तिय
इल्ल वीणु कुत्तुमारायितु कण्डालु
वल्लभ! केट्टालु परमात्म मग्ननाय भवान
वल्लभ युटे विशप्पु मरियुन्निल्ला
—कुचेलवृत्तम्, स० कुञ्जन पिल्ला, पृ० ११-१२।

करने के लिए पतिदेव जाएगे ही। ऐसा ही हुआ। पति ने पत्नी की बाते मान ली। अन्त मे पति ने कहा—प्रिये, तुमने जो कहा वही करूगा। आधी रात हो गई है। जरा कुछ देर के लिए मै सो जाऊ। सर्वव्यापी भगवान् को देखने के लिए मै बडे सवेरे उठूगा। भेट के रूप मे उन्हे देने के लिए कुछ दे देना।[1] सुदामा की सती-साध्वी पत्नी ने पिछले दिन भीख मे जो अनाज पाया था उसे कूटकर उसने चिउडा बनाया। चिउडा बनाते समय जो ककड उसमे मिले थे उनकी चिन्ता न करके उसे अपने पतिदेव को दे दिया। नरोत्तमदास अपनी पुस्तक मे पति-पत्नी के वार्तालाप के प्रसग मे लिखते है। भगवान् की स्तुति करते हुए सुदामा की स्त्री कहती है—

लोचन कमल दुख मोचन तिलक भाल, स्रवननि कुण्डल
मुकुट धरे माथ हैं।
ओढ़े पीत बसन गरे में बैजयन्ती माल, सख चक्र गदा और
पद्म धरे हाथ हैं।[2]

इस प्रकार का सुन्दर वर्णन करने वाले कवि बहुत कम पाए जाते है।

नरोत्तमदास ने लिखा है कि वाद-विवाद के पश्चात् सुदामा श्री कृष्ण के पास जाने को तैयार होते है।

वारियर के सुदामा की स्त्री उतनी चतुरा है कि उसके कुछ शब्द सुनकर ही सुदामा श्री कृष्ण के पास जाने को तैयार हो जाते है। भेट के सबध मे नरोत्तमदास लिखते है—

यहि सुनिके तब ब्राह्मनी, गई परोसिन पास।
पाव सेर चाउर लिए, आई सहित हुलास॥[3]

वारियर के सुदामा चिउडा लेकर जिस समय द्वारिका की ओर प्रस्थान करते है उस समय मार्ग के प्राकृतिक दृश्यो का वर्णन कवि ने बहुत ही अच्छा किया है। बडे कुतूहल के साथ छतरी ले वे पत्नी से विदा होकर श्री कृष्ण का नाम जपते हुए रवाना हुए। उस समय बाल रवि की किरणे चारो ओर फैलने लगी थी। दाहिनी ओर मुडकर चकोर आदि पक्षियो का चहचहाना सुनते हुए वे जा रहे थे। जाते समय वे भक्तिरस मे तल्लीन हो रहे थे।[4] इस प्रसग मे नरोत्तमदास ने केवल इतना ही लिखा है कि गणपति का स्मरण करते हुए दुपट्टी बाधकर सुदामा चल दिए।

---

१ परञ्जतड्डनेतन्ने पातिरावायल्लो पत्नी
कुरञ्जोन्नुरड्डट्टे ञानुलकीरेञु
निरञ्ञ कृष्णने क्काण्मान पुलरकाले पुरप्पेटा
अरिञ्ञु वल्लतु कूटे तन्नययक्केण
—कुचेलवृत्तम्, स० कुञ्जन पिल्ला, पृ० १२।

२ सुदामाचरित, स० श्री ललिताप्रसाद सुकुल, पद स० ६।

३ सुदामाचरित, स० ललिताप्रसाद सुकुल पद स० २५।

४ कूलकप कुतूहल कुटयुमेटुत्तिट्टनु

वारियर के सुदामा भक्तिसागर मे डूबते-डूबते कई शहर-गाव पार करते है। सुदामा श्री कृष्ण की याद करते-करते कभी पुलकित होते है और कभी सकोच होने के कारण सोचते है—कल जाऊ, कल जाऊ, इस प्रकार विचार करके बहुत दिन टल गए। अभी जाऊ तो उनके मन मे मेरे प्रति न जाने क्या भाव उठेगे। जैसे ताड वृक्ष पर कमल के फूल फेकने से उसपर किसी प्रकार का प्रभाव नही पडता, वैसे ही कही मेरा जाना भी बेकार न हो जाए। परन्तु यह सन्देह पैदा होते ही फिर मिट गया, क्योकि श्री कृष्ण तो सबके नाथ है। वे सोचने लगे—अकिचन व्यक्ति पर भी अनुग्रहो की वर्षा करने वाले भगवान् मुझ ब्राह्मण पर कृपा करेगे ही। पूर्ण विश्वास है कि मुझे देखते ही भगवान् प्रसन्न हो जाएगे और बडी आवभगत करके मेरा स्वागत करेगे।[1]

इस प्रकार स्वय शका-समाधान करके सुदामा द्वारिका पहुचे। द्वारिका के विविध मार्गों का वर्णन करते हुए अन्त मे सक्षेप रूप से वारियर ने यो लिखा है—ठीक समय पर भोजन न पा सकने के कारण निर्बल सुदामा की भूख-प्यास द्वारिका को देखते ही मिट गई। केवल भूख और प्यास ही नही बल्कि वह भव-बाधा भी मिटी जिसका नाश भक्ति के सिवा और किसीसे नही हो सकता। श्री कृष्ण की राजधानी ने बडे आदर के साथ उन्हे रोमाच रूपी कुर्ता भेट मे दिया जो पहनते ही पसीने से भीग गया, आनन्दाश्रु से भीगने के कारण वह कुर्ता सुदामा को भारी प्रतीत होने लगा। उनकी आखे खुशी से भर आई।[2] इस प्रकार सुदामा श्रद्धाभक्ति-युक्त हो द्वारिका पहुचे। यह भाव कवि ने आलकारिक भाषा मे व्यक्त किया है भक्ति रूपी हवा के सहारे रूपी पारावार को पार करके भगवान् के

कूलयाय पत्नियोरु यात्रयु चोल्लि
बालादित्य वेट्ट तुटड्डिय नेर कृष्ण नाम
जालड्डले जापिप्पू तु चेय्तु कुचेलन्
चालेवलत्तोट्टोजिञ्ञ चकोरादि पक्षिकटे
कोलाहल केट्टु कोण्डु विनिर्गमिच्चु
नाजिक तोरु वलरु भक्ति नल्कु मानन्दमा
माजियिन्कलुटनुटन मुजुकुकयु
ताजुकयुमोजकयु चेयतु काल मल्प पोलु

—कुचेलवृत्तम्, स० कुञ्जन पिल्ला, पृ० १४।

१ एन्तायालु चेन्तामर क्कण्णनेन्ने क्काणुन्नेर
सन्तोक्किक्कु सन्करिच्चयय्क्कयु चेय्यु

—कुचेलवृत्तम्, स० कुञ्जन पिल्ला, पृ० १५।

२ पट्टिणि कोण्डु मेलिञ्ञ पण्डितनु कुशास्थली
पट्टण कण्डप्पोजे विशप्पु दाहवु
पेट्टन्नकन्नुवेन्नल्ल भक्ति कोण्डेन्निये पणि
× × ×
चोमातिरिक्कतु चुमटायि चमञ्ञु

—कुचेलवृत्तम्, पृ० १७१।

घर मे सुदामा ने प्रवेश किया।

नरोत्तमदास ने केवल दो ही पक्तियो मे यह बात लिखी है—

भाल तिलक घसिके दियो गही सुमिरनी हाथ।
देखि दिव्य द्वारावती, भयो अनाथ सनाथ॥[२]

वारियर के वर्णन से समझा जा सकता है कि उन्होने अनेक विषयो की उद्भावना की जिन्हे अन्य किसी कवि ने नही लिखा। बाह्य प्रकृति का वर्णन जिस कुशलता से उन्होने किया है वैसी ही निपुणता रस तथा भाव का चित्रण करने मे भी दिखाई है। द्वारिका नगर के दर्शन करते ही सुदामा के हृदय मे जो आनददायक सात्त्विक भाव अकुरित हुआ, वह पसीने से तर उनके शरीर मे रोगटे के रूप मे प्रत्यक्ष दिखाई पडता है और अनुकूल वायु की सहायता से जैसे नाव प्रबल तरगो को काटती हुई आगे बढकर किनारे पर पहुचती है वैसे ही भक्ति रूपी पवन की सहायता से शरीर रूपी नाव भाग्य-सागर की तरगो से टकराकर द्वारिका रूपी किनारे पर पहुचती है। इस भाव की व्यजना बडी सुन्दरता से वारियर ने अपनी कविता मे की है। इतने से ही उनकी कविता की श्रेष्ठता समझी जा सकती है।

सुदामा का चित्र वारियर यो खीचते है—उन्होने पुराना वस्त्र पहना है, कन्धे पर एक उत्तरीय पडा है। पोटली तथा धर्मग्रन्थ काख मे दबी है। छाती पर भस्म लगा है। फटा-पुराना छाता लेकर रुद्राक्ष की माला फेरते और भगवान् का ध्यान करते हुए वे चले जा रहे है।[३] ऐसे भक्त को सातवी मजिल से भगवान् ने देखा तो तुरन्त दौडे हुए आए और आसू बहाते हुए अपने मित्र को छाती से लगाया। उस दृश्य का वर्णन वारियर इस प्रकार करते है—मित्र को देखकर श्री कृष्ण अत्यन्त प्रसन्न हुए। परन्तु उनकी दीनावस्था देख उनको बहुत दु ख हुआ। वे रोने लगे। शूरवीर भगवान् को दु खी होते कब देखा है[४], कभी नही। उनके जीवनकाल मे बहुत सी ऐसी रोमाचकारी घटनाए हुई,

---

१ शाङ्गियुटे पुरद्वार [illegible]

—कुचेलवृत्तम्, पृ० १७।

२ मुदामाचरित, स० सुकुल, पद स० ३०।

३ कण्डालेत्रकष्ट मेत्रयु पुषिञ्ञ जीर्ण्ण वस्त्र
कोण्डु तट्टुटेत्तिट्टुत्तरीयवु इट्टु
मुण्डिल् पोत्तिञ्ञ पोतियु मुख्यमाय पुस्तकवु
× × ×
चिद्र पत्तिन्कलुरच्चु चेन्चम्मे चेल्लु

—कुचेलवृत्तम्, स० कुञ्जन पिल्ला, पृ० १८।

४ अन्तणने क्कण्डिट्टु सन्तोष कोण्डो तस्य दैन्य
× × ×
चेन्तामर क्कण्णनुण्डो करञ्ञिट् टुल्लु?

—कुचेलवृत्तम्, पृ० १८।

परन्तु उनका मन पत्थर-सा कठोर बना रहा। वारियर अन्त मे इसी निष्कर्ष पर पहुचते है कि रोने के कारण भक्तो की ओर उनकी अनुकपा तथा सहानुभूति प्रकट होती है। इस प्रकार भगवान् को भक्तानुग्राह्यग्र सिद्ध करके कवि आगे बढते है—श्री कृष्ण अपनी कोमल शय्या से उठकर नीचे आए। उस समय सारे परिजन और पौरजन भगवान् की वन्दना करते हुए खडे थे। टिड्डी-दल के समान अपने भक्तो के साथ कृष्ण ने उत्तम भक्त सुदामा का स्वागत बडे तपाक से किया। इस समय कवि पूछता है कि श्री कृष्ण के अतिरिक्त क्या किसी अन्य मे इस प्रकार की समवेदना तथा सहानुभूति है ?[1]

श्री कृष्ण ने अपने मित्र का स्वागत ही नही किया, बल्कि पसीने से तर होने के कारण दुर्गन्धित शरीर वाले अपने सखा को छाती से भी लगाया और बडे प्यार से सुदामा का हाथ पकडकर भगवान् ने उन्हे अपनी शय्या पर बिठाया। लक्ष्मीदेवी ने जल से उसका अभिषेक किया और भगवान् ने स्वय उसके पैर धोए। पश्चात् जिस जल से अपने भक्त के चरणारविन्दो को श्री कृष्ण ने धोया था उस परिपावन जल को एक भी बूद बिना गिराए अपने तथा दूसरो के शरीर पर छिडका।[2]

साधारणत लक्ष्मीजी धनवान् पर ही प्रसन्न हो जाती है। किन्तु यहा भगवान् को दीन दु खी ब्राह्मण पर अत्यन्त प्रसन्न देखकर लक्ष्मीजी को अपना स्वभाव छोडकर गरीब सुदामा पर प्रसन्न होना पडा।

नरोत्तमदास ने भी इस प्रसग का वर्णन बडी कुशलता से किया है। सुदामा का चित्र बडी सुन्दरता से नरोत्तमदास ने खीचा है। द्वारपाल श्री कृष्ण को सुदामा के आगमन की सूचना इन शब्दो मे देता है

सीस पगा न झगा तन में, प्रभु ! जाने को आहि बसे केहि ग्रामा।
धोती फटी सी लटी दुपटी अरु पांय उपानह को नहीं सामा।
दार खरो दिज दुर्बल एक, रह्यो चकि सो बसुधा अभिरामा।
पूछत दीनदयाल को धाम, बतावत आपनो नाम सुदामा।[3]

---

१ पल्लि मन्चत्तीन्तु वेक्क मुत्थान चेयितुरुपक्क
मुल्ल परिजनत्तोट्टु कूटि मुकुन्दन
× × ×
पारवश्य मेव मट्टोरीश्वरनुण्डो ?

—कुचेलवृत्तम्, पृ० १८।

२ मारत्ते वियर्प्पु वेल्ल कोण्डु नारु सतीर्त्थने
मारत्तुण्मयोट्ट चेर्त्त गाठ पुणर्न्नु
× × ×
मुल्लतु कोण्डु तनिक्कुमार्क्कु तलिच्चु

—कुचेलवृत्तम्, पृ० १९।

३ सुदामा चरित, स० ललिताप्रसाद सुकुल, १५।

यह वर्णन बहुत सजीव और स्वाभाविक है। सुदामा का नाम सुनते ही दौडे हुए भगवान् का आना, सत्कार करना आदि पर दोनो भाषाओ के कवियो ने बडी कुशलता से लिखा है। अतएव कहा जा सकता है कि दोनो कवियो के काव्य का यह अश एक-दूसरे से बढ़कर है।

वारियर लिखते है--घर से निकलते ही सुदामा को सन्देह हुआ था कि कही भगवान् मुझे भूल न गए हो। जब भगवान् के मुह से निम्नलिखित वाक्य निकले तो उनका सन्देह दूर हो गया। "कितने दिनो से तुम्हे देखने के लिए मै लालायित हो रहा हू। इतने दिन बाद तुमने मेरे यहा पधारने का निश्चय किया, यह मेरे लिए बडे सौभाग्य की बात है।[1] यह कहकर श्री कृष्ण ने बहुत सी पूर्व-घटनाओ की याद दिलाई। अन्त मे भाभी की दी हुई भेट निस्सकोच देने की प्रार्थना वे करते है--भाभी ने जो पोटली दी है उसे जल्दी ही मुझे दो। सकोच की आवश्यकता नही है। गोपिकाए भी मुझे लालची कहती है।[2] नरोत्तमदास ने यह प्रसग बडी सरसता से लिखा है। महावैभवशाली कृष्ण के सामने अपनी स्त्री की दी हुई पोटली को उठा लेने मे सुदामा सकोच करते है। यह जानकर सरस तथा व्यग्य भरे शब्दो मे श्री कृष्ण कहते है--

आगे चना गुरुमातु दए ते लए तुम चाबि हमें नहिं दीने।
स्याम कह्यौ मुसिकाय सुदामा सो, चोरी की बान में हो जू प्रवीने।
पोटरी काख में चांपि रहे तुम, खोलत नाहि सुधारस भीने।
पाछिली बानि अजौं न तजो तुम, तैसई भाभी के तन्दुल कीने।

जब श्री कृष्ण ने चिउडा खाना आरभ किया उस समय का वर्णन[3] नरोत्तमदास करते है--

कांपि उठी कमला मन सोचत, मोसो कहा हरि को मन औंको।
ऋद्धि कँपी सब सिद्धि कँपी, नव निद्धि कँपी बम्हना यह धौंको।
सोच भयो सुरनायक के, जब दूसरी बार लियो भरि झौंको।
मेरु डर्‌यो बकसे जनि मोहि कुबेर चबावत चाउर चौंको।

भगवान् की सत्ता पर विश्वास करने वाले भक्त लोगो[4] से प्रकृति-शक्तियो का इस प्रकार भयभीत होना यथार्थ ही प्रतीत होता है।

---

१ एत्र नालुएडु आन काणाञ्जिऋट्टु चित्ते कोतिक्कुन्नु
अत्र तन्ने पोन्नु वन्नतस्माक् भाग्य।
—कुचेलवृत्तम् स० कुञ्जन पिल्ला, पृ० २०।

२ पोतियिड्डोट्टु तन्नालु लज्जिक्केन्ड गोपिमारु
कोतियनेन्निज्जनत्ते परवु आय।
—कुचेलवृत्तम्, पृ० २१।

३ सुदामाचरित—स० ललिताप्रसाद, पृ० १८।

४. सुदामाचरित—स० ललिताप्रसाद, पृ० १९।

वारियर इसी प्रसग मे लिखते है कि जब श्री कृष्ण ने सुदामा के हाथ से चिउडे का दोना ले लिया तब उनके आनन्द का ठिकाना न रहा। ककड और भूसी मिला हुआ चिउडा एक मुट्ठी अपने मुह मे उन्होने रखा। दूसरी बार भी लेने के लिए उन्होने हाथ बढाया तो लक्ष्मीदेवी ने रोककर कहा—हे नाथ! बस कीजिए, बस कीजिए। सबको सर्वदा किसी भी मात्रा मे कोई भी वस्तु देने की शक्ति रखने वाली मै अब इस ब्राह्मण को सब कुछ दे चुकी हू। और कोई भी वस्तु देने के लिए नही रह गई है। मै जन्म से ही आपकी सह-चारिणी हू और अब ऐसा मालूम होता है, आपने मुझे इस ब्राह्मण की पत्नी की दासी बनाने का निश्चय कर लिया है। हे नाथ, आप क्यो ऐसा करते है।[1]

नरोत्तमदास इस घटना का वर्णन सक्षेप मे करते है—

मुठी तीसरी भरत ही, रुकमिनि पकरी बाह।
ऐसी तुम्हें कहा भई, सम्पति की अनचाह।
कहो रुकमिनी कान में, यह धौं कौन मिलापु।
करत सुदामा आपु सो, होत सुदामा आपु।[2]

रुक्मिणी की घबराहट दूर करते हुए वारियर के भगवान् इस प्रकार कहते है—हे प्रिये! घबराओ मत। तुमने जो किया वह बहुत अच्छा किया है। किन्तु खेद की बात है कि यद्यपि तुम मेरे पास हमेशा से रहती हो, फिर भी मेरे स्वभाव से बिलकुल अनजान हो। मेरा स्वभाव है कि अपने भक्तो के सामने मै अपने को बिलकुल भूल जाता हू और उनकी भलाई के लिए सदा प्रस्तुत रहता हू। क्या यह बात तुमने अभी तक नही जानी? अपने भक्त ने जो दिया उसमे से ही मुट्ठी भर खाने से मै बहुत तृप्त हो गया हू।[3] आशय यह कि अनगिनती ब्राह्मणो को अपने जठर मे रखने वाले भगवान् ब्राह्मण-पत्नी का भेजा हुआ ककड-भूसी मिला मुट्ठी भर चिउडा खाने से तृप्त हो गए है। अपनी प्रिया की बाते समझने के बाद भगवान् सुदामा से कहते है—

कुछ वर्ष पहले द्रौपदी का दिया हुआ शाकान्न मैने खाया। उस दिन और आज

---

१ मति मति पतियोडु परवू तु चेय्तु कान्ता।
मति मति कदशनमतीव मूल्य
× × ×
मुरिच्चयच्ची विप्रन्टे पत्नि-मक्कु दासियावकुवा-
नुरच्चितो तिरु मनस्सिलितेन्तय्यो

—कुचेलवृत्तम्—स० कुञ्जन पिल्ला, पृ० २३।

२ सुदामाचरित—स० सुकुल, पृ० २०-२१।

३ परिभ्रमिक्केन्डा पत्नी परञ्जतु कोल्ला तानु
× × ×
मरिञ्ञु कोल्लुवानायि प्पुनरुद्योग

—कुचेलवृत्तम्—पृ० २३।

मुझे जो तृप्ति हुई वह अपने जीवन मे कभी नही हुई। मेरे भक्त भक्ति से मुझे जो कुछ देते है वह चाहे खट्टा, कडवा, कैसा भी हो, मेरे लिए पीयूष समान होता है। इसके विपरीत, भक्तिहीन मनुष्य का दिया हुआ अमृत भी मुझे नीम के समान कडवा मालूम होता है। आप जैसे गर्वहीन भक्त मुझे कोई और कैसी भी वस्तु अणुमात्र भी दे वह मेरे लिए पर्वत समान बहुत अधिक है।[1] कवि आगे लिखते है—हम दोनो के शरीर यद्यपि दो है तो भी मन एक है। शरीर के विनाश के बाद भी हमारा सबध बना रहेगा। आप अपनी धर्मपत्नी से कह दे कि लक्ष्मीदेवी तथा आपकी स्त्री का स्थान एक है।[2]

भगवान् के ये वचन सुनकर सुदामा उचित उत्तर देते है—हे मुक्ति, मुक्ति देने वाले भुवननाथ, भक्त सच्ची भक्ति से आपको प्राप्त कर लेता है। आप इतने प्रतापी है कि प्रसन्नचित्त सामन्त उपहार लेकर आपके दर्शन करने की अभिलाषा मे खडे है। ऐसे आप मुझ बेचारे की इस प्रकार सेवा करते है। यह सब मैने न पहले देखा था न सुना था। बचपन मे मैने आपका जो रूप देखा था उसकी पूजा मै अपने मनोमन्दिर मे करता आ रहा हू। अब वह रूप मै सामने देख सका। इससे मै अतीव प्रसन्न हो गया हू। भवन के सातवे खड पर लक्ष्मी देवी की शय्या मे आपने मुझे विश्राम करने दिया जिससे मै सोचता हू कि मेरे समान इन चौदह लोको मे कोई भी सौभाग्यवान् नही है।[3]

नरोत्तमदास भगवान् के सत्कार के बारे मे कहकर अन्त मे लिखते है—

सात दिवस यहि बिधि रहे, दिन बिन आदर भाव।
चित्त चल्यो घर चलन को, ताको सुनहु बनाव॥[4]

---

१ पण्डोरिक्कल पाण्टव महिषिपुटे शाकोदन
मुण्डु नामिन्नु भवान्टे पृथुक तिन्नु
× × ×
सर्व तत्व वित्ते ! भवानरियामल्लो

—कुचेलवृत्तम्—पृ० २४।

२ कायभेद मुण्टेन्किलु रण्डल्लानामुभौ जीवन
पोयालु मिरि वकुम्पोज्नु मेन्नरिञ्जान।
परञ्जालु ममवचन।

—कुचेलवृत्तम, पृ० २४।

३ मुक्ति मुक्ति दातावे ! भुवननाथ ! भगवाने !
भक्ति कोण्डु भक्तन्मारु निन्नालत्भुत
शक्ति कोण्डु शक्तन्मारु जयिक्क प्पेट्टुन्नतिनाल
युक्त रण्डु जितारय्क्कु मन्तर वेण्ड
× × ×
मन्परना धन्यनिल्लीमन्नीरेञ्जिलु

—कुचेलवृत्तम्, स० कचन पिल्ला, पृ० २४ २५।

४ सुदामाचरित, स० सुकुल, पद्य स० ५६, पृ० २४।

वारियर यह नही बताते कि सुदामा श्री कृष्ण के यहा कितने दिन ठहरे। उन्होने यह लिखा—धनहीन ब्राह्मण सुदामा भगवान् कृष्ण को अपने मन मे लेकर विदा हुए।[1] कितनी सुन्दर युक्ति है यह!

रास्ते मे सुदामा कृष्ण भगवान् की आवभगत के विषय मे सोचते है—भगवान् का काम देखकर अचरज ही अचरज मालूम होता है। कहा मुझ-जैसा तुच्छ-अकिचन मनुष्य और कहा ईश्वर के भी ईश्वर श्री कृष्ण। तो भी हम दोनो की मित्रता का दूसरा उदाहरण कहा मिलेगा? तैंतीस करोड देवो और त्रिमूर्तियो के स्वामी भगवान् मुझे देखते ही नीचे दौडे और पसीने से तर मुझ जैसे गन्दे को कामदेव के पिता भगवान् ने अपनी छाती से लगाया। फिर सौध मे ले जाकर लक्ष्मीदेवी की शय्या पर बिठाकर मेरी पूजा करने लगे। रात के समय रमा के साथ के सुप्ति-सुख को छोडकर मेरे लिए पखा झलते रहे। इस हास्यास्पद ब्राह्मण की जो सेवा अखिलेश्वर ने बडी लगन से की, उसके बारे मे क्या कहना! शब्द नही मिलते। मेरे कृष्ण भगवान् ने भेट का वह चिउडा बडे प्रेम से खाया जिसे साधारण नौकर-चाकर भी नही खाते।[2]

इस प्रकार सोचते-सोचते मार्ग का क्लेश बिना जाने वे जा रहे थे कि अपनी स्त्री की बात उन्हे याद आ गई जिसके लिए उसने उन्हे श्री कृष्ण के पास भेजा था। वह बात भगवान् के सामने कहना वे बिलकुल भूल गए। वारियर कहते है—'मेरी राह देखती तथा आखे डबडबाती बैठी हुई अपनी पत्नी से मै क्या कहूगा! हाय! अपनी पतिव्रता पत्नी को मेरे कारण इतने दिन उपवास करना पडा होगा। धिक्, मेरा जीवन! मुझ पापी की क्या गति होगी?[3]

नरोत्तमदास ने सुदामा के पश्चात्ताप का चित्र बडी कुशलता और भावुकता से खीचा है। जब बहुत बडी आशा बाधकर एक आदमी आता है लेकिन अन्त मे उसे निराश होकर लौटना पडता है उस समय की मनोवृत्तियो का सुन्दर चित्रण कवि ने किया है।

---

१ कुचेलवृत्तम्—पृ० २५।

२ आश्चर्यमाश्चर्य मिदमोर्त्तु काणु तोरु पारि-
लारिलुमसारनाय ज्ञानेविट्यु
ईश्वरेश्वरनायुल्ल कृष्णनेविटत्तु मैत्रि
यीवण्ण मार्क्कु मारिलु काणक थिल्लेड्डु

× × ×

शास्यन्मारा भृत्यन्मारु मशिक्कात्त कुपृथुक
मास्य त्तिलिट्टमृताक्की यिरक्किकयतु

—कुचेलवृत्तम्, स० कुञ्जन पिल्ला, पृ० २६।

३ जन्म व्यर्थ माक्कि प्पति व्रतये प्पट्टिणिक्किट्ट
कल्मषवानुण्डो गति मुक्तनायालु

—कुचेलवृत्तम्, स० कुञ्जन पिल्ला, पृ० २६।

बडी आशा से सुदामा कृष्ण के पास आए किन्तु कुछ नही पा सके। वे खीझते हुए कृष्ण की कडी आलोचना करते है—

वह पुलकनि वह उठि मिलनि, वह आदर की बात।
यह पठवनि गोपाल की, कछु ना जानी जात॥
घर घर कर ओड़त फिरे, तनक दही के काज।
कहा भयो जो अब भयो, हरि को राज समाज॥
हौं आवत नाहीं हुतौ, वाहि पठायो ठेलि।
अब कहिहौं समुझाय कै, बहु धन धरौ सकेलि॥
बालापन के मित्र हे, कहा देऊ मैं साप।
जैसो हरि हमको वियो, तैसो पइहै आप॥[1]

वारियर लिखते है कि सुदामा अपने को धिक्कारते जा रहे है। वे नही जान पाए कि अब वे स्वय भगवान् कृष्ण के समान सुन्दर और सूर्य के समान तेजस्वी हो गए है। अन्त मे अपने निवास-स्थान के समीप पहुचकर उन्होने देखा कि द्वारिका के समान किसी दूसरी नगरी मे वे आ गए है। उन्हे भ्रम हुआ कि शायद मै रास्ता भूल गया हू और घूम फिरकर भगवान् के ही धाम पर आ पहुचा हू। उस समय सुदामा की पत्नी आकर उनका स्वागत बडे समारोह से करती है। उसके सबध मे कवि कहते है—सुदामा की पत्नी ने गाते-बजाते पतिदेव का स्वागत किया और सूर्य जैसे प्रकाशमान सुदामा-नगरी को दिखाया। विविध प्रकार के महल, मण्डप, किले आदि के दिखाने के बाद उसने उन्हे शय्या पर बिठाया। चवर, ताबूल, पात्र आदि लेकर रमणिया चारो ओर घेरने लगी। पकजाक्ष के कृपा-भार से दबकर सुदामा अपनी पत्नी से सारा वृत्तान्त पूछने लगे।[2] इस प्रसग पर नरोत्तमदास और वारियर दोनो ने बडी सुन्दरता और निपुणता से अपनी रचनाए लिखी है।

सारा समाचार जानकर सुदामा की भक्ति दसगुनी बढ गई। वारियर लिखते है—द्वारिका, सुदामा की नगरी तथा धर्मपुत्र की नगरी हस्तिनापुरी मे एक ही रीति से धर्म के अनुसार काम चलने लगे। यद्यपि सुदामा तथा उनकी स्त्री को अटूट सपत्ति मिली तो भी भगवान् को उनका ही ऋणी होना पडा, क्योकि ज्यो-ज्यो सपत्ति बढी त्यो-त्यो उनकी

---

१ सुदामाचरित—स० शुकुल, पृ० २४-२५।

२ नल् पुरवासिकलोटु नाना वाद्य घोषत्तोटु
केल्पोटष्ट मगलदादि साकल्यत्तोटु
× × ×
स प्रसाद निज पत्नियोटु चोदिच्चु।
—कुचेलवृत्तम्, स० कुञ्चन पिल्ला, पृ० २८।

भक्ति भी सौगुनी बढने लगी।[1] अत कवि कहते है कि महा-महिमाशाली सत्ताधारी भगवान् दीन-हीन गरीब सुदामा तथा उनकी पतिव्रता, सती, साध्वी स्त्री के ऋणी हो गए, इस प्रकार की उद्भावना सभवत. किसी अन्य कवि को नही सूझी। कवि की यह उद्भावना निश्चय ही सुन्दर है। अत जो सहृदय है वे यदि एक बार वारियर तथा नरोत्तमदास की कृतिया पढे तो निस्सकोच कहेगे कि वे दोनो कृतिया कविता-कामिनी के गले के चन्द्रहार है। कुचन नप्यार ने भी सुदामा के चरित पर सुन्दर पद लिखे है। सुदामा की निर्धनता का वर्णन करते हुए लोगो की कृपणता तथा अनुदारता का चित्र सुदामा की स्त्री के द्वारा कवि ने प्रस्तुत कराया है। घर-घर मे भीख मागने पर ज्ञात हुआ कि भीख न देने वालो की सख्या अधिक है। यदि कुछ लोग देते भी है तो कुछ चावल या धान और वह भी सध्या के समय मे।[2]

कृष्णगाथा और वारियर की कविताओ मे लिखा है कि सुदामा की पत्नी भूख और प्यास से अत्यन्त परेशान होकर उनसे सदा के लिए छुटकारा पाने के उद्देश्य से अपने पति से कृष्ण के पास जाने की प्रार्थना करती है, किन्तु नप्यारजी भक्तश्रेष्ठ सुदामा की स्त्री से ऐसी प्रार्थना नही कराते है। बच्चो का दु ख देखकर वह व्याकुल हो उठती है और शकित हृदय से अपने पतिदेव से सारी बाते कहकर उनको द्वारिका जाने के लिए प्रेरित करती है। वह कहती है—ससारी लोग अपने बच्चो के पालन-पोषण करने के लिए सब कुछ करते है। परन्तु हे स्वामी ! आप अपने बच्चो का पालन करने की ओर बिलकुल ध्यान नही देते।[3] इस प्रकार अवसर के अनुसार तर्क देकर वह उनके बाल्यकाल के सखा मनमोहन कृष्ण के पास जाने की नम्र प्रार्थना करती है।

---

१ निर्म्मला कशल स्थली पुरत्तिलु कृष्ण कृपा
निर्म्मितमाकु कुचेल पट्टणत्तिलु
धर्म पुत्ररिक्कुन्न हस्तिन पुरत्तिन्कलु
धर्म मोरु पोले यायि दिवसन्तोरु
× × ×
कृशेतरयायि वकट शेषिच्चु।

—कुचेलवृत्तम्, स० कुञ्जन पिल्ला, पृ० ३१-३२।

२ इल्लड्डलिल चेन्नु नटन्निरन्ना—
लिल्लेन्नु चोल्लुन्न जनड्डलेरुं
अल्लेंकिल आजक्करि नलकुमप्पोल
नेल्लेंकिल मूजक्कतुमन्ति नेर।

—श्रीकृष्णचरित मणिप्रवालम्, कवि कुचन नप्यार, पृ० १०६।

३ मट्टुल्लतेप्पेरुमेट्टुत्त विट्ट
कोट्टिन्नु नल्कुन्नु गृहस्थरेल्ला
मुट्टु भवानुण्णिकले प्पुलर्त्ता-
नोट्टु मनस्सिल्ल महीसुरेन्द्रा।

—श्रीकृष्णचरित मणिप्रवालम्, पृ० १०७।

इसी अवसर पर त्यागी भक्त सुदामा भी सारगर्भित बाते कहने मे पीछे नही दिखाई पडते। अन्त मे अपनी सुशीला पत्नी का अनुरोध मानकर अपने उपास्यदेव की सुन्दर मूर्ति को देखने की इच्छा से वे जाने के लिए तैयार हो जाते है और कहते है—तो तुम्हारी इच्छा के अनुसार मै जाऊगा और जो कुछ मिलेगा उसे लाऊगा। इसी बहाने नन्दनन्दन का कमल-मुख देखने का अवसर भी मिलेगा।[1]

सुदामा भगवान् के यहा से लौटते है। रास्ते मे भगवान् की चेष्टाओ का स्मरण करते हुए कहते है। यदि मुरारि से धन मागता तो वे जरूर देते किन्तु उनके सत्कारो से दबकर मागना भूल गया। मेरी स्त्री ने उसीके लिए मुझे भेजा था।[2]

यह सोचकर उनको अपार दु ख हुआ। उसी दम वह दु ख मिट भी गया और स्वर्ग सदृश अपने नगर को देखकर उनको भ्रम हुआ, पर त्रिकालज्ञाता सुदामा को बोध हुआ कि यह भगवान् की करामात है और वे कहते है—मुझे मालूम हुआ कि यह सब भगवान् की लीला है। भगवान् ने जो विभूतिया दया करके दी उन्हे देखकर बडा आश्चर्य होता है।[3] इतना कहकर कवि लिखते है कि सुदामा नि सग होकर जीवन बिताने लगे। कृष्णगाथा मे सुदामा को एक बडे निर्धन के रूप मे और वारियर ने उनको निर्धन पडित और भक्त के रूप मे चित्रित किया है। कुचन नप्यार का सुदामा परम भक्त और निर्धनता से अप्रभावित व्यक्ति है।

इन तीनो कवियो के अतिरिक्त एक अज्ञात कवि ने सुदामा के चरित पर सुन्दर कविताए रची है। इन्होने सुदामा को केरलदेशवासी के रूप मे चित्रित किया है। वे सबसे पहले द्वारिकापुरी का सुन्दर वर्णन करके राजधानी के विविध व्यापारो का चित्र खीचते

---

१ एन्नाकिलु आनिह चेन्नु पोरा
तन्नाकिलो आनतु कोणडु पोरा
नन्दात्मजन् तन्टे मुखारविन्द
मन्दस्मिताद्र बत कणडु पोरा

—कृष्णचरित मणिप्रवालम्, पृ० १०८।

२ मुरारियार्थमिरन्नताकिल
तरातिरिक्किल्लवनत्रमात्र
परञजु मोदिच्चु वसिक्कयाल जान
मरन्नु पोयेन् गृहणी नियोग।

—कृष्णचरित मणिप्रवालम्, पृ० १०९।

३ उणडायि तत्व मम कणडतेल्लाम्
तणडारिल् मातिन कणवन्टे लील-
मिणडाते तन्नोरु विभूतियेल्लाम्
कणडालु आश्चर्यमहो विचित्र।

—कृष्णचरित मणिप्रवालम्, पृ० ११०।

है। उसके बाद सुदामा के सबध मे कहते है। कवि कुचेल[1] नाम कहकर पुकारने मे सकोच करते है। कुशल कुचेल नाम कवि ने सुदामा को दिया है। प्रस्तुत कवि पाठक की सहानुभूति को जागरित करते हुए, आगे कहते है। दूसरे कवियो के समान यह भी भूखी-प्यासी कुचेल पत्नी से इस प्रकार शिकायत कराते है। क्या आपको भूख नही लगती, किसकी पूजा आप इस प्रकार करते है ? यदि आप कुछ उपहार लेकर भगवान् के पास जाए तो वे जरूर प्रसन्न हो जाएगे और हमारा दु ख दूर करेगे।

सुदामा सोचते है, सस्कारहीन व्यक्ति (पत्नी) को उत्तर देने से क्या लाभ ? इस प्रकार विचार कर वे कहते है—तुम घृणा मत करो। क्षमा करो। अभी सो जाओ। कल सवेरे जाऊगा। पोटली और छत्र लेकर जाते हुए ब्राह्मण को देखकर ऐसा मालूम पडता है मानो केरलवासी हो। इस ब्राह्मण की विशेषता यह है कि जाते समय वह लोगो से पूछता जाता है सदावर्त कहा मिलेगा।

फटे-पुराने वस्त्र पहनने वाले सुदामा ब्राह्मण का स्वागत श्री कृष्ण उसी प्रकार करते है जैसे नवोढा के आगमन पर उसका प्रिय स्वागत करता है।[2] सुदामा को चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्यो का लेपन कराया गया। बातचीत के समय चारित्र्य की महिमा का वर्णन भी किया गया है। पुरानी कथाओ का स्मरण कराके एक दिन जगल मे उन्हे जो कष्ट उठाना पडा उसका सुन्दर वर्णन श्री कृष्ण के मुख से कवि ने कराया है। अन्त मे निराश होकर सुदामा अपने धाम पर पहुचते है। वहा का परिवर्तन देखकर उनको बडा आश्चर्य होता है। कवि कहते है—थोडे चिउडे भेट के रूप मे देने के बदले मे वैसा फल मिला जैसे ग्रीष्म के तप्त समय मे बडी वर्षा होती हो।[3] नये घरो को देखकर सुदामा को बडा भ्रम होता है। खाने की अमूल्य चीजे परोसते समय केरल देश मे प्रचलित खीर का नाम देने मे कवि ने भूल नही की। अवसर के अनुसार सुन्दर शब्दो के प्रयोग मे कवि की कुशलता प्रशसनीय है। सक्षेप मे कहा जाए तो यह कृति आदि से लेकर अन्त तक मधुर है।

कथकलि के रूप मे भी सुदामाचरित मलयालम मे लिखा गया है। मलयालम साहित्य मे इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। शकरन पोट्टि नामक एक ब्राह्मण इसके रचयिता

---

१ मलयालम के कवि सुदामा को कुचेल कहते है।

२ कवाटान्तिके चेन्नु निल्क्के कुचेलन
नवोढागमे तन प्रियन चेन्न पोले।

—कुचेलवृत्तम्, स० अच्युत मेनोन, पृ० २५।

३ उजक्कु नेल्लिटिच्चु काज्च वेच्चु कण्डतिन फल
× × ×
मुजुत्त कारेट्टत्त वन्नु पैय्त मारि पोलेयु
पोज्जिञ्जितिन्नु भूतियु।

—कचेलवृत्तम्, स० डा० चेलनार अच्युत मेनोन, पृ० ३१।

है। वसतकाल का वर्णन इसमे बहुत सुन्दर ढग से किया गया है। निर्धनता का नग्न चित्र दूसरे कवियो के समान इन्होने भी खीचा है। पत्नी के वचन सुनकर नरोत्तमदास के सुदामा के समान प्रस्तुत कवि के सुदामा कुपित होते नही दिखाई पडते। अपनी विदुषी धर्मपत्नी की प्रार्थना सुनकर उन्होने यही कहा कि जब तक शरीर रहेगा तब तक शरीरधारियो की इच्छा कम होती नही। किसी बात के प्रलोभन मे पडना अच्छा नही। शेष कथा मे कवि ने मौलिकता नही दिखाई है। इसकी सस्कृतमिश्रित शैली साधारण जनता के लिए बोधगम्य नही है। राजधानी तथा सुदामापुरी का वर्णन सुन्दर है। भक्तिरस-प्रधान कई पद इसमे पाए जाते है।

सुदामाचरित के बाद सूर ने सुभद्रा के विवाह का प्रसग एक ही पद मे सक्षेप मे लिख डाला है। परन्तु कृष्णगाथा मे बडे विस्तार से यह कथा लिखी गई है। सुभद्रा के रूप-लावण्य की प्रशसा सुनकर अर्जुन पहले ही उसपर मुग्ध हुआ था। उसी प्रकार सुभद्रा भी अर्जुन के वीरोचित गुणो के विषय मे सुनकर उसपर अनुरक्त हो गई। अर्जुन कपट-सन्यासी का वेष धारण कर आता है। श्री कृष्ण रहस्य समझकर बलराम की सलाह से युवा सन्यासी की सेवा-शुश्रूषा का भार अपनी बहन को सौपते है।

कपटयोगी को देखकर सुभद्रा का मन चचल हो गया। वह पहले ही से अर्जुन को प्यार करती आ रही थी। अब अपना मन एक दूसरे योगी की ओर आकृष्ट होने से उसे बडा दु ख और पछतावा होता है। कृष्णगाथाकार के अनुसार सुभद्रा विचारती है—दु ख की बात है कि इस सन्यासी मे मेरा चित्त लग गया है। उत्तम वश मे मेरा जन्म हुआ। ऐसी अवस्था मे इस सन्यासी मे अनुरक्त होने के कारण क्या है ? मेरा मन तो अर्जुन पर लट्टू हो गया था। इस परिवर्तन का क्या कारण है ? इस प्रकार का दुष्कर्म मै करू तो लोग क्या सोचेगे। क्या मै कृष्ण की बहन नही हू।[1] कुलीन नारियो के सस्कार का सच्चा प्रतिबिब यहा देखने को मिलता है। अन्त मे सोचने-विचारने के बाद सुभद्रा ने निश्चय कर लिया कि मै अर्जुन के अतिरिक्त और किसीसे प्रेम नही करूगी। सुभद्रा की इस प्रकार की चिन्ता का वर्णन मूल ग्रन्थ या सूरसागर मे कही भी नही दिया गया है। इस प्रसग के

---

१ योग्यनल्लातोरु भिक्ष तन्मेलल्लो
भाग्यमिल्लात येन् जाल्य मिप्पोल
उत्तम माय कुलत्तिल मुल्च्चेनि
यिक्कत्तर तोन्नुवानेन्तु आय
पार्थनिल्लोरु मानस मिन्निनि
त्तीर्थकन तन्कलेयायि क्कूटि
आर्त्तु निन्नीटिलिम्मन्मथ निन्नेन्ने
× × ×
यर्ज्जुनन् तन्ने आनेशि क्कोल्क

—कृष्णगाथा, स० पी० के० नारायण पिल्ला, पृ० ५८२-५८३।

द्वारा भारतीय नारीरत्न की चारित्रिक शुद्धि का दिग्दर्शन कराना कवि को अभीष्ट है।

एक दूसरे स्थल पर उस कपटी सन्यासी के विषय मे नगरनिवासियो का वार्तालाप सुनने योग्य है। सन्यासी के दर्शन के लिए लोग आते हैं। उस समय वे आपस मे कहते हैं। हमने इसके पहले इस प्रकार के किसी श्रेष्ठ सन्यासी को नही देखा। सन्यासी का मन ऐसे स्थान पर ही रमता है जहा मान, अभिमान, अपमान आदि का चिह्न भी जरा न हो। उनकी इन्द्रिया स्पन्दनविहीन होने के कारण ढीली दिखाई पडती है। किसीमे ध्यान लगने के कारण वे सामने खडे हुए हमको देख नही सकते। ठीक है, जिनको आन्तरिक ज्ञान मिला है उनकी स्थिति ऐसी होती है।[1]

सन्यासी का आन्तरिक उद्देश्य लोगो ने समझा, यह इस वार्तालाप से स्पष्ट है। उनके चुभते हुए वचन कितने अर्थगर्भित हैं। ऐसे सुन्दर सन्यासी को इसके पहले नही देखा, स्त्री के लोभ मे पडकर इस प्रकार इससे पूर्व कोई सन्यासी नही हुआ, यह है प्रथम पदो का सकेत। और किसीपर ध्यान लगा है, यह ध्यान सुभद्रा का निरतर विचार है।

सुभद्रा का चावल परोसना, केले का अन्तर्भाग बिना खाए अर्जुन का छिलका खाना आदि हास्यरस-प्रधान दृश्य भी इसी प्रसग के अन्तर्गत हैं।

कथकलि के रूप मे स्थानीय राज्य के राजा कार्तिक नक्षत्रज राम वर्मा ने सुभद्राहरण की कथा गीतात्मक तथा प्रबन्धात्मक शैलो मे लिखी है। अर्जुन तीर्थाटन करने के लिए सन्यासी का वेष धारण किए हुए पाचाली के पास जाते हैं। अपनी प्रिया से विदा लेने का प्रसग करुणरस-प्रधान भाषा मे कवि ने लिखा है। पाचाली कहती है—हे प्राणनाथ करुणानिधे! आपके वचन सुनकर मुझे अपार दु ख होता है। आपको बिना देखे एक निमिष भी मैं चैन से रह नही सकती। मेरे कारण आपको इस प्रकार का कष्ट झेलना पडता है। यह सोचकर मेरा मन दग्ध हो जाता है। भगवान् की कृपा से आप कृतकार्य होकर लौट आए।[2] कई पुण्य-स्थानो के दर्शन के बाद अर्जुन द्वारिका पहुचते

---

१ इड्डने युल्लोरु सन्यासि तन्नेप्प
णडेड्डुमे कण्डल्ल अडलारु
मानमट्टीटुन्नोरानन्द तन्निले
मानस चेन्नु लयिक्कयाले
स्पन्दत्ते क्कैविट्टोरिन्द्रि य मेल्लामे
मन्दड्डलायिट्टे काणाकून्नू
कण मुन्निल निन्नुल्ल नम्मेयु मेतुमे
काणुन्नोनल्लो ध्यानिक्कयाल
उल्लक तन्निलुणर्च्च पूण डीटुन्नोर्क्कु ल्लोरु आयमितेन्नु वन्नु
—कृष्णगाथा, स० पि० के० नारायण पिल्ला, पृ० ५८०।

२. कान्त! कामसमाकार! करुणानिधे
हन्त निम्मोजि केलक्कयाल स्वान्ते
खेद वलरुन्नु हो मे कान्त

है। सारा समाचार तथा भेद जानकर श्री कृष्ण सन्यासी की सेवा शुश्रूषा करने का भार अपनी बहन सुभद्रा को सौपते है। शेष कथाए मूल कथा के अनुसार है। सरस कोमल-कान्त पदावलि मे यह कृति रची गई है।

श्री कुचन नप्यार ने भी अपनी भक्ति-भावना के अनुसार तुल्ल पद्धति मे यह कथा लिखी है जिसका बडा प्रचार केरल प्रान्त मे हुआ है। चेरुश्शेरी नपूतिरि के अनुसार इनकी कविताओ मे हास्य तथा शृगार-रस-प्रधान कई पद है।

वृकासुर या भस्मासुर की कथा सूरसागर मे बहुत सक्षेप मे लिखी गई है। मलयालम के कवियो ने विशेषत कृष्णगाथाकार ने वह कथा वर्णनात्मक शैली मे लिखी है। शिवजी के वर के बल की परीक्षा शिवजी पर करने के विचार से भस्मासुर उनके सिर पर हाथ रखने लगा। वे डर के मारे भागने लगे। उनका वह दौडना बडे स्वाभाविक ढग से कृष्णगाथा मे लिखा है। कवि लिखते है—तेजी से दौडने के कारण पहना हुआ शिवजी का शार्दूल चर्म नीचे गिरने लगा। उसे अपने हाथ से पकडे हुए वे भागने लगे। उस समय गले से साप काप-कापकर एक-एक करके गिरने लगे। हड्डियो की मालाए छाती पर हिलने-डोलने लगी। हाथ के फरसे का प्रकाश चारो ओर फैल गया। कान मे कुडल रूपी सापो के शीत्कार से ललाट की आख की आग भभक उठी। सिर मे शोभित आकाश-गगा मे लहरे उठने लगी। पृथ्वी पर गिरे हुए बालचन्द्र को उठाते हुए और थर-थर कापती और विलपती हुई पार्वतीदेवी को सान्त्वना देते हुए शिवजी भागे जा रहे थे।[1]

इस प्रकार का सर्वांगपूर्ण वर्णन प्रतिभासपन्न कवि ही कर सकते है। शिवजी का कष्ट देखकर सबको बडा दु ख हुआ। किन्तु कोई उनकी सहायता नही कर सकता। अब भगवान् विष्णु एक ब्रह्मचारी का वेष धारण करके भस्मासुर के सामने आ जाते है और

प्राण नाथ ! निन्नेरियन्नु काणिक नेर पोलु
काणाते ञान मरिक्कुमो
त्राण चेय्तीटेण मेन्ने नी कान्ता निप्पिनिधे
एनमूल माय्वन्नु वल्लो निन्नुटे गमन
मन्मानस अतिनाले कलमष तेटीटुन्नधिक
निन्कल नेर्वदन, भवान पन्कजाक्ष कृपया
सकट मेन्निये चेन्नु साधिच्चु वारिक कार्य

—आट्क्कथ सुभद्रहरण, स० के० गोपाल पिल्ला, पृ० १६।

१ चार्त्ति निन्नीटुन्न शार्दूल चर्म्मबु
दोस्तल कोण्डड्डु ताड्डि त्ताड्डि
वेगत्ते प्पूण्डू विरच्चु निन्नीटुन्न
नागड्डलोन्नोन्ने वीज़े वीज़े
× × ×
दानवन पिन्नाले चेलक्योले

—कृष्णगाथा, स० पि० के० नारायण पिल्ला, पृ० ५६२।

मधुर तथा पीयूषमयी वाणी से अपने घर आने का निमंत्रण देते है। ब्रह्मचारी पूछते है—कहा से आपका आगमन हुआ ? आपको देखकर मै अपने को अत्यन्त सौभाग्यशाली समझता हू। वृकासुर आपका नाम तो नही है ? सज्जन लोग आपके गुणो की प्रशसा का पुल बाधा करते है। मै आपके दर्शन करने की लालसा से घूमता फिरता हू। आप मेरे घर पधारिए और यात्रा का श्रम-क्लेश दूर करिए। आप क्यो दौडे हुए आते है ? आपका शरीर सूख गया है। आप आराम कर ले।[1]

कुरुक्षेत्र मे तीर्थ-यात्रा के लिए कृष्ण का आगमन, ब्रजनिवासियो से उनकी भेट होना, रुक्मिणी और राधा का परिचय आदि घटनाए सूरदास ने बडी तन्मयता से लिखी है। वे कहते है—एक बाप की बिछुडी हुई बेटियो मे आपस मे मिलते समय जैसा आनन्द उत्साह और सतुष्टि होती है वैसा ही उन दोनो को अनुभव हुआ।[2] कृष्ण ने सबसे अभिन्नता का बर्ताव किया जिससे सब प्रसन्न हुए।

उन्होने ब्रजवासियो से कहा—यद्यपि मै दूर रहता हू तो भी तुम्हारे पास ही हू। जो जिस प्रकार मेरा भजन करता है उसी प्रकार मै भी उसका भजन करता हू—उसी भाति जैसे दर्पण मे स्वय अपना ही रूप दिखाई देता है।[3] अन्त मे वृन्दावन के सारे लोगो ने प्रेम, कृतज्ञता, दीनता और सन्तोष प्रकट करते हुए कृष्ण की लीलाओ की याद करते और प्रेमसागर मे गोते लगाते हुए उनसे विदा ली। यद्यपि इन कथाओ का विषय भागवत के अनुसार है तो भी कुरुक्षेत्र मे कृष्ण, रुक्मिणी, राधा, यशोदा आदि के चित्रण तथा वार्तालाप मे सूर ने अपूर्व मौलिकता दिखाई है।

मलयालम के कवियो ने कृष्ण के जीवनकाल मे हुई और कुछ घटनाओ के आधार पर सुन्दर कृतिया रची है। सन्तानगोपालम् की कथा और कृष्णार्जुनयुद्ध उनमे प्रमुख है।

सन्तानगोपालम् की कथा पर पून्तानम नपूतिरि और कुचन नप्यार ने स्वतत्र कृतिया रची है। कथकलि मे भी यह कथा लिखी गई है। पून्तानम नपूतिरि की कृति के

---

१ एड्डु निन्निड्डिने वन्नु चोल्लुन्निनप्पोल
मगल मायवन्नु कण्डतोरु
नल्ल वृकासुरनेन्नतड्डल्लारु
× × ×
वाटि निन्नीटुन्नु मेनियेल्ला।

—कृष्णगाथा, स० पि० के० नारायण पिल्ला, पृ० ५९५।

२ रुकमिनि राधा ऐसैं भेंटी,
जैसैं बहुत दिननि की बिछुरी, एक बाप की बेटी।

—सूरसागर, खड दो, सभा-सस्करण, पद स० ४९०९, पृ० १७०७।

३ तुमसौ नाही दूरि रहत हौं निपटहि नेरैं।
भजै मोहि जो कोइ, भजौ मैं तेहि ता भाई।
मुकुर माहि ज्यो रूप, आपनें सम दरसाई।

—सूरसागर, खड दो, सभा-सस्करण, पद स० ४९१२, पृ० १७०८।

सबध मे 'कवियो के परिचय' नामक अध्याय मे लिखा गया है। कुचन नप्यार ने अपनी अलौकिक प्रतिभा द्वारा इसकी रचना की। भागवत की कथा के आधार पर ही इसकी रचना की गई है। एक ब्राह्मण अपने मृत बालक को लेकर श्रीकृष्ण के पास जाते है और उनकी बडी निन्दा करते है। निन्दा-वचनो से कवि की मौलिकता प्रदर्शित होती है। वे कहते है—मेरे दु खो के सबध मे तू कैसे जान सकता है? तेरी हजारो स्त्रिया है और रोज कम से कम पचास या साठ बच्चे पैदा होते है। अरे, कैसे तू निस्सन्तान व्यक्तियो का दु ख समझ सकता है। यदि तू और भी आगे बढ़े तो मै तुझे शाप दे दूगा। वशी बजाने, सखियो के साथ चलने, गोपियो के वस्त्रो की चोरी करने और स्त्रियो को धोखा देने मे तू समर्थ है। हाय भगवान्! तुझे यहा से भगाने के लिए कोई नही है?[1] यह वचन सुनकर कृष्ण निरुत्तर हो बैठे। तब अर्जुन गरम हो उठे और ब्राह्मण के भावी बालक की रक्षा करने का वचन दिया। ब्राह्मण ने उन्हे भी खूब बुरा-भला कहा। अत मे वह शान्त होकर चला गया। शेष कथाए भागवत के अनुसार है। अर्जुन अग्नि मे कूदने के लिए खडे है। लोग उनके प्रति सहानुभूति प्रकट करते है। उसका चित्रण बहुत सुन्दर है। विष्णु-लोक का वर्णन और ब्राह्मण बालको की चेष्टाए आदि प्रसग बडी कुशलता से नप्यार ने लिखे है। इट्टिरारिश्श मेनोन नामक महाशय ने प्रस्तुत कथा कथकलि के रूप मे वर्णनप्रधान शैली मे लिखी है। कहा जाता है कि उनकी उत्तम कृतियो से प्रसन्न होकर राजा ने बहुत-सी जमीने जागीर मे दी थी।

कृष्ण और अर्जुन का सवाद सरस है। कृष्ण पूछते है—हे मेरे मित्र, स्वागत है। तेरा मुखपकज देखकर मै धन्य हो गया हू। आज मेरे लिए पुण्यदिन है। धीर, सुकृती, विनयशील उदारधर्म पुत्र और वीर-वीर भीम कुशल से रहते है कि नही? तुम्हारे गुण-सपन्न छोटे भाई नकुल, सहदेव कैसे है? अर्जुन उत्तर देते है—नाथ! हम आपके चरण-सेवक है। हमे कोई कष्ट हो सकता है? नि सशय हम सब आनद से रहते है। हे कमल-नयन, आपके पैरो पडता हू। कृष्ण फिर भी कहते है—कुरुकुलवशावतस! तुम मेरे पास सदा रहो। नलिनी के दल के मध्य मे शोभित जलबिन्दु के समान क्षणभगुर नरजन्म मे

---

१ पार परवशमा मेन पीड़कल नेर पोक्काय तीर्न्नु निनकक्कु
× × ×
कण्डालपतु मरुपतु ओरु दिन मुण्डाकुन्नु निनक्कु सुतनमार
कोण्डाट्टिक्कोण्डवेर परिचोट्टु कण्डु रमिच्चु कैकलिलाविक
कुण्ठत तीर्न्नु वसिच्चीटु वैकुन्ठा निन्नुटे नाट्य कोल्ला
× × ×
वीट्टिलिरुन्नोरो गोष्ठिकल काट्ट निन्ने आट्टिक्कल
वानुमो नाट्टिलारुमिल्ललो

—ओट्टन तुल्लल सन्तान गोपालम्, पृ० ३६५।

कोई सुख की वस्तु है तो वह मित्रो के साथ रहना है।[1] कवि वैकुण्ठ का वर्णन यो करते है—अरे विजय ! तुम महाविष्णु का मन्दिर देखो। क्षीर सागर के मध्य मे यह अद्भुत लोक स्थित है। ब्रह्मलोक और देवलोक को मात कराने वाला यही वैकुण्ठ है। यह सूर्य की किरणो के समान शोभित रत्नसमूह की शोभा से युक्त है। लक्ष्मीदेवी का केलिमदिर देखो। जहा दु ख का नाम-निशान तक नही। सुख-निमग्न सकल जनो को स्फूर्ति देने वाली शीतल सुगधित वायु वह प्रदान करता है। कान्त कनकमणि हरित वन है। ब्रह्मा, इन्द्र देव आदि भी यहा तक नही पहुच सकते। बाल सूर्य के समान शोभित किरीट मकराकृति कुण्डल, चारो हाथ, कबु समान गला, छाती पर मालाए, श्यामल शरीर और पीताम्बर आदि से युक्त विष्णु को तुम देखो। उनके चरण सरोज के समान है।[2] इस प्रकार के वर्णनप्रधान कई पद इसमे पाए जाते है।

---

१ श्रीकृष्ण श्रीमन ! सखे विजय धीमन
सकल गुण धामन, स्वागतमो सुधामन
सोमन त्रिजगदभिशमन वणङ्खीटु
× × ×
दयितापि च कुरुवर
अर्जुन नाथ भवच्चरण दासरा मिज्जनाना
मेता किलु वरुमो बाधा ?
× × ×
सुरवृन्देश गिरीशादि वन्दया !
श्री कुरुकलुटें मुकुटे स्फुटिक रत्नमे नीयिह
× × ×
नल्लोरु सुख मेन्नतु सुहृदा सह मुरुवुक
—आट्टकथ सन्तान-गोपालम्, स० के० गोपाल पिल्ला, पृ० ३४५।

२ कण्डायो विजय सखे कण्डालु मोदाल
कजनाभन्टे मन्दिर
कुण्ठतयकन्नाशु कण्णण पीयूषाबुधि
× × ×
पालक्कटल नटुविलोरत्भुत तर लोक
× × ×
नालु भुजग लुभचित गल तलयु
मणि माल कलुरसि वेलुत्तोरु नान्चनर्वु
अन्जनाभ मोरु तनु निरवु
मजुलाभ पीताम्बरवु
कमल विमल मणि पद युगल
× × ×
जनङ्डलेयु धन कुतुक
—आट्टक्कथ-सन्तानगोपालम्, स० के० एन० गोपाल पिल्ला, पृ० ३५१।

'कृष्णार्जुन-युद्ध' या 'कृष्णार्जुन-विजय' नप्यार की मौलिक रचना है। एक दिन शाम के समय श्री कृष्ण हाथ मे पानी लेकर जप कर रहे थे। उसी समय आकाशमार्ग से एक घमण्डी गधर्व घोडे पर सवार होकर जा रहा था। सयोग से उसके घोडे के मुह से थूक भगवान् कृष्ण के हाथ मे गिर गया। जल अशुद्ध हो गया। उसे फेककर ऊपर की ओर देखा तो मालूम हुआ इन्द्र का मित्र गय किसीकी परवाह किए बिना घोडे को दौडाता हुआ जा रहा है। आपे से बाहर होकर श्री कृष्ण ने प्रतिज्ञा की कि जिस अहकारी गन्धर्व के कारण मेरे जपकार्य मे भग हुआ उसे बिना मारे मै दम नही लूगा। देखू, कौन इसकी रक्षा करेगा! भगवान् की कठोर प्रतिज्ञा सुनकर गय हाफता हुए इन्द्र के पास पहुचा और उनसे रक्षा करने की कातर प्रार्थना की। जब इन्द्र ने जान लिया कि कृष्ण उसके शत्रु है तब उन्होने अपनी लाचारी प्रकट की। जय ने ब्रह्मा और शिव आदि के पास जाकर अपनी विपत्ति की कथा सुनाई। उन्होने भी अपनी-अपनी असमर्थता प्रकट की। क्योकि वे भगवान् से सामना करके पहले कई बार पराजित हो चुके थे।

लाचार होकर गय इधर-उधर घूमने फिरने लगा। उसको पूर्ण विश्वास हो गया कि उसकी मृत्यु पास आ गई है। उसी समय नारद मुनि उसी ओर आए। उनसे अपनी कहानी गय ने सुनाई। नारद ने मन मे सोचा 'एक अच्छा तमाशा आ गया है। मै इस गन्धर्व द्वारा एक ऐसा कार्य करा लूगा जिससे कृष्ण और अर्जुन मे भयकर युद्ध हो।' गय से उन्होने कहा, 'अरे दु ख मत करो। तुम द्वैतवन मे जाओ। वहा अर्जुन से कसम खिलाओ। वहा अर्जुन अपने भाइयो के साथ रहता है। कसम खिलाने के बाद अपनी कथा सुनाओ। यदि वह वचन देगा तो तुम्हारे प्राण बच जाएगे।'

गय नारद के [illegible] पाण्डवो के पास पहुचा और 'हाय-हाय' करके चिल्लाकर उसने वचन ले लिया। अन्त मे जब उनको मालूम हुआ कि पाण्डवो के रक्षक श्रीकृष्ण ही गन्धर्व के भक्षक है तो उनके दु ख का ठिकाना नही रहा। उस समय उन लोगो की अवस्था का वर्णन करते हुए भावुक कवि कहते है—जय के वचन सुनते ही अर्जुन स्तम्भित रह गए। काटो तो खून नही, उनके हाथ से तीर कमान गिर गया। धर्म-पुत्र बेहोश होकर गिर पडे। भीम अस्तप्रज्ञ हो गए। नकुल और सहदेव चिल्लाने लगे। द्रौपदी भी ढाहे मारकर रोने लगी।[1] अन्त मे वचन पर अटल रहना चाहिए, यह

---

१ एन्नु गयोक्तिकल केटटु किरीटि ओन्नु नटुड्डि निलत्तु पतिच्चान
विल्लु शखु पोयितु दूरे उल्लासड्डलुमोट्टु कुरञ्ञु
जेष्ठनताकिय धर्मात्मजनु जेट्टि विरच्चु धरित्रियिल वीणान
भीमनु मोन्नु पकर्न्निनु भाव कोमलनाकिय नकुलन तानु
सहदेवनुमति साहसमोटे हा! हा! येन्नु निनाद
द्रोपदि तानु मुरविलि कूट्टि देव विरोध वरुमेन्नोर्त्तु
शुद्धनताकिय धर्मात्मजनु बुद्धि पक्वकर्न्नु करञ्ञु तुटड्डि
—श्रीट्टनतुल्लल [illegible] स० पि० के० नारायण पिल्ला, पृ० ३७७।

निश्चय किया गया। इसी समय नारद यहा आकर उनको सान्त्वना देते है। फिर वे सुयोधन, कर्ण, द्रोण, भीष्म आदि के पास जाकर पाण्डवो की कथा सुनाते है। वे सब अर्जुन की सहायता करने के लिए निकले। दुर्योधन का विचार था, यदि अर्जुन और श्रीकृष्ण मे युद्ध छिड जाएगा तो अर्जुन अवश्य मारे जाएगे जिससे वह निष्कण्टक राज्य कर सकेगा।

इधर श्री कृष्ण गय की खोज मे है। नारद ने कहा कि गय की रक्षा करने का भार अर्जुन ने अपने ऊपर ले लिया है, युद्ध करना व्यर्थ है। ये वचन सुनते ही कृष्ण की आखे लाल हो गई। उसी दम अपनी बहन सुभद्रा को अर्जुन के पास भेजा और कहलाया कि उनके लिए इस कार्य से विरत होना अच्छा है। दु खकातरा सुभद्रा अपने पतिदेव के पास जाकर अपने भाई का सन्देश सुना देती है और गिडगिडाकर प्रार्थना करती है कि कृष्ण से युद्ध करना हम सबके लिए नाशकारक है। अर्जुन अपनी प्रतिज्ञा भग करना नही स्वीकार करते। भयकर युद्ध होता है। युद्ध का सजीव वर्णन बडे विस्तार से कवि ने किया है। परिणाम यह निकला कि कृष्ण के अस्त्रो से क्षत-विक्षत होकर अर्जुन बेहोश हो जाते है। उसी दम भीष्म, द्रोण, अभिमन्यु आदि से भयकर युद्ध होता है। जब अर्जुन की बेहोशी दूर हुई तो उन्होने अपना पाशुपतास्त्र प्रयुक्त किया। कृष्ण ने भी अपने चक्रायुद्ध का प्रयोग किया। सब कही अग्नि ही अग्नि दिखाई पडने लगी। इन्द्र और ब्रह्मा सारे जगत् का विनाश होता हुआ देखकर बडे चिंतित हुए। वे घबराते हुए उन दोनो से प्रार्थना करने लगे कि यदि युद्ध नही बन्द किया जाएगा तो सृष्टि नष्ट हो जाएगी। तब कृष्ण ने अर्जुन से कहा—तुम गय को मुझे सौप दो। अर्जुन ने नही माना। ब्रह्मा अर्जुन से बोले—एक निमिष आखे बन्द करके रहो। मं गय को सुरक्षित रखूगा। जब अर्जुन ने आख बन्द कर ली तो कृष्ण ने गय को अपने चक्र से मार डाला और अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया। उसी दम ब्रह्मा ने उसे जिलाकर अर्जुन को सौप दिया और कहा, 'अरे! अर्जुन अब तुम्हारा गय अमर हो गया है और कोई भी उसे मार न सकेगा।' इस प्रकार कृष्ण और अर्जुन मे सधि हुई। यह देखकर शत्रुगण निराश होकर लौटे। दुर्योधन को बडा दु ख हुआ। धर्मात्मज आदि ने कृष्ण के पैरो पर पडकर क्षमा मागी। नारद ने आकर उनको आशीर्वाद दिया। इस काव्य की गीत तथा प्रबन्धात्मक शैली की प्रशसा सारे साहित्य-प्रेमी लोग मुक्त कठ से करते है। यह वीर तथा करुणरस-प्रधान है।

इसी कथा के आधार पर इट्टिमात्यू नामक एक ईसाई ने कथकलि मे एक सुन्दर रचना की है। उसमे शृगाररस-प्रधान पद मिलते है। साथ ही वीर और करुण रस के पदो की कमी नही। इन घटनाओ के पश्चात् कृष्णगाथा मे लिखा गया है कि श्री कृष्ण बलराम और रुक्मिणी को साथ लेकर तीर्थाटन करने के लिए भार्गव क्षेत्र मे आए। यह समाचार सुनकर वृन्दावन-निवासी झुण्ड के झुण्ड उनके दर्शन करने आए। यशोदा और नन्द कृष्ण से मिले। वह प्रसग अत्यन्त हृदयस्पर्शी है। श्री कृष्ण यद्यपि युवा थे, तो भी यशोदा उनको बालक समझकर उसी प्रकार बातचीत करती है। भगवान् कृष्ण के शरीर

पर जो काले धब्बे दिखाई पडे उन्हें देखकर वह कहती है—शरारत करने के कारण रस्सी से मैंने अपने नन्हे का शरीर बाध लिया था। उसीसे तो यह धब्बा नही पड गया ?[1] वह आगे कहती है—जिसे मैं अपनी गोद मे बिठाकर दुलारती थी और उस समय जो मेरा मुह देखकर मुस्कराता था, उसका मुख मैं देख लू।[2]

ऐसा कहकर वह कृष्ण का चुबन करने लगती है। फिर कहती है कि मुस्कराते हुए मेरी गोद मे बैठकर पयपान करते समय जिन हाथो ने मेरी छाती पर हलकी मार मारी वे हाथ तो मैं देखू।[3] यह कहकर उनके कोमल हाथो पर माता अपना हाथ फेरने लगी। फिर कहा कि मेरे आचल पर जिन पैरो से कीचड लगा था वे पैर मैं देखू।[4] ऐसा कहकर उसने उनपर हाथ फेरा। यह दृश्य सचमुच बडा मर्मस्पर्शी है।

तीर्थों मे स्नान करने के बाद भगवान् द्वारिका लौटे और कलत्र-पुत्र समेत बडे आनद से दिन बिताने लगे। इसी बीच उनके कई पुत्र तथा पौत्र हुए। अपने ऐश्वर्य पर उन्मत्त होकर यादवगण परस्पर झगडने लगे और एक दिन आपस मे घोर युद्ध हुआ। उसमे सब मारे गए। आत्मीय जनो की यह दशा देखकर बलराम ने सोचा कि शरीर का त्याग करना ही अच्छा है। इस विचार से सागर के किनारे जाकर उन्होने सदा के लिए समाधि ले ली। श्री कृष्ण सबसे विदा लेकर एक घने जगल मे गए और समाधिस्थ हुए। उनके पैरो का हिलना देखकर एक व्याध ने पक्षी समझकर उनपर तीर मारा। अन्त मे उसको मालूम हुआ कि मैंने कृष्ण भगवान् को तीर से मारा। उसने बडा पश्चात्ताप किया। भगवान् कृष्ण ने उसे सात्वना देकर अपना पचभूतमय शरीर छोड दिया। अपने प्यारे पुत्र के शरीर-त्याग की वार्ता सुनकर देवकी का विलाप अत्यन्त हृदयस्पर्शी भाषा मे कृष्णगाथाकार ने लिखा है। वे कहते है—बारह सूर्यों को एकसाथ मिलाकर उसे प्रलयाग्नि

---

१ पारिच्चु निन्नुल्ल पाजायम चेय्कयाल
पाशत्ते कोण्डु पिटिच्चु केट्टि
तिण्ण वलिच्चु मुरुक्कि आन निलक्कया
लुण्णिप्पूमेनियिल पुण्णिल्लल्ली ?

२ रान्मटि तन्निल आन नन्नायि बच्चु को
ण्डेन्मकन वाज्केन्नु चोल्लुन्नेर
एन्मुख नोक्कीट्टु पुन्चिरि तूकुन्न
नन्मुख काणट्टे येन्नु चोल्लि

३ नन्मयु तूकि निन्नेन्मटि तन्निलाय
नन्मुल युण्डु चिरिक्कुन्नेर
तिण्ण मेन्मारि ललच्चु निन्नीट्टुन्नो
रुण्णि ककै काणट्टे येन्नु चोल्लि

—कृष्णगाथा, स० पि० के० नारायण पिल्ला, पृ० ५५८।

४. एन्नुटे चेलयिल चेरुतेच्चीट्टुन्नो
रुण्णि क्कालेड्डु चोल्लेन्नु चोल्लि

—कृष्णगाथा, सं० पि० के० नारायण पिल्ला, पृ० ५५८।

मे डाल दे, उसके बाद कल्पान्त काल की प्रबल आंधी से उस अग्नि को और भी प्रज्ज्वलित कर दे ?—ऐसी अग्नि से तपाए हुए लोहे के टुकडे की गरमी देवकी की दु खाग्नि के सामने क्या चीज़ है !'[1] इस कथन से देवकी के दु ख का अनुमान लगाया जा सकता है। प्रतिभाशाली कवि ही ऐसी कल्पना कर सकते है।

कृष्ण की कथा सुनकर पाडव लोग अत्यन्त दु खी हुए और तुरन्त धर्मपुत्र ने हिमालय की ओर प्रस्थान किया। उनका अनुकरण दूसरे भाइयो और द्रौपदी ने किया। जाते-जाते एक-एक करके वे मरने लगे। धर्मपुत्र ही रह गए। तब एक देवदूत विमान लेकर वहा आया और उनसे उसमे चढने की प्रार्थना की। तब धर्मपुत्र बोले—जब मै निकला था तब मेरे भाई, स्त्री और एक कुत्ता साथ था। अब मै और कुत्ता केवल दो ही बचे है। उस कुत्ते को बिना साथ लिए मै कही नही जाऊगा। कुत्ते का नाम सुनते ही जो देवदूत उनको लेने के लिए आए थे, घृणा की दृष्टि से देखने लगे। किन्तु धर्मपुत्र अपनी ज़िद पर अटल रहे और कहा—यह कुत्ता सबसे पहले मेरी शरण मे आया था। अत मेरे चढने से पहले इसे विमान पर चढाना चाहिए।'[2] इस वाक्य से आश्रितो की रक्षा करना हमारा धर्म है, यह आशय कवि ने समझाया है।

कृष्णगाथा मे कवि ने यह पद लिखकर अपनी सरस कृति समाप्त करते हुए कहा है—पाडव लोग स्वर्ग मे जाकर विविध सुखो का भोग कर दिन बिताने लगे।[3] अन्त मे एक स्तुतिगीत है जिसमे श्री कृष्ण के अवतारो की कथाए वर्णित है। मूल कथा के आधार पर अपनी-अपनी प्रतिभा तथा कल्पनाशक्ति के अनुसार दोनो भाषाओ के कवियो ने कविताए लिखी है।

---

१ पन्ति रण्टादित्य न्मारुटे मण्डल
मोन्निच्चु कूट्टि च्चमच्चु पिन्ने
कल्पान्त पावकन तन्निलड्डाक्किनी
न्नुल्पात वातड्डल वोतुवीतु
× × ×
रुग्मणि मुनपाय देविमार तापव्
अत्रयल्ल ड्डतिलेरमत्रे

—कृष्णगाथा, स० राजराज वर्मा, पृ० २२७।

२ खिन्ननाय वन्नु निन्नाश्रयिच्चिटिनान
मुन्नमे नम्मे यिश्वाननेन्नाल
धन्य माय निन्नेनु यानमेरीटुवान-
मुन्निनान्भारिवन तन्ने वेग

—कृष्णगाथा, स० राजराज वर्मा, पृ० २३१।

३ पूण्डड्डलयिट्टु चेन्नु चेन्नीटुन्न
भोगड्डलाण्टु सुखिच्चु निन्नार

—कृष्णगाथा, स० राजराज वर्मा, पृ० २३६।

पहले लिखा जा चुका है कि हिन्दी के कवियो का ध्यान भावपक्ष की ओर था जब कि मलयालम के कवियो ने भाव तथा लोकपक्ष की ओर अपनी दृष्टि रखी। चेरुश्शेरी, एजुत्तच्छन, पून्तानम, कुन्चन नप्यार जैसे कवियो की विशेषता है कि गभीर तत्त्वो का रूप सरल तथा सुबोध भाषा मे वे समझा सके है। चेरुश्शेरी और नप्यार ने ऐसी बहुत-सी कल्पनाए की है जिनका ध्यान भी मूल ग्रन्थकार ने नही किया था। मूल भागवत के बारे मे कहा है भागवत पडितो की पडिताई को कसने की कसौटी है।[1] इससे भागवत की गभीरता का अनुमान हम कर सकते है।

साराश यह है कि मूल भागवत एक गभीर यतीन्द्र की कृति हो तो कृष्णगाथा सूरसागर जैसी सरस तथा प्रतिभासपन्न भक्तो और कवीन्द्रो की अनूठी रचनाए है। इनमे कही मूल ग्रन्थ की विस्तृत कथाओ का सक्षेप, कही लघु कथाओ का विस्तृत रूप, और कही अनुपयुक्त भागो की ओर से कवियो की उदासीनता हम देख सकते है। कही भी मूल कथा की महिमा घटाने वाली एक भी बात नही मिलेगी। प्रत्युत कवि कृष्ण की महिमा वर्णन करते हुए मूल भागवत का ऋण बार-बार स्वीकार करते है।

---

१ विद्यावतां भागवते परीक्षा—राजराज वर्मा द्वारा लिखित अप्रकाशित निबन्ध से।

छठा परिच्छेद

काव्य-कला का तुलनात्मक अध्ययन

रस

हिन्दी तथा मलयालम के कृष्ण-काव्य रस-सागर हैं। जिस काव्य मे रस नही वह शब्दाडबर-मात्र है। रस काव्य की आत्मा है। इन दोनो भाषाओ के ग्रन्थो के रसप्रधान भागो का उद्धरण देना ही इस अध्याय का उद्देश्य है।

मध्ययुग के हिन्दी और मलयालम भाषाओ के साहित्य मे केवल भक्ति की धारा ही प्रधान नही थी, इस समय दो अन्य धाराए भी बल प्राप्त कर चुकी थी। इनका सबध धर्म से नही, साहित्य से था। ये शृगार रस और रीति की धाराए थी जिन्होने भक्तिकाल के बाद प्राधान्य प्राप्त कर लिया था और जिनके फलस्वरूप रीतिकाल का प्रादुर्भाव हुआ। सूर, परमानददास, एजुत्तच्छन, कुचन नप्यार आदि कवियो के काव्यविषय (कृष्णभक्ति) को इन साहित्य-धाराओ और उनके अतिरिक्त युग की सामान्य प्रवृत्ति (विलासप्रियता और शृगारप्रियता) ने भी प्रभावित किया। यही कारण है कि सूर जैसे कृष्ण-भक्त के साहित्य के भावपक्ष मे हमे भक्ति और शृगार के दर्शन होते है और कला-पक्ष मे रीति के हिन्दी के सूर और मलयालम के कृष्णगाथाकार के साहित्य पर, दास्य और आत्मसमर्पण और मधुर-भक्ति आदि के अनेक प्रभाव पडे हैं।

कृष्णकाव्यो मे वात्सल्य-रस-प्रधान कविताए लिखने मे सूरदास और परमानन्द-दास का स्थान बेजोड है। बाल्यकाल की चेष्टाओ का सूक्ष्म निरीक्षण इन्होने किया है। मलयालम के कवि भी इस क्षेत्र मे पीछे नही रहते परन्तु हिन्दी के कवियो ने वात्सल्य रस-पूर्ण अधिक पद लिखे है और वे अधिक प्रभावशाली है।

वात्सल्य रस

वात्सल्य रस का स्थायी भाव अपत्य-स्नेह होता है और उसका आलबन (विभाव) बालक या शिशु है। उसके उद्दीपन (विभाव) के अन्तर्गत बालक की चेष्टाए जैसे तोतली बोली, गिरते-पडते चलना, हठ करना आदि उसकी शूरता, विद्या, उसकी चीजे उसके कार्य इत्यादि आ जाते हैं।

अनुभाव हसना, पुलकित होना, तिनके तोडना, एकटक देखना, चूमना, गोद मे

लेना, पालने मे झुलाना, बाते कराना, खेलना, रोना, विलाप करना, आह भरना आदि है। सचारी हर्ष, आवेग, जडता, मोह, शका, चिन्ता, विषाद, गर्व, उन्माद, स्मृति, औत्सुक्य आदि है। शृगार की भाति वात्सल्य रस के भी दो पक्ष है—सयोग और वियोग।

उदाहरण मा यशोदा अपने प्यारे पुत्र को पालने मे लिटाकर झुला रही है, बीच मे वे गा रही है, थपकी दे रही है। उसका सुन्दर चित्रण सूरदास यो करते है

संयोग-वात्सल्य

हिन्दी के उदाहरण—

राग धनाश्री

१. जसोदा हरि पालनै झुलावै।
हलरावै, दुलराइ मल्हावै, जोइ सोइ कछु गावै।
मेरे लाल कौं आउ, निंदरिया, काहे न आनि सुवावै।
तू काहे नहि बेगिहि आवै, तोकौं कान्ह बुलावै।
कबहुँ पलक हरि मूदि लेत है, कबहुँ अधर फरकावै।
सोवत जानि मौन ह्वै कै रहि, करि करि सैन बतावै।
इहिं अंतर अकुलाइ उठे हरि, जसुमति मधुरे गावै।
जो सुख सूर अमर मुनि दुरलभ, सो नँद भामिनि पावै॥[1]

मा अपने बच्चे को किस प्रकार चलना सिखाती है, मा के हाथ पकडकर बच्चे का चलना, कभी-कभी गिर पडना, अपने बच्चे को कुशल रखने की प्रार्थना आदि का सूरदास वर्णन करते है

राग बिलावल

२ सिखवति चलन जसोदा मैया।
अरबराइ कर पानि गहावत, डगमगाइ धरनी धरे पैया।
कबहुँक सुदर बदन बिलोकति उर आनँद भरि लेति बलैया।
कबहुँक कुल-देवता मनावति, चिरजीवहु मेरो कुँवर कन्हैया।
कबहुँक बल कौं टेरि बुलावति, इहिं आंगन खेलौ दोउ भैया।
सूरदास स्वामी की लीला, अति प्रताप बिलसत नँदरैया।[2]

सूरदास द्वारा वर्णित कृष्ण का बाल-लीला-वर्णन तो वात्सल्य रस से ओतप्रोत है

हरि अपने आँगन कछु गावत।
तनक तनक चरननि सौं नाचत, मनहीं-मनहिं रिझावत।
बाह उठाइ काजरी धौरी गैयनि टेरि बुलावत।

---

१. सूरसागर—खण्ड एक, सभा सस्करण, पद स० ६६१, पृ० २७६।
२ सूरसागर—खण्ड एक, सभा सस्करण, पद स० ७३३, पृ० ३००।

कबहुंक बाबा नद पुकारत, कबहुंक घर मे आवत।
माखन तनक आपनै कर लै, तनक बदन मे नावत।
कबहुं चितै प्रतिबिंब खंभ मै, लौनी लिए खवावत।
दुरि देखति जसुमति यह लीला, हरष अनद बढ़ावत।
सूर स्याम के बाल-चरित, नित नितही देखत भावत ॥[1]

ज्यो-ज्यो कृष्ण की आयु बढने लगी त्यो-त्यो उनकी चालाकी और चतुरता भी बढ गई। माखनचोरी के लिए एक गोपी के घर मे कृष्ण ने घुसकर दही मे हाथ डाला कि उस गोपी ने पकड लिया। गोपी के साथ कृष्ण का वाद-विवाद बहुत स्वाभाविक है।

राग गौरी

स्याम कहा चाहत से डोलत।
पूछै तै तुम बदन दुरावत, सूधे बोल न बोलत।
पाए आइ अकेले घर मे दधि भाजन मे हाथ।
अब तुम काकौ नाउ लेउगे, नाहिन कोऊ साथ।
मै जान्यौ यह मेरौ घर है, ता धोखै मै आयो।
देखत हौं गोरस मे चींटी काढ़न कौं कर नायो।
सुनि मृदु बचन, निरखि मुख सोभा, ग्वालिनि मुरि मुसुकानी।
सूर स्याम तुम हौ अति नागर बात तिहारी जानी ॥[2]

एक दिन राम और कृष्ण मे झगडा हो गया। तब राम ने कहा, तुझे तो यशोदा ने दाई को दो पैसे देकर खरीद लिया। उसे सुनते ही कृष्ण रोते-कलपते मा के पास गए और शिकायत करने लगे·

राग गौरी

मैया मोहिं दाऊ बहुत खिझायौ।
मोसौं कहत मोल कौ लीन्हौ, तू जसुमति कब जायौ ?
कहा करौं इहि रिस के मारे खेलन हौं नहिं जात।
पुनि-पुनि कहत कौन है माता, को है तेरौ तात।
गोरे नद, जसोदा गोरी, तू कत स्यामल गात।
चुटकी दै दै ग्वाल नचावत, हँसत सबै मुसकात।
तू मोहीं कौं मारन सीखी, दाउहिं कबहु न खीझै।
मोहन-मुख रिस की ये बातें, जसुमति सुनि-सुनि रीझै।
सुनहु कान्ह, बलभद्र चबाई, जनमत ही कौ धूत।
सूर स्याम मोहिं गोधन की सौं, हौं माता तू पूत ॥[3]

---

१. सूरसागर—खण्ड एक, स० वाजपेयी, पद स० ७६५, पृ० ३२०।
२ सूरसागर—खण्ड एक, सभा सस्करण, पद सख्या ८६७, पृ० ३५४।
३ सूरसागर—खड एक, सभा सस्करण, पद सख्या ८३३, पृ० ३३३, ३३४।

इस पद के अंतिम चरण मे माता के हृदय की अभिव्यजना बडे सुदर ढग से हुई है। कृष्ण की तोतली बाते और शिकायते उद्दीपन का कार्य करती है। यशोदा का रीझना और गोधन की कसम खाकर कृष्ण को अपना पुत्र कहना अनुभाव है। सूरदास के समान ही परमानददास भी वात्सल्य-रस-प्रधान सुन्दर पद लिखने मे सिद्धहस्त है। एक दिन एक काछिन नन्द के घर बेर बेचने आई। उसका नाम सुनते ही कृष्ण अजलि मे सूखा धान भरकर ठुमुक-ठुमुककर दौडते चले आए। माता यशोदा ने अपने प्यारे पुत्र को गोद मे लेकर चुबन कर लिया। कृष्ण को जब बेर मिले तब वे फूले न समाए। उसका चित्रण परमानन्ददास देते है

राग सारग

कोउ मैया बेर बेचन आई
सुनत ही टेरि नद रावरि मैं लई भीतर बुलाई
सूकत धान परे आंगन में कर अजुली बनाई
ठुमुक ही ठुमुक चलत अपने रँग गोपी जन बलि जाई
लीए उठाय रिझाय करि मुख चुम्बत न अघाई
परमानँद स्वामी आनन्दे बहुत बेरि जब पाई।[1]

कृष्ण के उत्पातो से तग आकर गोपिया यशोदा से शिकायत करती है। उसे सुनकर यशोदा अपने पुत्र का पक्ष लेकर उनको सात्वना देती है। यशोदा के वचनो मे माता का प्रेम स्पष्ट परिलक्षित होता है। उसका चित्र बडी सुन्दरता से परमानददास खीचते है

राग सारंग

ढोटा रचक माखन खायौ
काहे कोहरहि होत ग्वालिनी सब ब्रज गाजि हलायौ
जाको जितनो तुम जानति हो दूनो मोपे लेहु
मेरो कान्ह इहै इकलौती सबै असीस मिलि देहु
कमल नैन मेरी अँखियन तारो कुलदीपकु ब्रजगेहु
परमानन्द कहति नँदरानी सुत प्रति अधिक सनेहु।[2]

मलयालम के उदाहरण—

दधि को मथते समय मक्खन पाने के प्रलोभन मे पडकर बालक कृष्ण मा के पास बैठ जाते है। और उनके शरीर पर दही की बूदे पड जाती है। उसकी परवाह न करके कृष्ण अपनी मा के निकट बैठे रहते है। उसका चित्रण पून्तानम नपूतिरि देते है

मायत्तिनाल मानुषनाय नाथन
मोहत्तिनाल वेणु लभिप्पतिन्नाय

---

१ डा० गुप्त के परमानन्ददास-पद-सग्रह से, पद स० २७, अष्टछाप, पृ० ७०१।
२ डा० गुप्त के परमानन्ददास-पद-सग्रह से, पद न० ४७, अष्टछाप, पृ० ७०४।

मानिच्चु माताबोदु चेन्नु नन्नाय
मारत्तु तैरत्तु लियुमे ट्टिटरुन्नान।[1]

कृष्ण आइने मे अपना रूप देखकर बहुत प्रसन्न होते है और वह रूप देख उसे अपना साथी समझकर वे उससे आलिगन करते है

कण्णटियिल कण्डुकलाय रम्य
कणिणल तेलिञ्ञोरु मुखारविद
चड्डाति येन्निटुटु चिरिच्चु कण्णन
कण्णटि पूणुन्नतु कण्डिताबू[2]

मलयालम भाषा के एक अज्ञात कवि ने कृष्ण की लीलाओ का चित्रण बडी सुन्दरता से किया है।

कण्णनन्नेर कण्णन चिरट्टयिल
मण्णु कोरि निरच्चु पिटिच्चुटन
कण्णु कुत्तित्तु लच्चानतिल कूटे
मण्णु वीजुन्न कण्डु रसिक्कयु
पूञ्जिच्चोरु कक्किकलु मुण्डाक्कि
घोषिच्चोरो सद्य कञ्जिक्कयु
पच्च प्पोलकलकोण्डु पलतर
पिच्च युण्डाक्कि वट्ट तिरिक्कयु
मुट्टत्तोरो रूप वरक्कयु
पट्टत्ताणुटन चाटि ककलिक्कयु
मुट्ट तान चेन्नोरेटत्तु ओलिक्कयु
कोट्टप्पाल तिरिञ्ञोट्टु नेरमोरेटत्तिरिक्कयु
उण्ण तानोरु मद्दल चेण्डयु
उण्णत्तण्डकोण्डुण्डाक्कि मेल्लवे
कोट्टित्ताने तलयु कुलुक्कि ककोण्डिट्टिल तोरु नटन्नु कलिक्कयु
अनयायिट्टोरुत्तने ककलिपच्चु
तानतिन्मेल करेरि इरिक्कयु
आनप्पावनायिट्टोरु बालकन
तान त्रे वीरनेन्नु नटिक्कयु
ऊञ्ज तन्निविकटन्नु कलिक्कयाल
पूञ्जियान्तोरुपोलिकार कुन्तलु

---

१. पुन्तानम की कृतिया—पि० के० ब्रदेरस, पृ० ६१।
२ पुन्तानम की कृतिया—पि० के० ब्रदेरस, पृ० ५५।

पोन्नुटञ्ञाणुं पोन्निन्मणि कलु
मिन्नु तालियु मालयु शीलयुं
एन्नितेल्लामञ्ञि किञ्ञिञ्ञुटन
तम्मिल चुट्टि प्पिण्णञ्ञतु काण्कयाल
अम्मवेगेन चेट्टदुत्तादराल
अम्मिञ्ञयु कोदुत्तु पतुक्कवे
नीलक्कार कून्तल केट्टि युरप्पिच्चु
पीलि नालन्चेदुत्तु तिरुकिच्चु
बाल कृष्णन्टे नल्ल तिरुमेनि
शील कोण्डु तुटच्चु विलड्डुच्चु
किंडिडणि मणि मोतिरमेन्निव
मगियोटे यणियिच्चेशोदयु
अडिडनतन्ने रामनेयु तथा
मगलागि चमयिचचु चोल्लिनाल।[1]

—अर्थात् कान्ह खेलते है, साथ गोप-बालक भी है। उन्होने नारियल का छिलका लेकर उसमे मिट्टी भरी और एक सुषिर बनाया सुषिर से मिट्टी जाते देखकर सब हस पडते है। फिर कृष्ण मिट्टी को भात और शाक-भाजी कहकर सबको भोजन के लिए आमन्त्रित करते है।

केले के पौधे की छाल से विविध प्रकार के खिलौने बनाकर वे खेलते है और आगन मे तस्वीर खीचते है। कभी-कभी वे उछलते-कूदते है और कभी भागते है। तभी दूसरे साथी उन्हे ढूढ लेते है। कभी वे भ्रमण करते है। भ्रमण करते समय सिर मे चक्कर आने के कारण बैठते है, कभी स्वय ढोल बजाते-बजाते घर-घर जाते है। कभी अपने साथी के शरीर को हाथी के समान झुकाकर उसपर बैठते है और अपने को बडा वीर मानते है। पृथ्वी पर लोटने के कारण, मोरपख, जो बालो पर खोसे हुए है, कमरबन्द और उसपर लगाई छोटी घटिकाए, पीताम्बर, छाती पर की मालाए आदि शिथिल पडते देखकर माता यशोदा दौडकर आई। उन्हे गोद मे उठा लिया धीरे-धीरे पयपान कराया, मोरपख सिर पर ठीक से लगाया, कपडे से शरीर की धूल को दूर किया, अगूठी आदि गहने अच्छी तरह पहनाये। बलराम को भी उसी प्रकार धूल पोछकर सुन्दर वस्त्र तथा आभूषण पहनाए।

इसमे कृष्ण का खेलना, मारे-मारे फिरना, चक्कर खाकर गिर पडना आदि उद्दीपन विभाव है। गोद मे उठाना, चुबन करना, आभूषण पहनाना आदि अनुभाव है।

१. श्रीकृष्णविलासम्—स० टा० अच्युत मैनोन।

वियोग-वात्सल्य

हिन्दी के उदाहरण—

अपने प्यारे पुत्र कृष्ण के विरह से व्याकुल यशोदा का विलाप वात्सल्य रस के वियोग-पक्ष का सुन्दर उदाहरण है। सूर लिखते हैं

राग सोरठ

जसोदा बार बार यों भाषै।
है कोउ ब्रज मैं हितू हमारौ, चलत गुपालहिं राखै।
कहा काज मेरे छगन मगन कौं, नृप मधूपुरी बुलायौ।
सुफलक सुत मेरे प्रान हरन कौं, काल रूप ह्वै आयौ।
बरु यह गोधन हरौ कंस सब, मोहि बदि लै मेलौ।
इतनोई सुख कमल नयन मेरौ अँखियनि आगै खेलौ।
बासर बदन बिलोकत जीवौं, निसि निज अकम लाऊ।
तिहिं बिछुरत जो जियौं कर्मबस, तो हँसि काहि बुलाऊ।
कमलनयन गुन टेरत टेरत, अधर बदन कुम्हिलानी।
सूर कहा लगि प्रगटि जनाऊ, दुखित नद जु की रानी॥[1]

यद्यपि बहुतसे लोग सान्त्वना देते हैं तो भी पुत्रविरह से पीडित यशोदा के दु ख का अत नही। उसके सम्बन्ध मे सूर लिखते हैं

राग बिलावल

जद्यपि मन समुझावत लोग।
सूल होत नवनीत देखि मेरे, मोहन के मुख जोग।
निसि बासर छतिया ले लाऊं, बालक लीला गाऊ।
वैसे भाग बहुरि कब ह्वैहैं, मोहन मोद खवाऊ।
जा कारन मुनि ध्यान धरैं, सिव अंग बिभूति लगावैं।
सो बालक-लीला धरि गोकुल-ऊखल साथ बँधावैं।
बिदरत नहीं बज्र कौ हिरदै, हरि-बियोग क्यो सहिऐ।
सूरदास प्रभु कमलनयन बिनु कौने बिधि ब्रज रहिऐ॥[2]

वात्सल्य-रस-प्रधान असख्य पद सूरसागर मे मिलते हैं

जद्यपि मन समुझावत लोग।
सूल होत नवनीत देखि मेरे, मोहन के मुख जोग।
प्रात काल उठि माखन रोटी को बिनु मागे दैहै।
को मेरे वा कान्ह कुवर कौं, छिनु छिनु अकम लैहै।

---

१ सूरसागर—भाग दो, सभा सस्करण, पद स० ३५९१, पृ० १२७३।
२ सूरसागर—भाग दो, सभा सस्करण, पद स० ३७८४, पृ० १३४०।

कहियौ पथिक जाइ, घर, आवहु राम कृष्न दोउ भैया।
सूर स्याम कत होत दुखारी, जिनके मो सी मैया॥[1]

कृष्ण गायो को चराने के बाद शाम को ठीक समय आया करते थे, किन्तु एक दिन नही आए। तब यशोदा विरह-वेदना से अत्यन्त आकुल होकर जो कुछ कहने लगी वे वचन वात्सल्य से पगे हुए है 'मेरा बेटा अपने सखाओ के साथ कल इसी समय घर आया था। आज क्यो देर हो रही है। उसका मुस्कराता हुआ चेहरा न देखने से मुझे बडा दु ख हो रहा है। गायो को चराते समय उसके पैरो मे काटे न लग गये हो? सिंह का गर्जन सुनकर वह डर के मारे बेहोश न हुआ हो। सम्भव है पत्ते और पुष्प तोडने के लिए पेड पर चढते समय गिर गया हो। बाघ को सामने देखकर घबराया हुआ न हो। साथियो के सा झगडा करते-करते बेहोश न हुआ हो। चावल और तरकारिया ठण्डी हो रही है। यदि बच्चे न हो तो सर्वदा दु खी होना पडता है। बच्चो का पालन-पोषण करने मे बडा कष्ट झेलना है। मेरा कोई भी अवलब नही। पुत्रो के कारण इतना दु ख झेलने वाली मेरे अतिरिक्त और कोई नही दिखाई पडेगी। सचमुच पुत्र न होने से बडा दु ख झेलना पडा। पुत्रजन्म के बाद दु ख और भी बढ गया। मेरा दु ख मृत्यु तक बना रहेगा। हाय! मेरा बेटा अभी तक न आया? गायो के रभाने का शब्द भी नही सुनाई पडता। वशीनाद भी मैने सुना नही। हाय! मेरे बच्चे के अनेक शत्रु है।'

मलयालम के उदाहरण—

एन्मकनिन्नले थिन्नेर मनपोट्टु
चेम्मे सखिकलु मायि वन्नानल्लो
इन्नु वरुवतिनेरे वेकीदुवा
नन्य पुनरोरु कारण मेन्तय्यो!
मन्दस्मित पूण्डु सुन्दर वक्तार-
विन्द मेन मुन्निलाम्मारु काणायकयाल
उल्लिल वरुत्राज्जल चौल्लावतल्लम
ट्टुल्ल मुज्जु ग्राज्जकीटिनान नन्दनु
कन्नु किटाङडले मेच्चु वन डडलिल
चेन्नु कटन्नु मुल्लोन्नु कुत्तीलल्ली?
पण्र्ण पुष्पडडल परिप्पानोरुम्पेट्टु
चेन्नु मरमेरि निन्नु वीणीलल्ली?
वपुलि मुन्निलकम्पेट्टु सभ्रमि
च्चपर च्चोल्लि वलञ्ञु पौयीलल्ली?

---

१ सूरसागर—भाग दो, सभा सस्करण, पद स० ३७९१, पृ० १३४२।

पिल्लरुमाय पिटि पेट्टभि मानिच्चु
तल्लिमयङ्किय्युल्लुल्लमायिलल्ली
उल्ल करिकलु चोरुमारित्तनि
वक्कुल्लज्जल पेट्टु चूटाय चमञ्ञु विभो !
मक्कल तनिक्कोम्पु मिल्लायकिलेप्पोजुं
दु खिच्चिरिक्कयेन्नादवरुमीश्वरा !
पेट्टु वलत्तु कोलवानु पणि तुलो
मट्टारुमिल्लौराधारमौत्तेत्तालिय्यौ
चित्ते विचारिक्क पुत्र सपत्तिकल
इत्र परिभ्रमिक्कुम्नवरारुल्लु ?
दु खिप्पति नोरु पात्रमायेनह
व्यग्र प्रसविवाञ्ञेत्र प्ण्डेन नटे
पेट्टु चेरियवने कण्डनाल मुत-
लुट्टु तुटडिडय दु ख मरिप्पोल
पट्टट् विट्टु पोयीदुक यल्लितु
पट्टु कुमारने किटटुकिलीश्वरा !
श्रौट्टुमदुत्तु वन्नी लेन्मकन पशु
क्कुटि्ट कलोच्चकल केट्टतिल्लडङ्ुमे
मलप्रजतन कुज्जल नादवु केट्टति
ल्लिप्पो ज्ञेनिक्किनि येन्तावतीश्वरा ?
एन्तेम्नु तोज्ञि वरायवान ममात्मजन ?
अन्तरा वैटिकलुडवनेट्टुवु ।[1]

शृंगार रस

शास्त्रो के अनुसार स्थायी भाव रति या प्रेम है और आलबन (विभाव) नायक या नायिका है। नायक या नायिका की वेशभूषा, विविध चेष्टाए आदि पात्रगत उद्दीपन और चद्र, चादनी, चदन, वसन्त, सुरभित पवन, एकान्त स्थल, वाटिका, उपवन, भ्रमर-गुजार आदि ये बहिर्गत उद्दीपन है जो सयोग-दशा मे आनन्द की वृद्धि और वियोग मे दु ख की वृद्धि करते है। अनुरागपूर्ण दृष्टि, भृकुटि-भग, कटाक्ष, अश्रु, वैवर्ण्य आदि अनु-भाव है। आवेग, जडता, मोह, शका, चिन्ता, क्रीडा आदि सारे सचारी भाव इसमे आ सकते है।

रसराज शृगार का पूर्ण परिपाक कृष्ण-भक्त काव्य मे हुआ है। शृगार रस के

---

१ श्रीमहाभागवतम्—कवि एज्जुत्तच्छन, पृ० २५१-२५२।

सयोग और विप्रलभ दो पक्ष होते है। हिन्दी भाषा के सूर जैसे सहृदय कवियो ने दोनो प्रकार के शृगार का ऐसी विदग्धता से वर्णन किया है कि पाठक का मन तन्मय होकर भाव-लोक मे विचरण करने लगता है।

संभोग शृंगार

हिन्दी के उदाहरण--

आगन मे माता, पिता, स्वजन, पारिवारिक बन्धु आदि विद्यमान है। लोक-लज्जा और वेदमर्यादा के प्रतीहार और द्वारपाल पहरा दे रहे है। पलक रूपी कपाट बन्द कर कुलप्रतिष्ठा की ताली से धैर्य रूपी ताला भी द्वार पर लगा रखा है। पर अन्तस्तल के गुह्य से गुह्य कोने मे छिपा हुआ राधा का मन घन कृष्ण ने नेत्रमार्ग से उर-पुर मे प्रविष्ट होकर चुरा ही तो लिया[1] चोर-जार-शिखामणि कृष्ण की इस अद्‌भुत चोरी का चित्रण सूर कितनी विचित्रता के साथ करते है--

राग अड़ानौ

मेरौ मन गोपाल हरयौ री।
चितवत हीं उर पैठि नैन मग, ना जानौं धौं कहा करयौ री।
मातु पिता पति बधु सजन जन, सखि आँगन सब भवन भरयौ री।
लोक-बेद प्रतिहार, पहरुआ, तिनहूं पै राख्यौ न परयौ री।
धर्म धीर, कुलकानि कुंजी करि, तिहिं तारौ दै, दूरि धरयौ री।
पलक कपाट कठिन उर अतर, इतेहुँ जतन कछुवै न सरयौ री।
बुधि विवेक बल सहित सँच्यौ पचि, सुधन अटल कबहू न टरयौ री।
लियौ चुराइ चितै चित सजनी, सूर सोच तनु जात जरयौ री॥[1]

राधा और कृष्ण के मिलन पर सूर लिखते है—

राग कान्हरौ

नवल किसोर नवल नागरिया।
अपनी भुजा स्याम भुज ऊपर, स्याम भुजा अपनै उर धरिया।
क्रीड़ा करत तमाल तरुन तर स्यामा स्याम उमँगि रस भरिया।
यौं लपटाइ रहे उर-उर ज्यौं, मरकत मनि कचन मैं जरिया।
उपमा काहि देउ, को लायक मन्मथ कोटि वारने करिया।
सूरदास बलि-बलि जोरी पर, नद कुँवर वृषभानु कुवरिया॥[2]

कृष्ण का अपूर्व सौदर्य और वशी की मीठी ध्वनि से गोपिया उनकी ओर आकर्षित हो जाती है। एक गोपी का वचन है :

---

१ सूरसागर, खड दो, सभा सस्करण, पद स० २४९०, पृ० ९००।
२. सूरसागर, खड एक, पद स० १३०६, पृ० ५०१-५०२।

राग धनाश्री

भावे मोहि माधो बेनु बजावनि।
मदन गुपाल देखि हम रीझीं मोहन की मटकावनि।
कुंडल लोल कपोल लोल मधु लोचन चारु चलावनि।
कुंतल कुटिल मनोहर आनन मीठे धेनु बुलावनि।
स्याम सुभग तन चदन मडित उर कर अग नचावनि।
परमानन्द ठगी नँद नदन दसन कुद मुसकावनि।[1]

प्रेम-परीक्षा के बाद कृष्ण को मालूम हुआ कि उनके प्रति गोपियो का प्रेम अटूट है। तब वे गोपियो के साथ प्रेम-लीला करने लगते है जिसका चित्रण नददास के शब्दो मे देखिए—

परिरभन मुख चुबन, कच कुच नीबी परसत
सरसत प्रेम अनग रग नवघन ज्यो बरसत।[2]

होली के दिन अपने पतिदेव कृष्ण के आगमन के समय पर मीरा उनके साथ होली खेलती है। उसके सबध मे वे स्वय गाती है

राग होरी सिन्दूर

फागुन के दिन चार रे, होरी खेल मना रे। टेक
बिनि करताल पखावज बाजै, अणहद की झणकार रे।
बिनि सुर राग छतीसू गावै, रोम रोम रग सार रे।
सील सतोख की केसर घोली प्रेम प्रीत पिचकार रे।
उडत गुलाल लाल भयो अबर बरहत रग अँपार रे।
घर के सब पट खोल दिए है, लोक लाज सब डार रे।
होरी खेलि पीव घर आए, सोइ प्यारी प्रिय प्यार रे।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, चरण कवल बलिहार रे।[3]

मलयालम के उदाहरण

गोपियो की कातर प्रार्थना सुनकर श्री कृष्ण प्रत्यक्ष होते है और उनके साथ वे रास-क्रीडा करते है। सब कही मन्मथदेव का प्रभाव दिखाई पडा। पशु-पक्षी तक काम-देव से पीडित हो गए। कृष्णगाथा मे कवि गाते है.—

पारावतङ्ङल पेटकलोटोत्तु
नेरे कलिच्चु तुटङ्ङीतप्पोल
वट्टं तिरिञ्ञु तिरिञ्ञु मयङ्ङीट्टु
पेट्टन्नु कान्तन तन मुन्निल च्चेन्नु

---

१. डा० गुप्त के परमानन्ददास-पद-सग्रह से पद स० १०२।
२. नन्ददास—शुक्ल पाठ-भेद से, पृ० १६६।
३. मीराबाई की पदावली—भाग दो, स० परशुराम चतुर्वेदी, पद स० १५१।

अंचित मायौरु चन्चु पुरस्तन्ने
यन्चान्ते मेल्लवे वायक्कोण् कुन्टन
आननं ताक्क मुर्यासियुमनपोदु
दीनत कैविट्टु कूकि क्कूकि
एणडङ्कल तङ्डलिल कूटि क्कलर्न्नु तन
प्राणडङ्लाकिन कान्तयोर
कोम्पु कणेडनपिल कजुत्तिलुरुम्मीटटु
चुबिच्चु निन्नु तुटडडीतेड्ड
वण्डिण्ड तडिडलल कूटि क्कलर्न्निट्टु
मण्डि नटन्नोरो पूवुतोरं
कान्तनु तानुमायोन्नतु कूटीट्टु
पून्तेन नुकर्न्नु तुटडडीतेड्ड ।[1]

अर्थात् कबूतर अपनी कबूतरियो के साथ खेलने लगे, कबूतरी अपने प्रिय के पास जाकर अपनी चोच प्रिय की चोचो से मिलाने लगी और कूक मारने लगी। हरिणो ने हरिणियो के गले से अपनी सीगो को छुलाकर चुम्बन कर लिया और उनके पास वे खडे हुए। भ्रमर भ्रमरियो से मिलकर फूलो का मधु चूसने लगे।

मलयालम-साहित्य के कथकलि ग्रन्थो मे सभोग शृगार के हजारो पद मिलते है। नरकासुर-वध के प्रसग पर कार्तिक नक्षत्रजराम वर्मा लिखते है : कृष्ण अपनी स्त्रियो से कहते है—

चचलाक्षिमारे ! वरिक सामोद मे सविधे
पन्च शर केलि तन्निल वान्छ में बलर्न्नीटुन्नु
फुल्ल कुन्द मन्दारादि पुष्प जालडङ्ल कण्डितो
कल्याण शीलमाराकु कामिनिमारेः सरस
कण्ड तण्डलर तन्मथु वुण्डुटन मदं कलर्न्नु
वणडुकल मुरणडीटुम्मु तण्डार शरन विलसुम्मु
मन्दमारुत किशोरन मन्द मन्दं वन्नीटुम्मु
सुन्दर कोकिल नाद मन्देतर केलकुकन्निल्ले
आनन चन्द्र सुधये सानन्दं तरिक निडडल
सूनशर विलासडडल मानिनिमारे चेय्येणं।[2]

अर्थात् अरी चचल नेत्रो वाली कामिनियो ! तुम लोग मेरे पास आओ। काम-केलि करने की बडी इच्छा हो रही है। कमल, माधवी, कुन्द आदि पुष्पो की ओर देखो। भ्रमर गुजाते हुए मकरद-पान करके उन्मत्त हो गए है। मन्द शीतल सुगधित वायु बह

१. कृष्णगाथा—स० राजराज वर्मा, पृष्ठ ७८।
२. आट्टक्कथा—स० के० गोपाल पिल्ला, पृ० ६।

रही है। कोयल का सुहावना स्वर क्या तुम्हे सुनाई नही पडता ? तुम मुख-चन्द्रसुधा का पान मुझे कराओ।

वियोग-शृंगार

हिन्दी के उदाहरण

विप्रलभ-शृगार के अनेक पद हिन्दी भाषा के कवियो ने लिखे है। अपने प्रिय कृष्ण के दर्शन की अभिलाषा मे एक गोपी आत्मविस्मृत रहती है। उसका चित्र सूर खीचते है

राग सारंग

निरखति अक स्याम सुन्दर के बार-बार लावति छाती
लोचन जल कागद मसि मिलि कै ह्वै गई स्याम, स्याम जू की पाती
गोकुल बसत नदनदन के, कबहु बयारि न लागति ताती
अरु हम उती कहा कहै ऊधौ, जब सुनि बेनु नाद सग जाती
प्रभु के लाड बदति नहिं काहूं, निसि दिन रसिक रास रस राती
प्रान नाथ तुम कबहि मिलोगे, सूरदास प्रभु बाल सघाती ॥[1]

सयोग के अवसर पर जो वस्तुए सुखदायी होती है वही वियोग के अवसर पर दु खदायी होती है। अब वर्षा ऋतु और चादनी नायिका को दु खद प्रतीत होती है। सूर लिखते है

राग सोरठ

पिय बिनु नागिनि कारी रात।
जौ कहुँ जामिनि उवति जुन्हैया, डसि उलटी ह्वै जात।
जत्र न फुरत मत्र नहिं लागत, प्रीति सिरानी जात।
सूर स्याम बिनु बिकल बिरहिनी, मुरि-मुरि लहरं खात ॥[2]

यहा काली रात्रि नायिका को काली नागिन से समान मालूम पडती है। कृष्ण के विरह से पीडित गोपिया उनके गुणो का वर्णन करती रहती है

राग सारंग

इहिं बिरियां वन तै ब्रज आवत।
दूरिहिं तै वह बेनु अधर धरि, बारबार बजावत।
कबहुंक काहू भांति चतुर चित, अति ऊचे सुर गावत।
कबहुक लै लै नाम मनोहर, धौरी धेनु बुलावत।

---

१ सूरसागर—खड दो, सभा सस्करण, पद स० ४१०५, पृ० १४३५।
२ सूरसागर—खड दो, सभा सस्करण, पद स० ३८९०, पृ० १३७१।

इहिं विधि बचन सुनाइ स्याम घन मुरछे मदन जगावत।
आगम सुख उपचार बिरह-जुर, बासर अंत नसावत।
रचि रुचि प्रेम पियासे नैननि, झम झम बलहिं बढावत।
सूर सकल रस निधि सुदर धन, आनँद प्रगट करावत।[1]

एक नायिका के उद्वेग का चित्र सूर खीचते हैं

राग मलार

हमारे माई मोरवा बैर परे।
घन गरजत बरज्यौ नहि मानत, त्यौं त्यौं रटत खरे।
करि करि प्रगट पख हरि इनके, लै लै सीस धरे।
याही तैं न बदत बिरहिनि कौं, मोहन ढीठ करे।
को जानै काहे तैं सजनी, हम सौं रहत अरे।
सूरदास परदेस बसे हरि, ये बन तैं न टरे।[2]

कृष्ण की चिन्ता करते-करते गोपिया व्याकुल होती है और जब उनको मालूम हुआ कि कृष्ण नही आए तब वे बेहोश होकर गिर पडती हैं। सूर लिखते हैं—

राग बिलावल

जबहि कह्यौ ये स्याम नहीं।
परी मुरछि धरनी ब्रजबाला, जो जहँ रही सुताही।
सपने की रजधानी ह्वै गइ, जो जागीं कछु नाहीं।
बार बार रथ ओर निहारहि स्याम बिना अकुलाहीं।
कहा आइ करिहैं ब्रज मोहन मिली कूबरी नारी।
सूर कहत सब ऊधौ आए, गई काम-सर मारी॥[3]

सूरदास के समान परमानन्ददास ने विरह-विधुरा गोपियो की विविध दशाओ के सुन्दर तथा सरस चित्र खीचे है। परमानन्ददास की एक गोपी प्रिय से मिलने की अभिलाषा से चिन्तित दिखाई पडती है। रात को नीद जरा भी नही आती। पपीहा 'पीऊ पीऊ' पुकारता है जिसे सुनकर गोपी को अपने प्रिय का स्मरण होता है। मुरली नाम का स्मरण करते ही गोपी मूछित होकर गिर पडती है, उसका वर्णन परमानन्ददास करते है—

राग केदारो

रैनि पपीहा बोल्यौ री माई।
नींद गई चिन्ता चित बाढ़ी सुरति स्याम की आई।
सावन मास देखि बरषा रितु हो उठि आंगन धाई।
गरजत गगन दामिनी दमकत तामे जीउ उड़ाई।

---

१ सूरसागर—खड दो, सभा सस्करण, पद स० ३८१६, पृ० १३५१।
२ सूरसागर—खड दो, सभा सस्करण, पद स० ३६४७, पृ० १३८६।
३ सूरसागर—खड दो, सभा सस्करण, पद स० ४०८६, पृ० १४२६।

राग मलार कियौ जब काहू मुरली मधुर बजाई।
विरहिन विकल दास परमानँद धरनि परी मुरझाई।[1]

गोपिया आसपास बैठकर कृष्ण के प्रेम-व्यवहार की बाते करके उनके गुण-गान करती है। एक स्थल पर परमानन्ददास भी लिखते है—

राग सारंग

यह बिरियां बनते आवते,
दूरहि ते बर बेनु अधर धर बारबार बजावते।
कबहुँक केहू भाति चतुरचित अति ऊचे सुर गावते।
कबहुक लै लै नाउ मनोहर धौरी धेनु बुलावते।
यह मिस नाउ सुनाय श्याम घन मुरछे मनहि जगावते।
आगम सुख उपचार बिरह जुर बासर अंत नसावते।
रुचि रुचि प्रेम पिया सेन दे क्रम क्रम बलिहि बढ़ावते।
परमानँद प्रभु गुन निधि दरसनु पुनि पथ प्रगट करावते।[2]

विरह के समय की चरमावस्था 'मृत्यु' कही जाती है उसका चित्रण परमानददास के शब्दो मे देखिए—

ऊधो यह दुख छीन भई।
बालक दसा नदनदन सो बहुरि न भेंट भई।
नैननैन सो नैन मिलाबे बयनि बयनि सो बात।
बहुरि अंग को सग न पायो यह करी क्रूर विधात।
बहुरि क्यो कान्ह न गोकुल आए मधुबन हम न बुलाई।
परमानँद स्वामी के बिछुरे बसमी अवस्था आई।।[3]

नन्ददास अपनी पुस्तक 'विरहमजरी' मे कृष्ण के विरह से अत्यन्त व्याकुल एक गोपी की दशा का वर्णन करते है—

रही हुती रजनी कछु थोरी, जाग परी सहजहि बर गोरी।
द्वारावति लीला सुधि भई, ताही छिन सो बिकल ह्वै गई।
दृष्टि परि गयो चदा गैन, लागी ताहि संदेसो बैन।
द्वादस मास बिरह की कथा, बिरहिनी की दुखदायक यथा।
छिनक माझ बरनी यह बाला, महा बिरहिनी ह्वै तिहि काला।।[4]

प्रस्तुत पद मे गोपी अपनी दशा चन्द्र के सामने प्रकट करके उसे दूत बनाकर अपने

---

१ डा० गुप्त के परमानन्ददास-पद-सग्रह से, अष्टछाप से उद्धत, पृ० ७२४।
२ डा० गुप्त के परमानन्ददास-पद-सग्रह से, अष्टछाप से उद्धत, पृ० ७२४।
३ डा० गुप्त के परमानन्ददास-पद-सग्रह से, अष्टछाप से उद्धृत, पृ० ७२७।
४ विरहमजरी—बलदेवदास, छ० न० ३५-३६।

प्रिय कृष्ण के पास भेज देती है। क्वार के महीने मे वियोगिनी की वेदना का कितना मार्मिक चित्रण कवि ने किया है—

कहियो उडुप उदार, सुन्दर नद किसोर सो।
अस कृस कीनी क्वार, हार भार तें डार दिय।
खंजन प्रकट भए दुख दैना, सजोगिनि तिय के से नैना।
निर्मल जल अबुज तहँ फूले, तिन पर लपट अलि कुल झूले।
सुधि आवत वा मोहन मुख की, कुटिल अलक युत सीमा सुख की।
मोरन नूतन चंदवा डारे, देखि देखि दृग होत दुखारे।
साझ समय बन ते बन आओ, गोरज मडित बदन दिखाओ।
वा छवि बिन ये नैन हमारे, जरत हैं महा विरह के जारे।
और ठौर की आगि पिय, पानी लागि बुझाय।
पानी में की आगि बलि, काहे लागि सिराय॥[1]

इस पद मे वियोगिनी की अभिलाषा, स्मृति, प्रिय के गुण-कथन आदि सचारी भावो का भी मार्मिक चित्रण कवि ने किया है।

मीरा अपनी विरह-यातना का वर्णन स्वय करती है—

राग पीलू

रमइया बिनि रह्यौइ न जाय॥टेक॥
खान पान मोहि फीको सो लागै, नैणा रहे मुरझाय।
बार बार मैं अरज करत हू, रैण गई दिन जाय।
मीरा कहै हरि तुम मिलिया बिनि, तरस तरस तन जाय।[2]

जैसे चातक बादल के लिए रटता है या जैसे मछली पानी के लिए छटपटाती है, वैसे ही, वे भी सुध-बुध बिसराकर 'पिव पिव' करती रह जाती है—

राग आनन्द भैरो

सखी मेरी नींद नसानी हो।
पिय को पथ निहारत, सिगरी रैण बिहानी हो॥टेक॥
सब सखियन मिली सीख दई, मन एक न मानी हो।
बिनि देख्यां कल नहीं पड़त, जिय ऐसी ठानी हो।
अंगि अगि व्याकुल भई, मुखि पिय पिय बानी हो।
अन्तर वेदन विरह की, वह पीड न जानी हो।
ज्यूं चातक घन कूं रटै, मछरी जिमि पानी हो।
मीरा व्याकुल बिरहणी सुध बुध बिसरानी हो॥[3]

---

१ विरहमजरी—बलदेवदास करसनदास, छन्द स० १०८–११८।
२ मीराबाई की पदावली—भाग दो, स० परशुराम चतुर्वेदी, पृ० ३७।
३ मीराबाई की पदावली—भाग दो, स० परशुराम, चतुर्वेदी, पृ० ३३।

पिय के परस न पाने के कारण रात भर सिसक-सिसककर पडे रहना पडा, इस सम्बन्ध मे मीरा कहती है—

राग होली

होली पिया बिन मोहि न भावै, घर आगण न सुहावै ।टेक।
दीपक जोय कहा करू हेली, पिय परदेस रहावै ।
सूनी सेज जहर ज्यू लागे सुसक सुसक जिय जावै ।
नीद नहि आवै ।
कब की ठाढी मै मग जोऊ, निस दिन बिरह सतावै ।
कहा कहू कछु कहत न आवै, हिवड़ो अति अकुलावै ।
पिया कब दरस दिखावै ।
ऐसा है कोई परम सनेही, तुरत सदेसा लावै ।
वा बिरिया कब होसी मोकू, हँस कर निकट बुलावै ।
मीरा मिल होली गावै ।[1]

मलयालम के उदाहरण—

कृष्ण के विरह से अत्यन्त व्याकुल होकर गोपिया वन-वन मे उनकी खोज करती हुई विलाप करती है। उनकी दशा का वर्णन कृष्णगाथा मे बडे विस्तार से दिया गया है। गोपिया कातर स्वर से कृष्ण को पुकारती है—

कारवर्ण्णा कण्णा कटल वणर्णा काणइयो
कारुण्यमाण्डोरु कारवर्णने
एडडलिलुल्लोरु कारुण्य मिन्निप्पो-
लेडडानु पोयतरिञ्ञायो नी
कारवर्ण्णन तन्नुटे मानस मिन्निन्नु
कारुण्य मिल्लाते यायितल्लो
मालोकरल्लारु निन्ने क्कोणिडडडने
चालेप्परयुमारावक्कोल्लाते
अण्णन्नु मिन्नु कोण्डाकाश नोक्कीट्टु
कण्णु नीरोलोल मेल्ले मेल्ले
केणु किटक्कुन्न वेज्ञाम्पल पोलेयाय
वीणु मरुकुन्नुतेडडलय्यो
नीशेदु वेरायि पाञ्ञपरम्पेरीट्टु
मिन्नुन्न मीनडडलेन्न पोले ।[2]

---

१ मीराबाई की पदावली—भाग दो, स० परशुराम चतुर्वेदी, पृ० ३१ ।
२. कृष्णगाथा—स० राजराज वर्मा, पृ० ४८३–८४ ।

अर्थात् हे कृष्ण ! श्याममनोहर ! हमारे प्रति आप इतने दयाशून्य हो गए ? जैसे चातक घन के दर्शन न पाने से परेशान होता है, मछलिया स्थल से जल की ओर जाने के लिए छटपटाती रहती है, वैसी दशा हमारी हो गई है। आप हमपर कृपा करे।

कुचन नप्यार की गोपिया कहती है—

कण्डायो कनिवोदु चूत, वृक्षमे नी
कण्डालडड ज्ञकोटयोरु चारु रूप
तण्डार वाणनु भवनोदु तुल्यनल्ले
ष्ठुण्डामे मनसि तवापि कण्डताकिल ?[1]

अर्थात् हे चून वृक्ष ! तूने हमारे मनोहर कान्हा को देखा हो तो बता दे। यदि तू देखता तो समझता कि उसके समान मन्मथ भी नही।

कृष्ण के गुणगान करते-करते गोपिया थक जाती है। सुअवसर पाकर कामदेव अपने बाणो का प्रयोग करने लगते है। उस समय गोपिया प्रलाप करने लगती है—

मा पापी कोल्लल्ला[2]

अर्थात् अरे पापी ! हमे मत मार। इतना कहकर गोपिया मूर्छित हो जाती है। कवि कहते है—

चीर्त्तुतज्ज्वुल्लोरात्ति पिणञ्ञुल्ल
तात्तेन मोज्जिकलडड्ल्लिलेडड
मुर्त्तुल्ल मन्मथ वाणडडलेट्टु
मूच्चेन पूड्ड् तुटडिडनारे[3]

अर्थात् काम-व्याधि से पीडित मधुर भाषण करने वाली गोपिया कामदेव के बाणो से घायल हो मूर्छित होकर गिर पडी। उसी समय वनदेविया प्रत्यक्ष होकर चन्दनादि सुगन्धित पुष्पो से उनकी सेवा-शुश्रूषा करती है। गोपियो को ऐसा लगा मानो आग की चिनगारिया डाली जा रही हो। उनकी वह दशा देखकर वनदेवियो ने आपस मे कहा कि ये बेचारी मन्मथ के बाणो से पीडित हो रही है। मन्मथ का नाम सुनते ही गोपिया काम-देव को सम्बोधित करते हुए बकने लगती है जिससे उनकी विरह-वेदना का पता चलता है। कवि कहते है—

निम्मुटे बाणडडल मुन्नमे यिडिडने
तन्नेयो युल्लु चोल तारन्या नी·
एन्निये अडडले क्कोम्मु मुटिप्पाना
यिन्नितु निरम्मिच्चड्ड् ण्डाक्कायो
तारन्पेनन्नल्लो चोल्लुन्नू तेल्लारु

---

१ श्रीकृष्णचरित मणिप्रवालम—पद स० २३।
२ कृष्णगाथा—स० राजराज वर्मा, पृ० ८०।
३. कृष्णगाथा—स० राजराज वर्मा, पृ० ८०।

तारन्पनल्लोट्टु कूरन्पन नी
वज्रडडलल्ल निन बाणडडल पूवेन्किल

विल्लालि मारारु पेणकुल चेटिवल्ले
न्मुल्लतु निम्नुल्लि लिल्लयो तान।[1]

अर्थात् मन्मथ का नाम सुनते ही विरहिणी गोपिया कातर स्वर से कहने लगी—हे भगवान्! तुमने हमारी जान लेने के लिए ही ये तीर बनाए है? तुम तो पुष्प-बाण वाले नही वरन् क्रूर तीर वाले हो। यदि तुम्हारे तीर वज्र समान न हो तो भी हमे अच्छी तरह मालूम है कि ये पुष्पो के बाण तो नही। मल्लिका, चूत, अरविन्द आदि के पुष्पो से युक्त तुम्हारे बाण कदापि नही। यह वृक्ष-विष की बूदे गिराते हुए खडे है। ऐसे वृक्षो के पुष्पो के बाणो से हमारे प्राण निकल जाएगे ही। हम अबलाओ पर तुम क्यो आक्रमण करते हो? क्या तुम नही सोचते कि जो शूरवीर है वे स्त्रियो की हत्या नही करते।

अपने प्रिय के वियोग मे सुख देने वाली सारी वस्तुए दु खदायी प्रतीत होती है। सुहावनी चादनी गोपियो को किस प्रकार मालूम पडती है, उसके सम्बन्ध मे कृष्ण-गाथा-कार कहते है—

नट्टुच्च नेरत्तु पेट्टोरु वेयलेट्टु
चुट्टु पोरिञ्ञिरिक्कुम्मेरं
चूटु तलत्तुवान तीक्कुज़ि तन्निले
चाटिनाल चुटु तलत्तामो तान।[2]

इस सुखद शीतल चन्द्र को देखना मानो मध्याह्न सूर्य की धूप से परितप्त, हम लोगो को धधकती हुई अग्नि मे डाल देना है। यहा सचारी भाव 'उद्वेग' का वर्णन कवि ने भली भाति किया है। अन्त मे निराश होकर गोपिया मरणासन्न दशा को प्राप्त होती है। उसका चित्रण कवि यो करते है—

इडडने निम्नुटे लीलंकलोक्कुम्पो
ज़ेडडने ज़डडल पोरुप्पूतिप्पोल
मेलत्तिलल्लिक्कु कोल क्कुज़लूति।
क्कालिकल पिन्नाले नी वरुम्पोल
मुट्टे वरुवोल पावर्करुताञ्ञट्ट
डडोट्टेट वन्नल्लो जडडल कन्डु
इडिडने युल्ल निनमुख काणाते
येडडल पोरुक्क मन्नोर्वक वेण्डा
वल्लिकल नल्लव युणिडडु चूजवुं

१. कृष्णगाथा—स० राजराज वर्मा, पृ० ८१।
२. कृष्णगाथा—स० राजराज वर्मा, पृ० ८२।

नल्ल मरडडलु मुण्डरिके
अल्लले प्पोक्कुवानाराञ्ञु पाकेण्ड
तिल्लेडडल क्केन्नतु तेरिनालुं
आरे निनच्चेडडल जीविच्चु कोल्लु ते
आरोमल कान्ता ! नी कैवेटिञ्ञाल
अच्छनुमम्मयु कूटि प्पिरन्नोरु
मिच्छयिल मेविन कान्तन्मारु
मेच्चमे अडडले कैवेटि ञ्ञोर अडु
लिच्छयल्लातुत चेश्टक याले
अच्छनाय निन्नतु मम्मयय निन्नुतुं
निश्चलनाकिन नीतानत्रे
नियिन्नु अडडवेकैवेटिञ्ञायेन्किल
पोयेयल्ला वेण्डाये कालनिप्पोल ।[1]

अर्थात् हे भगवान् ! आप ऐसा करेंगे तो क्या हमारा अस्तित्व रह सकेगा ! शाम के समय गायो के पीछे वशी बजाते हुए आपका आगमन देखने के लिए हम कितने दिनो से आया करती थी ? आपको देखे बिना एक पल भी हम रह नही सकती। देखिए, यहा बहुत-से पेड और लताए है। आत्महत्या करने के लिए कही जगह ढूढने की आवश्यकता नही। जिनके सहारे और जिनका नाम जपकर हम सदा रहती है यदि वे हमे छोड देगे तो हमारे लिए मृत्यु के अतिरिक्त और कोई आश्रय नही। हमारे सारे सम्बन्धियो ने हमे छोड दिया है। आप ही हमारे मा-बाप और सर्वस्व है।

हास्य रस

दोनो भाषाओ के कवियो ने हास्यरस-प्रधान बहुत-सी कविताए लिखी है। हास्य रस का स्थायी भाव 'हास' होता है। उसका आलबन (विभाव) विकृत आकृति वाला व्यक्ति या वस्तु है। उद्दीपन (विभाव) आलबन की अनोखी आकृति, बाते, चेष्टाए आदि है। अनुभाव (आश्रय की) मुस्कराहट, हसी, उसके नेत्रो का मिच जाना आदि है। सचारी, हर्ष, आलस्य, चपलता, अवहित्था आदि है।

हिन्दी के उदाहरण—

सूरदास ने बाललीला का वर्णन करते समय अनेक पद लिखे है जिनमे हास्य रस प्रधान है। एक दिन बालगोपाल मक्खन की चोरी करते समय पकड लिए गए। उनके मुह पर मक्खन लगा हुआ था। तुरन्त उन्होने उसे पोछा और हाथ का मक्खन पीठ की आड मे छिपाते हुए सफाई देने लगे—

१ कृष्णगाथा—स० राजराज वर्मा, पृ० ८५।

राग रामकली

मैया मैं नहिं माखन खायो।
ख्याल परे ये सखा सबै मिलि, मेरै मुख लपटायो।
देखि तुही सींके पर भाजन, ऊंचै धरि लटकायो।
हौं जु कहत नान्हे कर अपने मैं कैसे करि पायो।
मुख दधि पोछि, बुद्धि इक कीन्ही, दोना पीठि दुरायो।
डारि साटि, मुसुकाइ जसोदा, स्यामहिं कंठ लगायो।
बाल बिनोद मोद मन मोह्यो, भक्ति प्रताप दिखायो।
सूरदास जसुमति को यह सुख, सिव बिरंचि नहिं पायो।[1]

मुख से लगा हुआ दही पोछना, पीठ के पीछे दोना छिपाना आदि उद्दीपन विभाव हैं। इसमे वर्णित सम्पूर्ण परिस्थिति के सामने आते ही हमारा हृदय खिल उठता है।

जब उद्धव ने आकर भगवान् के निर्गुण रूप के विषय मे लम्बी चौडी बाते की तब उद्धव की हसी उडाते हुए गोपिया कहती है—

राग कान्हरौ

निरगुन कौन देस को बासी ?
मधुकर कहि समुझाइ सौंह दै, बूझति साच न हासी।
को है जनक, कौन है जननी, कौन नारि, को दासी ?
कैसे बरन, भेष है कैसो, किहि रस मैं अभिलाषी ?
पावैगो पुनि कियो आपनो, जो रे करैगो गासी।
सुनत मौन ह्वै रह्यो बावरो सूर सबै मति नासी॥[2]

मलयालम के उदाहरण

हास्यरस-प्रधान कविताए लिखने मे मलयालम भाषा के कवियो जैसे, चेरुश्शेरी नपूतिरि और कुन्चन नप्यार की अपनी विशेषता है।

यह कथा सर्वविदित है कि सुभद्रा का अपूर्व रूप-लावण्य सुनकर अर्जुन मोहित हो गया। किसी न किसी प्रकार सुभद्रा को प्राप्त करने के लिए अर्जुन सन्यासी का कपट वेष धारण करके बलभद्र के पास गया। बलदेव ने सन्यासी का भली भाति आदर सत्कार किया और उसकी [illegible] करने का भार वयस्क सुभद्रा पर सौपा गया। सुभद्रा इसके पहिले अर्जुन पर मोहित हो चुकी थी। सन्यासी मे अर्जुन का रूप-सादृश्य देखकर सुभद्रा के मन मे उसके प्रति प्रेम उत्पन्न होने लगा। कुछ दिनो के बाद ही दोनो की आखे चार हुई। एक दिन भीख देने के लिए सन्यासी के पास सुभद्रा आई। उस समय के दोनो के हाव-भाव का वर्णन चेरुश्शेरी करते है—

---

१ सूरसागर—भाग १, सभा सस्करण, पद स० ६५२, पृ० ३७१।
२ सूरसागर—भाग २, सभा सस्करण, पद स० ४२४६, पृ० १४८०।

ओदनं तन्न विलपिनिन्नीटिनाल
वेदन पूण्डुल्लोरुल्लवुमाय
मुन्निलिरुन्नोरु भिक्षुकन तानु म
क्कन्यक तन्मुखं काण्कयाले
ओदनं तन्ने विलम्पुवान वल्लाते
योर्च्चयु पृण्डडड मेवुकयाल
पात्रत्तिल निन्नुल्लोरोदन मेल्लामे
पत्रत्तिलाम्मारु वीणु कूटि
अक्षण पिन्नेयु कन्यक मुन्निले
भिक्षुकन तन्मुख नोक्कि नोक्कि
उत्तम मायोरु नल घृत चेन्चम्मे
पत्रत्तिलाम्मारु वीज्ति निन्नाल
चालत्तोलिच्चूल्ल वाज्जप्पज्जडडलु
चाटि क्कलञ्ञित्तु चापल्यत्ताल
अत्तोलि तन्ने विलपि निन्नीटिनाल
चित्त मयडिडनालेन्नु जाय
ञ्ञत्तिलायुल्लो रत्तोलि तन्नेयु
चित्त मज्ञिञ्ञनास्वदिच्चान
कपवुमाण्डु करुतु मकन्न डड्
सभ्रमिच्चीटुन्न कन्यकतान
मुनपिले वेण्डतु पिनपिल विलपिनाल
पिनपिले वेण्डतु मुनपिल त्तन्ने
इडडने वन्नव योन्नु मरिञ्ञील
कन्यक मुनपिलिरुन्नवन तान।[1]

सार यह है कि सयानी सुभद्रा का मन युवा सन्यासी को देखकर चचल होने लगा। मारे घबराहट के वह जितना चावल लाई थी वह पूरा पत्तल पर डाल दिया। उसकी दृष्टि फिर भी भिक्षुक पर पड गई। तभी उसने सारा घी पत्ते पर उडेल दिया। केले का अन्तर्भाग हाथ से निकल गया और छिलका हाथ मे रह गया। उसने उसे परोस दिया। उसे बडे चाव से सन्यासी ने खा लिया। ठीक है, जब मन मोहित होता है तब इस प्रकार की करतूते होती ही रहती है। कवि आगे कहते है—

क्रम के विरुद्ध तरकारिया परोसी गई। जो पहले परोसना चाहिए वह पीछे परोसी गई और जो पीछे, वह पहले।

कुचन नप्यार की हास्यरस-प्रधान कविताओ के उदाहरण आगे दिए गए है।

१ कृष्णगाथा—स० राजराज वर्मा, पृ० २०५।

करुण रस

करुण रस का स्थायी भाव शोक है। उसका आलबन (विभाव) विनष्ट प्रियतम, बन्धु या ऐश्वर्य आदि है। उद्दीपन (विभाव) उनका दाहकर्म, उनसे सम्बन्ध रखने वाली चीजे—जैसे घर, वस्त्र, भूषण आदि और उनकी कथा है। अनुभाव दैव-निन्दा, स्तम्भ, प्रलाप, विवर्णता आदि है, सचारी, निर्वेद, मोह, अपस्मार, व्याधि, ग्लानि, स्मृति, विषाद, जडता, उन्माद, दैन्य आदि है।

हिन्दी मे—

कृष्ण के विरह से राधा शोक की मूर्ति बन गई। उसका चित्रण सूर करते है—

राग केदारौ

देखी मैं लोचन चुवत-अचेत।
मनहु कमल ससि त्रास ईस कौ, मुक्ता गनि गनि देत।
कहु ककन कहु गिरी मुद्रिका, कहूं टाड कहु नेत।
चेतति नहीं चित्र की पुतरी, समुझाई सौचेत।
द्वार खरी इकटक मग जोवति, ऊर्ध उसांसनि लेत।
सूरदास कछु सुधि नहिं तन की, बंधी तिहारे हेत।[1]

मलयालम में—

मलयालम भाषा के कवि एजुत्तच्छन की कविताओ मे करुणरस-प्रधान बहुत-से पद पाए जाते है। तिर्यक् जाति के प्रति उन्होने करुणा प्रदर्शित की है। फिर मनुष्यो के बारे मे क्या कहना! उदाहरणार्थ भारत का एक प्रसग नीचे दिया जाता है

जब मन्दपाल मुनि को सन्तानशून्यता के कारण स्वर्ग मे स्थान नही मिला तो सन्तानलाभार्थ उन्होने शार्ङ्गपक्षी की योनि मे जन्म लिया और जरिता नामक पक्षिणी से ब्याह किया। जरिता से मुनिश्रेष्ठ के चार पुत्र पैदा हुए। फिर उन्होने लपिता नामक दूसरी पक्षिणी से विवाह कर लिया। वे एक दिन आराम कर रहे थे कि एकाएक खाण्डव वन मे आग लगी। उसी वन मे जरिता अपने पुत्रो के साथ रहती थी। भयानक अग्नि को देखकर अपने पुत्रो की रक्षा करने के लिए जरिता कातर हो उठी। उस समय उस पक्षिणी को जो दु ख और चिन्ता हुई उसका वर्णन कवि यो करते है—

आरण्य तन्निल पिटि पेट्टितु वह्निदेवन
करञ्जु तुटिडिमाल जरित तानुमप्पोल
निघृणनाय पितावित्तु युपेक्षिच्चान
दु खि क्कमारायि आन पेतडडलिवरोटु
परक्क प्पोकातेयु वन्नितु वाल न्मावर्कु

---

१ सूरसागर—खट दो, सभा सस्करण, पद स० ४३३३, पृ० १६३१।

निरक्के प्पिटि पेट्टु वन त्तिलग्नि तानु
आनिनि इवट्टे एन्तोत्त तेन तन्पुराने
काननत्तिलग्नि पिटिच्चु नालुपाटुं
इडडने करयुम्पोल पेतडडलुरचेय्तार
एडडानु पोयक्कोलकम्मे नी कूटे मरिक्कन्डा
अडडल चाकिलो पिन्ने पेट्टु सन्तति युण्डाम
एडिडन युण्डाकुम्नु नी कूटे मरिक्किकलो
अडडले स्नेहिच्चु नी सन्तानम मुटिक्कण्डा
मगल वम्नु कूटु पिन्नेयु मेन्ने वरु

एन्नतु केट्टु परञ्जोटिनाल जरितयु
एम्नुटे पतैडडले निडडल मोन्नु वेण
इक्कण्ड मरत्तिन कीज़ुण्णलिमटयतिल
पुककु कोल्लुविन निड्डलेन्नाल जानोम्नु चेयवन
पूज़ि कोण्डतिन मुख मूटि वेक्कयु चेय्या
ऊज़ि तन ताज़े तीयु तट्टुक यिल्लयल्लो
कीज़े पोय क्किट्म्नु कोण्डीटुविन तीयारियाल
पूज़ियु नीक्किक्कोण्डु पोन्नु कोल्लुविनल्लो
पैतडडलतु केट्टु मातावोटुर चेयतार
पेवाहत्तादु मेयुन्नु एलियुड्तिलम्मे
परप्पान चिरकिल्ल नटप्पानिल्ल कालु
मिरच्चि कण्डालेलि पिटिच्चु तिन्नु मल्लो
जन्तुक्कल भक्षि च्चिट्टु मरिकुन्नतिनेक्काल
वेन्तु चाकुन्नतत्रेग तियन्निरिञ्जालु
मर्तावु तन्ने प्रापिच्चुत्तमन्मारायुल्ल
पुत्रन्मारेयु लभिच्चीटुक मातावे नी
एन्नुतु केट्ट नेर वन्न शोकत्तोटे
तन्नुटे पैतडडले नोक्कियु करञ्जिट्टु
पिन्ने त्तान परक्कयु मरञ्जु नोक्कुकयु
एन्नुटे कर्म्म मेन्नु कलिपच्चु पोयालवल।[1]

सार यह है कि जगल मे आग लगी। तब जरिता ढाहे मारकर रोने लगी और कहने लगी—निर्दय पिता मुझे और इन बच्चो को छोडकर चला गया। हाय! हाय! मेरी और इन बच्चो की क्या दशा होगी। बच्चे उड भी नही सकते। आग चारो ओर लगी

१ महाभारत—ले० एज़ुत्तच्छन, पृ० १५०।

है। इनकी रक्षा मैं कैसे करू ! तब बच्चो ने कहा—मा ! तुम हमारे साथ मत मरो। यदि हम मरेगे तो कोई हानि नही होगी। तुम मर जाओगी तो हमारे वश का उच्छेदन हो जाएगा। अत तुम तुरन्त यहा से चली जाओ। रोती बिलपती वह फिर कहने लगी—मेरे प्यारे बच्चो ! इस पेड की जड मे एक बिल है। वहा तुम शरण लो। तब बच्चो ने कहा—वहा एक चूहा रहता है। हमको देखते ही वह हमे खा जाएगा। जानवरो के शिकार बनने की अपेक्षा अग्नि मे भस्मीभूत होना अच्छा है। हम यहा से कही नही जा सकते। तुम पिता के पास जाओ और उत्तम पुत्रो को पैदा करके अपना जन्म सफल करो। —अन्त मे विवश होकर जरिता अपने बच्चो को देखती उडती फिर लौटती, फिर भी उडती, कराहती और अपने भाग्य को कोसती हुई वहा से उड गई।

रौद्र रस

रौद्र रस का स्थायीभाव क्रोध होता है और उसके आलबन (विभाव) शत्रु, विपक्षी, कोई धृष्ट व्यक्ति, देशद्रोही, जातिद्रोही, कपटी आदि होते हैं। उद्दीपन (विभाव) उनके किए हुए अपराध, उनकी चेष्टाए, गर्वोक्तिया, कूटनीति आदि होते है।

हिन्दी में—

भगवान् कृष्ण के आदेशानुसार दोनो ने इन्द्र की पूजा बिना किए गोवर्द्धन की पूजा की। तब इन्द्र अत्यन्त क्रोधित हुए जिसका चित्रण सूर के निम्नलिखित पद मे दिया गया है—

राग सोरठ

प्रथमहिं देउँ गिरिहि बहाइ।
ब्रज घातनि करौं चुरकुट देउ धरनि मिलाइ।
मेरी इन महिमा न जानी, प्रगट देउँ दिखाइ।
बरसि जल ब्रज धोइ डारौं लोग देउँ बहाइ।
खात खेलत रहे नीकै, करी उपाधि बनाइ।
बरस दिन मोहिं देत पूजा, दई सोउ मिटाइ।
रिस सहित सुरराज लीन्हे प्रलय मेघ बुलाइ।
सूर सुरपति कहत पुनि पुनि, परौ ब्रज पर धाइ॥[1]

प्रस्तुत पद मे आलबन विभाव ब्रजवासी है। उद्दीपन (विभाव) इन्द्र की पूजा का त्याग है। अनुभाव वज्राघातो से गोवर्द्धन को चूर-चूर कर देना, बादलो को बुलाकर ब्रज पर आक्रमण करना। नष्ट पूजा की स्मृति, अमर्ष आदि सचारी है।

मलयालम में—

रुक्मिणी स्वयवर से भीष्मक के वचन सुनकर रुक्मी को बडा क्रोध हुआ। कवि

१. सूरसागर—खड एक, सभा सस्करण, पद स० १४७०, पृ० ५५६।

लिखते है—

अच्छन् ताने परञ्प्रोटिन वचनमिद
केट्टु कोप मुञ्जुत्ति
ट्टुच्चैरक्कणणु रण्डु नृप सदसि चुव
प्पिच्चु मन्चाटि पोले
स्वच्छ तन्नानसिल श्रमजल कणिका-
वृन्दवु चेर्तु मेन्मे
लुल्च्चेरु सर्व गर्व तटविन वचन
घोषयामास रुक्मी।[1]

अर्थात् पिताजी के वचन सुनकर रुक्मी वडा क्रोधित हुआ। उसकी आखे लाल हो गई। चेहरे पर पसीने की बूदे दिखाई देने लगी। बडे अहकार से उच्च स्वर मे वह बोला।

वीर रस

शत्रु का उत्कर्ष, उसकी ललकार, दीनो की दशा, धर्म की दुर्दशा आदि से किसी पात्र के हृदय मे उनको नष्ट करने के लिए जो उत्साह उत्पन्न होता है और तदनुसार क्रियाशील हो जाता है। उसीके वर्णन से वीर रस का स्रोत पाठक या श्रोता मे उमड पडता है। इसका स्थायी भाव उत्साह है।

हिन्दी में—

भगवान् कृष्ण अपने भाई बलराम के साथ मथुरा पहुचे। तब कस ने उनको मारने के लिए चाणूर, मुष्टिक जैसे पहलवानो को भेजा। उनसे कृष्ण और बलराम की मुठभेड हुई। इस प्रसग पर ओजपूर्ण तथा प्रभावशाली भाषा मे सूर लिखते है—

राग मारू

देखि नृप तमकि हरि चमक तहँई गए, दमकि लीन्हो गिरह बाज जैसें।
धमकि मार्‌यो धाव, गुमकि हिरदै रह्यो, झमकि गहि केस चले ऐसें।
ठेलि हलधर दियो, झेलि तब हरि लियो, महल के तरें धरनी गिरायो।
अमर जय धुनि भई धाक त्रिभुवन गई, कस मार्‌यो निदरि देवरायो।
धन्य बानी गगन, धरनि पाताल धनि, धन्य हो वसुदेव ताता।
धन्य अवतार सुर धरनि उपकार कौं, सूर प्रभु धन्य बलराम-भ्राता।[2]

स्थायी भाव उत्साह यहा पर चमकि, दमकि, धमकि, गुमकि, झमकि आदि शब्दो से प्रकट किया गया है। केश पकडना कुपित होना आदि अनुभाव है।

---

१ भाषाचचू—स० उल्लूर, पृ० २७६।
२. सूरसागर—भाग दो, सभा-सस्करण, पद स० ३६६७।

भीष्म की प्रतिज्ञा के प्रसग पर सूर लिखते हैं--

राग मलार

आजु जौं हरिहिं न सस्त्र गहाऊ।
तो लाजौं गगा जननी कौं, सातनुसुत न कहाऊं।
स्यदन खडि महारथि खडौं, कपिध्वज सहित गिराऊ।
पांडव दल सन्मुख ह्वै धाऊ, सरिता रुधिर बहाऊ।
इती न करौं सपथ तौ हरि की, छत्रिय गतिहिं न पाऊ।
सूरदास रनभूमि बिजय बिनु, जियत न पीठि दिखाऊ।[1]

मलयालम मे--

जब स्वयवर-मडप मे दमयन्ती ने नल के गले मे माला डाली तब दूसरे राजाओ को बडी ईर्ष्या हुई। उन लोगो ने दमयन्ती के पिता को कैद करना चाहा। इस प्रसग पर कुन्चन नप्यार लिखते है

गमिच्चु कोल्कये वेण्डु नटप्पिन् भूपालन्मारे
नटप्पिन् कुणिडनं तन्निल कटप्पिन् भीमने च्चेन्नु
पिटिप्पिन् कन्यके प्याऽअदुप्पिन कार्मुक कय्यि
लेदुप्पिन् घोर बाणड्डल तोदुप्पिनोर्त्तु कोण्डेल्ला
मदुप्पिन् पतन कुत्ति तकर्प्पिन् सर्वत्र चेन्नु
हरिप्पिन् पेटियुल्लोरडिड रिप्पिन् पेणिणने च्चोल्लि
मरिप्पिन् मन्नवन्मारे नाण क्केटेल्लां।[2]

अर्थात् राजा लोग मारे जोश के कहने लगे अरे ब्राह्मण लोगो ! तुम लोग जाओ और भीष्म को कैद करो। राजकुमारी के निकट जाओ। धनुषबाण लेकर अस्त्र चलाओ। शहरो को लूट लो। जो कायर है वे अपने घर मे रहे। यदि हम युद्ध न करे तो बडा अपमान होगा।

भयानक रस

किसी भयप्रद वस्तु का वर्णन, उससे भयभीत व्यक्ति की चेष्टा, वाणी आदि का उल्लेख, जिससे भय की स्थिरता होती है, भयानक रस की उत्पत्ति के कारण है। इस रस का स्थायी भाव भय है। आलबन (विभाव) कोई भयानक वस्तु (जैसे सिहादि जन्तु, बढी हुई नदी, किसी जगल या गाव मे लगी हुई आग सुनसान जगल आदि), चोर, डाकू, बलवान् शत्रु आदि है। उद्दीपन (विभाव) भयकर दृश्य, जीव आदि की चेष्टाए उनके कार्य, उनकी आहट, चर्चा आदि, ऊची उठने वाली लहरे, भयप्रद लपटे, नीरवता, जन-

१ सूरसागर, भाग १, सभा-सस्करण, पद स० २७०।
२ नल-चरित--कुचन नप्यार से उद्धृत, ले० नारायण पणिक्कर, पृ० १९९।

शून्यता आदि है। अनुभाव कप, स्वेद, रोमाच, वैवर्ण्य, स्वरभग, पलायन, मूर्च्छा, इधर-उधर ताकना, भौचक्का हो जाना आदि है। सचारी, सभ्रम, आवेग, शका, दैन्य, चिन्ता आदि है।

हिन्दी में--

इन्द्र ने अत्यन्त कुपित होकर व्रज को डुबाने की आज्ञा अपनी सेना को दी। घोर वृष्टि के समय उनकी मेघसेना का वर्णन सूर यो करते है

राग गौड़ मलार

मेघ दल प्रबल व्रज लोग देखें।
चकित जहँ तहँ भए, निरखि बादर नए, ग्वाल गोपाल उरि गगन पेखें।
ऐसे बादर सजल, करत अति महाबल, चलत घहरात करि अधकाला।
चकित भए नद, सब महर चकित भए, चकित नर नारि हरि करत ख्याला।
घटा घन घोर घहरात, अररात, दररात, थररात व्रज लोग डरपे।
तडित आघात तररात, उतपात सुनि, नारि-नर सकुचि तन प्रान अरपे।
कहा चाहत होन, भई कबहू जौ न, कबहुँ आंगन मौन बिकल डोलें।
मेटि पूजा इन्द्र, नदसुत गोबिन्द, सूर प्रभु आनँद करि कलोलें।[1]

बादलो को देखकर वृन्दावन-निवासियो को बडा भय हुआ, यह स्थायी भाव है। मेघो का गर्जन करना, बिजली की कडक आदि उद्दीपन है। चकित होना, थर्राना आदि अनुभाव है। चिन्ता आदि सचारी भाव है।

मलयालम में--

कस तलवार लेकर देवकी को मारने जाता है। उसे देखकर देवकी थर-थर कापने लगी। उसका वर्णन चेरुश्शेरी 'कृष्णगाथा' मे करते है—

केसरि वीरन तन्नानन तन्निलाय
मेवि निन्नीदुन्न देवकी देवि तान
दैवमे येन्नडङ् चोल्लि च्चोल्लि
घोरनायुल्लोरु कंसने नोक्कीट्टु
कोज्ञ पूण्डेट्टवु केज्ञु पिन्ने
चड्डाति मारुटे नन्मुखं नोक्किनि
न्निडडने येन कर्म्म मेन्नु पिन्ने
अच्छने तन्नेयु मेच्चमे नोक्किनि
न्नुच्च त्तिलेरे विलिच्चु केज्ञु

× × ×

१ सूरसागर—भाग एक, सभा सस्करण, पद स० १४७३, पृ० ५५७।

आडडले त्तन्ने विलिच्चु निन्नीट्टुवा
नोडिड निन्नडड् नटुडड् पिन्ने
आनक दुन्दुभि तन्नुटे यानन
दीनयाय मेल्लवे नोक्कि वीक्कुं[1]

सार यह है कि सिह के सामने हिरण की दशा के समान देवकी की दशा हुई। भयानक वेष वाले कस को देखकर देवकी हाय-हाय चिल्लाने लगी। वह कापने लगी। लोगो को देखकर रक्षा पाने के लिए उसने गिडगिडाकर प्रार्थना की। अपने मित्रो और पिताजी को जोर-जोर से वह बुलाने लगी। भाई कस से प्राण-दान की प्रार्थना की किन्तु उसका मुह देखते ही वह ठिठक गई। अन्त मे दीन भाव से अपने पतिदेव वासुदेव की ओर देखा।

प्रस्तुत पद मे कस की भयानक मूर्ति आलबन विभाव है। तलवार उठाना, आगे बढना आदि उद्दीपन है। कापना, गिडगिडाकर प्रार्थना करना आदि अनुभाव है। दैन्य, सभ्रम आदि सचारी भाव है।

एजुत्तच्छन अपनी कृति 'भारतम्' मे लिखते है श्रीकृष्ण समाधिस्थ बैठे है। भगवान् के पैर को पक्षी समझकर एक किरात तीर मारता है। पास आने पर मालूम हुआ कि जिनके पैर पर तीर मारा गया है वे भगवान् कृष्ण है। तुरन्त उनकी स्तुति करते हुए किरात क्षमा-प्रार्थना करता है। ये पद अद्भुत, करुण, भक्ति तथा भयानकरस-प्रधान है। किरात गिडगिडाकर प्रार्थना करता है

अटियनेतु मोन्नरिञ्ञील पोट्टी उटमयोटेन्ने प्परि पालिक्कण
मुनिवरन्मार मानसत्तिलुं गोपवनितमार मुलत्तट त्तिलु पत्मा
करत्तिलु नल्ल बलि शिरस्सिलु पुररिपु देवहृदयत्तिलु
विधि करतल ड्डलिलु गौतम हृदय नायिका युटेवपुस्सिलु
विलड्डीटु तव पद सरोरुह तल त्तिन्कल मम शरमेल्पि प्पति
न्नोरु तिरुवुल्लं कलर्न्नतेन्त्यय्यो मुरहर नारायण नरकारे !
चरण तारिण शरण देवमे ? करुणावारिधे शरण दैवमे !
तिरुमेय कण्डुल्लिनानदवु शरमेल्पिच्चतु निनच्चु मीतियु
कनियुकोण्डरन्मुतवु कंक्कोण्डु वणडिडनान तेरुतेरे क्किरातनु।[2]

अर्थात् हे भगवान ! मैं कुछ नही जानता। मेरी रक्षा करे। मुझे अपनाइए। जिनके पद-कमलो को मुनिजन ने अपने हृदय मे धारण किया है, गोपियो ने छाती तथा पद्म-करो पर, बलि ने अपने सिर पर, पुररिपु देव ने अपने हृदय मे, विधि ने अपने हाथो पर और गौतम ने अपने हृदय मे रक्खा है ऐसे भगवान् के पैरो पर मैने तीर मारा है। हाय ! मै आपके पैरो पडता हू। हे भगवान् ! आप मुझे शरण दीजिए। आपके कोमल शरीर

१ कृष्णगाथा—स० राजराज वर्मा, पृ० ३, ४।
२ भारत मौसल पर्व, पृ० ३२६।

को देखकर मुझे बडा आनन्द होता है । किन्तु कोमल शरीर को घायल करने के कारण मुझे वडा भय होता है । आपकी अपार कृपा से मै अत्यन्त प्रभावित हो गया हू । आनन्द भय तथा आश्चर्य से मै आपकी वन्दना करता हू ।

बीभत्स रस

स्थायी भाव घृणा । घिनौने दृश्य इसके आलबन है । उसमे कृमि, मक्खिया, दुर्गन्ध आदि उद्दीपन है । मोह, अपस्मार, व्याधि आदि सचारी है । थूकना, मुह सिकोडना, मुह फेरना आदि इसमे अनुभाव है ।

उदाहरण—

हिन्दी के कृष्णभक्त काव्यो मे बीभत्सरस-प्रधान पद बहुत कम है । मलयालम के कवि कुन्चन नप्यार एक बूढे का चित्रण करते है

पाण्डु पिटिच्चु वेलुत्तु शरीर
नीण्ड कजुत्तु मुञ्जि चुलिञ्ञु
कोलुकल पोले मेलिञ्ञु कुञ्ञ्ञोरु
काल् कय्यु कण्डाल विकृत
एल्लु मिसच्चु पल्लु वयिच्चु
कण्णु कुजिञ्ञु काल् पिटच्चु
मूंक्कु ताटियु मोन्निच्चिट्टु ।[1]

शरीर पर सफेद धब्बे पड गए । गला लबा हो गया । मुह पर झुर्रिया पड गई । हाथ और पैर लाठी के समान हो गए । वे बहुत भद्दे दिखाई पडे । शरीर पर हड्डी ही रह गई । दात बाहर निकलने लगे । आखे धस गई । उनसे गदगी बहने लगी, पैर कापने लगे । नाक और ठुड्डी एक हो गई ।

यहा आलबन बूढा है । उद्दीपन, अस्थिशेष शरीर, निस्तेज और पीव भरी आखे आदि उद्दीपन है ।

अद्भुत रस

इसका स्थायी भाव विस्मय होता है । आलबन (विभाव) अलौकिक वस्तु, असभावित व्यापार, असाधारण या लोकोत्तर कार्यकलाप, विचित्र दृश्य, आश्चर्यजनक व्यक्ति आदि है । उद्दीपन, (विभाव) इनका देखना या वर्णन सुनना, इनकी महिमा का निरूपण आदि होते है । अनुभाव मुह खोलकर रह जाना, दातो तले उगली दबाना, रोगटे खडे हो जाना, स्वरभग, स्वेद स्तभ आदि है । सचारी-वितर्क भ्राति, हर्ष, आवेग आदि है ।

---

१. कुचन नप्यार—स० आर० नारायण पणिक्कर, पृ० १९९ ।

हिन्दी में—

भगवान कृष्ण के वेणुगान सुनने पर जगत् मे क्या प्रभाव पडा, उसके सम्बन्ध मे सूर लिखते है—

राग केदारौ

मुरली सुनत अचल चले।
थके चर, जल झरत, पाहन-बिफल वृच्छ फले।
पय स्रवत गोधननि थन तें, प्रेम पुलकित गात।
झुरे द्रुम अंकुरित पल्लव, बिटप चचल पात।
सुनत खग-मृग मौन साध्यौ, चित्र की अनुहारि।
धरनि उमँगि न माति उर मैं, जती जोग बिसारि।
ग्वाल गृह गृह सबै सोवत, उहै सहज सुभाइ।
सूर प्रभु बिनु रास के हित, सुखद रैनि बढ़ाइ[1]॥

इस पद का स्थायी भाव विस्मय है। चराचर का एकाएक स्तभित होना आदि असभावित व्यापार आलबन विभाव है।

मलयालम में—

पाडवो ने जब मरुत की रखी हुई निधि का देखा तो उनके आश्चर्य का ठिकाना नही रहा। एजुत्तच्छन लिखते है—

पिन्ने क्कुजिच्चु निधि कण्डनेरत्तु
वन्नोरु विस्मय चोल्लावतल्लेतु
पोशु कोण्डुल्ल पात्रड्डल पलतरं उन्नतवारण
वाजि पशु वृष मेन्निव पोन्नु कोण्डुल्लतनवधि
मूल फलड्डल पोले चमच्चुल्लतु
मालकला दियामाभरणड्डलु
अगुलीयट्टल कन्डालुमोरोन्निव
अगड्डलूटे कज़िक्का नमुक्केल्ला
पण्डुल्ल देहड्डलेत्र वलुतिव
कण्डालु ना कृमि कलकु सममल्लो।[2]

अर्थात् ज़मीन को खोदने पर निधि को देखते ही जो विस्मय हुआ वह कहा नही जा सकता। सोने के अनेक बर्तन हाथी, घोडे, गाय और बैल दिखाई पडे, सोने के फूल और फल भी वहा मौजूद थे। मालाए आदि गहने भी थे। अगुलिया उतनी बडी थी

---

१. सूरसागर—भाग १, पद स० १६८६, पृ० ६२८।
२. भारत—ले० एजुत्तच्छन, पृ० ३१६।

मानो सारा शरीर उसके अन्दर से घुस सकेगा । उन्हे देखकर हम यह समझते है कि हम उनकी अपेक्षा कीट समान है ।

शान्त रस

शान्त रस का स्थायी भाव निर्वेद है । आलबन (विभाव) परमार्थ होता है। उद्दीपन (विभाव) ऋषियो का आश्रम, महात्माओ का सत्सग, उपदेश आदि है । अनुभाव रोमाच, पुलक, अश्रु-विसर्जन आदि होते है। सचारी, धृति, मति, हर्ष, स्मरण आदि है।

हिन्दी तथा मलयालम कृष्णभक्ति-काव्यो मे शान्तरस-प्रधान अनेक पद मिलते है। मायावश जीव की दशा का वर्णन करके श्याम सुन्दर की सेवा करने का उपदेश सूर देते है—

राग बिहागरौ

माधौ जू, मन माया बस कीन्हौ।
लाभ हानि कछु समुझत नाहीं, ज्यो पतग तन दीन्हौ।
गृह दीपक, धन तेल, तूल तिय, सुत ज्वाला अति जोर।
मैं मति हीन मरम नहिं जान्यौ, पर्‌यौ अधिक करि दौर।
बिवस भयौ नलिनी के सुक ज्यौं, बिन गुन मोहि गह्यौ।
मैं अज्ञान कछू नहिं समुझ्यौ, परि दुखपुंज सह्यौ।
बहुतक दिवस भए या जग में, भ्रमत फिर्‌यौ मतिहीन।
सूर स्यामसुन्दर जौ सेवै, क्यौं होवै गति दीन[1]।

नर-जन्म की महिमा का वर्णन करते हुए और कृष्ण भगवान् का भजन करने के लिए प्रेरित करते हुए मलयालम भाषा के एक अज्ञात कवि लिखते है—

अट्ट तेल, तेरट्ट, तोट्टारट्टि नक्रं व्याघ्र
तोट्ट जन्म मोक्के त्तीर्न्नी मट्टिलायि जानु
मर्त्यनायि प्पिरन्नीटानेत्र पुण्य वेण
व्यर्थ माक्कीटोला जन्मं, चत्तिटुन्नतेन्नो ?
चित्तमे ! नी गुरुवायु क्कैत्तिटेणं वेग,
नत्र वाजुन्नुण्डु साक्षाल चित्तिनुल्लतत्वं
विश्व मूर्ति, चिदानन्दन, विश्वसिप्पान योग्यन
वश्यनायालेतवक्कु माश्वसि क्कामल्लो
दाह मुन्डो विशप्पुण्डो, मोह मुन्डो पार्त्ताल
देह मुण्डो देहियुन्डो, स्नेह मुन्डो पिन्ने ?
भार्य येन्नु, मक्कलेन्नु वीटनेन्नुं मट्टु

१. सूरसागर—भाग १, सभा सस्करण, पद स० ४६, पृ० १६ ।

पारमोर्त्तु कुत्तिरुन्नाल कार्य मोकेतेट्टु
आरिवनारुटे येतु पाटिल निन्नु वन्नु
कार्य मेन्ताणेडडु पोकु मारारिञ्ञु सूक्ष्म ?
नीरिले प्पोल पोले निस्सार माय देह
कार्यमेन्नु करुतात्तोन धीर धीरन तन्ने
वीटु विट्टु कोल्लं कोञ्जिक्कोटु पालक्काटु
नाटुतोरुं नटन्नेरे प्पाटु पेट्टु नम्मल
भार्य येन्नु, धनमेन्नुं पारितेन्नु मट्टु
पारमोर्त्तु चुट्टु पोले, सार मोर्त्तल जीवन
कर्म्म मेन्नु वीट्टिल निन्नु सम्मतिच्चु पोन्नु
पट्टि, पूच्च, मर्त्त्यनानक्कुट्टि कट्टुरुम्पु
तोट्ट देहं पुक्कु पाटु पेट्टुञ्ञु चुट्टु
कण्डरिञ्ञ तत्व मोर्त्तु कण्डिरुन्नाल पिन्ने
इण्डलुण्डो सत्य कय्यु कण्ड विद्ययल्लो[1]

सार यह है कि हे मन ! बिच्छू, जोक, नक्र, बाघ आदि की योनि मे जन्म लेने के बाद कई पुण्यकार्य करके ही नरजन्म मिल पाया है । अत इसे व्यर्थ नष्ट मत कर। तू जल्दी कृष्णमदिर मे जा और वहा स्थापित मूर्ति पर भक्ति से अर्चना कर ले। यदि भगवान् प्रसन्न हो जाएगे तो सब कुछ प्राप्त हो जाएगा । तत्पश्चात् भूख-प्यास आदि की चिन्ता न रहेगी। स्त्री, पुत्र आदि की चिन्ता मे लगा रहेगा तो सब कुछ बिगड जाएगा। मै कौन हू, कहा से आया, यहा आने का उद्देश्य क्या है, यह शरीर जल के बुलबुलो के समान क्षणभगुर है, यहा कुछ भी नही, ये विचार जिसके मन मे उत्पन्न होते रहते है वही धीर है। 'कोल्लम' 'कोजिकोट' 'पालक्काट' आदि देशो मे भ्रमण करके लोग तरह-तरह के घृणित काम करके अपने सबधी लोगो का पालन करते है। उनको अपने मूल स्थान ब्रह्म के सम्बन्ध मे ध्यान लगाने का समय भी नही मिलता। यदि सत्य का ज्ञान हो जाएगा तो दु ख कभी नही होगा।

इस प्रकार सूक्ष्म रूप से अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि दोनो भाषाओ के काव्यो मे विविध-रसप्रधान सैकडो पद भिन्न-भिन्न कवियो ने लिखे है। ज्यो-ज्यो हम उनका विस्तार से अध्ययन करते है त्यो-त्यो ब्रह्मानन्दसहोदर काव्यानन्द का आस्वादन करने की सामग्री हमे मिलती जाती है । किस भाषा का काव्य अधिक श्रेष्ठ है, उसका निर्णय करना असम्भव है। प्रत्येक भाषा का काव्य अपनी विशेषता रखता है।

---

१ गीत—भाग २, स० योगक्षेम कपिनी, पृ० १५, १६।

अलंकार-विधान

रूप, स्वभाव, कार्य-व्यापार, दृश्य-घटना आदि के वर्णन तथा भावाभिव्यक्ति मे सौन्दर्य-प्रतिष्ठा करने के लिए कवि को अप्रस्तुत दृश्य अथवा कार्य-व्यापार की सृष्टि करनी पडती है। प्रस्तुत के ग्रहण के लिए अप्रस्तुत का उपयोग काव्यशास्त्र मे अलकार के नाम से अभिहित है। कवि अप्रस्तुत की योजना विविध प्रकार से करते है। इन योजना-प्रणालियो का नामकरण विविध अलकारो के रूप मे किया जाता है। हिन्दी तथा मलयालम के कृष्णभक्त कवियो की कल्पना किस प्रकार की योजना-प्रणालियो अथवा अलकारो मे प्रकट हुई है उसे हम क्रमश देखेगे।

हिन्दी के कवि

सूरदास के काव्य मे सभी प्रमुख अलकार हम पाते है, किन्तु कुछ अलकार उनको विशेष प्रिय ज्ञात होते है। यह अलकार उनके काव्य मे पग-पग पर दिखलाई देते है। भावपक्ष के कवि होने के कारण उनके काव्य मे शब्दालकारो की अपेक्षा अर्थालकार अधिक है। अर्थालकारो मे उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि सादृश्यमूलक अलकारो का विशेष रूप से उपयोग किया गया है। शब्दालकारो मे अनुप्रास और यमक प्रधान है।

अनुप्रास—

श्रीकृष्ण 'बालक-सग' खेलते है—

१. **डगनि डगमग पगनि डोलत, धूरि धूसर अग।**
चलत मग, पग जाति पैजनि परसपर किलकात॥

२ **जागिए गोपाल लाल, आनँद निधि नद बाल।**
जसुमति कहै बार बार भोर भयौ प्यारे॥
नैन कमल दल बिसाल प्रीति बापिका मराल।
मदन ललित बदन उपर कोटि वारि डारे॥[1]

यमक—

यमकालकार का प्रयोग सूरदास के 'दृष्टकूट'-सबधी पदो मे अधिकता से मिलता है। उसके प्रयोग से वे राधा और कृष्ण के सौन्दर्य की रहस्यात्मक व्यजना कर सके है—

१. **हरिसम आनन हरिसम लोचन हरि तह हरिवर आगी।**
हरिहि चाहि हरि न सोहावए हरि हरि कये उठि जागी॥

२ **कमलनयन के कमल वदन पर वारिज-वारिज वारि**
ऊधो योग योग हम नाहीं।

---

१ सूरसागर—दशम स्कन्ध, पद स० ६०८, स० प्रो० राम।

३ सारँग सम कर नीक नीक सम सारँग सरस बखाने।
सारँग बस भय भय बस सारँग सारँग विसमै माने॥
सारँग हेरत डर सारँग ते सारँग सुत ढिग आवै।

सुदामाचरित के निम्नलिखित पद्य मे रूपक, छेकानुप्रास वृत्यनुप्रास तथा श्रुत्यनुप्रास हम देख सकते है—

लोचन कमल दुख मोचन तिलक भाल, स्रवननि कुन्डल मुकुट धरे माथ है।
ओढे पीत वसन गरे में बैजन्ती माल, सख चक्र गदा और पद्म धरे हाथ है।
कहत नरोत्तम सन्दीपनि गुरु के पास तुम हो कहत हम पढ़े एक साथ है।
द्वारिका के गए हरि दारिद हरेंगे पिय, द्वारिका के नाथ वे अनाथन के नाथ है।

उपमा—

भ्रकुटि विकट नयन अति चचल। यह छवि पर उपमा इक धावत।
धनुष देखि खजन जिमि डरपत। नाहि सकत उठिवे अकुलावत।
(सूरसागर से)

नीचे लिखे सूरदास के पद मे उपमाओ की झडी हम देख सकते है—

स्याम मथे राधा बस ऐसे।
चातक स्वाति, चकोर चन्द्र ज्यो, चक्रवाक रवि जैसे।
२ ज्यो चकोर बस सरद चन्द्र के, चक्रवाक बस मान
जैसे मधुकर कमल कोस बस, त्यो बस स्याम सुजान
ज्यो चातक बस स्वाति बूद है, तन के बस ज्यो तीय
सूरदास प्रभु अति बस तेरे, समझि देखि धौं हीय।
३. घायक ज्यू घूमूँ सदा री।[1] (पद)
४. मैं कोइक ज्यू कुहकाऊगी।[2]

उत्प्रेक्षा—

उपमा और उत्प्रेक्षा अलकारो के सूरदास सम्राट् ही है—

राग बिहागरो

जसुदा मदन गुपाल सोवावै।
देखि सयन गति, त्रिभुवन कपै, ईस बिरचि भ्रमावै।
असित अरुन सित आलस लोचन उभय पलक परि आवै।

---

१. सुदामाचरित—पद स० ६, लेखक नरोत्तमदास।
२. मीरापदावली से।
३ मीरापदावली से।

जनु रवि गत सकुचित कमल जुग निसि अलि उडन न पावै।
स्वास उदर उससित यौं मानौ दुग्ध सिंधु छबि पावै।[1]

सूरदास मानौ पन्नगपति, प्रभु ऊपर फन छावै।

नीचे लिखे पद मे सूर ने उत्प्रेक्षाओ की भरमार कर दी है—

कहा लौं बरनौं सुन्दरताई।
खेलत कुँवर कनक आगन मै नैन निरखि छबि पाई।
कुलही लसति सिर स्याम सुभग अति, बहु बिधि सुरँग बनाई।
मानहु नवघन ऊपर राजत, मघवा धनुष चढ़ाई।
अति सुदेस मृदु चिकुर हरत मन, मोहन मुख बगराई।
मानहुँ प्रगट कज पर मजुल, अलि-अवली फिरि आई।
नील सेत अरु पीत लाल मनि, लटकन भाल रुलाई।
सनि गुरु असुर देवगुरु मिलि मनु भौम सहित समुदाई।[1]

रूपक—

इसके एक विशेष भेद सागरूपक का प्रयोग करने मे सूर बडे निपुण है—

देखो भाई सुन्दरता को सागर।
बुधि विवेक बल पार न पावत, मगन होत मन नागर।
तनु अति स्याम अगाध अबुनिधि कटिपट पीत तरग।
चितवत चलत अधिक रुचि उपजत भवर परत अग अग।
मीन नैन मकराकृत कुडल भुजबल सुभग भुजंग।
मुकुत माल मिलि मानो सुरसरि द्वै सरिता लिए संग।[2]
अँसुवन जल सीचि सीचि प्रेम बेलि बोई।
भौ सागर अति जोर कहिये अनत ऊडी धार।
राम नाम का बाध बेडा उतर करके पार॥[3]

रूपक के अन्य उदाहरण—

नव मरकत मणि श्याम, कनक मणि गण ब्रजबाला।

रूपकातिशयोक्ति का प्रयोग अनेक प्रकार से किया गया है—

१ राधा-कृष्ण के नखशिख-वर्णन मे

नद नंदन मुख देखो भाई।

---

१ सूरसागर—स० नन्ददुलारे वाजपेयी, पद स० ६८३, पृष्ठ स० २८३।
२ सूरसागर—दशम स्कन्ध, पद स० ५३२, पृ० २७६।
३. मीराबाई की पदावली—पद स० ९५।

खजन मीन कुरग भृ ग वारिज पर अति रुचि पाई।
(सूरसागर से)

२ मुरली के प्रभाव-वर्णन मे

जब मोहन मुरली अधर धरी।
दुरि गए कीर कपोत मधुप पिक सारग सुधि बिसरी।
उडुपति विद्रुम, बिम्ब खिसान्यो दामिनि अधिक डरी।
(सूरसागर से)

व्यतिरेक—

देखि रे हरि के चचल नैन।
राजिव दल, इन्दीवर, सतदल कमल कुसमय जाति।
निसि मुद्रित प्रातहि वे विकसत दिन राति।

प्रतीप—

उपमा हरि तन देखि लजाने।
कोऊ जक कोउ वन में रहे दुरि कोउ गगन समाने।
मुख निरखत ससि गयो अम्बर को तडित दसन छबि हेरो।
नील कमल कर चरन नयन उर जल में कियो बसेरो।
(सूरसागर से)

स्मरण—

सुन सुत एक कथा कहौं प्यारी।

रावन हरन कर्‌यो सीता को सुनि करुनामय नीद बिसारी।
सूर स्याम कहि उठे चाप कहँ लछिमन देहु जननि भय भारी।
(सूरसागर से)

स्वभावोक्ति—

किलकत कान्ह घुटुरुवन आवत।
मनि मय कजक नंद के आगन मुख प्रतिबिंब पकरिवे धावत।
कबहुं निरखि हरि आप छांइ को पकरन को चित चाहत।
किलक हसत राजत द्वै दतिया पुनि पुनि तिह अवगाहत।
(सूरसागर से)

विभावना—

माई अब तो यह शरद निसा लागत है फीकी।
ससि हर सताप कारी बरसत विष बूदें।

मारुत सुत सुभाय तज्यो वसो विसा मूंवें।[1]

अर्थान्तरन्यास—

हेरी मे तो दरद दिवाणी होय, दरद न जाणै मेरी कोई ॥ टेक ॥
घाइल की गति घाइल जाणै, की जिण लाई होई।
जौहरि की गति जौहरी जाणै, की जिन जौहर होई।[2]

'यहा प्रेम वेदना से पागल हो गई' उसकी वेदना को कोई नही जानता। इस विशेष बात का समर्थन घाइल की गति घाइल जाणै, जौहरि की गति जौहरी जाणै आदि सामान्य बातो से करने के कारण अर्थान्तरन्यास अलकार हुआ।

विभावना—

बिनि करताल पखावज बाजै, अणहद की झणकार रे।
बिनि सूर राग छतीसू गावै, रोम रोम रग सार रे।[3]

कारण के बिना कार्य जब होता है, तब विभावना अलकार होता है। करताल के बिना भी, कार्य पखावज का बजाना होता है।

उदाहरण—

जब दो वाक्यो मे, जिनका साधारण धर्म भिन्न है, वाचक शब्द के द्वारा समता दिखाई जाती है, तब उदाहरण अलकार माना जाता है।

मीरा प्रभु गिरिधर मिले जिले पाणी मिल गयो रग।[4]

यहा मीरा का गिरिधर से मिल जाना उसी प्रकार होता है जैसे पानी से रग मिल जाता है। दोनो का साधारणधर्म भी एक नही, परन्तु जिसे शब्द के द्वारा समता दिखाई गई है।

तुम बिच हम बिच अन्तर नाहीं, जैसे सूरज धामा।[5]

उन्मीलित—

मक्खन की चोरी करने के लिए बाल गोपाल शाम के समय एक गोपी के घर मे घुस गए। कृष्ण का रग अधकार के रग मे मिल जाने के कारण मीलित अलकार हुआ। कृष्ण का रूप नही दिखाई पडा। उन्होने तुरन्त अपना चतुर्भुजी रूप दिखाकर गोपी को चकित कर दिया। यहा कवि ने मीलित और उन्मीलित अलकार का प्रयोग करके काव्य का माधुर्य बढा दिया है

---

१ परमानद-पदसग्रह से, पद स० २४१।
२ मीराबाई की पदावली, पद स० ७२, पृ० ३७।
३ मीरा की पदावली, पद स० २५२।
४ मीराबाई की पदावली—पद स० २०२।
५ मीराबाई की पदावली—पद स० २१२।

राग कल्यान

ग्वालिन घर गए जानि सांझ की अधेरी।
मंदिर में गए समाइ, स्यामल तनु लखि न जाइ।
देह गेह, रूप कहौ को सकै निबेरी?
दीपक गृह दान कर्‌यौ, भुजा चारि प्रगट धर्‌यौ।
देखत भई चकित ग्वालि इत उत कौं हेरी।
स्याम हृदय अति विसाल, माखन दधि बिंदु जाल।
मोह्यौ मन नंदलाल, बाल ही बझे री।
जुबती अति भई बिहाल, भुज भरि दै अकभाल।
सूरदास प्रभु कृपाल डार्‌यो तन फेरी।
कर सौं कर लै लगाइ, महरि पै गई लिवाइ।
आनद उर नाहि समाई, बात है अनेरी।[1]

दृष्टान्त—

नीलाम्बर श्यामल तनु की छबि तुम छबि पीत सुवास।
घन भीतर दामिनी प्रकाशत दामिनि घन पहु पास।[2]

यहा उपमेय और उपमान वाक्यो मे भावसाम्य (बिम्ब-प्रतिबिम्ब-भाव) होने के कारण दृष्टान्तालकार है।

सहज प्रीति गोपालहिं भावै।

× ×

सहज प्रीति कमलनि अरु मानै, सहज प्रीति कुमुदिनी अरु चन्दे।
सहज प्रीति कोकिला बसते सहज प्रीति राध नन्द नन्दे।
सहज प्रीति चातक अरु स्वातें सहज प्रीति धरती जल धारें।
मन क्रम बचन दास परमानद सहज प्रीति कृष्ण अवतारें।[3]

प्रतीप—

विमल जसु वृन्दावन के चंद को।
कहा प्रकास सोम सूरज को जैसो मेरे गोविन्द को।[4]

---

१ सूरसागर—भाग एक, पद स० ८९३, पृ० ३५३।
२ परमानन्ददास-पदसग्रह से, पद स० २६७।
३. परमानन्ददास-पद-सग्रह से, पद स० ४१०।
४ परमानन्ददास-पदसग्रह से।

अप्रस्तुतप्रशंसा—

राग सारंग

तब तैं इन सबहिनि सचु पायौ।
जब तैं हरि सदेस तुम्हारौ, सुनत तांबरौ आयौ।
फूले ब्याल दुरे ते प्रगटे, पवन पेटि भरि खायौ।
खोले मृगनि चौक चरननि के, हुतौ जु जिय बिसरायौ।
ऊचे बैठि बिहंग सभा मैं, सुख बनराइ कहायौ।
किलकि किलकि कुल सहित आपनै, कोकिल मगल गायौ।
निकसि कदराहू तैं केहरि, पूछ मूड पर ल्यायौ।
गहवर तैं गजराज आइकै, अगहिं गर्व बढ़ायौ।
सूर बहुरि ह्वै है राधा कौं, सब बैरिनि को भायौ।[1]

उपमानो की आनदावस्था का वर्णन करके यहा कवि सूरदास ने अप्रस्तुतप्रशसा द्वारा राधा के अगो और चेष्टाओ का विरह से द्युतिहीन और मद होना व्यजित किया है। चेष्टाओ और अगो का मद और कान्तिहीन होना कारण और कार्य उपमानो का आनदित होना है । यहा अप्रस्तुत कार्य के वर्णन द्वारा प्रस्तुत कारण की व्यजना की गई है।

मलयालम के कवि

ऐसा युग था जबकि मलयालम के अधिकाश कवि द्वितीयाक्षर प्रास का प्रयोग करने मे दत्तचित्त थे। पद्य के प्रत्येक चरण मे दूसरा अक्षर जब समान दिखाई पडता है तब उस पद्य मे द्वितीयाक्षर प्रास होता है। जैसे—

पन्चायुध रिपु तन्नुटे नाम
पन्चाक्षरमतु पठन चेय्तु
पन्चाग्नि कलुटे नटुविलनारत
मन्चाते कण्टविटे वसिच्चू
पन्चानन सम धीरनताकिन
पान्चाली पति पाण्डुतनूजन
पन्चेन्द्रियवु अटक्कि मनस्सिल
सन्चारत्तिनु वजिकल मुटक्कि
चचल भाववु अखिल मकन्नुक
रान्चल युगल मुकुलितमाक्कि
किन्चन सशय मिट कूटाते
नेन्चिलुरच्चु शिवोहं मितेन्न

१ सूरसागर—भाग २, पद स० ४७५९, पृ० १६३९।

सञ्चित भाव विशुद्ध ज्ञानवुं
अन्चितमाकिन शिवनुटे रूप
(कुचन नप्यार)

उपर्युक्त पद्य मे सब चरणो मे दूसरा अक्षर 'न्च' देख सकते है।

चाटायि वप्पानद्दानवनेंकिलु
चाटायि वन्नील मेनि तञ्चिल
ओटायि वप्पु नुरुट्टिडनानेंकिलु
ओटायि वन्नील नोक्कुन्नेर

इसमे चारो चरणो का दूसरा अक्षर 'ट' है।

अनुप्रास—

एक नगरी का कवि ने वर्णन किया है

फलड्डलु वन दलड्डलु मृदु
मणड्डलु हिम जलड्डलु
निलड्डलु पट निलड्डलु मर
फलड्डलु मरु तलड्डलु
(कुचन नप्यार)

यहा 'ल' अक्षर कई बार आया है, अत अनुप्रास है।

स्वभावोक्ति—

स्वभावोक्ति अलकार का प्रयोग करने मे श्री नप्यार की कुशलता देखने योग्य है। श्रीकृष्णलीला मे यशोदा केरलीय माता के समान ही कान्ह को दुलारती है

ओट्टु वेलुक्कुपोल अम्मयु बालने
तेट्टेन्नु कालु मुखवुं कजुकिच्चु
तेट्टेन्नु भस्मक्कुरियु धरिप्पिच्चु
काले चिलपुकल चालेयुरप्पिच्चु
नालन्चु वट्ट कजुकिक्कनिवोटे
पोलित्तिरुमुटि तन्निलु चुबिच्चु
चाले वरुन्नोरु चड्डातिमारोटु
तालोलिच्चड्डु कलिप्पान अयय्क्कयुं

सारांश—

सवेरा होने से पहले ही माता ने बालक कृष्ण के पैर, हाथ, मुह धोए और तुरन्त ही भस्म की टीका लगाई। फिर नूपुर पहनाए। पुत्र का चुम्बन करके, खेलने के लिए आए हुए साथियो के साथ उन्हे भेजती है।

विराट् राजा के यहा पाचाली को कैसी बुरी दशा मे रहना पडा, उसका वर्णन कवि ने वडी कुशलता से किया है

मुट्टमोक्के अटिच्चु तूत्त् तलिच्चु भगिवरुत्तणं
मट्टुमनवधि वेंकलड्डल तुटच्चु वेण्म तिलक्कण
मट्टु दासिकलोटु चेर्न्नु पुरत्तलत्तिलिरिक्कणम्
कुट्टमड्गन कल्कु वरुवतिलोट्टु तान पिज्ञएलक्कण
एज्ञरय्केज्ञुनेट्टु वेल्लमनत्ति एण्ण एटुक्कण
कोज्ञ विट्टथ तालिकट्टि मेतुक्कि इन्च पतक्कण
केज्ञुमा नृपबालरेंकिल एणीट्टु पोयि उरक्कणम्
नाज्ञिकय्कोरु नालु कल्पन राज्ञि चोल्वतु केलक्कण
मञ्ञुमूतण काट्टुमेट्टु वेलिक्कु तन्ने किटक्कण
कुञ्ञु करकिल एणीट्टु तोट्टिलु मन्दमाट्टिघु रक्कण
नृत्तवेलयिल मद्दल चिलपोतिलेन्ति वदिक्कण
मुग्ध गात्रिवियर्त्तु वाड्डियालथ वीशण
कज्ञ्ञवार्न्नुवरु तुरप्पु शरिप्पेटुत्ति मिनुक्कण
मुज्ञ्ञवीत्तु मुषिञ्ञु पट्टरुरच्चिटुन्नतु केल्क्कण

(कुचन नप्यार)

साराश —झाडू लगाना, बर्तन माजना, दूसरी दासियो के साथ बाहर बैठना, उनके अपराधो मे भागी बनना, बडे सवेरे उठकर स्वामिनी के स्नान के लिए तेल आदि चीजे तैयार करना, यदि बच्चे जाग उठे तो लोरी सुनाकर उनको सुला देना, समय-समय पर रानी की आज्ञाओ का पालन करना, सनसनाती ठडी हवा मे, नगी ज़मीन पर सोना, नाच के समय नर्तकियो की सेवा करना और यहा तक कि क्रोधी कारिन्दो की आज्ञा का पालन करना द्रौपदी के लिए अनिवार्य था। इस तरह नौकरानी के विविध कार्यों का वर्णन कवि ने उक्त पद मे किया है।

अप्रस्तुतप्रशंसा—

काट्टिल किटक्कुं कटुवायिनेच्चेन्नु
काल्पिटिच्चेन्नाल कटिक्कातिरिक्कुमो

(नृगमोक्ष से)

अर्थात् यदि जगली बाघ के पैरो पडे तो क्या वह बिना खाए हुए छोड देगा ?

आनत्तलवने एन्ये करिणिकल
मानिनेयुण्टो कामिक्कुन्नू

(निवातकवच-वध से)

अर्थात् हथिनी गजराज को छोड़कर क्या कभी हिरण से प्रेम करेगी ?

कुण्टु किणट्टिल तवलक्कुञ्ञिअनु
कुन्निनु मीते परक्कान मोहम्
(रुक्मिणी स्वयवर से)

अर्थात् अन्धे कुए का निवासी मेढक पहाड के ऊपर उडना चाहता है।

उपमा--

श्री नप्यार द्वारा प्रयुक्त अलकारो का अध्ययन करने पर हमे उनके विशाल अनुभवो का पता लगेगा। परिचित वस्तुओ से उपमा करने मे उनकी पटुता देखिए। जिसके हाथ बलवीर्य तथा पराक्रम से शून्य है उनकी बरगद के पेड की जडो से तुलना करते है। श्रीकृष्ण को देखकर कालिय सर्प पूरी शक्ति के साथ उनसे भिडता है। इसके सम्बन्ध मे कवि कहते है

उच्चण्डमां फण मण्डलमाकवे
उच्चत्तिलड्डु र्यात्ति प्पिटि च्चडिड्डने
मेच्चत्तिलोटुन्न वन्चि कणक्किने
(श्रीकृष्ण-चरित से)

सार --सारे फन फैलाकर और ऊचा करके, साप मस्तूल पर बाधे पट जैसे जल्दी दौडने वाली नौका के समान श्री कृष्ण की ओर झपटा।

यमुना नदी मे भगवान् कूद पडे, उसकी उपमा कवि यो देते है

पारिच्चु चाटिनान् चारत्ते वारियिल
वेरट्ट मेरुक्कुन्नेन्न पोले।
(कृष्णगाथा--ले० चेरुश्शेरी नपूतिरि)

सार--

पास की नदी मे उखडे हुए मेरु पर्वत के समान कृष्ण कूद पडे

वारियिल निन्नुल्ल मीनड्डलोन्नुमे वारि कुरञ्ञतरिञ्ञतिल्ले
मायियिल मुट्टिन मन्दन्मारेल्लारु मायुस्सु पोकुन्न तेन्नपोले।
(चेरुश्शेरी की कृति कृष्णगाथा से)

साराश :--जैसे मन्द बुद्धि वाले लोग माया मे डूबे रहने के कारण अपने दिन व्यर्थ बीतते नही जान पाते वैसे ही मछलिया नही जानती कि जहा वे रहती है वहा का पानी कम हो गया है।

सूरदास के समान ही चेरुश्शेरी नपूतिरि उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक आदि अलकारो के सम्राट् माने जाते है।

कात्यायनी (माया भगवती) देवी के वर्णन मे कवि की पटुता देखने योग्य है। वे कहते हैं देवी के अग-लावण्य का यथोचित वर्णन करना मेरी जिह्वा की शक्ति से परे है। उनके बालो का वर्णन मै करना चाहता हू। सादृश्य-रहित शब्दो का प्रयोग किया जाए तो वह बहुत भद्दा लगेगा। इस पद मे कवि ने देवी के बाल, अलक, भाल, भौहे, कान, नाक, गण्डस्थल, अधर, मुस्कराहट, गला, हाथ, दन्त, जाघे, जानु, नख, चरण, चरणरज इनका वर्णन किया है। बालो की उपमा (अरिचण्डि) काले बादल आदि से की है। किन्तु एक वस्तु से उपमा करते समय कवि सोचते हैं कि दूसरी नाराज हो जाएगी। इस प्रकार कहकर जिनसे उपमा की गई है उनका निषेध करके उपमा देने के काम से निवृत्त होते हैं। यहा अनन्वय अलकार है। भाल रूपी आगन मे खेलते हुए केश रूपी नायिका के पुत्रो से अलक की उत्प्रेक्षा की गई है।

यहा रूपक और उत्प्रेक्षा अलकार हैं। भाल को देखकर ऐसा मालूम पडता है मानो शिव के मस्तक के चन्द्र के बिम्ब का आधा रूप टूटकर गिरने पर भौहो पर जाकर रुक गया हो। यहा उत्प्रेक्षालकार है। भौहो की उत्प्रेक्षा युद्धस्थल की सीमान्त रेखा से की गई है। मुख मेरे समान है ऐसा मानकर चन्द्र आगे बढा। तब कमल ने कहा मेरे समान है। जब दोनो मे युद्ध छिड गया तो मुख की श्री बीच मे पडी और रेखा खीचकर चन्द्र से ऊपर रहने और कमल से नीचे रहने को कहा। इस प्रकार की खीची हुई सीमान्त रेखाए हैं भौहे। मुख की ऊपरी भाग की चन्द्र से, तथा निचले भाग की कमल से तुलना की गई है यही सार है आखो को भौहे रूपी लहरो के नीचे खेलने वाली मछलिया कहा है। लहरो के नीचे ही मछलिया खेलती हैं यह प्रसिद्ध है। इन कारणो से आखो मे मत्स्यत्व (मछली-पन) का आरोप करने से यहा अनुमान अलकार है। कानो की तुलना आनन-कान्ति रूपी तरुणी के सोने के झूके से की गई है और अधर रूपी बिम्बाफल को देख, खाने के लिए आगे बढने वाले कीर के ओठो से उत्प्रेक्षा की गई है। सौन्दर्य की होड मे लाल फूल अधर से हार गया। अत अपमानित होकर माला मे गुथने के बहाने फासी पर चढना चाहता है। यहा कैतवापह्नुति और उत्प्रेक्षा अलकार है। छाती पर शोभित मोतियो का हार देखकर दात उसके पास न जाए, इस विचार से होठ दातो को छिपा देते हैं। यहा उत्प्रेक्षा है। मुस्कराहट को देखकर ऐसा अनुमान होता है कि वह शिवजी के नेत्र रूपी चकोरो के खाने के लिए चादनी हो। कवि का सकल्प है कि चकोर चादनी का भोजन करता है यहा मुस्कराहट पर चादनी का आरोप करने के कारण अनुमान अलकार है। मुख के अधोभाग और कण्ठ की पूर्णचन्द्र को सिर पर धारण किए शिवजी के लिंग से उत्प्रेक्षा की है। (मुख पूर्णचन्द्र और गला शिवलिंग के समान है।) हाथ मानो स्तन-रूपी मलय पर्वत से निकलने वाले सर्प हो। स्तनो को यौवन रूपी मस्त हाथी के मस्तको और रोमावलियो को सूड के समान बताया गया है। उन रोमावलियो के अग्रभाव मे नाभि रूपी पुष्कर दिखाई देता है। हाथी के मस्तक के मध्य से सूड निकली हुई है, स्तनो के मध्य से रोमावलिया उनके अग्रभाव मे कटि के हाथ के अग्रभाग के समान नाभि भी दिखाई

पडती है। नितब मानो रथ हो जिसपर बैठकर कामदेव ने बदला लेने के लिए शिव के शरीर को आधा कर दिया हो (देवी के नितब पर मोहित होकर शिवजी ने अपने शरीर का आधा भाग देवी को दे दिया था, यह कथा प्रसिद्ध है।) जघाओ को देखकर ऐसा मालूम पडता है मानो हाथी अपने सूड से नमस्कार करता हो। घुटने मजरी के समान है। पर घुटने सोचेगे कि उपमारहित होने के कारण हमसे दूसरी वस्तुओ की तुलना की गई है। ऐसा विचार कर शायद वे कुपित होगे अत कवि कहते है उनके समान वे ही है। अत इसमे अनन्वय अलकार है। नूपर के मोहक शब्द रूपी हसनाद सर्वदा सुनने के कारण वे देवी के चरणकमल कहे जा सकते है। देवो के करकमल इनको देखते ही सूख जाते है जिससे चरणचन्द्र भी कहे जा सकते है। फिर अपनी पूजा करने वालो के दु ख रूपी कानन को जलाने के कारण देवी को अग्नि, भक्तो के मानस का अधकार मिटाने के कारण उन्हे सूर्य भी कह सकते है। चरण-रज को देखकर ऐसा मालूम पडता है मानो ब्रह्मा ने इससे प्रपच की सृष्टि की हो।

देवि तन्मेय्युटे लावण्य चोल्वानिन्नाविन्नु वैभव वन्नुकूटा
पूञ्चायल तन्नुटे कान्तिये च्चोल्लुवान वान्छयुण्डाकुन्नु काण्केनिक्को
तुन्चतयिल्लाते तुल्यत चोल्लुम्पोल वल्लाय्म एन्नतु वन्नुकूटु
कण्टियेन्निङ्डने कोण्टाटिच्चोल्किलो कोण्टल तन्नुल्लत्तिलिण्टलुण्टो
अल्लेन्नु चोल्किलो नील त्तडकल वन्नल्लल्लायेन्नङ्डु पेशिक्कोल्लु
मट्टोन्नु चोल्किल मन कुज्ञ्ञ्ञीदुमक्कुट्ट मट्टीटु पनकुलक्कु
एन्नतु मूलमक्कून्तले वाज्ताते मन्दनाय निन्नु मटङ्डुन्ने ज्ञान
अन्धत कोण्टिनिच्चन्तमाण्टीटुम क्कुन्तल वाज्तुवान चिन्तिक्कुन्नेन
चायलायुल्लोरु नायिक तान पेट्ट चापल पूण्टुल्ल बालकन्मार
नेट्टियायुल्लोरु मुट्टत्तिलम्मारु मुट्टित्तज्प्पुल्ल लीलयल्लो

× × ×

शिजित माकुन्न हस नाद
एप्पोज्ञुमेल्कयालप्पाद चेचम्मे चोल्ल्पोङ्डु पकजमेन्नु तोन्नु
वानवर कैकला वारिजम् चेन्चम्मे काणुन्न नेरत्तु कून्पुकयाल
तिन्कलेन्नुल्लोरु शकयुमुण्टेनि य्क्कन्कुरिच्चीटुन्नु पिन्नेयुल्लिल
भक्तन्मारायुल्लोर चित्तत्तिन्मेल मिन्नुमिरुट्टिने तल्लुकयाल
पकज कामुकनेन्नोरु शकयु मकुरिच्चीटुन्नु पिन्नेपिन्ने
इप्पादँ तन्निले प्योल्पूपरागत्तें मुल्पाटे तेटित्तान कोप्टुपोयि
वारिज सभवन पारिटमेल्लामे पाराते निर्म्मिच्चु वेन्नुकेल्प्पू
एन्नतु कोणटुपोल पन्नगनायकन तन्नुटे मौलियिल चेर्कुन्नतुं

× × ×

ऊर्ज्जित रूपनाय निर्ज्जरनायुल्ल तन्पद तीर्त्त तिन्नो क्किलाक्कीं
सु भनाय निन्नुल्लोरुम्पर कोन वैरि तन डभत्त त्तीर्तंतु मव्वण्णमे।

(कृष्णगाथा पृ० १३८ से १४२ तक)

कवि ने मथुरा की उपमा अमरपुरी से दी है। यहा उपमालकार है। मथुरापुरी-निवासियो की, अमरपुरी मे जाने की तनिक भी इच्छा नही है। यहा अमरावती से मथुरा पुरी की श्रेष्ठता दिखाई गई है। अत व्यतिरेकालकार है। 'धर्म्मिष्टरायोरे चिन्निच्चु काण्किला' से कन्मष तोन्नुम क्कौमुदिक्कु तक धर्मिष्ठता स्वर्णमयता दानवीरता, विद्या, अस्त्रशिक्षा, कान्ति, सौन्दर्य आदि मे देवताओ की अपेक्षा मथुरापुरी के धर्मिष्ठ लोगो को अधिक श्रेष्ठ दिखाया गया है। अतएव व्यतिरेकालकार है। नगरी की उत्प्रेक्षा इन्द्रनगरी से की गई है।

वसुदेव बालगोपाल को लेकर वृन्दावन जा रहे थे। उस समय बडी वर्षा हुई। उनका गमन देखकर कवि कल्पना करते है कि यह एक जुलूस निकल रहा है।

दुंदुभि तन्नुटे चेणालु पाणिग्राय्न्नोर यानमेरि
वारुट्टु निन्नोरु वारिद नादमा भेरि तन नादवु पूरिच्चेडङ
वन्कनिवाण्टोरु पन्नगनाथना वेण्कुट तन्नेयु चूटिनन्नाय

अर्थात् भगवान् वसुदेव के हाथ रूपी वाहन पर यात्रा कर रहे है। बादलो का गर्जन नगाडा है। सर्प छाता बना हुआ है। बिजली दीपक है। किसी प्रबल राजा की धूमधाम सहित यात्रा की प्रतीति यहा होती है। अत अलकार रूपक है।

रूपक—

सन्ध्ययायुल्लोरु बन्धुर गात्रितान
चन्तत्तिल पोय मरञ्ञोरु नेरम
रात्रियायुल्लोरु तार्त्तेन्मोज्जि वधु चीर्त्तोरु केशमज्जिच्चुचेम्मे
नीले विरिच्चते येन्नकणक्केय क्कालिमकोण्टु निरञ्ञतेड्डु
सुन्दरमायुल्लोरिन्दु वित्तन्पोटु मन्द निनच्चु चमच्चपोले

(सपादक वटक्कुकूर राजराज वर्मा, पृ० १)

कवि कहते है कि सन्ध्या रूपी सुन्दरी के चले जाने पर रात्रि रूपी मधुरभाषिणी स्त्री अपने घने केश फैलाए हुए विराजमान हुई। उस समय मन्मथ रूपी किसान ने इन्दु रूपी बीज बोया। यहा अधकार की कालिमा मे मधुभाषिणी के केशो का आरोप किया गया है। मन्मथ किसान इन्दु बीज आदि मे रूपकालकार है। यह बडी सुन्दर कल्पना है।

अतिशयोक्ति—

हेमन्त के बारे मे कृष्णगाथाकार लिखते है—

वेल्लमेन्निड्डने चोल्लित्तुटड्डुपोल
तुल्लि तुटड्डि विरच्चेल्लारं

तीक्कु तन्नल्लिले तोन्नित्तुटड्डीते
तीक्काय वेण मेनिक्कु मेन्ने

जल का नाम सुनते ही लोग थर-थर कापने लगे। उष्णमय अग्नि भी तापने की इच्छा करती है। ठडक की अधिकता की व्यजना हुई है।

उल्लेख--

भगवान् के वेणुगान का वर्णन 'उल्लेख' का सुन्दर उदाहरण है

वार्मेत्तु गानमप्पकज योनिक्कु
सामत्तिन गानमाय्मेवि निन्नू
मुक्तन्मारायोक्कु नित्यमाय्निन्नोरु
सत्यमेन्निड्डने तोन्नीतप्पोल
मक्तन्मारेल्लाक्कु चित्त मतृप्पिक्कुँ
नल्त्तेन कुज़म्पायि मेविनिन्नु
दोहदमाणितु पूमरडडलक्केल्ला
काहल मायितु कामनप्पोल
वाहनमायित डडत्भुतड्डलक्केल्ला
मोहन मायितु लोकड्डलक्कु
नारिमारेल्लाक्कु मारन जपिक्कुन्न
मारण मत्रमाय नेरे वन्नू

भगवान् का वेणुगान ब्रह्मा के लिए सामगान, मुक्तो के लिए नित्य तत्त्व, भक्तो के लिए मन को शीतल करने वाला मधु, पुष्पित वृक्षो के लिए दोहल और समस्त प्रपच के लिए मोहन-मन्त्र तथा युवतियो के लिए कामदेव का जपनेवाला मारण-मन्त्र प्रतीत हुआ।

सातवां परिच्छेद

सामाजिक प्रभाव

पहले लिखा जा चुका है कि मलयालम भाषा के अधिकाश कृष्णभक्त कवियो की प्रमुख रचनाए प्रबन्ध काव्य की श्रेणी मे आती है। प्रबन्ध काव्य मे तत्कालीन सामाजिक स्थिति का चित्र खीचना किसी न किसी अश मे अनिवार्य है।

केरल प्रान्त मे जब कोई बच्चा पैदा होता है तब प्रसन्नता के कारण गरीबो मे कपडे, तेल, चावल आदि वस्तुओ के वितरण की प्रथा है। उसका वर्णन कृष्णगाथा के कवि ने यो किया है—पुत्र का मुख देखते ही मारे खुशी के नद ने सबको बुलाकर कपडे बाटे और स्नान कराकर खूब भोजन कराया। आसपास के लोगो ने यह सुसमाचार पाकर झुड के झुड वहा आकर विविध प्रकार की भेटे दी। नद का घर लोगो से भरा हुआ देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो वहा एक बडा मेला लगा है। कुछ दिनो बाद गर्ग मुनि आकर बच्चे का नामकरण करते है। उस बच्चे की अपूर्व शोभा देखकर मुनि आश्चर्य करते है और उसके उज्ज्वल भविष्य के सम्बन्ध मे बताते है।[1]

यह भाग सूरसागर मे बहुत विस्तृत करके सूरदास ने लिखा है। बच्चे के जन्म की खबर पाते ही सब सखिया यशोदा के घर आती है, मगलगान, बधाई और सोहर आदि गाती है। फिर द्वार पर निशान बजने, ढाटी-ढाढिन के गाने नाचने तथा आशीर्वचन बोलने और बढई के पालना लाने आदि का वर्णन है।[2] जातकर्म के बाद नामकरण का उल्लेख है। कृष्ण का नामकरण 'ऋषिराज' करते है। इस अवसर पर वे कृष्ण के 'उद्धार और सहार' कार्यों के विषय मे भविष्यवाणी करते है।[3] छह महीने मे श्री कृष्ण का अन्नप्राशन सस्कार होता है। यशोदा उस अवसर पर अपनी सहेलियो को बुलाकर बडी धूमधाम से एक भोज देती है। वर्षगाठ मनाने की प्रथा तो समस्त भारत मे प्राचीन काल से चली आ रही है। श्री कृष्ण की वर्षगाठ बडे समारोह से मनाई जाती है। उसके बाद 'कर्णवध' का वर्णन भी बहुत सक्षेप मे कवि ने किया है।

इस समय कुलदेवता मनाने की प्रथा सब कही प्रचलित थी। यशोदा कृष्ण की

---

१ कृष्णगाथा—पृ० १४८।

२ सूरसागर—पद ६३१।

३ सूरसागर—पद ७०३,७०४।

कुशल-मगल-कामना करके कुलदेवता से प्रार्थना करती है, यह इसका उदाहरण है। एकादशी के व्रत मे अधिकाश हिन्दू लोग निराहार तथा निर्जल रहते हैं और ईश्वर का भजन करते हैं। दूसरे दिन सवेरे उठकर पारणा करके भोजन करते हैं। इसका चित्र दोनो भाषाओ के कवियो ने खीचा है।

मनोरजन

सामाजिक उत्सवो मे वर्षा ऋतु के हिडोल और बसत के होली के उत्सव का वर्णन सूरदास ने भली भाति किया है। यमुना पुलिन पर हिडोलना पड जाता है और उसमे सब गोपिया कृष्ण और राधा को झुलाती तथा स्वय झूलती है। इस उत्सव मे सुन्दर वस्त्राभूषण धारण किए जाते है तथा सब मिलकर नाचते गाते है।[1]

कृष्णगाथा मे कवि ने ग्रीष्मकाल के समय प्रेमिकाओ के साथ प्रेमियो का जल-स्नान, वर्षा के बाद प्रसन्न होकर गायो को लेकर गोपो का वन मे जाना, बसन्तकाल की चादनी रात मे प्रेमी-प्रेमिकाओ का जुआ खेलना, हेमन्तकाल मे सूर्य तथा अग्नि भगवान् की पूजा करना आदि का चित्र बडी भावुकता से खीचा है।[2] वृन्दावन के निवासी कृषि तथा पशुपालन करके जीविका चलाते थे। घर मे स्त्रिया भोजन तथा दूध-दही की व्यवस्था और शिशु-पालन आदि कार्य करती थी। वे दधि बेचने मथुरा भी जाती थी, पुरुष कृषि-कार्य करते थे और बालक धेनुओ को चराते थे।

राधा-कृष्ण की लीलाए तथा गोपियो के साथ कृष्ण के स्वतत्र व्यवहार, दूती, खडिता आदि प्रसग भी व्रज के समाज की नैतिक अवस्था के द्योतक है। व्रज के लोग सरल तथा भीरु रूप मे चित्रित किए गए है। कस का भय तो उन्हे रहता ही है, दुर्दैव से भी वे डरते है। ऐसा लगता है कि अहीरो का समाज सकटपूर्ण परिस्थिति मे था। इन सकटो के भयपूर्ण वातावरण मे कृष्ण की मधुर लीलाए न केवल उनके मन मे सकटो के प्रति उपेक्षा का भाव जागरित कर देती है, वरन् उनके जीवन मे उत्साह भी पैदा करती है।[3]

मलयालम के कृष्णभक्त कवियो मे श्री कुचन नप्यार की कविताओ मे ही उस समय की सामाजिक परिस्थितियो की झलक पाई जाती है। चेरुश्शेरी, एजुत्तच्छन आदि कविश्रेष्ठ पौराणिक कवियो के मार्ग पर थे, किन्तु नप्यार ने एक नई पद्धति निकाली जिसमे उन्होने पूर्वीय कवियो की नकल नही की। इसी कारण से वे प्रतिभासपन्न सहृदयो की प्रशसा के पात्र बन सके। पुराणकथाओ के साथ अपने दैनिक अनुभवो का सामजस्य करके वे कविता करते थे। कुछ समालोचको की राय है कि श्री नप्यार ने स्वर्ग, नरक आदि के वर्णन करते समय केरल देश की अवस्था तथा लोगो का स्वभाव आदि का चित्रण

१ सूरसागर—पृ० ४१३।
२ कृष्णगाथा—पृ० २१५ से २३०।
३ सूरदास—लेखक डा० वृजेश्वर वर्मा, पृ० ५०७।

परोक्ष रूप से किया है । स्वर्ग मे केरल के नायक लोग तथा उनकी स्त्रियो को हम देख सकते है। पौराणिक कथा-पात्रो की वेशभूषा मे केरलीयत्व का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। दुर्योधन, देवेन्द्र आदि को केरल के राजाओ के समान ही कवि ने चित्रित किया है। दुर्योधन के परिजन केरलीय थे। उन लोगो का कवि ने वर्णन किया है—

ओन्नु तिरियात्तालुकलुण्टिह
मन्दन्मारवरेन्तिनु कोल्ला
तिन्नुमुटिप्पानल्ला तवरा
लोन्नु मिनिक्कोरु लाभवु इल्ल
ओन्निनयच्चाल् अतुमाधिक्कि
ल्लेन्नल्ल मलियुमोन्नु वरुत्तु
तन्नत्तानरियात्तोरु कूट्ट
वन्नु निरञ्ञु नम्मुटे नाट्टिल
एन्नुटे मुतलु मुटिप्पानेप्पोजु
मेन्नुटे भृत्यन्मार मुतिरुन्नु
अष्टि कणक्किनु कूटाञ्ञालवर
कुट्टिप्पट्टरे एत्तमिटीक्कु
पट्टिणियेन्नतु नम्मुटे पिल्ले
क्कोंट्टु तन्ने सहिप्पान मेला
वेट्टमेदुक्कु मुन्पे यष्टि कल
घट्टिसादं एटुत्तु मुटिक्कु
कोट्टु कञ्जिच्चोरु तेक्कन मुण्टु
चुट्टि युटुत्तोरु तोन्कलुतुक्कि
वेट्टिल तिन्नु चुवप्पिच्चुको
ण्टेट्टुतिरिक्कु रसिकन्माराय।[1]

दुर्योधन के महल के पास परिचारक लोगो का चित्र उपर्युक्त पदो मे दिया गया है। वे लिखते है कि जो नौकर है उनको केवल खाने-पीने की चिन्ता है, अन्य किसी काम की नही । किसी काम के लिए यदि वे भेज दिए जाए तो असफल होकर लौट आएगे। ठीक समय पर भोजन न दिया जाए तो रसोइए के सिर पर चढेगे। खा-पीकर वस्त्र पहनकर पान खाते फिरना ही वे चाहते है। सार यह है कि उस समय के ज्यादातर परिचारक भोजनप्रिय, शौकीन तथा सुखलोलुप थे। बडे-बडे धनिको के यहा 'पट्टर' नामक ब्राह्मण जाति भोजन बनाने का काम करती थी।

उस जमाने मे लोगो के बीच मे यदि झगडा हुआ तो फैसला करने के लिए आजकल के समान कोर्ट-अदालत नही थे। राजा ही सब-कुछ करते थे । अतः राजा को खुश

१ कुचन नय्यार—सपादक प्रो० बालकृष्ण वारियर, पृ० १११।

करने के लिए सभी लोग घृणित काम तक करने के लिए तैयार रहते थे। दूसरे को नीचा दिखाने के लिए वे राजा के कान भी भरते थे। 'रुक्मिणी-स्वयवर' मे एक फौजदारी मुकदमे का कवि ने वर्णन किया है जिससे हम उस समय की नीति-सबधी बाते समझ सकते है। राजा ही कर्ता-धर्ता सब-कुछ थे। एक दिन एक घटना घटी। चार पैसा ठीक समय पर वापस न देने के कारण दो किसानो के बेटो मे झगडा हुआ। खूब मारपीट हुई। एक ने दूसरे की नाक काट ली। दूसरे ने चोटी पकडकर ढकेल दिया। तीसरा आदमी आया और उसने बीच-बचाव करके दोनो को अलग किया। यह समाचार राजा के कानो तक पहुचा। उन्होने तुरन्त अपने चार सेवको को भेजा। सेवको ने आकर जिस घर मे यह घटना हुई थी उसके स्वामी को पकड लिया तथा उसको मारा-पीटा। घरवालो को खूब तकलीफे दी। अपराधी कौन है? झगडा किस कारण से हुआ? इनके सम्बन्ध मे बिना पता लगाए ही निरीह लोगो पर अपराध लगाया गया और सजाए दी गई। इन्साफ करने का ढग यही था। मुकदमा दायर करने के लिए किसीकी जरूरत नही थी। यदि कोई राजा के पास जाकर यह कहे कि अमुक आदमी अमुक आदमी से झगडा करता है तो तुरन्त राजा अपने आदमियो को भेजते और वे लोग जो चाहते दड देते थे। किन-किन प्रकार की सजाए दी जाती थी, उनका उदाहरण देखे। चाहे लडका हो, यदि वह चोरी करेगा या कुछ शरारत करेगा तो उसकी खूब मरम्मत की जाती थी—

बालनेग्राकिलु ईवण्णमुल्ल दु
श्शीलड्डल काट्टि प्परञ्ञु तुटड्डियाल
तैलवु नेप्पिच्चु कल्लुं चुमप्पिच्चु
वेलत्तु निर्त्तित्तटुक्क वेण[1]

बालक हो तो भी यदि वह अशिष्टता का व्यवहार करे तो उसके शरीर पर तेल लगाकर कडी धूप मे खडा कर देना चाहिए। कर न देने वाले लोगो को भी इस प्रकार का दड दिया जाता था। कर्मचारी लोग लुटेरे डाकू थे और रिश्वत लेकर जुल्म करने मे उनको जरा भी सकोच नही था—

उल्लतु कुत्ति कवरानु पुन
रेल्लोल मटि ग्रोरुवनुमिल्ला
ग्रवरुटे यजमानन्माक्कुं पुन
रवरे यमर्प्पान भावबुमिल्ला
कवरुन्नतिलोरु पाति कोटुत्ताल
ग्रवरुं ग्रतिन्नु सहाय तन्ने।[2]

किसीका धन लूटने से कर्मचारी लोग हिचकते नही थे। ऊचे ग्रोहदो पर रहने वाले लोग उन ग्रत्याचारी कर्मचारियो को दबाने मे बिलकुल असमर्थ थे। वे भी ऐसे थे

१ कुचन नप्यार—सपादक शकरन एजुत्तच्छन, पृ० १८१।
२ कुचन नप्यार—स० शकरन एजुत्तच्छन, पृ० १८२, १८३।

कि लूट के धन का हिस्सा दिया जाए तो चू तक न करे । कवि ने सचिवो का चित्र बडी तन्मयता से खीचा है—

उल्लिलप्पेटियु तेटिचिल मन्त्रि प्रवरन्मार
पल्लिस्त्रापि मेलेरि त्तिरुमुपिल चेन्नु निन्नु
पल्लिक्कट्टिलिन ताजे निन्नु मूक्किल विरल तल्लि
पल्लुकाट्टिकोन्टु कार्यमुणर्त्तिच्चु वसिक्कुन्नु
चोल्लुन्न नृपतिक्कु तल्लुन्न सचिवन्मार
तल्लुन्न नृपतिक्कु कोल्लुन्न सचिवन्मार
कोल्लुन्न नृपतिक्कु तिन्नुन्न सचिवन्मार
एल्लामिड्डने येन्नु चोल्लुन्नु मतिमान्मार
ओरुत्तन चेन्नोरु कार्यं धरिप्पिप्पान तुटड्डुपोल
करुत्तुल्ल यजमान्मार विरुद्धमायुरचेय्यु
करत्तिल नालेटुत्तर्द्दु कोटुत्ताल् कार्यं मोट्टल्ला
वरुतु शीलमव्वण्ण विरवोटु धरिच्चाल्लु

कुछ मत्री ऐसे भी होते थे जो वडी नम्रता से राजा के पैताने आकर बैठते और दीनतापूर्ण वचनो द्वारा राजा को कपटजाल मे फसाते थे । अधिकाश सचिववृन्द ऐसे है कि यदि राजा किसी अपराधी को धमकी देकर बुला लाने की आज्ञा दे तो वे मार-पीट-कर लिवा लाएगे, मारकर अपने सामने लाने को कहेगा तो सचिव वध करके लाएगा, वध करके हाजिर करने का हुक्म हो तो सचिव अपराधी का मास तक खा जाएगा । यदि अपनी रामकहानी सुनाने के लिए कोई पौरजन सचिव के पास जाने मे देरी करे तो वह कोरा जवाब दे देगा । किन्तु कुछ रुपये हाथ मे रख दे तो शिकायत करने वाले की इच्छा के अनुसार सब कुछ करेगा ।

कहने का तात्पर्य यह है कि उस समय के कर्मचारी रिश्वतखोर, चुगलखोर तथा घमडी थे । सब कही तरफदारी और अन्याय का बाजार गरम था । नय्यार इस प्रकार के अन्याय के कट्टर विरोधी थे । ऋण तथा सरकार के विविध प्रकार के करो से पीडित वर्त-मान कृषक जाति की हालत उस समय कही अच्छी थी ।

वीट्टिल प्पराधीन आर्क्कुमिल्ला कट
वीट्टिच्चु कोल्लुन्नु वित्त कोटुत्तु ऋान
वित्तु कूलिक्कु वकयिल्लेयेंकिल को
टुत्तु वाजिक्कु माकण्टड्डलोक्कवे
वित्तिरट्टिटप्पाट्ट नेल्लुमलप्पिक्कु
इत्तर नम्मुटे राज्य रक्षा विध[1]

अन्न का अभाव घरो मे नही था। सब सुखी और सपन्न थे। खेत मे बोने के लिए

१ कुचन नय्यार—स० शकरन एजुत्तच्छन, पृ० १६२ ।

बीज दिया जाता था। फसल के समय उसका दुगना जमीदारो को देना काफी था। जमीन का अधिकार किसानो को नही था। यद्यपि राजा के सेवको से प्रजा को तकलीफ झेलनी पडती थी तो भी गरीबी का नामोनिशान भी नही था। अत हम समझ सकते है कि राजा सुचारु रूप से राजकाज चलाते थे। प्रजा सुखी थी, कवि लिखते है—

नादुकल तोरु नायन्मारुटे
वीदुकल कण्टाल अरियां नृपनुटे
केदुकल कूटातुल्लोरु सपल
प्रोढिकलेल्लामधिक मनोज्ञ[1]

देश के कोने-कोने मे स्थित नायक लोगो के घर-द्वार देखने पर मालूम होगा कि नृप किसीको बिना नुकसान पहुचाए राज्य करते है। सब घर वैभव-समृद्ध थे। खेती-बाडी करना तथा सेना मे भर्ती होना ये ही दोनो प्रधान पेशे थे। लोग ताडी, अफीम, भग आदि मादक वस्तुओ का सेवन करते थे। कुटुम्ब का उत्तराधिकार बहिन के पुत्रो तथा पुत्रियो को भी मिलता था। उस प्रथा को मरुमक्कताय कहते है। मामा घर की देखभाल करते थे। मामाओ की धूर्तता से अनेक घर बरबाद भी हुए थे किन्तु यह प्रथा अब भी केरल मे प्रचलित है। कपडे का व्यापार परदेशी ब्राह्मण लोग करते थे। वे लोगो को पैसे देकर बहुत रुपये सूद के रूप मे वसूल करते थे। जो लोग उनसे पैसे लेते थे तथा कपडे कर्जे मे खरीदते थे, उनको उन ब्राह्मणो द्वारा दी गई अनेक यातनाओ का सामना करना पडता था। कवि लिखते है—

पट्टन्मारोटु वस्त्रमेटुत्ताल
पोट्टन्मारिह तोल्क्केयुल्लु
एट्टु पण विलयुल्लतिनवर पति
नेट्टु पणं विल वच्चु कोटुक्कु
अवरोटु चेन्नु कट कोण्टेंकिल
भवन कूटि नभिप्पाराकु
पत्तिनु कालु कोटुक्कण अप्पोल
पत्तिनु रण्टर पलिशयुमायि
वीट्टुवतिन्नु तर कूटाञ्जाल
वीट्टिल केरि पाटु किटक्कु[2]

यदि पट्टर (ब्राह्मणो की एक शाखा) लोगो से वस्त्र उधार ले तो उसका नतीजा बरबादी ही है। वे दुगुना-तिगुना मूल्य वसूल कर लेगे। सूद की दर बहुत बडी है। ठीक समय पर पैसा वापस न दिया जाए तो वे घर मे आकर डेरा डालेगे और जब पैसा मिलेगा तभी घर से जाएगे। इन ब्राह्मणो के अलावा श्रेष्ठी, सारस्वत ब्राह्मण आदि दूसरे कई

१ कुचन नप्यार—स० शकरन एजुत्तच्छन, पृ० १९३।
२. कुचन नप्यार—स० शकरन एजुत्तच्छन, पृ० १९५, ९६।

प्रकार के लोग व्यापार करने के लिए केरल मे आए थे। चीन से भी रेशम के वस्त्र का व्यापार इस राज्य से होता था।

स्वभाव के अनुसार नामकरण करने की कला मे केरलीय अद्वितीय थे, उसका प्रमाण नप्यार की कविताओ मे हम देख सकते है। पुरुषो को ईच्चरच्चन, चिट्च्चार, ताच्चन, कण्टच्चार, रामच्चार, मूर्खच्चार, कान्नन कोन्ति, चात्तु, शकु, चाकरन चारन, परड्डोटन आदि नाम रखते थे। स्त्रियो को कोता, चिरुता, माधवि, कालि, चक्कि, नड्डेली, तेवि, उण्णच्चि, नाणि, कुञ्चि, मालु, लक्ष्मि, उण्णूलि आदि कहकर पुकारते थे।

गहने—

जब यह अफवाह उडी कि श्री कृष्ण ने प्रसेन को मारकर स्यमन्तक को हडप लिया तब स्त्रियो ने अपने-अपने गहने छिपाकर रख दिए। इस प्रसग पर लिखित नप्यार की कविता से उस समय के गहनो का पता लगता है—

वलयु तलयु मणिमोतिरवु
मिटक्कात्तालि मरक्कात्तालिकल
पूत्तालिकलु मालकल नलुकल
चिकिटु कुज़लु कटकं कातिल
तुक्कु मणिकल पतक्क तोलवल
तुटलु कूट्ट मणि किड्डिणि पोन
मणियु मिन्नु मिरट्ट क्कुज़लु
पविज़क्कुज़लू मुत्तुक्कुलयु
कुरलार पल काशलिकलु[1]

उस समय स्त्रिया कगन, कटक, अगूठी, हार, कुडल, केसर, किङ्किणी आदि गहने पहनती थी। पुरुष भी कगन, किड्डणी, कटक, बिदुमहार आदि पहनते थे।

युद्ध के समय तलवार, भाला, फरसा, तीर, कमान, त्रिसूल, मुसल, चक्र, बन्दूक आदि हथियारो का इस्तेमाल करते थे। इसका प्रमाण निम्नलिखित पद्य मे है—

वालु परिचयु विल्लु शरड्डलु
नील पेरुत्त चवलं कटुत्तिल
शूलड्डलु मुसलड्डलु मुलत्तटि
वेलु चुरिकयु कुन्तड्डलु नीट्टु
कोलु परिघ मसृष्टि चक्र ड्डलु
ईट्टियु तोट्टियु चाट्टु कुन्तड्डलु
चोट्ट कोलोट्टवालूरु खड्गड्डलु
लन्तक्कुज़लु परन्किक्कुज़लकलु

---

१. कुचन नप्यार—स० शकरन एजुत्तच्छन, पृ० २०२, २०३।

चन्तत्तिलुल्ल कुरं कुज्ञल तोक्कुकल
कर्क्कटक्कल्लु कविणयुमायुध
मोक्कवे कोण्टु तुटड्डी महारण[1]

रुक्मिणी स्वयवर से केरलीय लोगो मे प्रचलित भोज देने की प्रथा के बारे मे हम जान सकते है। शादी के बाद लोगो को बडी धूमधाम से दावत देने की प्रथा अब भी जारी है। भोजन मे विविध प्रकार के चावल और असख्य तरकारिया होती थी। कवि लिखते है—

कुरियरि वेच्चु वेलुत्तोरचोरु
करिकलु आशु विलंपित्तप्पु
नरुनेय् शर्कर नेन्त्रप्पज्ञव्
चेरु पप्पटमोरु पत्तिरुनूरु
आनच्चुवटन पप्पटमोरुवक
तेनु नल्लोरु पन्चारपोटि
चेनक्करि चिल पच्चटिकिच्चटि
पानकमोरु वक नारड्डाक्करि
माड्डाप्पच्चटि इन्चिप्पच्चटि
चेनवरुत्तु पयरु वरुत्तु
चक्क प्रथमनट प्रथमन विध
मोक्क प्परवान नेर पोरा
पालु तयिरु मोरु पलवक
कोलाहल तर मेन्नुरचेय्या[2]

साराश —छोटे-छोटे टुकडो मे पका भात और विविध प्रकार की सब्जिया परोसी गई। उनके साथ ही कई ढग के केले, पापड, शहद, चीनी, खिचडी पच्चडी आदि तरकारिया, अचार, छाछ, दही, दूध और कई प्रकार की खीर भी थी। जितनी प्रकार की तरकारिया थी उनका समानार्थक शब्द मिलना असभव है क्योकि ऐसी वस्तुए केरल प्रात के लोग ही इस्तेमाल करते है।

पकवानों के नाम—

अटा, अप्प, दोशा, इड्डली, चीटा, चिउडा आदि है।

विनोदो के नाम—

लोग गेद, चौपड, शतरज आदि खेलते थे। उसके अलावा नाच-गान, कथकलि

---

१ कुचन नप्यार—स० शकरन एजुत्तच्छन, पृ० २०२, २०३।
२ कुचन नप्यार—स० शकरन एजुत्तच्छन, पृ० २०४।

जादू का खेल आदि से वे मनोरजन करते थे। खेद की बात है कि उन खेलो का स्थान बैडमिंटन फुटबाल, हाकी आदि खेलो ने आजकल छीन लिया है।

समाज मे आजकल की अपेक्षा ब्राह्मणो का बडा सम्मान किया जाता था। राजा महाराजा कलारसिक थे। विद्वानो को उच्चस्थान दिया जाता था। दरबारो मे अनेक विद्वानो की मडली रहा करती थी।

आठवां परिच्छेद

नंप्यार की हास्य-कविता

हास्यरस-प्रधान कविताए लिखने मे मलयालम के कृष्णभक्त कवि श्री कुचन नप्यार की बराबरी करने वाले कवि भारतीय भाषा मे कम ही मिलेगे। कहा जाता है कि भारतीय भाषाओ को जन्म देने वाली सस्कृत भाषा मे भी हास्य रस के साहित्य की कमी है।

मलयालम भाषा मे हास्य कविताओ का उद्भव चाक्यार[1] समुदाय के कथन से ही हुआ है। वे लोग मनोरजन के लिए बढा-चढाकर लोगो की दुर्बलताओ और उनकी कुछ विशेषताओ का चित्रण बडे रसीले ढग से पौराणिक कथाओ के बहाने करते है। प्राचीन रोम नगरी मे भी ऐसी प्रथा त्यौहार के समय चलती थी। मनोविनोद और व्यग्य के समन्वय से हास्यरस की उत्पत्ति होती है। यह आवश्यक नही कि ये दोनो सन्तुलित मात्रा मे हो। जो हास्यरस की कविताए लिखते है वे स्वभावत दूसरो की दुर्बलताओ को शीघ्र ही समझ लेते है। साथ ही वे रसिक, कुशाग्रबुद्धि तथा उदार होने है, जिन्हे जीवन का ठोस अनुभव है वे ही ऐसी कविताए लिख सकते है। ये सब विशेषताए श्री नप्यार मे पाई जाती है।

हास्यरस प्रधान कविताओ का उद्देश्य लोगो की दुर्बलताओ तथा एकागी विशेषताओ का विनोदपूर्ण वर्णन करके उन्हे अच्छी राह पर लाना है। धार्मिक गुरुओ के समान ससार के बुरे कामो की निन्दा करते हुए गम्भीर भाषण देने से लोग अधिक नही सुधरते। शिक्षा के साथ मनोरजन की सामग्री का समन्वय होना चाहिए। हास्य-कविता मे विनोद के साथ-साथ ज्ञान का मसाला रहता है। ससार की सारी बुराइयो की हसी उडाने से ही कवि को तृप्त नही हो जाना चाहिए। बुरे कर्मों की निन्दा करते हुए लोगो को सन्मार्ग पर लाने के लिए प्रयत्न करना भी कवि का कर्तव्य है। मनोरजक ढग से समाज

---

१ चाक्यार-समुदाय हिन्दुओं के विविध उपसमुदायों में से एक है जिसके लोग केरल प्रान्त में कम सख्या में रहते हैं। वे मन्दिर के त्यौहार के समय पौराणिक कथाओं में सामयिक बातें जोड़कर लोगों को सुनाते है। उसको मलयालम में 'कूत्तु' कहते है। भरी सभा में ये किसीकी हसी उडा सकते है। जवाब देना मना है।

मे व्याप्त दुर्गुणो की निन्दा कवि इसीलिए करते है कि जिससे लोगो की प्रवृत्ति उस ओर से हटकर उचित मार्ग पर आ जाए।

यूनान देश मे आर्च्चिलोक्कस, अरिस्टोफनीस, रोम मे ज्यूवनल, लूसिलस, इग्लैंड मे ड्राइडन, पोप एडिसन, स्विफ्ट, फ्रास मे वाल्टेयर, मोलियर आदि महान् साहित्यकारो ने अपने-अपने समय मे जन-समुदाय को घेरे रहने वाले दुष्कर्म रूपी बादलो को हटाकर उसे प्रकाश मे लाने के अनेक प्रयत्न किए है। कुछ लोगो को हास्य की प्रभावशालीनता पर सन्देह है। वास्तविकता यह है कि व्यग्य और हास्य द्वारा मनुष्य के हृदय मे दुर्गुणो के प्रति विराग उत्पन्न करके उन्हे सद्गुणो की ओर प्रेरित किया जा सकता है। मनुष्य को अपनी दुर्बलताओ का पता लगेगा तब वह सबल बनने का प्रयत्न करेगा ही। इसमे उसकी उन्नति होती है। श्री नप्यार ने अपने समय की जनता की दुर्बलता तथा दुर्गुणो को दूर करके उन्हे सच्चे सीधे मार्ग पर लाने के उद्देश्य से ही कविताए रची है। श्री नप्यार के उच्च आदर्श की पवित्रता निम्नलिखित पद से समझी जा सकती है

चुरुक्कत्तिलोरु भाग उरय्क्कुन्नुण्टितु नेर
अरय्क्का नाज्जिक नेर स्मरिक्का कृष्णने येन्नाल
तरिक्का अर्णव पोले परक्कु दुष्कृतमेल्ला
गतिक्कु नल्लतु लोक स्थितिक्कु नल्लतु नन्म
भविक्कु शुद्धियुण्टाक्कु रतिक्कु पात्रमायीटु
अतिक्रूर नरकत्तिल पतिक्कु पोल मुकुन्दने
स्तुतिक्कु मानुषन्मार्कड्डु दिक्कु सार बोधड्डल
शमिक्कु सत्कथ केट्टु रमिक्कु मानसमप्पोल
उरय्क्कु कौतुक चित्त निरय्कु भक्तियन्नेर
मरिय्क्कु मुन्निते शोक तुरक्कु ज्ञानमा दृष्टि[1]

सार —

मै अब सक्षेप मे एक बात कहता हू। यदि हम थोडी देर भगवान् कृष्ण के नाम का स्मरण करे तो दुष्कृत रूपी सागर को हम अनायास पार कर सकेगे। इससे हमारी तथा ससार की दशा सुधर जाएगी, मति शुद्ध हो जाएगी और हम सबके प्रेमपात्र बनेगे। जब महाभयकर नरक मे पडेगे तो मुकुन्द की प्रार्थना की जाए तो ज्ञान मिलेगा, पाप शान्त हो जाएगा और विष्णुलोक मे जा सकेगे। ईश्वर की सत्कथाए सुनते समय मन को आनन्द मिलेगा, भक्तिभाव जम जाएगा, शोक दूर होगा और अन्त मे ज्ञानवृद्धि होगी।

स्पष्ट है कि कवि का उद्देश्य मनोरजन के साथ उपदेश देना भी जान पडता है। श्री नप्यार ने समकालीन परिस्थितियो का चित्र पौराणिक कथा-पात्रो का आश्रय लेकर

---

१ श्री कुचन नप्यार, स० बालकृष्ण वारियर, पृ० १४१।

किया है। कल्याण-सौगन्धिकम् नामक पुस्तक मे कवि ने भीमसेन का चित्रण बडे अच्छे ढग से किया है। पाचाली को सौगन्धिक पुष्प पाने की बडी इच्छा हुई। स्त्री-सहज सामर्थ्य से अपनी आशा वह अपने पति भीमसेन के सामने प्रकट करती है। दु खदायक वनवासकाल मे पाचाली की कुसुमाभिलाषा उपहास के योग्य है। स्त्रियो के मन मे दु ख के समय भी ऐसी अभिलाषा होना स्वाभाविक है। यह स्त्री-स्वभाव की अस्थिरता का सुन्दर प्रमाण है। कामवती स्त्री के समान पाचाली भीमसेन के पास जाकर प्रार्थना करती है। पहले वह उनकी वीरता की खूब प्रशसा करती है। उसे सुनकर भीम सब कुछ करने के लिए तैयार हो जाते है। वे नही सोचते कि पाचाली क्या कहती है और उसे सफल करने के लिए कितनी तकलीफो का सामना करना पडेगा। पाचाली ने पहले जान लिया होगा कि जिस बात के लिए वह कहती है उसे पूरा करना बहुत मुश्किल है। इसीसे उसने पहले मोहनी मत्र से भीम को प्रभावित करके अपनी इच्छा के अनुसार सब कुछ करने का वचन उनसे ले लिया। स्त्री के वचन सुनकर जड बुद्धि वाला भीम उसकी आशा की पूर्ति के लिए तैयार होता है। पहिले उसका जो अहकार था वह सौ गुना बढ गया। वह सोचता है कि सारे ससार को विजय करने की शक्ति मुझमे है। बिना सोचे-विचारे अपनी स्त्री की क्षुद्र अभिलाषा की पूर्ति के लिए भीम रवाना हुआ। गदा हाथ मे लेकर गर्जन करते हुए और सामने खडे हुए वृक्षो को तोडते हुए वह आगे बढता है। उसका अहकार चरमसीमा पर जा पहुचा। जाते समय रास्ते मे एक बूढे रोगी बन्दर को पडा देखा। उसका चित्र यो है

कैकलु कालु कुज्जञ्ञु वालु मक्काल मेलिञ्ञु कैकलेक्कोप्टु
चोरिञ्ञु रोम मेप्पेरु कोज्जिञ्ञु मेनियु चुक्किच्चुलिञ्ञु
कण्णिनु काज्च कुरञ्ञु पीलयु वन्नु निरञ्ञु

(कल्याण-सौगन्धिक से)

सार—

उस बन्दर के हाथ-पैर शिथिल थे, पूछ बहुत पतली थी। हमेशा वह अपने शरीर को खुजलाता रहता था। उसके शरीर मे हड्डी मात्र रह गई थी। देखने की शक्ति नही थी। आखे मलिनता से भरी हुई थी। घमडी भीम उस तुच्छ जीव को भी नही छोडता। वह कहता है रे मूर्ख! मेरे रास्ते से हट जा! दुष्ट हठी! तब वह बन्दर गिडगिडाकर प्रार्थना करता है कि मुझे मत छेडिए और ज़रा हटकर जाइएगा। बन्दर के ये वचन सुनकर भीम अहकार के मारे आपे से बाहर हो गया और अत्यधिक क्रोध करने लगा। उस समय वह बूढे बन्दर, जो वास्तव मे हनुमान् जी थे और अपने भाई की शक्ति की परीक्षा करने के लिए कपटवेष धारण करके वहा आ बैठे थे, पाडवो की धर्मशक्ति और शूरता की बाते आदि बडे विनम्र शब्दो मे वर्णन कर उनकी कडी आलोचना करते है। ये परिहास-वचन शूल की भाति भीम के हृदय मे चुभ जाते है। हनुमान् पूछते है भरी सभा मे जब तुम्हारी

प्यारी पाचाली को दुश्शासन ने चोटी पकडकर खीचा और ढकेल दिया, तब तुम लोगो ने क्या किया ? आखे फाडकर रह गए। उस समय तुम्हारी बहादुरी कहा गई ?—ये वचन जब भीम ने सुने तब मारे लज्जा के उसका सिर झुक गया और उसने अपनी मूर्खता समझी। अपने को बडा शूरवीर मानने वाले भीम को बुरी तरह लज्जित होना पडा। उसने पहले समझा था कि मै सारे विश्व को तहस-नहस करने की शक्ति रखता हू। परन्तु वही भीम एक बूढे बन्दर की पूछ को हटाने मे बिलकुल असमर्थ दिखाई पडता है। अहकार के उच्च शिखर पर आसीन भीम को अपमान रूपी गढे मे बुरी तरह गिरना पडा। दुर्मद रूपी तिमिर मे रहने वालो का अहकार भीमसेन जैसे पात्र के द्वारा दूर करने मे श्री नप्यार सफल होते हैं। इस प्रकार गणपति के भोजन मे कुबेर के अहकार के नाश का वर्णन कवि ने बडी सरसता से किया है।

लोभ मे पडकर मनुष्य अपनी असली स्थिति को छिपाना चाहता है। यह इच्छा नैसर्गिक रूप से हम सभी मनुष्यो मे देखते है। काम-क्रोध आदि मे फसा हुआ मनुष्य जब अपनी असली हालत को छिपाने का प्रयत्न करने लगता है तो वह परिहास के योग्य बनता है। ऐसे प्रसग ही हास्यरस के उपयुक्त विषय है। नप्यार की 'तुल्लल' पद्धति के अनुसार लिखी हुई कविताओ का प्रधान विषय अहकार-शमन है। कल्याण-सौगन्धिक मे भीमसेन का अहकार, कार्तवीर्यार्जुन मे रावण की मानहानि, किरात तथा सतानगोपाल मे अर्जुन का घमड, सभा-प्रवेश मे दुर्योधन का अहकार आदि के नाश का सबसे सरस वर्णन कवि ने किया है। धन की तृष्णा, पौरुष भाव, कापट्य आदि दुर्गुण भी कवि की कविता के विषय बन चुके है। कभी-कभी सकल्प कथाए भी रचकर उन्होने सुन्दर हास्यपूर्ण कविताए लिखी है। सकीर्ण मनोवृत्ति वाले राजाओ और समाज की दुर्नीतियो का चित्रण बडी कुशलता से कवि ने किया है। उनके जीवनकाल मे वर्तमान तिरुविताकूर राज्य छोटे-छोटे टुकडो मे बटा हुआ था और छोटे-छोटे देश के राजा छोटी-सी बात के लिए आपस मे झगडते थे। मार्तण्डवर्मा नामक प्रबल राजा ने दूसरे छोटे-छोटे राजाओ को अपने अधीन कर लिया था। इस विषय पर कवि ने कहा है देखो, छोटे राजा लोग आपस मे झगडा करते है। वे विचारते है कि मै बडा हू, मै बडा हू। इसका यह नतीजा है कि एक-एक का राज्य धीरे-धीरे बरबाद होता है। अत बिना झगडा किए रहना अच्छा है।

नाटुवाषिकल एण्ण एरु पोल अवरतन्टे
नाटु पा जिलाक्कीटु मन्योन्य कलहिक्कु
आनत्रे यजमानन आनत्रे यजमानन
तानत्रे अेलियातड्डटड्डि प्पार्तु कोण्टालु[1]

(सभा प्रवेश से)

किन्तु ये राजा लोग झगडा करते रहे। तब तिरुविताकूर राजा अपनी विशाल

---

१ श्री कुचन नप्यार—स० बालकृष्ण वारियर, पृ० १४८।

सेना द्वारा एक-एक को पराजित कर अपने अधीन करने लगा। उस समय का राजनीतिक वातावरण अशात था। किसीको नही मालूम था कि अपना राज्य कब नष्ट हो जाएगा। इतना होने पर भी उनमे गर्व की भावना थी। वे क्रूर प्रकृति के थे। एक स्थान पर कवि वर्णन करता है

कल्लु पेरित्तलक्कुत्तु पिटिपेट्टु
चेल्लुन्न नेरत्तु काट्टाल मन्नवन
नल्लोरु वाक्कु परकयिल्लेन्नल्ल
वल्लात्त वल्लायम् युण्टाक्कु मप्पोज़े[1]

(कल्याण सौगन्धिक से)

सार—

पत्थर ढोना जैसा कठिन काम करके थके-मादे लोग जब राजा के पास जाते हैं तब वह उनसे अच्छी तरह बात तक न करके उल्टे फटकार बताता है।

उसके स्वभाव का एक और चित्र देखे

एन्तु निश्चय मिप्पोज़ल्ल प्रभुक्कटे तोज़िलोरु विध
चिन्तयिल कनिविल्लिवर्क्किकतु करुतिनिक्कण मे वनु।[2]

(सभाप्रवेश से)

सार—

वर्तमान काल के राजाओ के स्वभाव के बारे मे हम निश्चय रूप से कुछ नही कह सकते। सबको यह समझ लेना चाहिए कि उनके हृदय मे दया लेशमात्र भी नही है।

आडम्बर तथा ठाटबाट की ओर जमीदार तथा जागीरदारो के भ्रम के सबध मे कवि ने यो लिखा है

वेट्टय्क्कायि पोकेणमेकिल मुपिलोरपतकपटि वेण
कालु तिरुम्मान नायरुवेण वेलूक्कारनुमरिकेवेण
सचियेटुप्पान पुतुवाल वेण[3]

यदि शिकार के लिए जाना होता हे तो सबसे पहले पचास सैनिको का दल अवश्य साथ मे जाना चाहिए। उसके पीछे कुछ लोगो को जाना पडता है। सन्दूक ले जाने के लिए पट्टर (ब्राह्मण जाति का उपविभाग), पैर दबाने के लिए नायर, नौकर वेलूक्कारन आदि का रहना जरूरी है।

ये लोग मूर्ख तथा स्त्रियो से सलाह लेकर अपनी प्रजा से रिश्वत लेते है और अपने राज्य को बरबाद करते है।

---

१ श्री कुचन नप्यार—स० बालकृष्ण वारियर, पृ० १४८।

२ श्री कुचन नप्यार—स० बालकृष्ण वारियर, पृ० १४८।

३ श्री कुचन नप्यार—स० बालकृष्ण वारियर, पृ० १४९, १५०।

तन्नत्तानरियात्त जलन्मारे मन्त्रियाक्कि
तन्वगि मणियोटु तन्टे कार्य विचारिच्चाल
तन्नुटे प्रजकलोटे कोज्ञकलवाड्डि
तान् तन्ने तन्टे राज्य नाशप्पिक्कु प्रभुक्कन्मार[1]

(हरिश्चन्द्र चरित से)

राजाओ के आश्रय मे रहने के कारण उनके कर्मचारियो के अत्याचारो का पता नप्यार को भली भाति था। बडे कर्मचारी बडे घमडी, रिश्वतखोर, चुगलखोर और स्त्री-लपट थे। स्वार्थ सिद्ध करने के लिए घृणित से घृणित कार्य करने मे उन्हे जरा भी सकोच नही होता था। बिना उनकी सहायता के लोग राजाओ से कोई भी कार्य पूरा नही करा सकते थे। कार्यो की सफलता, रिश्वत की रकम पर निर्भर रहती थी। वे हमेशा दूसरे लोगो के विरुद्ध कान भरते थे। उनकी योग्यता नप्यार की भाषा मे 'राजा की सेवा करके तथा उनकी चापलूसी करके दूसरो को धोखा देना है।'

धीरे-धीरे लोगो को चूसकर धन लेने का काम रिश्वत है इनका।

राजाविनेच्चेन्नु सेविच्चु निलक्कयु व्याज परञ्ञु पलरेच्चतिक्कयु[2]
कैक्कूलि मेल्लेप्पिदुड्डुवानल्लाते इक्कारियक्कारन्मार्क्किल्ल वाछितम्

कवि आगे कहते है—

नम्मुटे कार्यक्करन्मारिलहम्मति कूटातुल्लवरिल्ल
उम्मान वकयिल्लात्तवर मुन्न धर्म क्कञ्ञि कुटिच्चु किटन्नु
नम्मुटे शुद्धत कोन्टु वरुत्ति सम्मानिच्चु समीपत्ताक्कि
चेम्मे पालु कोटुत्ताल पिन्ने नम्मेक्कालोरु पौरुषमेरु[3]

(पात्रचरित से)

सार—

हमारे कर्मचारी बडे घमडी है। ये पहले दूसरो की दया के सहारे जीवन बिताते थे। हमारा मन पिघल गया। उनको बुलाया और काम दिया। अब वही बडे साहब बने बैठे है।

उक्त कर्मचारी-प्रमुखो मे कण्डन मेनोन नामक एक धूर्त था। उसका आचरण बहुत बुरा था। एक दिन एक घटना हुई। उस समय वहा एक बडा व्यापारी था जो कण्डन मेनोन का शत्रु था। मेनोन ने उसे एक सबक सिखाना चाहा। एक दिन मेनोन ने राजा से व्यापारी के विरुद्ध कई शिकायतें की। राजा आपे से बाहर हो गया और व्यापारी को कैद करने का हुक्म दिया। व्यापारी हिरासत मे लिया गया। व्यापारी की स्त्री ने एक उपाय किया। उसने बहाना किया कि वह मेनोन से प्रेम करती है। जिस दिन उसका

---

१ श्री कु चन नप्यार—स० बालकृष्ण वारियर, पृ० १५०।
२ श्री कु चन नप्यार—स० बालकृष्ण वारियर, पृ० १५०।
३ श्री कु चन नप्यार—स० बालकृष्ण वारियर, पृ० १५१।

पति जेल गया उसी दिन उस स्त्री ने दूत के द्वारा मेनोन को अपने घर मे बुलवा लिया। मेनोन अत्यन्त प्रसन्न हुआ और सब प्रकार लैस होकर व्यापारी के घर पहुचा। व्यापारी के नौकर ने उसे एक अन्धकारमय कमरे मे बिठाकर कहा कि अभी देवी जी आने वाली है। व्यापारी की स्त्री की प्रतीक्षा करते हुए मेनोन उधर बैठा था कि उसके ऊपर एक एक काला डरावना बन्दर झपटा और उसने अपने नाखूनो से मेनोन को घायल कर दिया। दर्द के मारे मेनोन चिल्लाने लगा। अन्त मे वह किसी प्रकार बन्दर के पजे से छूट-कर भागा। यह समाचार बिजली की गति के समान सब कही फैल गया और राजा ने भी सुना। तुरन्त व्यापारी को मुक्त कर दिया और मेनोन को देश से निकाल दिया।

दूसरे एक प्रमुख कर्मचारी की दुर्बलता की दशा का कवि ने यो वर्णन किया है। उसने सवेरे उठकर हाथ-मुह धोया। खाने के लिए थाल के सामने बैठा। तब मालूम हुआ कि खाने की कोई वस्तु उसमे नही है तो क्रोध के मारे अपनी नवपरिणीता युवती स्त्री को बाहर भेजा और धूप मे खडा कर दिया। उस समय उसका साहस देखने योग्य है। किन्तु अपने काम के लिए जब वह बाहर जाता है तब उसे बेकार होकर वापस आना पडता है—

कालत्ते जुनेट्टु नोक्कुम्न नेरत्तु
तालत्तिलम्न कणि कण्टिल्लम्नाक्कि
बालत्तरुणिये त्तल्लिप्पुरत्ताक्कि
वेयिलत्तु निर्त्ति तटुक्कुम्न वन्पन्टे
शौर्य प्रताप ड्डलन्नेर अत्भुत
कार्यत्तिनेत्तुन्न नेर मटक्कम्[1]

(पात्रचरित से)

इसमे उस कर्मचारी की असमर्थता और दुस्साहस का चित्र दिखाया गया है। ये प्रमुख कर्मचारी ऐठते हुए चले जाते है। स्त्रियो के सामने लम्बी-चौडी बाते करते है। जब शत्रु-सेना के आगमन की बात सुनते है तो अपने को बहादुर समझने वाले ये लोग जान लेकर भागते है। राजा के सामने ये सिह, हिरण के समान है। एक का चित्र देखिए—

पल्लि त्तापि मेलेरि तिरुमुपिल चेम्नुपिम्ने
पल्लिक्कट्टिटलिन तापे निम्नु मूक्किलविरल तल्लि
भल्लु काट्टि क्कोन्टु कार्यमुर्णत्तिच्चु वसिच्चीटुन्न[2]

राजा के महल मे छिपे-छिपे जाता है। उगलियो को नाक पर रखकर चारपाई के नीचे बैठकर समय के अनुसार राजा से गिडगिडाकर एक-एक बात के लिए प्रार्थना

---

१ श्री कुचन नप्यार—स० वारियर, पृ० १५२।
२. श्री कुचन नप्यार—स० वारियर, पृ० १५३।

करता है।

कवि राजधानी के निम्न श्रेणी के नौकरो की हसी भी उडाते है। गले मे रुद्राक्ष माला धारण कर, छाती पर भस्म लगा, कानो मे बालिया पहनकर वे बाहर प्रत्यक्ष होते है। उनका काम साधु लोगो को सताना, कपट करना तथा स्त्री-सेवा है। हरिणी-स्वयवर मे वे लिखते है कि ये लोग जब पथिक दूर देश से आते है तब अपने सेवको को चुगी घरो मे बिठाकर उनका माल-असबाब लूट लेते है और उस लूट से अपनी बीवी-बच्चो का पालन करते है—

चुक स्थलङ्ङलिल चेन्नु पथिकरे
किकरन्मारकले क्कोन्टु मरिप्पिच्चु
सकटप्पेट्टु किट्टुन्न पण कोन्टु
मकमार वीटु पल तुन्नितु चिलर [1]

(हरिणी-स्वयवर से)

ये कर्मचारी हाथ मे तालपत्र लेकर निकलते है। लोगो का शोषण करके अपना मतलब निकालने के लिए ये लोग घूमते फिरते है। एक रुपया जहा कर है वहा दस वसूल करके ये झूठे बडे साहब बनकर बन-ठन के चलते फिरते है।

वर्योलयु ओरु कयिलेट्टुत्तु
कार्यस्तन्मार वीभि विरिच्चति
शौर्य्य काट्टि नटुन्नु तुटङ्ङि
कल्लक्कार्य चेय्वतिनतिविरु
तुल्लोरु कार्यस्तन्मारिङ्ङने
युल्ल तरत्तिल तङ्ङटे मुट्टुक
लेल्लां तीक्कमिन्नुमुरच्चु
उल्लतिलेट्टु पत्तु कूट्टि
कल्लक्कुत्तु कणक्कुकलेज्जुति
उल्लिले मोह पोले द्रव्य
कल्ल वजिक्कु करस्थवु आक्कि [2]

(चन्द्रागत-चरित से)

गाव के मुखिया लोगो को भी कवि ने नही छोडा है। वे कहते है—

रक्षिप्पानधिकारियायुल्ल यजमानन
भक्षिप्पान पुरप्पेट्टालक्काल प्रजकल्क्कु

---

१. श्री कुचन नप्पार—स० वारियर, पृ० १५४।
२ श्री कुचन नप्पार—स० वारियर, पृ० १५४।

उम्मानुमुट्टप्पानुं तेक्कानुं वकयिल्ल
एड्डानु पुरप्पेट्टु पोय्क्कोलकेन्नते नल्लू[1]
(सभाप्रवेश से)

ये रक्षक लोग खुद भक्षक बन जाए तो दीन-हीन लोगो का गुजारा कैसा ? लोगो के पास खाने को अन्न नही और पहनने के कपडे नही। कही दूर जाना ही अच्छा है।

एकपत्नीव्रत का पालन उस जमाने के लोग नही करते थे। एक पुरुष की कई पत्निया होती थी। उसके कष्टो तथा मूर्खताओ की कडी आलोचना करते हुए कवि लिखते है—

कालिय मथनन वलरे स्त्रीकले बेलिकजिच्चतुचितमायिल्ल
केलिक्कु सुखमिल्ला स्त्रीकले लालिक्कुन्नतुमेड्डने कृष्णन

× × ×

वलरे स्त्रीकले वच्चु पुलत्तुं जल पुरषन मुतलुल्लतशेष
कलवानुल्लोरु सगतियाकु कलवाणिकलिल काक्ष मुषुत्ताल[2]
(सभाप्रवेश से)

सार—

भगवान् श्री कृष्ण ने कई स्त्रियो से विवाह किया जो उचित था। बहुविवाह से मन को जरा भी आनन्द नही होता। एक समय कई स्त्रियो को कैसे बहला सकते है ? एक के साथ प्रेम का व्यवहार किया जाएगा तो दूसरी रूठ जाएगी। उसे प्रसन्न करते समय चौथी कोई न कोई व्यग्य करेगी ही। अपनी स्त्रियो को इच्छानुसार गहने देने मे और सन्तानोत्पत्ति के अवसर पर खर्च करते-करते सारी सम्पत्ति बरबाद हो जाती है। अन्त मे कवि कहता है कि जिसकी कई स्त्रिया होती है उस मूर्ख का नाश ही नाश होता रहता है।

उस समय के जमीदार और जागीरदार लोग मुसलमान बादशाहो के समान अपने अन्त पुर मे कई महिलाओ को रखते थे। वे स्त्रिया आपस मे हमेशा झगडती थी, जिससे घर के स्वामी को बडी तकलीफ झेलनी पडती थी। ध्रुवचरित मे कवि राजा उत्तानपाद के बारे मे लोगो से कहलवाते है—

केट्टीलयो निड्डलुत्तान पावन्टे
वीट्टिले कोलाहलड्डलितोन्नुमे
ज्येष्टत्तियुमनुजत्तियुं तड्डलिल
चट्टि कलड्डलु कूटे प्पकुत्तु पोल

---

१ श्री कुचन नप्यार—स० वारियर, पृ० १५५।
२ श्री कुचन नप्यार—स० वारियर, पृ० १६२।

मुट्टिच्चमञ्ञु पोलुत्तानपादनी
ज्येष्ट कल्क्कोट्टुमटक्कमिल्लाय्कयाल[1]

(ध्रुवचरित से)

लोग आपस मे कहते है अरे भाई! तुमने सुना नही? उत्तानपाद के घर मे उनकी स्त्रिया आपस मे बडी हलचल मचाती है। बडी और छोटी मे घर की हाडिया तक बटने लगी है। इनके मारे राजा बडे परेशान हुए है।

इसके अलावा एक स्त्री के एक से अधिक पुरुष होते थे। वे भाई-भाई भी थे। इसकी हसी उडाते हुए कवि कहते है—

रण्टु पुरुषनु कान्तयायिट्टोरु
वण्टार कुञ्जलियालुण्टाकिलप्पोषे
रण्टु पेक्कु तम्मिलिष्ट मिल्लेन्नल्ल
शण्ठयु तल्लु पिटियु भविक्कुमे[2]

(सुन्दोपसुन्दोपाख्यान से)

उस स्त्री के जब दो पुरुष हुए तब से घर की शान्ति भाग गई है। छोटी-सी बात के लिए आपस मे झगडा होता है।

कवि नप्यार के समय के अधिकतर राजा लोग विषयासक्त थे। रुक्मिणी-स्वयवर मे उनकी चेष्टाओ के सम्बन्ध मे कवि के वचन देखिए—

कन्यक तन्नुटे वदन सरोजे
कण्णुकल रण्टु मुरप्पिच्चोरुवन
तन्नेत्ताने मरन्नु वसिच्चानु
न्नतमायोरु कुट्टि कणक्के
मटोरु मन्नन वाल्यक्कारन
वेट्ट तेरुत्त कोटुत्तु वाड्ड
तलमुटि तन्निलतेल्लाचूटि
चलमिञ्जियाले कण्टुवासिच्चान
वेल्लियटप्पनेटुत्त तुरन्नति
लुल्लिरिक्कु चुण्णापेल्ला
पच्चप्पुजुवेन्नोत्तु मुखत्तु
तेच्चु तुट्ड्डीमट्टोरु भूपन[3]

(रुक्मिणी-स्वयवर से)

---

१ श्री कुचन नप्यार—स० वारियर, पृ० १६२।
२ श्री कुचन नप्यार—स० वारियर, पृ० १६३।
३. श्री कुचन नप्यार—स० वारियर, पृ० १८०।

अपूर्वसुन्दरी रुक्मिणी का वदन-सरोज देखकर राजा सब-कुछ भूलकर स्थाणु के समान खडे रह गए। एक राजा रुक्मिणी को देखते ही सब भूलकर अपने हाथ मे रखा हुआ पान बिना खाए उसे अपने सिर के बालो पर खोसे बैठ गया । दूसरा राजा चूने के बर्तन से चूना लेकर समझ गया कि वह कस्तूरी के समान कोई सुगन्धित द्रव्य है। तुरन्त उसने अपने मुह पर लगा लिया।

श्री नप्यार की हास्यपूर्ण कविताओ की श्रेष्ठता का कारण उनकी आदर्श बुद्धि, कारुणिक सहानुभूति तथा हास्यास्पद अशो को चुनने की शक्ति है। वे किसीको छोडते नही, चाहे राजा हो या जमीदार, जागीरदार, पुजारी, कर्मचारी या गाव का मुखिया या स्त्रिया कोई भी हो—जहा उन्हे दुर्गुण दिखाई देता हे उसीको काव्य का विषय बनाकर सुधारने का प्रयत्न करते थे । समाज की बुराइया दूर करने मे उनके समान दूसरे किसी कवि ने अपनी लेखनी का प्रयोग नही किया। मलयालम के कृष्णभक्त कवियो मे वे एक श्रेष्ठ समाजसुधारक माने जाते है। वे मनुष्य से प्रेम करते थे, किन्तु उनके दोषो को ढूढ निकालते थे। इस कला मे वे बडे चतुर थे। अत हम निस्सन्देह कह सकते है कि उनके समान विविध क्षेत्रो मे कुशलताप्राप्त दूसरा कवि मिलना कठिन है।

परिशिष्ट

कुछ चुने हुए छन्द

निरणम कवि

माधव पणिक्कर

यह पद्य कवि की लिखी हुई 'भगवद्गीता' से लिया गया है—

पद्य—

अत्भुतमाय अमृताय मरनालिनु मरिवाय जगल पूर्णवुमाय
उत्भव मरणादिकल करणादिक्लो निणन्नोटुम कूटानोलिवाय
पुष्प मण पोल स्थावर चरमोदु पुणराते पुणरुम पोरुलाय
निन्नेप्पोजुतुम सच्चिल सुखमाय निन्नीटिन परमात्मानम तोजुतेन

सार—

उस परमात्मा को हाथ जोडता हू जो चमत्कारमय है, जो वेदो से ही जाने जा सकते है, परिपूर्ण है, जन्म मृत्यु जरा आदि से परे है, पुष्प की गध के समान चर और अचर से निस्सग है और हमेशा सच्चिदानन्दमय है।

आरालुम चिन्तिच्चालरिवा
नरुताकिय करुणाकर जय जय
नलिनदलायत लोचनने जय
तारार मकल मणवाला जय जय
धरणी वल्लभ सकलेशा जय
वाराकर मतिल निन्नोरु मीनाय
मरकले वीण्ट महापुरुषा जय
जय कूर्म्माकृतियाय मन्दरगिरि
चेम्मे मुतुकिलेटुत्तवने जय

---

१ यहा मलयालम भाषा के कृष्णभक्त कवियो के कुछ चुने हुए छन्द दिए गए है। कण्णश और और एजुत्तच्छन—पृ० ४१।

भयकर सूकर विग्रह माये
पण्टवनियेयु मुयर्तवने जय
जयमरियात्त हिरण्यने वेलवान
नरसिंहाकृति यायवने जय
वेन्निमिकुत्तिरुपत्तारे मुटि
मन्नरे यरुति पेटुत्तवने जय

सार—

हे भगवान्, आप चिन्ताओ से अगम्य है। नारायण है, करुणाकर है, कमललोचन है, लक्ष्मीदेवी के स्वामी है, आपने मछली का अवतार लेकर वेदो की रक्षा की, धरणी-वल्लभ है, कूर्म का अवतार लेकर पृथ्वी का उद्धार किया, हिरण्यकशिपु को मारने के लिए नरसिह का जन्म लिया, आपकी जय हो।

तुंचत्तु एजुत्तच्छन—

भारतयुद्ध छिड गया। प्रत्येक दल अपनी-अपनी सेना का सचालन करते युद्ध-क्षेत्र की ओर बढ रहा है। कर्ण एक दिन के लिए सेनापति बन युद्धक्षेत्र मे आया। और प्रतिद्वन्द्वी अर्जुन की खोज करने लगा। अपने सारथी शल्य से पूछने लगा कि अर्जुन और उसका सारथी श्रीकृष्ण कहा है? तब शल्य ने कहा कि देखो वहा अर्जुन रथ मे बैठा है और भगवान् कृष्णरथ को हाक रहे है। सारथी के रूप मे भगवान् का वर्णन कवि यो करते है—

निरन्न पीलिकल निरक्कवे कुत्ति
नेरुकरियल कूट्टि त्तिरमोटु केट्टि
करिमुकिलोत्त चिकुर भारवु,
मणिकल मिन्निटु मणि क्किरीटवु।
कुनु कुने च्चिन्नु कुरुनिर तन्मेल ननु नने प्पोटिञ्ञोरुपोटिपट्टी
तिलकवु ओट्टु वियर्पिनाल ननञ्ञुलकु सृष्टिच्चु भरिच्चु सहरि
च्चिलकुन्न चिल्लि युगल भगियु ग्राटियरे कुरिच्चोरु करुणयु
कठिन दुष्टरोटेजुन्न कोपवुं। मटुमोज्जिमरिल वलर्न रागव
कलह कण्टोरत्भत रसड्डुलु, चपलन्मारोटुकलर्न्न हासवु
एतिरिटुन्नोक्कुं भयकरत्ववु। पलतु कुण्डल प्रति बिम्बिक्कुन्न
कविल्त्तटड्डलुं मुखसरोजवुं। वियर्प्पु तुल्लिकल पोटिञ्ञ नासिका
सुमन्द हासवुं ग्रधर शोभयु तुलसियुं नल्ल सरसिजड्डलुमि
लतायोटिन तलिरुकलुमायिट क्लर्न्नुट निलकुं मालकल

तटयु मुत्तु मालकलु कौस्तुभ मणियुं चेरुन्न गलवुं
चम्मट्टि पिटिच्चोरु करतलवुं कुकुंम मुरक्के प्पूशिन तिरुमारु मारु
निरञ्ञ मञ्ञ प्पूंतुकिकलुं कान्चिकलपद सरोरुह युगवु एन्नुटे
हृदय तन्निलु कुलिक्कं पोलेय म्मणि रथं निलक कुलुक्किय
मणिवर्णन तन्ने तेलिञ्ञु कण्टु ज्ञान। (महाभारत, कर्णपर्व, पृ० २७८)

सार—

मोरपख और बाल बडी सुन्दरता से बाधे गए है। काले मेघ सदृश सावले रग के बाल, मणियो से चमकता किरीट धूलि-धूसरित अलक, निमिष मात्र से सारे प्रपच की सृष्टि, स्थिति और सहार करने की क्षमता रखने वाली भौहे। भक्तो की ओर का कृपा-कटाक्ष, क्रूर शत्रुओ की ओर का क्रोध, मधुरभाषिणी स्त्रियो के प्रति प्रेम, लडाई-झगडे को देखकर पैदा हुआ अद्भुत रस, और चपलो की चपल वृत्ति देखकर हास्यरस, सामना करने वालो के लिए भयकर, समय-समय पर बदलते हुए नव रसो की झलक दिखाई पडने वाली आखे, मकराकृति कुण्डल, कुण्डल की छाया पडने वाला गाल, कमल-मुख पसीने से तर नाक, मीठी मुस्कराहट, अधर की शोभा, तुलसी और सरसिज दलो की माला, मोती का हार, कौस्तुभ मणि से चुबित गला, चाबुकधृत हस्त, कुकुम लगी हुई छाती, पीताम्बर और चरण-कमल को मैने अपनी आखे भर देखा।

यहा भक्त कवि ने अपने भगवान् को जैसे वह उनके सामने स्वय प्रत्यक्ष हुए हो वैसी पटुता से चित्रित किया है। कवि कहते है कि मैने भगवान् को अपने हृदयस्थित भगवान् के समान ही देखा। कवि की अगाध भक्ति यहा स्पष्ट है।

शल्यपर्व मे भगवान् की स्तुति कवि यो करते है—

मथितमदवारण सुखित तर वारण जनि मृति निवारण जगदुदयकारण
चरण नत चारण चरित मधु पूरण दनुजकुल मारण सुरसुख परायण
पट निवह भीषण पद गत विभीषण मधुरतर भाषण यदुजनन पोषण
जगदमलपूषण जन हृदय मोषण नत कलुष शोषण शमित कलिदूषण
विजय रथ भूषण विनतजन तोषण विहग पति वाहन मुनि निकरमोचन
गुणजनन साधन नरक भय मोचन नलिनदल लोचन नरकमुर शासन
धृत दर शरासन रमित पुर शासन नमित नलिनासन शरधर निभानन
गुण निकर भाजन शकलित दशानन सुररिपु विनाशन मुषिनधृत भोजन
भुवन तनु जीवन नयन कलिताजन भवमरण भजन पशुपवरनदन
युवति जन मदिर विमल मति सुन्दर मणि ललित कन्धर विटयुवतिबधुर
मदन मद मन्थर विगतभय सिन्धुर पशुपकुल बालक भुवनतलपालक
चलित कर ककण मुदित समरान्कण कण्टुकौतूहल पूण्डोरानद
मुल ककोण्डु रन।

ऐसा कोई भी न होगा जो इस सुन्दर स्तुतिगीत को पढ़कर आनन्द-सागर मे न डूबता हो । ऐसी सुन्दर सुकोमल सरस शैली मे कविता लिखना साधारण कवि की शक्ति के बाहर की बात है।

कंसवध नामक च॰पू से निम्नलिखित पद लिया गया है। कृष्ण को मथुरा ले जाने के लिए कस का दूत अक्रूर जब वृन्दावन मे आया तब अक्रूर ने किस प्रकार के कृष्ण के रूप को देखा, उसका चित्र कवि के शब्दो मे देखिए—

वारार्ण केशभर नीराजी पिञ्छमणि
गोरोचना तिलक कात
वन विह्तितात खल जन कृतात
चलित खुर पशु निकट मणि नटुविल विलसु मोरु
वल मथन मणि मिव महात
कालाजनाचित विशालाक्षि पद्म भुवी
नीले प्पिरण्ट पोटि धूल
कलित वन हेल, कविलिणयिल मेल
कलरु मणि कुञ्जलिण युमञ्जकुटय तिरुमुखवु
मुटल वटिवु मसित घन काल
मगल्य तोलिल मणिश्रृग कराग्रभुवि
चेन्कोलु मार्ङ्ग नव कामं
महित वन दाम, तिरुवुरसी कामं
महिमयोटु तटवि नव पोटि निरयु मरुण तर
वेयिलोलियुमधिकमभिरामं
तालाकनोटु मनुकुलाशयेन सह
बालैर व्रजाकण विभागे
करणि हरि लोके कृत वसति नाके
प्पुकञ्च वतिनु सुकृत मितु सकल पति मति ललित
पशुपतनु मविटे विलुलोके।

(भाषा-चम्पुक्कल उल्लूर, पृ० २७४)

रासक्रीड़ा के बारे मे एक अज्ञात कवि ने लिखा है—

ग्रारोमल् केशवन् तन् मधुरिम तिरलु
वेणुगीत प्रभावाल्
वारन्नानन्द मूर्छा तटवुमोरु
लता पादपाना कदब
वार वार प्रसूनाकुर पुलकमणि
ञ्ञ्रग मेड्डु मधूली
धारा बाष्पड्डलु चेय्तटवियिल
विलसी निश्चलानम्रशाख

(केरल-भाषा-चरित, भाग २, पृ० २६)

कदम्व वृक्ष ने प्यारे दुलारे श्रीकृष्ण के मधुर वेणु-निनाद से प्रभावित होकर कलियो द्वारा ग्रपना पुलक प्रकट किया ग्रौर मधु रूपी ग्रासू बहाते हुए झुकी डालियो सहित खडा रहा।

भगवान् ने कब रासक्रीडा की, उसके बारे मे ग्रज्ञात कवि ने यो लिखा है—

उम्पर पुरानु मोरुनाल वनड्डले कण्टु
मलर विरञ्ञल्ल पवल्लिकल मल्लिक
नल्ल कुरु मोजि, चेमन्ति मुल्लकल कान क
नारिकल कैतकल चेम्पक नल्लोरिलञ्जियुं
मट्टुमी नन्मलर नीले विरिञ्ञु
मण पेरतुं वन्पुकल पूण्टु मूरण्टु
वण्टिण्टकल सभ्रममाण्टु कलिक्कु
कलिकलु मोहनमाय कुलुरत्तुमति
तिलावाके वितच्चु निरत्तिलुवच्चतु
कण्टु मनोहरन नन्द कुमारनु मन्नु
कुजलेटुत्तोन्नु विलिच्च प्योल

(केरल-भाषा-चरित, पृ० ३८)

एक दिन श्रीकृष्ण ने देखा कि वन मे बहुतसी लताए कई प्रकार के रग-बिरगे पुष्पो से लदी झुकी हुई है। उन्होने देखा कि गुलाब, केतकी, मल्लिका, प्रियगु ग्रादि पुष्प ग्रपनी सुगन्धि चारो ग्रोर फैला रहे है। उन पुष्पो पर भ्रमर मडरा रहे है ग्रौर घबराते हुए पुष्पो पर बैठ रहे है ग्रौर उडते है। उस समय चादनी छिटकी हुई थी। ग्रच्छा ग्रवसर पाकर भगवान् बशी बजाने लगे।

दूसरे एक कवि तिरुविताकूर राज्य के नरेश की कृष्ण-भक्ति की तारीफ करते हुए कहते हैं कि हे नरेश ! तुमने मनुष्य के रूप मे अवतरित होकर गोपियो के आचलो के छीनने वाले दैत्यारि को अपने मन रूपी जेल मे बाध रखा है। यह तुम्हारी राजनीति है। इस सम्बन्ध मे कोई कुछ नही कह सकता। किन्तु याद रखना कि लक्ष्मीदेवी ने अपने पतिदेव के मोचन के लिए तुम्हारी दासी के समान शरण ली है और नित्य सेवा करती रहती है। यदि उसकी सेवाओ से तृप्त होकर उसके पतिदेव को छोड दोगे तो बना-बनाया खेल बिगड जाएगा।

कविता—

मर्त्याकारेण गोपी वसन निर कवन्नोरु
दैत्यारियेत्तन
चित्ते बधिच्च वञ्चीश्वर तव नृप नीतियकु
तेट्टिल्ल पक्षे
पोलत्तार माताविता तन कणवने विटुवानाश्र यिक्कुन्नदासी
वृत्या नित्य भवाने क्कनिववलिलुदिक्कोल्ल
कारुण्य राशे।

(केरल-भाषा-चरित, पृ० ३८)

'गोपिका-गीत' नामक एक पुस्तक है। उसके कवि हैं मच्चाट्ट इलयत। उस गीत के अतिम भाग मे गोपियो ने जिस प्रकार श्री कृष्ण को देखा उसका सुन्दर चित्र कवि यो देते हैं—

करिमुकिल मालकल वन्नटि पणियु
तिरुमुटि यञ्जकोटु केट्टि
ओरुम कलन्नोरु पीलिकल मालकल
तिरुकिक्काणाय वन्नु
बालनिशाकर सन्निभमाकिय
फाले विलसिन कुरियु
उलकुटे पोलिमकल नलमोटु नलकु
चलकुटिल युगवु
सरसिरुहोदर वलमृदु मञ्जल
तिरु तयनङ्डलु मधिकं
करुणं रसं कलरुन्न कटाक्षवु
मरिके काणाय वन्नु

तिलमल रोत्तोरु नासापुटवु
तेलिवोटु कर्णद्वयवु
वलरिपु मणि मुकुराभ कलन्नौरु
गण्ड युगे कुण्डलवुं
तेलु तेले विलसिन दन्तं मधुरिम
कलरुं बिंबाधरवु
गलतलवु बत काणाय
तरिवल तोलवल विरल मोटिरवु
परिचोटणि ज्ञजकोटे
करयुगल कोण्टोटक्कुजलतु
सरस मणच्चधरान्ते
मधुर मृदु स्वर जातिकलूतु
मधुरिपु निलयु काणाय
मारिटवु मरुवु मणिमालकल
निरमियलु वन माल्य
श्ररयालिल योटु सममामुदरवु
मज्ञकिय रोमावलियु
तिरुनाभियुमरज्ञाणुकलु
परिहित पीतां बरवु
मञ्ज्ञत्तु किलिल मरोज्ञोरु तुट्युं
मञ्जुल जानु द्वयवुं
सकट निकर मशेष मकट्टु
जधकलु पुरवटियुं
नूपुर युगलवु ममरकल पणियुं
श्री पादांबुज युगवुं
तापमकन्नथ काणाय वन्नु
गोपिक मार्क्कु समीपे
कोण्टल निर पूण्टोरु हरि तन्ने
क्कण्टेज्ञुन्नेटवर मोदाल
मण्टियणञ्ज्ञु मनोरथ मेल्ला
मिण्टलकन्नु लभिच्चु

(सम्पादक मच्चाट्ट नीलकठन)

सारांश—

काले बादलो को मात करने वाले बालो को सवारकर उनमे मोरपख लगाए

हुए कृष्ण दिखाई पडे। बालचन्द्र सदृश भाल का तिलक, चचल और कुटिल भौंहे, कमल के समान सुन्दर कोमल आखे, करुणरस टपकाता हुआ कटाक्ष पास आते समय देखा नासिका चम्पकपुष्प के समान थी, कान सुन्दर थे, गडस्थल पर प्रतिबिंबित कुण्डल, चमकते दात, बिम्बाधर, मीठी मुस्कराहट और कौस्तुभ रत्न से शोभित गलतल भी देखे। कटक, कगन, अगूठी आदि पहने हुए हाथ थे। सुन्दर ओठ पर वशी रखकर बजाने वाले श्रीकृष्ण सामने प्रत्यक्ष हुए। उनकी छाती पर रत्नो का हार और वनमालाए शोभित थी। बरगद के पत्ते के समान था उनका उदर। रोमावलिया बहुत सुन्दर थी। सुन्दर नाभि, मेखला, पीताम्बर, उससे ढका नितब, सुन्दर घुटने, जघाए, नूपुरो की जोडी, देवो के लिए भी दुर्लभ रूप से दर्शन पाने वाले चरणाम्बुज गोपियो ने निकट ही देखा। भगवान् को देखते ही वे उठ बैठी और उनका मनोरथ सफल हो गया।

केरल प्रान्त मे पाण एक जाति-विशेष है। हिन्दू धर्म मे वे विश्वास करते है। दारिद्रय-देवता उनके बीच मे सदा वर्तमान रहते है। उनमे शिक्षा भी बहुत कम है। वे उच्च कुल वालो के घर जाकर गीत गाते फिरते है। तब मजदूरी के रूप मे कुछ अनाज उनको मिलता है। जिससे वे अपनी जीविका चलाते है। इसके अलावा ताल के पक्षो और बास से छाता बनाकर उसका व्यापार भी वे करते है। कुलदेवता के बारे मे पुराने गीत बडे सुरीले कठ से वे गाते है। एक प्रचलित गीत नीचे दिया जाता है। भगवान् गोपालकृष्ण की बाललीला के बारे मे यह गीत रचा गया है। यह गीत इतना लोकप्रिय है कि आबालवृद्ध लोग इससे जबानी याद कर लेते है—

गीत—

उत्तम मक यशोद ताये
निन मकन चेर्तोरु मायमेल्लां
ओट्टेल्ला चतियिवन चेय्तुपोयी
पैतले काणण मेन्नेशोदा
वट्टक पोलु एटुत्तु कोण्ट
कदलिक्कनियुमिरिञ्ञु कोण्ट
अम्मिला मुम्मिलेशोद मुम्पे
एड्डिने अन्यायं चेय्तु पोयी
आनयु क्काट्टिले चेन्नेशोदा
एन मकन कृष्णने कण्टोरुण्टो
जड्डलु कण्टिल्लेशोद यम्मे
कुतिरप्पु नाट्टिले चेन्नु केलप्पिन

अम्पाटि तन्निले चेम्मु केलप्पिन
अम्पाटि तम्मिले चेन्नु नेर
अड्डलारु मम्मे कण्टतिल्ल
वट्टारत्ते रुविले चेन्नु नोक्किन
वट्टार तेरुविले चेन्न नेर
वट्टु ञेरिक्कुन्ने वासुदेवन्
नोक्किनान पिल्लरायम्म वरुन्नत
अरमणि किड्डिणि पोत्ति क्कोण्ट
ओटित्तु टड्डिनान कृष्णनप्पोल
ओटाते ओटाते वा मकने
ओलियाते ओलियाते उण्णिकृष्ण
कदलिक्कनि तरा वा मकने
वट्टकप्पाल तरा वा मकने
वट्टकप्पालिन्नो राशयिल्ले
कदलिक्कानिकु मोराशयिल्ले
चेरुविल्लु कणयु तरां मकने
अस्त्र प्रयोग ज्ञान चेरकपिल्ले
वलर्मुल प्पाल तरा वा मकने
वलर्मुल प्पलिलोट्टाश चोत्त
वन्नटु त्तीटुन्ने कृष्णनप्पोल
कय्येलु चेन्नु पिटिच्चु कोण्ट
पोन्निन तुटलाले कैकल पूट्टि
मत्तु कोल कय्यिलेटुत्तालम्म
मत्तु काण्टोन्नड्डटिच्च नेरम
मत्तु मुरिञ्ञु निलत्तु वीणु
कैकोण्टु मोन्नु रण्टटिच्च नेरं
गोविन्द श्रीकृष्णन मुर तुटड्डि
तल्लाते तल्लातेन्टोन्क लम्मे
कायाम्पू तिरुमेनि नोवुन्नय्यो
पेट्ट निनक्केन्ते ताशियिल्लौ
एन्नुटे मार्वत्ते वटिवुकण्टो
आनोरु वेण्ण कट्टुण्ट वना-
णेन्नुटे वाय पिलर्न्नु नोक्कु
वायु पिलर्न्नुण्णि केञ्ञुन्नप्पोल

ईरेजुलकवुम वायिल क्काणां
आजु अरयालु वायिल क्काणां
आलाल वट वृक्ष कूटे काणा
उण्णिये तल्लिय मत्तु कणक्कोलु
मातावु कय्युमे कूटे काणा
अन्तकन तन्नुटे कोट्ट कण्टप्पोल
अम्म भयप्पेट्टु वीणु पोयी
तन्नेयु कूटे विजुड्डु मेन्नु वेच्चु
पार भयप्पेट्टु नित्कुन्नम्म
आनत्तलयोल वेण्ण तरामुण्णी
अम्पाटि श्री कृष्णा वा मुरुक्क
किडि्डणि मोतिरम तकत्ताल चार्त्तिटां
पकज लोचना . वा मुरुक्क
पैक्कले मेय्क्कुवान पाटत्तयक्का आन
मैक्कण्णा पोन्नुण्णी वा मुरुक्क
अण्ड चराचरं कण्टु मयडि्डनेन
कोण्टल नेर वर्णा नी वा मुरुक्क
आट्टिल क्कुलियानाय कोण्टु पोका पोन्नु
पोट्टि मुरान्तका वा मुरुक्क
अच्छन्टे तेवार क्कच्च तरां कुञ्ञे
अच्युत पैतले वा मुरुक्क
अच्छन्टे चाणय नामत्त केट्टप्पोल
तिरुवा मुरुक्किनान कृष्णनप्पोल

सारांश—

गोपियो ने आकर शिकायत की कि हे यशोदा मा, तेरे पुत्र ने बहुत अन्याय किए है। तुरन्त मा ने पूछा कि वह कहा है। तब किसीने कहा कि दूध और केले लेकर भाग गया है। उसके पीछे यशोदा मा दौडी और सब कही ढूढने लगी। जहा-जहा वह गई वहा अपने प्यारे दुलारे को न देख सकी। फिर भी वह दौडने लगी। तब देखा कि कान्ह दौड रहे है। बुलाया पूत, सुन, मत दौड, तुझे केले और दूध दूगी। कृष्ण ने कहा मुझे दूध, केले नही चाहिए। यशोदा बोली तीर-कमान दूगी। कृष्ण ने कहा मै तीर से मारना चाहता नही। यशोदा बोली मै स्तन का दूध दूगी। तब कृष्ण लालायित होकर पास आए तो मा ने पकडकर सोने की शृखला से बाधा और मारने के लिए मथनी हाथ मे ले ली। फिर मारा। मथनी टूटकर नीचे गिर गई। तब हाथ से मारने लगी। मारते-मारते वह थक गई तब कृष्ण हाय-हाय चिल्लाने लगे और कहने लगे कि हे मेरी अच्छी मा, मुझे

मारो मत। मैं तुम्हारा प्यारा बेटा नही ? मेरे बडा दर्द होता है । तुम जरा मेरी छाती की ओर देखो। बडी चोट लग गई है। यदि मैने चोरी से मक्खन खाया हो तो मेरे मुह मे देख ले। इतना कहकर उसने अपना मुह खोला। तब यशोदा ने देखा चौदह लोक, बरगद पेड, जिस मथनी से मा ने उसको मारा वह मथनी, स्वय यशोदा, कृष्ण, यम तथा यम का डरावना किला । यम का किला देखते ही वह डर गई और पृथ्वी पर गिर पडी । जब होश आ गए तब कहने लगी अरे मेरे कान्ह, मै तुमको हाथी के मस्तक जैसे परिमाण मे मक्खन दूगी। तू मुह बन्द कर। किकनी और सोने की अगूठी से तुझे सजाऊगी। जरा मुह बन्द कर। गायो को चराने के लिए खेत मे जाने दूगी। मेरे प्यारे दुलारे ! मुह बन्द कर। नदी मे नहाने के लिए तुझे ले चलूगी, बाप का अगोछा दूगी। मुह बन्द कर।— पिताजी का नाम सुनते ही कान्ह ने अपना मुह बन्द कर लिया।

कृष्ण-गाथा के चुने हुए पद--

रासक्रीडा करते समय गोपियो के मन मे अहकार उत्पन्न हुआ तो भगवान् एका-एक अदृश्य हो गए। उनके इस आकस्मिक विरह से गोपियो को बडा दु ख हुआ। उनकी खोज मे रोती विलपती गोपिया मारी-मारी फिरती दिखाई देने लगी। जब भगवान् को मालूम हुआ कि अपनी प्रेमिकाओ का अहकार दूर हुआ तब वे उनके सामने प्रत्यक्ष होते है। उस प्रसग पर कृष्णगाथाकार की कल्पनाशक्ति विविध अलकारो के प्रयोग करने की कुशलता और सहृदयो के लिए सचमुच आनन्द की वस्तु ही है।

पद—

कण्णन मेय तन्नुटे कान्तियेप्पोले काण
तिण्ण विलड्डुन्न तेन्तित्तोज़ि
अल्लले प्पोक्कुवानम्बुज लोचनन
मेल्ले वरुन्नोनेन्नल्ले चोल्ली
एन्नवल चोल्लुम्पोल नन्वतनूजन तान
एट्ट विरिञ्ञु वेलिप्पेट्टाने
अचित मायोरु पुचिरि कोण्टवर
नेञ्ञक कूटे क्कुलिप्पि क्कुन्नोन
अजन कुन्निन्मेल निन्नु विलड्डुन्न
कुज मनोरमनेन्नतु पोल
तूम कलर्न्न किरीट कोण्टेट्टवु
कोमल कान्तिये कै तुटर्न्नानि
नीलक्कल कोण्टु चमच्चिट्ट
ड्डोलक्क माण्टोरु भित्ति तन्मेल
माण्पुट्ट काचनम् कोण्टु चमच्चोरु

शाभव लिंग विलङ्ङु पोले
गोरोचन तन्नालुल्ल कुरि कोण्टु
पार विलङ्डुन्नो नेट्टि तन्निल
आयिरम तिकल तन कान्तिये वेन्नुल्लो
रानन तन्नुटे कान्ति कोण्टे
ईरेजुन्नेण्ण तेट्टीटुन्न पारेल्ला
पार मयक्कुन्नोन माऽक्कु वण्ण
आनन मायोरु तामरप्पुवुतन
नालमायुल्ल कजुत्तु टयोन
गोपिकल कण्ठतिल कोपिच्चुल्लन्तकन
पाशङ्डल वीशोल्ला येन्नु नण्णी
एप्पोलु चेन्नु कजुत्तोदु चेन्निंदट्टु
निल्पोरु पाशङ्डलेन्न पोले
मेवुन्नु वाहुक्कल रणिटलु तामर
प्पूवु कुजलु धरिच्चु निलपाते
वल्लवि मारुटे कण्मुनयायुल्ल
बाणङ्डलेट्टु पुलय्क्कयाले
उल्लिल निरञ्ओरु कारुण्य पीयूष
तल्लि प्पुरत्तु पुरप्पेट्टुतो
एन्नङ्डु तोम्मु मारुल्लोरु हार को
ण्टेट्ट विलङ्डिनेन मारिलेङ्ङु
पाल्क्कटलेम्मे च्चुमम्मोरु पालक्कट
तीक्कैण मिम्मु आनेम्म पोले
नल्प्पाल कोण्टेप्पोलु पूरिच्चु पूरिच्चु
केलपोटे निल्पोरु दरमुक्कोन
कण्णन्मेयू तम्मुटे कान्तिये वाजुत्तु वान
मण्णिलु विण्णिलु मारुमिल्ले

(कृष्णगाथा, पृ० ३२१ से ३२५)

सार—

मनमोहन तथा मनभावन श्रीकृष्ण गोपियो के सामने प्रत्यक्ष हुए। नीलवर्ण के उनके सिर पर मुकुट उसी प्रकार शोभित है जैसे अजन शैल पर सरोज विलसित हो। इन्द्रनील के पत्थरो से बनी दीवार पर जडे हुए शिवलिग के समान कृष्ण के ललाट पर गोरोचन की टीका शोभा पाती है। (ये दोनो सुन्दर और नई कल्पनाए है) हज़ारो चन्द्रमाओ को पराजित करने वाली शोभा उन्होने उनके मुख पर देखी। मुख रूपी कमल की डडी है

गला। श्री कृष्ण के हाथ गोपियो को यमपाश से बचाने वाले है। आशय यह है कि भगवान् श्री कृष्ण की कृपा से गोपियो को यम से डरने की आवश्यकता नही। कृष्ण की छाती पर शोभित मोती की माला देखकर ऐसा मालूम पडता है मानो गोपियो के कटाक्ष रूपी पैने बाणो से क्षत हृदय से निकली पीयूष-धारा हो।

भगवान् का उदर देखकर कवि यो कहते है भगवान् ने सोचा होगा कि मुझे क्षीरसागर सदा से धारण किए रहा है। अत: मै उसका ऋणी बन गया हू। वह ऋण दूध ढोकर मै चुकाऊगा, इस विचार से वे सदा दूध पीते हो।

मनुष्यो के समान जानवर भी सुख-दु ख का अनुभव करते है। जानवर क्या चिडियो की भी वैसी ही अवस्था होती है। चकवा और चकवी के विरहकाल के बारे मे कृष्णगाथाकार का मार्मिक चित्र देखिए—

कोकड्डलेल्लामे गोपतिमण्डलं
कोपिच्चु नोक्कि इरुम्बुटने
तूम तिरण्टोरु पेट मुखन्तम्ने
प्रेम मियम्नड्डु नोक्कु पिम्ने
तामर नूलड्डु कोत्ति वलिच्चुटन
कामिनी वायिल कोटुक्कु मेल्ले
नीलिम कोलिन वेलिने कण्टिट्टु
नीले नेटुतायी वीक्कु पिम्ने
वापिक तन्मरु तीरत्ते नोक्कीट्टु
माज्कित्तलनोम्बु कूकु पिम्ने
पक्षति कोण्टु तन पक्षिणी तम्नेय
ड्डक्षमनायी त्तुवुकि निम्नु
नेञ्चुचकं तम्निलु पच्च शरं नट्टु
चंचु पुटन्तम्ने वाय्क्कोण्टुटन
पोकुम्ने नेंकिल आनेम्नड्डु चोल्लीट्टु
तूकि त्तुटड्डीते कण्णु नीरुं

(कृष्णगाथा, पृ० ३५२)

सार—

सन्ध्या के समय एक नायिका के विरह के विषय मे और किसी कवि ने शायद ही इतनी सुन्दरता के साथ लिखा हो। कवि, कालिदास से भी इस प्रसग पर बाजी मार ले गए है। चकवा और चकवी सूर्यमण्डल को देखकर कुपित होते रहे। चकवा ने अपनी प्रेयसी का मुह बडे प्रेम से देखा। फिर कमल की डडी अपने चोच मे लेकर अपनी प्रेमिका के मुह मे रखा। फिर शाम होते देखकर लम्बी सांस ली। सरोवर के उस पार की ओर

देखते हुए और कूजन करते हुए वह अत्यन्त श्रांत-सा दिखाई दिया । बेचैन होकर उसने अपनी प्रेमिका से आलिगन किया और अपने आसू डबडबाते हुए 'मै जाऊ, मै जाऊ' कहता हुआ प्रतीत हुआ ।

कमल की डडी लेकर प्रेयसी के मुह मे रखना अन्धकार को देखकर आह भरना, वापी के दूसरे किनारे की ओर देखना, थककर कूक मारना, अपनी प्रिया से आश्लेषण करना, मै जाऊ ऐसा कहकर विदा लेना आखे डबडबाना आदि की कल्पना केवल सहृदय कवि ही कर सकते है ।

मथुरा से विदा लेकर नन्द लौटते है । उस समय की उनकी अवस्था के बारे मे कवि यो वर्णन करते है—

तातनाय निन्नोरु नन्दनोटिड्डने
माधवन निम्नु परञ्ञ नेरं
कण्णन तानिन्नङ्ङु पोरुन्नोनल्लेन्नु
निर्णयिच्चीटनान नन्दनप्पोल
मानस तन्निल मरच्चु वच्चन्पिनो
टानाय प्पैतलां कण्णन तानु
तेट्टेन्नु पोयाल तन्नुट्टुल्ल देशत्त
मट्टुल्ल गोपन्मारोटु कूटि
आनक दुन्दुभि कोण्टिड्ङ् पोयत
न्नारु मोरुत्तर रिञ्ञु तिल्ले
नन्दन तन्नुल्लिल मरञ्ञोरु कण्णने
न्निन्नोरु लोकररिञ्ञारल्लो
वाय्पेरु मेय्यिलेञ्ञुन्नुल्ल रोमबु
वाष्पवु मेन्मेले चोल्लुकयाल
वचन मेन्नतु पिन्नयु मोर्क्कुम्पाल
चचल माय्वरु मेन्नु आयं
नेंचक तन्नुल्लि लचन वर्णने
चेञ्चम्मे लोकररिञ्ञारल्ले

(कृष्णगाथा, पृ० ३८६, ३६०)

सार—

(यहा नन्द की भगवद्भक्ति का रूप बडी सुन्दरता से वर्णन किया गया है) नन्द ने जान लिया कि कृष्ण साथ वापस नही आएगे तब वे कृष्ण का रूप अपने मन मे धारण कर दूसरे गोपो के साथ चले गए ।

जब कृष्ण का जन्म हुआ था तब भी वसुदेव कृष्ण को इसी प्रकार सबसे छिपाकर

ब्रज ले गए थे। उस बार इस रहस्य को कोई जान न सका था। परन्तु इस बार यद्यपि कृष्ण को मन मे छिपाकर नन्द ले जा रहे थे परन्तु यह भेद बीच मे ही खुल गया। कारण यह था कि आखे डबडबा आती थी और शरीर के रोगटे खडे हो जाते थे। सबने यह अवस्था देख ली। ठीक है, चोरी किसी न किसी समय खुल ही जाती है। नन्द अपने मन मे दृढ रूप से भगवान् का ध्यान धारण कर चले गए। उस समय उनकी अगाध भक्ति के कारण आनन्दाश्रु बह रहे थे। शरीर पुलकायमान हो रहा था। यह आशय बडी प्रतिमा तथा चतुराई से कवि ने यहा स्पष्ट किया है।

'चेरुश्शेरी-भारत' के चुने हुए पद--

कृष्णगाथाकार का दूसरा ग्रन्थ है चेरुश्शेरी-भारत। उसमे श्री कृष्ण की मोहिनी मूर्ति का वर्णन देखिए--

पकज मक तन कोकयिल चेर्न्नुल्ल
कुकुम पक कदम्ब तन्नाल
अंकित मायुल्ल नन्मणि मारुम
प्पकज नेत्रयु पाल मोजियु
कज विलोचन मारुटे मानसं
चचल माक्कुन्न पुचिरियु
धूलियिल वीणु तिरञ्ञु निन्नीटुन्न
बालातपो लीलयु चापलवु
केटट्टपाल वेण्ण काणुन्न नेरत्त
ड्डाटुन्न नाटक रीतिकलु
श्यामल कान्ति कलर्न्नु निन्नीटुन्न
कोमल आयुल्ल पूवल मेय्यु
ऊनमेट्टुंकल पुलर्ति निन्नीटुवा
नानाय पैतले कैतोज़ुन्नेन

(चेरुश्शेरी-भारत, पहला अध्याय, पृ० ३)

मुनि के शाप से पाडु को अपनी स्त्रियो से अलग होकर रहना पडा था। एक दिन राजा अपनी रानियो के साथ वन मे घूम रहे थे। वसन्त का काल था। उसके प्रभाव से काम-पीडित राजा ने अपने शाप की बात भूलकर अपनी स्त्री का आलिगन किया। उसी दम प्राणहीन होकर वे जमीन पर गिर पडे।

जिस वसन्त के कारण राजा की मृत्यु हुई उसका वर्णन कवि यो करते है--

मगल नायुल्लो रगजन तन्नुटे
चड्ङाति यायल वसन्त मप्पोल

ग्रीष्मत्तिन पोक्किल निन्नुष्टाय वरुन्नुल्लो
रूमत योक्के वरट्टुवानाय
पारिट तन्निल नटन्नु तुटडि्डनान
मारनु पीन्नेय डुडुवण्णमे
सुन्दरनायुल्ल कन्दपेत नन्नुटे
स्यन्दन मायुल्ल तेन्नलप्पोल
मल्लिक नल्ल कुरिञ्ञि कुरुक्कुत्ति
मुल्लयुं मालति मल्लिकयु
वारिज मुपाय मट्टुल्ल पूक्कलु
मोरोन्ने पूत्तु विरिञ्ञ वट्टिल
चाले कलिच्चु नटन्न तुट्डि्डनान
बालिक मारुटे वीटु तोरु
आशकल मून्नु मकन्नु निन्नपिनो
टीशने स्सेविच्चु मौनिकलाय
निष्कल स्सेवये चेय्युन्न लोकक्कु
शुक्ल विकारङ्डल पोडि्डप्पिच्चान

(चेरुश्शेरी-भारत, अध्याय २२, पृ० ९९)

सार—

मगलकारक कामदेव के मित्र वसन्त ने ग्रीष्म के द्वारा पीडित पृथ्वी का कष्ट दूर करने के लिए ही आगमन किया । मन्द समीर मानो कामदेव का सुकोमल हाथ है जो अशोक, चूत, नवमालिका आदि विकसित पुष्पो का स्पर्श कर रहा हो। काम बालिकाओ के घरो मे भी स्वच्छन्द विहार करने लगा। उसी अवसर पर मौनी मुनियो के मन मे भी कामवासना उत्पन्न हुई।

मन मे स्थित भावो की अभिव्यजना मे प्रस्तुत कवि कितने कुशल है, देखिए। अर्जुन पाशुपतास्त्र को प्राप्त करने के लिए तपस्या करने वन की ओर चल दिए। उस समय उनकी प्रियतमा पाचाली ने उनकी ओर प्रेम भरी दृष्टि से देखा। उस दृष्टि का वर्णन कवि करते है—

कोमल कान्तिये कण्टोरु नेरत्तु
काममाल पूण्टोरु कामिनियाल
कन्नलत्तार वेन्नुल्ल कणमुन कोण्टड्डु
कोन्चि कुञ्ञ्जु परञ्ञालप्पोल
चेल्क्कणि्ण मारुटे कण्णुकल केल्लामे
पालक्कुञ्ञम्पायोरु पूबलंगं

काल्क्षण वेर्विट्टु पोकुन्न नेरत्तु
तीक्कनल कोरि च्चोरिञ्ञ पोले
मेय्यिलेऱ्ऱुन्नारु वेदनयेल्लाम
दैवमोऱ्ऱिञ्ञु मट्टारञ्ञोर ?

(चेरुश्शेरी-भारत, अध्याय २४, पृ० १३३)

सार—

अर्जुन का रूप देखकर कामिनी पाचाली को कामपीडा उत्पन्न हुई और वह हाव-भाव प्रदर्शित करती हुई बोली। सुन्दरी नारियो की आखो के लिए आपका पुष्प के समान सुन्दर शरीर सुखदायी है। ऐसे रूपवान् आपको एक निमिष के लिए भी अपने से अलग रखना ऐसा दिल दहलाने वाला होता है मानो शरीर पर आग के अगारे रखने पड रहे हो। मेरा दु ख भगवान् के अतिरिक्त और कौन जान सकेगा !'

जब भगवान् कृष्ण विदुर के घर आए तो वे आनन्द के मारे उछलने-कूदने लगे। उन्होने अपने प्यारे भगवान् का सत्कार कैसे किया उसके बारे मे कवि ने जो चित्र खीचा है, देखिए—

पन्नग शायि तान वन्नतु कण्टिट्टु
तन्नेयु कूटे मरन्नु मेन्मेल
भक्तनायुल्लवन नत्तं तुटट्टिडना
नृत्तमर्क्कड्डने तोन्नि आय
चित्त तेलिञ्ञुल्ल पकज लोचनन
भक्तनायुल्ल वनोटे चोन्नान
नृत्तम कोण्टेतुमे येन्नुटे युल्लिले
क्षुत्तटड्डीदुन्न तल्ल चोल्ला
पालोलि वर्णन्टे लीलये क्केट्टिट्टु
चाले त्त लिञ्ञुल्ल दासी पुत्रन
चाले वलन्नोरु भाजनं तन्निल नल
पाल वेण्ण कोण्टन्नु वच्च नेरम
आनाय नारिमार नल्कि निन्नीटिन
आनायच्चेरियिलेन्न पोले
आनन तन्निल वच्चानन्दमां वण्ण
पान तुटट्डि नानि वर्णन

(चेरुश्शेरी-भारत, पृ० ३१५, ३१६)

श्रीकृष्ण को अपनी झोपडी की ओर आते देखकर भक्त विदुर अपने को भूलकर नाचने लगे। ठीक है, भगवान् को देखकर भक्त ऐसा ही करते हैं। उस समय प्रसन्न होकर

भगवान् ने कहा देखो, तुम्हारे नृत्य से हमारी भूख मिट जाएगी। भगवान् के ये वचन सुनकर विदुर ने खुश होकर गोपियो की भाति भाजन मे दूध और मक्खन लाकर उनके सामने रख दिया। भगवान् कृष्ण खुशी-खुशी उसका आस्वादन करने लगे।

स्यमन्तक-कथा मे प्रसेनजित के भाई का वध करके हरि ने उस अमूल्य मणि को अपने अधिकार मे कर लिया, यह अपराध सबने कृष्ण पर लगाया। उसकी पुष्टि मे दी गई युक्तिया देखिए—

वण्टार पूचायलार वीट्टुकलनुदिन
वेण्ण कट्टुण्टवन तान
कण्ठ मेल्ले मुरिच्चि म्मणियु मपहरि
च्चीटिनानेनु मन्ये
चुण्टड्डा कट्टतेकिल पुन खनोरु पो
न्नुकुट कक्कुमेन्नाय
पण्टे चोल्लुण्ट मिण्टाय्कोरु वनोटिह् ना
वन्नतो नूनमल्लो

(भाषा-साहित्य-चरित, पृ० १४, भाग दो)

सार—

श्री कृष्ण ऐसा एक व्यक्ति है जो बचपन से ही गोपियो के घर से मक्खन की चोरी करता था। उसने अवसर पाकर मेरे भाई का गला काटकर मणि छीन ली होगी। ठीक है, जिसे बाल्यकाल से छोटी-छोटी चीजो की चोरी करके आदत पड गई है वह मौका पाते ही सोने के कलश की चोरी करेगा ही। राजा फिर भी कहता है यह बात और कही प्रकट नही करनी चाहिए।

बाल गोपाल की बाल-लीला के बारे मे कवि अपनी पुस्तक श्री कृष्ण-कर्णामृतम् मे लिखते है—

चांचाटीट्टुन पिच्च क्कलिक विणु किट
न्नोमन क्कय्युर्यासि
ट्टंचु वेव्वेरे तूक्कै विरलुकल मलरे
स्तोट्टे किट्टाञ्ञु मप्पोल
कुञ्ञि प्पूमं मरिञ्ञ म्मलरु मलिविलुं

पुचिरि त्तेंचोरिञ्ञुं
कुञि क्कैरप्टु माय्क्काट्टन भुवनपते
निन्ने ञान कंतोज़ुन्नेन
मानत्तम्मामने क्कण्टमृतु पोज़ियुम
क्कणणनुणिणक्कु चित्ते
मानत्ते क्के वलर्ना नमृत किरणनुम
मेल्ले मेलिन्निरङ्डी
मानिच्चम्मक्कु काट्टि प्रमद परवशाल
रण्टुकं कोप्टुमन्दम
मानत्ते य्क्कङ्ड यच्चीटिन तोज़ि लोरुना
लास्थया काण्मनौ ञान

(पून्तानम की कृतिया, पृ० ८७)

पीठ के बल लेटे हुए, हाथ को ऊपर उठाकर मुस्कराते हुए भगवान् का चित्र इस पद मे दिया गया है। ऐसे बालगोपाल की वदना कवि करते है।

चन्द्रमा को आकाश से उतारकर मा को अपना प्रभाव दिखाया। यह कथा यहा सूचित है।

हे भगवन्! आकाश मे चन्द्र को देखकर आपके मन मे यह इच्छा हुई कि चन्द्र मेरे पास आए। तुरन्त अमृतकिरण चन्द्र आपके पास आ गया। यह चमत्कार आपने अपनी मा को दिखाया। तब मा की खुशी तथा अचरज का ठिकाना न रहा। आपका अद्भुत कार्य मै कब देख सकूगा।

कुञि क्कालुम करत्तार कुलुर मति मुखवु
कण्णिले कण्णेज़ुत्तुं
किंचिल पोन्नंकुरिक्कु वशन मुकुलयु
कृष्ण, चेंचोरि वायुम्
पचत्व वन्नटुक्कुम्पोज़त्तु मति मर
न्नड्डु वीणीटु मप्पो
जेंचित्ते पौन्नु दिच्चीटुक तव तिरुमे
य्क्कुल्ल कोप्पुम मुरारे

(पून्तानम की कृतिया, पृ० ८८, पद स० ११)

सार—

मृत्यु के समय भगवान् के बाल-रूप-दर्शन हो, यही प्रार्थना कवि करते है।

सुन्दर पैर, पुष्प के समान कोमल हाथ, चन्द्रमुख, आख का काजल, प्रस्फुटोन्मुख दन्ताकुर, लाल ओठ से युक्त आपके सुन्दर शरीर के दर्शन मृत्यु के समय अवश्य हो। हे भगवान्, आप ऐसी कृपा अवश्य करे।

पच्चक्कलोल पूमै निरवु मणि कज्जल
प्पल्लव मेल्ले मेल्ले
वेच्चीटुम्पोल वितच्चीटिन मधुरिमयु
पिच्चयुं विश्व मूर्ति
मच्चित्ते वन्नुदिच्चीटेण मतिनु विशे
षिच्चु विक्षापयेहम
सच्चिल कल्लोलमे नी कृप तरिक सदा
कृष्ण कारुण्य सिन्धो
(पून्तानम की कृतिया, पृ० ८६, पद स० १४)

सार—

मरकत रत्न के समान सुन्दर शरीर, किसलय-सदृश सुन्दर पैर, चलते समय डगमगाते पैर, इन सबका दृश्य हे भगवान्! मुझे आप दिखाई दे। उसके लिए मै विशेष रूप से प्रार्थना करता ह।

भागवत नालुवृत्त के पद—

भागवत नालुवृत्त नामक एक गम्भीर कृति मिली है। उसके रचयिता के बारे मे निश्चित नही हुआ है। नरजन्म की क्षणभगुरता, भगवान् की महिमा आदि के बारे मे चार भिन्न-भिन्न वृत्तो मे यह कृति रची है।

पद—

करलिल विवेकम कूटातेक
ण्टरनिमिम बत कलययरुतारुम
मरण वरुमिनि येन्नु निनच्चिह
करुतुक सतत नारायण जय
काणुन्नु चिलर पलतुमुपायम
काणुन्निल्ल मारिय्कुव तेन्नुम
काण् किलु मोरु नूट्टाण्टिनकत्ति
ल्लेन्ने काणू नारायण जय

द्वितीयपाद—

अच्युतन्टे गुण केट्टु केट्टावोल
मिच्छ मट्टोन्निलुम कैवरा निर्णयम
विश्वनाथोदयम केल्प्पतिन्नुम महा
पापिकल क्केत्तुमो कृष्ण रामा हरे
आभिमुख्यम वरुं पुण्य पूरत्तिना
लादि नाथन कृपा लेशमुल्लोक्कुं टन

शाप मुष्टाय शेषम परीक्षित्तिन
ड्डेतु पोल पष्टतु कृष्ण रामा हरे।

तृतीयपादं—

अन्नेरम भक्त्या वन्दिच्चिरुत्तिनान
नन्नाय विष्णुरातन ब्रह्म रातने
जन्म सफल्य मेन्तन्नरिवानाय
नन्म चोदिच्चान कृष्ण हरे जय
आदित्य नुदये तिमिरिम पोले
दूरे नीड्डुन्नु मोहम नमुक्किपोल
आतुराणा मनुग्रहम निड्डलिल
ताने कैवरुम कृष्ण हरे जय।

चतुर्थपाद—

कल्याण मार्न्न हरि लीलामृतम नूवर
चोल्लां परञ्ञतु चेविक्कोलक पापहरम्
एल्ला परञ्ञट्टु वतिल्लारु मेन्नरिक
नल्लोरु विष्णु कथ नारायणाय नमः

(केरल-साहित्य-चरित' भाग २, पृ० ५८, ५९)

सार—

कवि उपदेश देते है एक निमिष भी व्यर्थ नही खोना चाहिए। समझो कि मृत्यु देवता सर्वदा हमारे चारो ओर मडरा रहे है। कुछ लोग सोचते है कि हमे जल्दी नही मरना पडेगा। यदि मरे भी तो कम से कम एक सौ वर्ष बाद ही मरना होगा। हमेशा भगवान् के गुण-कीर्तन सुनकर उनपर अनुरक्त हो जाओ। पापी लोगो को भगवान् का स्मरण करने की भी इच्छा नही होती। सुकृत के प्रभाव से शाप-पीडित परीक्षित राजा के समान भगवान् का अनुग्रह प्राप्त कर सकोगे। शाप के बाद विष्णुभक्त परीक्षित ने मुनि को बुलाकर जन्म की सफलता का साधन पूछा। मुनि ने सब कुछ भली भाति समझा-बुझाकर कह सुनाया। उन्होने कहा सूर्य के उदय होते समय जैसे अधकार दूर होता है वैसे भगवान् के प्रसाद से मोह मिट जाएगा। मुनि ने फिर कहा हे राजन्, मगलकारी दृष्टि की लीलाओ की कथा तुमको मै सुनाऊगा। तुम सुनो। तुम्हारा जन्म सफल हो जाएगा।

बालकृष्ण पञ्चाक्षरी के पद—

यह एक सुन्दर हरिकीर्तन है। केरल के सभी निवासी यह कीर्तन गाते है। इसमे श्री कृष्ण भगवान् की बाललीलाओ का चित्रण खीचा गया है।

नरक वैरिया मरविन्दाक्षन्टे
चेरिय नालत्त ककलि काण्मान
कनक किंकिणि वलकल मोतिर
मणिञ्ञु काणेण भगवाने
मलर मातिन कान्तन वसुदेवात्मजन
पुलरकाले पाटि ककुजलूति
चेलु न्चलिनेन्नु किलुङ्ङुम काचन
च्चिलम्पिट्टोटि वा कणि काण्मान
शिशुक्कलायुल्ल सखिमारु तानु
पशुक्कले मेच्चु नटक्कुम्पोल
विशक्कुम्पोल वेण्ण कवर्न्नुण्णुम कृष्णन
वशत्तु वायुण्णि ! कणि काण्मान
बाल स्त्रीकटे तुकिलुम वारिक्को
ष्टरयालिन कोम्पत्तिरुन्नोरो
शीलक्केटुकल परञ्ञुम भाविच्चुम
नीलक्कार बर्णा कणि काण्मान
एतिरे गोविन्दनरिके वन्नोरो
पुतुमयायुल्ल वचनङ्डल
मधुरमा वण्णम परञ्ञु तान मन्द
स्मितवु तुकि वा कणि काण्मान
कणि काणुन्नेरम कमल नेत्रन्टे
निरमेरुम मञ्ञत्तु किल चार्त्ति
कनक किंकिणि वलकल मोतिर
मणिञ्ञु काणेणम भगवाने

(केरल-भाषा-साहित्य-चरित्रम्, भाग २, अध्याय १२, पृ० ११५)

सार—

केरल-निवासी यह कीर्तन श्रद्धा-भक्ति-समेत नित्य बडे सवेरे उठकर गाते हैं। इसमे केरल की छाप है।

हे भगवान्! मै आपकी बाललीलाओ के दर्शन पाना चाहता हू। उसके लिए आप कनक-किकिणी, कटक, अगूठी आदि पहनकर अपना बालरूप मुझे दिखाए। वशी बजाते नूपुर की आवाज सुनाते, दौडे हुए मेरे पास आए। बालगोपियो के साथ धेनुओ को चराते समय भूख के मारे माखन की चोरी करने वाले, हे प्यारे दुलारे! मेरे वश मे आ जाइए। गोपियो के वस्त्रो को लेकर वट के पेड पर बैठकर बुरा-भला कहने वाले भगवान्! दर्शन दीजिए। मधुर बाते करके मुस्कराते हुए मेरे पास आए।

एजुत्तच्छन की कृतियों से पद—

श्री तुन्चत्तु आचार्य ने सस्कृत के आधार पर भारतम् लिखी है तो भी ऐसे बहुत-से भाग पाए जाते है जहा कल्पना की मौलिकता स्पष्ट दिखाई पडती है। पाडु राजा अपनी पत्नियो के साथ वन मे जाकर वनोत्सव मना रहे थे, जिसका वर्णन मूल से भी अधिक सुन्दरता के साथ आचार्य ने किया है—

मूल—

सचरन् दाक्षिण पार्श्वं रम्य हिमवतो गिरे ।
उवास गिरिपृष्ठेषु महासालवनेषु च ॥

क्षणेन पतिता भमौ विललापातुरोमृत ।

अनुवाद—

मुय्य भोगेन सुखिच्चिरिक्कुम कार्त्तिक
लुक्काम्पिलोन्नु तोन्नि पाडुविना पत्तिनाय
कान्तिये रीटुन्नोरु कान्तमारोटुम कूटि
कान्तारम तन्निल पुक्कु नन्नायि रमिक्कणम
वाट्टमेन्नियै मम नायाट्टिन वैदग्ध्यवुं
काट्टण मिवर क्केन्न कौतुकत्तोटु कूटि
द्यु मणि तन्टे रश्मि पोलु मड्डणायात्त
हिमवान तन्टे तेक्के युरपेरिटु काट्टिल
पेरिके रसम पूण्टु कलिच्चु मरुविनान
गिरि भृगड्डल तोरुम मति कौतुकत्तोटे
करिणी युग मध्यगत नाय् मदिप्पोरु
करि वीरनेप्पोले मदन विवशनाय
करिणि गमन माराकिय मार्यमारा
तरुणी मणिकला कुन्तियुम माद्रि तानुम
सरसीरुह शर समना कान्तन तन्ने
शर तूणीर करालोज्वल करवाल
धरनाय शरासन करनाय काणुन्तोरुम
सरसीरुह निर निकट परवश
तरमानसन्माराय मरुवीटिन नेरम
हरिण हरि करि किटि शार्दूलादिक
लरिके वरीमुखगड्डलाय काणायप्पोल
शरड्डल कोट्टु वीणुम मरण भयम कोण्टुं

मरड्डल मरञ्ञु पोय निन्नु नोक्कीटुन्नतुम
निष्कुटनिकल मुन्न मिरुन्नीटिन पोले
मक्कट क्रीटड्डल कण्टुल्कोतूहलम पूण्टुम
कुक्कुट रति क्रीडादिकल कण्टानन्दिच्चुम
पोलक्कुटड्डल्कु नेरा तेक्कोक नोक्किकक्कण्टुम
कोकिल कोक केकि चातक शुकादिस
भोगभेदड्डल कण्टु रसिच्चु मतिन मध्ये
वेगमोटम्पु कोण्टु मन्नकि वीणिटुन्नतुम
शोक मोटिण कूटि कळेणु वीणोटुन्नतुम
करटिक्कुलम तम्मिल कटिच्चु कलिप्पतुम
कण्टु कोतुकम पूण्टु कण्टिवार कुञ्ञलिकल
कण्टाश्लेषवुं चेयतु कान्तयुम तड्डलुमाय
कण्टकाननम तोरुम रमिच्चु वसिक्कयुम
माकन्द मकरन्द विन्दु पानवु चेय्तु
कूकुन्न पिककुल पचम केट्टु केट्टूम
वण्टुकल मधुपानम चेय्तु मत्तत पूण्टु
कोण्टाटि मुरण्टुटन कण्ट पुष्पड्डल तोरुम
कुण्ठ भाववुम नोक्कि स्सभ्रमिच्चीटुन्नतुम
कण्टोरानन्दम पुण्टु मधर पानम् चेय्तुम
मन्मथलीन कोण्टु कण्मुनच्चाम्पि चाम्पि
सम्मोदम वलर्न्नुल्लिल सम्मोहम पेरुकिनुम
वम्मलमु कलेरि निर्मल शिलातले
नन्मलर मेत्त तन्मेलुन्मेषम पूण्टु वाणु म
भामिनी मारुमायि स्सानन्द मिरिक्कुम्पोल
कामनु समनाय पाण्डुवा नृप वीरन
कलयुम मानुम कूटि क्कमल शरमेट्टु
कलिक्कुन्नतु कण्टु कोटुतां शरम कोण्टु
शरमेट्टतु नेरम मृगवु मुनियायि
नरपालकन तन्ने श्शपिच्चु

(केरल-भाषा-चरितम्, भाग २, नृप पाडु का अन्त, पृ० ३७७ से ३७९)

सार—

बडे आनन्द से पाण्डु अपने दिन बिता रहे थे। एक दिन उनके मन मे एक इच्छा उत्पन्न हुई जो उनके सत्यानाश का कारण बन गई। उन्होने मन मे ठान लिया कि अपनी स्त्रियो को साथ लेकर वन मे जाऊगा और शिकार की कला-कुशलता का प्रदर्शन अपनी

स्त्रियो के सामने करूगा। फिर अपनी रूपसी स्त्रियो के साथ वे हिमवान् पर्वत के इर्द-गिर्द स्वच्छन्द विहार करने लगे। हथनियो के मध्य मे हाथी जैसे रमता है वैसे ही कुन्तीदेवी और माद्री के बीच मे नृप मौज उडा रहे थे। कामदेव के समान सुन्दर पतिदेव के साथ दोनो सुन्दरिया बडे उल्लास से टहल रही थी। नृप शिकार करते-करते जा रहे थे। शर-भय से जानवरो का भाग जाना, अस्त्राघात से पक्षियो का गिर जाना, अपनी सहचरियो के साथ कोकिल केकी आदियो का सलाप, हथनियो से हाथियो का मिल जाना, बाघ रीछ आदियो की क्रीडाए, आदि सब देखते-देखते उन्मत्त होकर वे चले जा रहे थे। पुष्पो पर मडराते हुए भ्रमरो का मधुपान करना, कोयल का पचम स्वर आदि सब उनको सुखदायी प्रतीत हुए। बीच-बीच मे अधरपान करते और पहाडो पर घूमते, आराम करते नृप ने देखा कि एक हिरण अपनी हिरनी के साथ काम-विहार कर रहा है। तुरन्त उन्होने तीर से उसे मारा, हिरण मुनि बन गया और शाप दे दिया जो उनके नाश का कारण बन गया।

पूतना-मोक्ष नामक कथकलि ग्रन्थ मे श्री वसुदेव बालकृष्ण को लेकर वृन्दावन जा रहे थे। उसका सुन्दर चित्रण कवि यो करते है—

कविता—

एवन्नि शम्य वसुदेव न्मुदातदनु भाव
तेलिञ्ञु सुकुमारम तनुविजित भारम निशि
निज कुमारम करमतिलेट्टुत्त नति चिरमथ
गमिच्चु बहिरुरु सुकृत नतुल महिभारम
मन्दन्तुन्नितर विन्दड्डल तानेघन वृन्दड्डल वन्मज्ञ
पोञ्जिञ्ञु प्रभुमन मरिञ्ञु कणपति यणञ्ञु
फणपटल कुटकलुटे नटुविलति चटुल
मणि घटकड्डलाल वज्ञि तेलिञ्ञु
शूरात्मजन तदनु बूरत्तु नीड्डियोरु सूता-
त्मजामपि कटन्नु निभृतत कलर्न्नु निकट भुवि
चेर्न्नु नन्दनुटे सदनमतिल मन्दत यकन्नु निज
नन्दनने बच्चु सुखमायो
आयास हीन भवनादाय तल सुतये आयात
बानथ तिरिच्चुम प्रिययोटोरुमिच्चु
तनययेअणच्चु केट्टु शिशु रोद मय कूट्टड्डल
कूटि भटर पेट्टनु नृपनोटरियिच्चु

(केरल-भाषा-चरितम्, पृ० २३८)

सार--

ऐसे वचन सुनकर कोमलकुमार को लेकर वसुदेव वृन्दावन की ओर रवाना हुए। उस समय और वर्षा होने लगी। प्रभु की इच्छा जानकर शेष अपने अनन्त फनो को उनके ऊपर फैलाकर मूसलाधार पानी के आघात से उनकी रक्षा करते हुए साथ चले। यमुना को पार करके वसुदेव वृन्दावन पहुचे। फिर कान्ह को नन्द के कमरे मे, जहा यशोदा अपनी बेटी के साथ लेटी हुई थी, लिटाकर वे लौटे। उस बालिका को लेकर तुरन्त ही वे जेल की कालकोठरी मे आए तो बच्ची रोने लगी। रोने का शब्द सुनकर पहरेदार जाग उठे। और देवकी के जन्म देने का समाचार कह सुनाया।

आधुनिक कवि

वर्तमान काल मे भी मलयालम भाषा मे बहुतसे कवि कृष्णभक्त है। उनमे एक प्रतिभासपन्न कवि के पद नीचे दिए जाते है—

कविता—

अप्पीलि क्कण्णु चूटुम तिरुमुटि वलजि
द्रत्न सकाशभालम
मुप्पारेल्ला मयक्कुम पुरिकलत दया
लोलमा नील नेत्रम
नलपीतोद्यद्दुकूलम मुरलियुटे मुख
त्तुम्मवय्क्कुन्न वक्त्रम
चिल पारम्य प्रभारञ्जित मृदुहसितम्
कण्ण ञान काण्मतेन्नो

सार—

वे काले बादलो के सदृश केश जिनमे मोरपख लगे हुए है, कोमल भाल, तीनो भुवनो को मोहित करने वाली टेढी भौहे रूपी लताए, दयानिधान नीली आखे, पीताम्बर, मुरली को चुम्बन करने वाला मुह, उज्ज्वल प्रभापूरित मीठी मुस्कराहट ये सब हे भगवान्! मै देख सकू।

आयासत्ताल वियर्प्पिन कणिक कलणियुं
नेट्टिमेल पातियोलम
मायुम सिन्दूर गोपिक्कुरियतुमु, टलिल
क्काटु चेम्मण्णु मेन्ति
सायकालम पुणर्न्नाटिन घन शकलम
पोले माटिन्टे पिन्निल
कायाम्पू वर्ण नेत्तुं नयन मधुरमा
चित्र मोर्क्कट्टे चित्तम

३० गीतामृत श्री कृष्णदत्त पालीवाल
३१ आधुनिक हिन्दी साहित्य, १८५० से १९०० ई०, डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
३२ सस्कृत साहित्य का इतिहास
३३ मीरा की पदावली श्री सदानद भारती
३४ सुदामाचरित श्री नरोत्तमदास
३५ सुदामाचरित सपादक श्री कालीदास कपूर
३६ सुदामाचरित सपादक श्री ललिताप्रसाद शुक्ल
३७ तुलसीदर्शन डा० बलदेवप्रसाद मिश्र
३८ कबीर-साहित्य का अध्ययन श्री पुरुषोत्तमलाल श्रीवास्तव
३९ सूरमुक्तावली स० श्री हरदयालुसिह
४० मीराबाई डा० कृष्णलाल
४१ भारतीय दर्शनशास्त्र डा० देवराज और डा० रामानन्द तिवारी
४२ त्रिवेणी आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
४३ कबीर श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी
४४ हिन्दी साहित्य की भूमिका श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी
४५ आलोचनाजलि श्री महावीरप्रसाद द्विवेदी
४६ सिद्धान्त और अध्ययन श्री गुलाबराय
४७ नददास भाग १ और २ श्री उमाशकर शुक्ल
४८ नददास डा० रामरतन भटनागर
४९ काव्यप्रदीप श्री प० रामबहोरी शुक्ल
५० भक्त सूरदास स० ठाकुर सूर्यनाथसिह
५१ चौरासी वैष्णवन की वार्ता प्रकाशक वेकटेश्वर प्रेस

मलयालम—

१ हरिनामकीर्तन कवि तुन्चत्तु आचार्य
२ अध्यात्मरामायणम् ,, ,,
३ भारतम् ,, ,,
४ भागवतम् ,, ,,
५ चिन्तासन्तानम् ,, ,,
६ भगवत्गीता निरणम कवि
७ कण्णशभागवतम् ,, ,,
८ भारतम् ,, ,,
९ कृष्णगाथा चेरुश्शेरी नपूतिरि
१० भाषा-नैषधचपू मज़मगलम
११ ज्ञानप्पाना पून्तानम नपूतिरि

१२ श्रीकृष्णकर्णामृतम् पून्तानम नपूतिरि
१३ कुचेलवृत्तम् रामपुरत्तु वारियर
१४ साहित्यचरित्रम्, भाग १, आर० नारायण पणिक्कर
१५ ,, ,, भाग २ ,, ,,
१६ ,, ,, भाग ३ ,, ,,
१७ ,, ,, भाग ४ ,, ,
१८ ,, ,, भाग ५ ,, ,,
१९ , ,, भाग ६ ,, ,,
२० ,, ,, भाग १ उल्लूर परमेश्वरय्यर
२१ ,, ,, भाग २ ,, ,,
२२ श्री वासुदेवस्तवम्, स० डा० पि० के० नारायण पिल्ला
२३ महाभागवतसार-सक्षेपम्, नाणुक्कुट्टि मेनोन
२४ श्रीमहाभागवतम् दशमम्, स० पोरेयन्नूर भास्करन नपूतिरि
२५ भगवत्गीता, स० पि० शेषा द्वी बी० ए० एम० एल०
२६ स्तोत्र-रात्नाकर-मालिका, स० के० के० पिल्ला
२७ प्रदिक्षणम्, डा० अच्युत मेनोन
२८ एजुत्तच्छन, ,, ,,
२९ ,, पि० के० नारायण पिल्ला
३० ,, आर० नारायण पणिक्कर
३१ कुचन-नप्यार ,, ,,
३२ ,, ,, रामकृष्ण पिल्ला
३३ ,, ,, प्रोफेसर बालकृष्ण वारियर
३४ ,, ,, शकरन एजुत्तच्छन
३५ हैन्दव धर्म श्री आगमानद
३६ भारत-प्रवेशिका, वटक्कु कूर राजराज वर्मा
३७ कृष्णगाथा, स० राजराज वर्मा
३८ ,, के० वि० एम०
३९ कृष्णन्, सि० पि० गोविन्द मेनोन
४० कुचेलवृत्तम्, स० एम० एम० मणि बी० ए०
४१. ,, ,, शूरनाट्टु कुचन पिल्ला एम० ए०
४२ कर्णपर्व करमना के० शिवरामकृष्ण शास्त्री
४३ हिन्दुमतसार, तत्वड्डल श्री विवेकानन्द
४४ शकराचार्य वटक्कु कूर राजराज वर्मा
४५ श्रीकृष्णचरित मणिप्रवालम्—कुचन नप्यार

४६ श्रीकृष्णचरित मणिप्रवालम् टीकाकार देवस्व बोर्ड
४७ भजनकीर्तनमाला, भाग १, स० के० शकरन मूस्सत
४८ ,, भाग २, स० के० शकरन मूस्सत
४९ कण्णशन्मारु एजुत्तच्छनु स० विद्वान् के० इ० नारायण पिल्ला
५० पाट्टुकल, भाग १, योगक्षेमम् कपनी
५१ मोहमुद्गरस्तोत्र, श्री शकराचार्य
५२ बाललीला, कवि अज्ञात
५३ कृष्णलीला रासक्रीडा स० कोलत्तेरि शकर मेनोन
५४ चेरुश्शेरी-भारत्म् श्री चेरुश्शेरी
५५ प्रेमसोपानम्, वि० आर० एन० कय्मल
५६ भारतम् इरुपत्ति नालुवृत्तम् श्री कुचन नप्यार
५७ ,, पतिन्नालुवृत्तम, श्री कुचन नप्यार
५८ पत्तुवृत्तम्, प्रकाशक श्रीराम विलासम् प्रेस
५९ मद्दीप श्री कुचि रामन् नायर
६० भाषा चपू स० उल्लूर, एस० परमेश्वरय्यर

पत्र-पत्रिकाए—

१ माधुरी
२ सरस्वती
३ अवन्तिका
४ कल्याण
५ कल्पना
६ नागरी प्रचारणी (खोज रिपोर्ट)

अंग्रेजी की पुस्तकें—

१ अरली हिस्टरी आफ वैष्णविज्म इन साउथ इण्डिया
२ वैष्णविज्म, शैविज्म, एण्ड मैजर रिलीजियस सिस्टम्स
३ क्यानरीज लिटरेचर
४ वैष्णव फेथ मूवमेट